ॐ श्री शंखेश्वरपार्श्वनाथाय नमोनमः

तीर्थोद्धारक आचार्यदेव श्रीविजयनीतिहर्षसूरीश्वरेभ्यो नमो नमः

(श्री विजयलक्ष्मीसूरिविरचित)

उपदेश प्रासाद

भाग चोथा

(हिन्दि-भाषानुवाद)

(व्याख्यान २११ से २६३)

– अनुवादक –

कु. सुमित्रसिंहजी लोढा माडगढ (मेवाड)

– प्रकाशक –

प पू सविज्ञशाखाग्रणी आचार्यदेव
विजयहर्षसूरीश्वरजी शिष्य तपोमूर्ति
प पू श्रीमद् मंगलविजयगणिवरके सदुपदेशसे

श्री वर्धमान जैन तत्त्वप्रचारक विद्यालय
गृहपति मास्तर जेसिंगभाइ चुनीलाल शिवगंज (राजस्थान)

विक्रम सं २०१८ वीर सं २४८८ इसवी सं १९६१
प्रथमावृत्ति प्रत १००० मूल्य रू. ५-००

-: प्राप्तिस्थान :-
श्री वर्धमान जैन तत्त्वप्रचारक विद्यालय
शिवगंज (राजस्थान) मारवाड़
स्टेशन एरनपुरा रोड

-: मुद्रक :-
डाह्याभाई ह. पटेल
श्री खडायता मुद्रण कला मंदिर
कंदोईनीवाडी, घीकांटा रोड,
अमदावाद-१

समर्पण

परम पूज्य संविग्नशाखाग्रणी सकलागमरहस्यवेदी
सुविहिताचार्य १००८ पूज्य गुरुदेव श्री

विजय हर्षसूरीश्वरजी महाराज

卐

अनादि भवचक्रमां अज्ञानतिमिरथी भरेला एवा
मारा आत्माने आपे सर्वज्ञ शासननुं दर्शन
करावी मनुष्य भव ए मोक्षस्थाननी
मोसम रुप छे ते समजावी
चारित्र मार्गमां मने जोडी
उपकार कर्यो,ते निःसीम उपकारी
आपने आ ग्रंथ
समर्पण करुं छुं



—समर्पक—
प. मंगलविजय

श्री उपदेश प्रासाद छपाववा मददगारनुं
यादि पत्र

६००) पादरलीवाला शा बाबुलाल तिलोकचदजी

६००) पादरलीवाला सघवी ताराचद कस्तुरजी

५००) शामलानी पोलना तपागच्छ उपाश्रय ज्ञानखाता तरफथी ह. शेठ कचराभाइ हठीसग

४००) कवराडा वाला सघवी धरमीचद कस्तुरजी तरफथी शनिश्चरजी खाताना

३००) खुशालभुवन उपाश्रय ज्ञान खाताना ह. सुतरीया भोगीलाल मगनलाल

३००) तखतगढ वाला शेठ नथमल पुनमचदजी

३००) शा हिमतलाल खीमराज अमदावाद आस्टोडीया (रगाटी कापड बजार)

३००) मरुधर सघ तरफथी

१४०) शा कपुरचद जेठाजी तखतगढ वाला

१५४) सीवनी ज्ञानखाताना ह. शेठ मणीलाल पोपटलाल

१५३) शीवगज सघवी फतेहचदजी झवेरचदजी तथा छोगमलजी

५१) पन्यास रामविजयजीना उपदेशथी सीवनी वाला श्रावक घेवरचदजी मालुन

—: प्रस्तावना —

आ अपूर्व ग्रन्थना त्रण भागो पूर्ण कर्या पछी श्री वर्धमान जैन तत्त्व प्रचारक विद्यालय चोथा भागनु पण प्रकाशन करी वाचक वर्गना करकमलमा मुके छे ते महान् आनन्दनो विषय छे

आ ग्रन्थनु "उपदेश प्रासाद" नाम राखवानु कारण कथानुयोगनी पृथग्रचनानी उत्पत्ति, अने ग्रन्थकर्ता श्री विजयलक्ष्मी सूरीश्वरजीनो सामान्य परिचय, विगेरे त्रीजा भागनी प्रस्तावनामा में आपेल छे जेथी पुनरुक्ति दोषना भयथी अहि फरीथी आपवामा आवतु नथी

आ भागमा जिनेश्वरनी पूजा, ज्ञानाचार, दानना प्रकार, छ लेश्या, पाच कारणोथी कार्यसिद्धि, नवनियाणा, क्रोधादि चार कषायो, इत्यादि घणा विषयो सुन्दर शैलीथी भरपूर दृष्टान्तो साथे उपदेशात्मक दृष्टिथी कहवामां आवेल छे ते जे वांचकवर्गनु दिल जरुर आकर्षे तेम छे,

आ भागमां केटलीक मुश्केलीना कारणे वधारे अशु-द्धिओ रहेवा पामी छे तथा अधवचथी काम बध करी पुस्तक वधावी बहार पाडवु पडेल छे ते बदल वाचकवर्ग अमने क्षमा आपशे एज अभ्यर्थना

ली

धीरजलाल डाह्यालाल महेता

ठे झवेरीवाड खडतरनी खडकी अमदावाद

श्री उपदेश प्रासाद छपाववा मददगारनुं यादि पत्र

६००) पादरलीवाला शा बाबुलाल तिलोकचंदजी

६००) पादरलीवाला संघवी ताराचंद फतुरजी

५००) शामलानी पोलना सागगच्छ उपाश्रय ज्ञानखाता
तरफथी ह शेठ पचराभाइ हठीसंग

४००) फवराडा वाला संघवी वरधीचंद फतुरजी तरफथी
शनिश्चरजी खाताना

३००) खुशालभुवन उपाश्रय ज्ञान खाताना
ह सुतरीया भोगीलाल मगनलाल

३००) तखतगढ वाला शेठ नथमल पुनमचंदजी

३००) शा हिंमतलाल खीमराज अमदावाद आस्टोडीया
(रंगाटी कापड बजार)

३००) मरूधर संघ तरफथी

१४०) शा कपुरचंद जेठाजी तखतगढ वाला

१७५) सीवनी ज्ञानखाताना ह शेठ मणीलाल पोपटलाल

१५३) शीवगंज संघवी फतेहचंदजी झवेरचंदजी तथा
छोगमलजी

[illegible]१) पंन्यास [illegible]ामविजयजीना उपदेशथी सीवनी वाला
श्रावक घेवरचंदजी मालुन

—: प्रस्तावना :—

आ अपूर्व ग्रन्थना त्रण भागो पूर्ण कर्या पछी **श्री वर्धमान जैन तत्त्व प्रचारक विद्यालय** चोथा भागनु पण प्रकाशन करी वाचक वर्गना करकमलमा मुके छे ते महान् आनन्दनो विषय छे

आ ग्रन्थनु "उपदेश प्रासाद" नाम राखवानु कारण कथानुयोगनी पृथग्रचनानी उत्पत्ति, अने ग्रन्थकर्ता श्री विजयलक्ष्मी सूरीश्वरजीनो सामान्य परिचय, विगेरे त्रीजा भागनी प्रस्तावनामा में आपेल छे जेथी पुनरुक्ति दोषना भयथी अहि फरीथी आपवामा आवतु नथी

आ भागमा जिनेश्वरनी पूजा, ज्ञानाचार, दानना प्रकार, छ लेश्या, पाच कारणोथी कार्यसिद्धि, नवनियाणा, क्रोधादि चार कषायो, इत्यादि घणा विषयो सुदर शैलीथी भरपूर दृष्टान्तो साथे उपदेशात्मक दृष्टिथी कहेवामां आवेल छे के जे वाचकवर्गनु दिल जरुर आकर्षे तेम छे,

आ भागमां केटलीक मुश्केलीना कारणे वधारे अशुद्धिओ रहेवा पामी छे तथा अधवचथी काम बध करी पुस्तक बधावी बहार पाडवु पडेल छे ते बदल वाचकवर्ग अमने क्षमा आपशे एज अभ्यर्थना

ली

धीरजलाल डाह्यालाल महेता

ठे झवेरीवाड खडतरनी खडकी अमदावाद

अर्हम्

ग्रन्थ संबंधी वक्तव्य

श्री वर्धमान जैन तत्त्व प्रचारक विद्यालय संस्थाए उपदेश प्रासादनो बीजो त्रीजो भाग हिंदी भाषामा छपाया पछी तेने पूर्ण करवाने प्रेस काम चालु ज राखेल परंतु प्रेस विगेरेनु पराधीन होवाथी त्रण भागना वाचक वर्गनी मागणीओ वारवार आव्या छता तेमना वांचन रसनी क्षुधा माटे थोडक विलंब थया छता चोथो भाग करकमलमा मुकता आनंद मानीये छीये

त्रीना भागमा श्रावक धर्मना गुणव्रतो अने शिक्षाव्रतोथी चौद स्थंभो अने बत्रो दश व्याख्यानो भरेल छे जे वर्षना अनुक्रमसर दिवसोमा दीवाली पर्व सुधीनु वर्णन समायेलु छे अने आ चोथा भागमा बेसता वर्षना महिमा वर्णन करी दीवसोना क्रमे ज्ञानपञ्चमी, मौनएकादशी विगेरे व्याख्यानो साधुना विरहमा पण सुबोध थाय तेवा क्रमे रचना करी छे तथा जिनपूजा प्रतिक्रमण विगेरे श्रावक धर्मना ज्ञानक्रिया मार्गोना परमरहस्य तत्त्वज्ञान साथे आपी परम पुरुषोना चरित्रोना आदर्श कथानको द्वारा पश्चातापनी शुद्धिनु वर्णन पण भरपुर छे जेथी आ भाग वाचक वर्गने एटलो उपयोगी छे के मंद बुद्धि आत्मा पण सुलभ बोधि बने तेम छे

उपदेशप्रासाद नामने यथार्थ करता मन्थकार संवेगी परमगीतार्थ होवाथी तात्त्विक दृष्टांत दर्शावीले जेम राजा महाराजाने महेलनी सामग्री आनंद उपजावे तेवा उपदेश रहस्यो भरी आत्माना सहजानंदी स्वभावनो अनुभव स्वाद आगला चाटवानी जेम मनन करवा योग्य छे

आ ग्रन्थने हिंदी भाषामां छपाववा माटे गुरुदानेश्वरी परम श्रद्धालुपादरीवाला भाग्यवर्य बाबुलाल त्रिलोकचन्द्जीनो आभार यहां याद करवा छे जेणे पन्यास मंगलविजयजीनी प्रेरणा थता गुजराती भाषाना प्रथम भागो वांचता ज्ञानामृतनो स्वाद वधी पड्यो अने उपरना भागो मेळववा उत्कंठित थया परंतु भावनगर जैनधर्म प्रसारक सभा तरफथी पांच आवृत्ति ओमां छपाया छतां अलभ्य थया अने धर्महीन आत्माओने पण सुलभ बोधि समजी जैन समाजना वर्तमान भौतिक जमानामां अति उपकारी मानी छपाववा निर्णय कर्यो सर्वदानमां ज्ञानदान मोक्ष हेतु माना राजधाननी जैन समाज अने हिंदी भाषा परमहितकारी समजी हिंदी अनुवाद कराववा पोतानी पुन्य लक्ष्मीनुं दान स्वीकार्युं अने छापवामां वेचाण मददगारोसां अधुरी रकम पुरी करवा दरेक भागमां पूर्ण मन्द संस्थाने अर्पण करेल छे एटले पुरेपुरो यश अने धन्यवाद पात्र तेमना अन्य सहायक वर्ग पण अनुमोदन योग्य छे आ पूर्ण ग्रन्थनो अनुवाद जैन साहित्यरसिक सुमित्र सिंहजी लोढा उदैपुरवाला परमार्थ भावे करी आपवा तथा

प्रेसनी व्यवस्था प्रूफशुद्धि विगेरेथी ग्रन्थने आदर्श करवा पंडित धीरजलाल डाह्याभाईनी लागणी तथा शामलानी पोल वाला चिनुभाई मणीलाल फुदी तथा लींबडीवाला शान्तिलाल जगजीवनदास नाणानी अन कागल खरीदी विगेरे कार्योमा परमार्थ प्रेम माटे धन्यवाद जरुरनो छे

ग्रन्थ शुद्धि पत्रक कर्या छता दृष्टि दोषके टाइप दोषनी खामीओ माटे वाचक वर्ग सुद्धभावे सुधारी लेवा नम्र विनति छे तथा जिनाज्ञा विरुद्ध काइ पण अशुद्धि थइ होय ते त्रिविध (२) मिच्छा दुष्कृत याचना साथे वाचक वर्ग सुलभ बोधि बने एज शासन देवोने अभ्यर्थना इति शुभम् ।

ॐ अर्हम् नम

संघवी ताराचंद कानुरजीनु संक्षिप्त जीवन चरित्र

श्री राजस्थान मरुधर भूमिमां आजोर शासनमंडित सुवर्णगिरि प्रदेशमां धर्म कार्योथी उज्वल कीर्ति वाल्ु प्रसिद्ध गाम छे तेमां वि स १९४१ ना महा सुदि पांचम ताराभामां चंद्रनी जेम आ पुन्य पुरुषनो जन्म थया अने राशी मेलवी यथार्थ नाम ताराचंद पाड्यु पुत्रना लक्षण पारणामां आनंद विनयादि स्वभाव वाला थया

पांच वर्षनी वय थता मातपिताने पाठशालामां मुकवाना मनोरथ जाग्या अने शुभ दिवस धार्मिक व्यवहारिक अभ्यास शरु कर्या ए जमाना मुजब अगीयार वर्षनी वय थतां हिसाब विगेरे काम चलाउ अभ्यास थतां पुन्योदयना प्रकाश करवा परदेश जवा भावना जागी अने वि स १९५२नी शालमां मुंबइ गया पैसाना अनुभव करवा प्रथम नोकरी शरु करी बुद्धि कुशलतानु काम करतां थोडा समयमां उंडो अनुभव अने आवक मळवी

वि स १९६८ नी शालमां बाइ सोनी साथे लग्न थया अने स्वाधिन धंधानी भावना जागी धर्मसंस्कार होवाथी अल्पारंभे सारी कमाई वाला सराफी धंधा वि स १९७३ नी शालमां शरु कर्यो कीर्ति पुन्यदान अने आवक सर्वे संपत्तिनु मूल समजी आवकना अमुक भाग शुभ क्षेत्रोमां वापरवा निर्णय कर्यो

वि स १९७४ नी शालमां प्रभातना प्रकाश करनार सूर्यनी जेम कुल दीपक कुंदनमलना जन्म थया जन्म महोत्सवना वधामणा साथे सारी सखावतो शरु करी तथा देव गुरु भक्ति ज्ञानी वैरागी मुनियोना समागम अने धर्मना मर्म जाणी विवेकथी मंदिर उपाश्रय साधर्मिक सेवा अनुकंपा जेवा क्षेत्रोमां बहुमान अने उदारता साथे गुप्तदान पण प्रसंगे

करता बाध अने अलर घन साथे धर्मनी कमाणीथी उभयलोक सफल मानता जेमा जसलमेर तीर्थ यात्रानो सघ साग्आठसो याश्रालु साथे करता शासननी प्रभावना घणी अनुमोदना कराय छे तथा पन्यास मगल विजयजी विगेरे चतुर्विध सघ साथे वृद्ध वयमा पेदल चाली सांडेराव सुधी हमेशा तपजप साथे प्रयाण सघवीनु थयु ते विशेष अनुमोदन कर छे ते मुमुक्षु आत्माने कल्याण हेतु छे माटे जणावु जरूरु मानु छु

वि स २००१ नी सालमा पादरली सघना अति आग्रहथी पन्यास मगल विजयजीनु चोमासु चार मुनिओ साथे थयु बाद सघवीने स्वतन्त्र थीजु चोमासु कराववा भावना जागी अने केशरीयाजी उपधान करावी उदयपुर चोमासामा पन्यासजीने आमन्त्र भरी विनती पादरली चोमासु करवा माटे गया क्षेत्र फरसना बलवान जणाती मारवाड पन्यासजी पधारतां आचार्य विजय हर्षसूरीश्वरजी गुरुश्रीनी अमदावाद चोमासानी आज्ञामलता उदासीन थया त्यारे गुरुभ्राय महेन्द्रसुरिने आज्ञा आपी चोमासु कराव्यु अने घणी शासन प्रभावना करी परतु पन्यास मगल विजयजीना गुणानु रागमा निरतर भावना भावता भावी योग वि स २०१३ नी सालमा पन्यासजीने वरामि उपधान करावता जाणी सघवीयान साथे लइ विनति माटे वरामि गया अने जसलमेर सघ साथे तेमना सुपुत्र कुदनमलनीय करेल वास स्थानक तपनु उद्यापन करवा मुहूर्त मागी पधारवा विनति करी गुरुश्रीना आज्ञा मुजब विनती ना स्वीकार थतां वि स २०१३ नी सालमां मारवाडी फागण वदी नाजना पन्यासजीना पादरलीमा बेन्ड विगेरे जय नाद साथे प्रवेश थया अने मदिरमा मडप रचना करावी कीमति वस्तुओ द्वारा दर्शन नाशिनना उपकरणोनी मजारी हमेशा सगीत अने मडलीना नृत्य साथे नवनवी पूजाओ भारे अगरचनाओ रात्रि जागरणमा नृत्य मडलना नाटारभ मारी मेदनीमा थती प्रभावनाओ पण वारवार थती एम उजमणाना आच्छव पूर्ण थता सघनी आमत्रण पत्रिका मुजब गामो गामना यात्रालु वगर

भेगो थयो वदी मोमना सकल सघनु स्वामि वात्सल्यादि कार्यो करी दशमनी प्रभाते संघवीना घर प्रभु पधरावी चतुर्विध संघे स्नात्र महोत्सव कर्या तिलक विधि मन्त्रोचार साथे शेठ हीराचंद कस्तुरजीए करी फुलना हार श्रीफल रूपानाणु भेट करी पन्यास मंगलविजयजीना वास क्षेप साथे गुरु आशीर्वाद लइ विजय मूहूर्ते प्रयाण कर्यु मंदिरजीने भंडार भरी देव वंदन चतुर्विध संघ साथे कर्यु सेवक विगरने दान सन्मान अने स्वामिवात्सल्यादि कार्य पूर्ण थय वाजीत्रोना मंगलीक नाद साथे नगर बहार प्रयाण करी गाम तरफथी तथा संघवी वगेरे पेथा बधावी फुलना हार भेटणा विगेरे विधि पूर्ण थता तखतगढ प्रयाण थयु मानव मेदनीय माग सांकडा करी दीधो अने चतुर्विध संघ साथे संघवी चालतां तीर्थना गुण गानमां पोचता तखत गढ संघ सन्मुख आवी तिलकादि विधि साथे सामैयाथी प्रवेश करी चैत्य परिपाटी व्याख्यान टामगाम गहुलीया स्वामिवात्सल्या नृत्य मंडलाना नाटारंभा प्रभु पासे थया पूजा प्रभावनादिथी शासन प्रभावना करी अगीयारसना बलाणा संघना स्वागतना कार्यो करी बारसना सवारे संघवी विगरनु प्रयाण बेन्ड विगेरे मंगलीक नादो साथे चालतां साण्डराव सन्मुख थयु आवेल साण्डराव संघना तिलकादि स्वागत साथे प्रवेश करी चैत्य परिपाटी व्याख्यानादि गहुंलीना सन्मान विगरे शासन शोभाना कार्यो करी स्वामिवात्सल्य जमी बपोरना प्रयाणनी तैयारी जेमलसर जवानी थइ घणु दूर तीर्थ होवाथी दरेकनी अनुकूलता मुजब मोटर सर्वीस तैयार थइ साडा आरसो यात्रालु ओने आनंद उपज एवी व्यवस्था माटे टीकीटो छपाइ अने घोलीटरा एदरलीना युवक वर्गे जवाबदारी लीधी अने त आदिजीनमंडले बडोर गोठवी दीधी पन्यासजीये वास क्षेप कर्यो आशीर्वाद साथे मंगलीक सोभली सौजना प्रयाण करी पासी संघ गामे पोच्यो रिखवादा स्वागत कर्या साथे प्रवेश करी चैत्य परिपाटी स्वामिवात्सल्यादि शासन प्रभावना करी वदी तेरसने बुधवारे पोकरण गामे पडाव कर्या चैत्यादि विधि करी

वि स, १९९८ सिद्धक्षेत्र पालीताणामां कच्छवाडी धर्मशालामां कोटडी करावी

वि स २००४ नीशाल सुधी दश वर्ष पदरलीमां धार्मिक साथे व्यवहारीक पाठशालामां ज्ञानदान दीधु

वि स १९९४ नीशालमा शत्रुंजयना माटे पट सुखड करावी पादरली सघने भेट कर्या

वि स २००० मीशालमां पादरलीमां शांतिस्नात्र साथे अठाइमहो त्सव अने नवकारशी जमाडी

वि स २०११ मीशालमां आंबिलखाताना हजार मदद करी

वि स २००४ मीशालमा पंन्यास भगवतविजयजीना उपदेशथी शीवगंज विद्यालयना निभाव फंडमां मदद करी बीवाह बोच उत्यम कली माटे हारमोनीयमनी पेटी भेट करी

वि स २००४ मीशालमा आचार्य श्री महेन्द्र सूरिने पादरलीमां चोमासु करावी धर्मप्रभावना करी

वि स २००७ मीशालमा सिद्धक्षेत्रमां चोमासु करी अट्ठाइओच्छव स्वामिवात्सल्यादि कर्या

वि, स, २००८ मीशालमां पदरलीनी स्कूलनी टीपमां मदद करी

वि स २०१३ मीशालमां फालना बोर्डिंगने मदद करी

वि स, २०१५ मीशालमा पादरलीमां शासन रक्षक माणीभद्र वीरनी देरीमां मकराणानु काम करान्यु

वि स २०१३ नी शालमां जेसलमेरनो संघयात्रा करावी

वि स, २०१७ मीशालमा उपदेश प्रासादनो चोथो भाग छपाववा सौ मकलनी मदद विद्यालयने आपी धार्मिक टीपो विगरेमां पण वाय मददो करता रोह बहुत पुसदानो पण वीरताने अपना संघवी साराचदजीय पणी शासन प्रभावना करी पुन्यानुबंधी पुन्यमां जीवन धन्य कृतार्थ कर्यु छे इतिशुभ

ॐ अर्हम् श्रीपारावडापार्श्वनाथाय नमोनमः
श्री सिद्धाचल तीर्थनो छहरी पालतो मरुधर सघ

श्री श्रीरावला तीर्थथी वि स २०१६ मा महा सुदी दशमने रविवारे मरुधर संभनु प्रयाण थयु जेमां श्री गिरनार चित्रकुटादि तीर्थोद्धारक तपागच्छाधिपति विजयनीतिसूरीश्वरजीना पट्टालकार सिद्धान्त महोदधि आचार्य विजयहर्षसूरीश्वरजीना परमविनेय अनुयोगाचार्य—पन्यास मगलविजयजी गणीवरनी निश्रामां मुनिवर्य भुवनविजयजी मुनिवर्य सुव्रत विजयजीआदि साधुगण तथा परम तपस्वी स्व साध्वी कमलश्रीजीना शिष्या साध्वी रमणीकश्रीजी तथा साध्वी मजुलाश्रीजी तथा साध्वी दिव्य-प्रभाश्रीजी आदि साध्वी गण तथा लगभग त्रणसो श्रावक श्राविका गणसाथे छहरी पालता चतुर्विध सघ साथ सघवी मुकुदचद अनोपचद खुडाला-वाला सघवी जसराज वनाजी वाकली सघवी हिमतमल छोगाजी लुणावा सघवी वरदीचद कस्तुरजी बदराडी सघवी मथुनमल कपुरजी पादरली ए पाचे सघवी मली ज्यां पाच पाडवे विश क्रोड मुनि साथ मोक्ष गया छे ते पावन भूमिमा पोताना मोक्ष साधवा सावधान जाण थया हाय तवी शाभान धारण करता हता यात्रालु गण पण मुमुक्षु शरणे मुक्ति वरवानो समय समजी जयनाद करता हता अने पशुपछी पण ए गिरि आवे भवत्रीज सिद्ध ज थावे " शास्त्र वचनोथी पूरा थइ सघवीनी आमत्रण पत्रिकामे कृतार्थ करता हता

पांचे संघवीयोये पोतानी पुण्य हेलोमा कणी सारी भावना करी छ हरि पाली सिद्ध थवानो मनोरथ सफल मानता हता प्रथम सघवीये सिद्धाचलमा सत्तसो माणसोने उपधान करावी उजमणा आदि घणा कर्या

छे बीजा संघवीये पोतना शुभन चारित्र अपारी तथा उपधान विगेरेमां हजारोनी सखावतो करी छे त्रीजा संघवीय मोक्षना महेल सरखो मुंबाइ भायखलाना उपाश्रयमा पीस्तालीश हजारनी सखावत साथे अनेक क्षेत्रोमां उदार दीलना कार्यो कर्या छे चोथा संघवीय आटसो यात्रालुओना सिद्धाचल संघ लइ यात्रा करेल तथा उपधान उजमणा प्रतिष्ठा मुनियोना चोमासा करावी वर्षावर्ष धर्म प्रभावनाओ करी छ पांचमा संघवीय राणकपुरनो छ हरि पालता संघ लइ सामेगाम स्वामि वात्सल्यो विगेरेथी शासन प्रभावनाओ करी उजमणा उपधान विगेरेमां सारी सखावतो करी छे

आवी पुन्यानुबंधी सखावतोमां लक्ष्मी सफल कर्या छता पांचेनो मेलाप भवांतरमा भाग्य संबंध सुचवता होय तेम संघवी भगुतमलजी तथा संघवी वरदीचंदजी तथा संघवी असराजनी अमदावाद दहेलाना उपाश्रय पन्यास मंगलविजयजी पास संघनु मुहूर्त लइ मुंबइ धर्मस्नेही वर्गने आमंत्रण आपता संघवी हिंमतमलजी विगेरेनी मांगणी थइ ज अमारे अहोभाग्य छे तओए अमने तरणा बनावी साथे राखी धर्मप्रेमनी दाक्षिण्यता अने शासननी सारा प्रभावना थवानु जाणी लोकोत्तर भावनामां सहकार साध्यो जे लोकमां पांचपांडवो रुपे शोभा पात्र बन्या

पांचे संघवीयो भवांतरना भाइनी जेम बंधुभाव धारण करता घणा अनुमोदना गामगाम संघनु स्वागतनो मेलवता हता ने संघना नायम प्रमाण पांच संघवीयो एकल आहारी सचित परिहारि ब्रह्मचारी भूसंथारी पादचारी समकितधारी रुप छहरी पोते पालन करी यात्रालुओने मय ?ासर वधारता भावनामां "बाजा वाली विमलगिरि जइयेरे भवजल तरवाने। तमे सयणाए धरजो पायरे पार उतरवाने"

एम पांचे संघवीयो पोताना संघवीयोने साथे लइ फालना स्टेशने महा सुदी सातमना भेगा थया अने यात्रालु वर्गने पण एकत्र कर्यो प्रभु पूजा आदि कार्यो करी मोटर सर्वीसमां जीरावला जवा प्रयाण

कर्युं मार्गमां शत्रुंजयनी शोभा रूप शिरोहीना श्रीनागरोनी यात्रा करी एक नागरीक वकीलनी संघना स्वामिवात्सल्यनी आग्रह भरी विनंती त्यां यात्रालुआने अनुमोदन करावे तवि भक्ति भाव बंधाया अने श्रीमना जीरावलाजी पेग्या शुदी नोमनी नवकारसी बढ़ अने यात्रा विधि करी सुदी दशमनी प्रभात पुष्प नक्षत्रादि शुभ योगे चतुर्विध संघ समुदाय मंदिरजीना मंडपमां भेगो थयो अने पन्यास मंगलविजयजी गणीवरे संघवीओ अने संघपानां यात्रा प्रयाणनी मंगलीक तिलक विधि मंत्राचार साथे करावा वाला संघवीना पुत्र युवराज भार्य मगलीक वाजींत्रो अने मानव मेदनीना जय नाद साथे करी गुरु आशीर्वादनो वास क्षेप करावी मंदिरजीमां संघ साथे दर्शन वंदनादि क्रीयां करी आनंदना जय नाद मांगलीक बेन्ड शरणाई जालर नगारानां नाद साथे शासन ध्वज फरकावता प्रयाण थयु नगर बहार पन्यासजीये मंगलीक संभलावी सिद्धाचलना गुण गान करता परमाण संघ पोंच्या अमां पुराणु वधमान पुर अने वर्धमान प्रभुनु प्राचीन मंदिर छे स्वागत साथे प्रवेश करी यात्राविधि करी जीर्णो द्वार चालु होवाथी अने धर्मशालानी पुरी जरुर जणाता संघवी अने यात्रालु वर्ग रुपीया पदरसो उपरांत भेट कर्या हमेशना प्रयाण मुजब मन्दार पायावाडा खेमत जरदा नवाडीया यड़ मीलडीया तीर्थ संघ पोच्या क्रमसर पधार थता नागरीक संघनी तिलक हार परिधापन आदि स्वागत थता संघना बेन्ड विगेरे वाजींत्रोना जयनाद साथे भव्य परिपाटी थती व्याख्यान विधि करी स्वामिवात्सल्य संघ पूजा भंडार लखना टीपो विगेर शासन प्रभावनाआना कार्यों नित्यविधि मुजब थता छहरी पालन साथे बे प्रतिक्रमण वीस नवकार वाली नव लोगस्सना सिद्धाचल आराधन काउसग्ग कराता सिद्धाचलनु ध्यान वंदन उछलता आनंदे थतु जीवन पावन मानता यात्रालु वर्ग भीलडीयाजी तीर्थमां स्वागत साथ प्रवेश कर्या बहार गामना यात्रालु वर्ग पण आवेल अने भंडार वाला तरफथी स्वामिवात्सल्य सफल संघनु थयु आ तीर्थ श्रेणीक महाराजाना समयनु

अति प्राचीन अने प्रभाविक छे आनंदथी यात्रा करी उपरी थइ चाणस्मा तीर्थे स्वागत साथे प्रवेश कर्या लाखो रुपीयानी पुराणी पार्श्वनाथ प्रभुनी प्रतिमाजीना दर्शन पूजा आदि यात्रा विधि करी परमार्हत महाराजा कुमारपालना पाटण नगरमा नागरीक संघना स्वागत साथे प्रवेश कर्या पंचासराप्रभु जागीवाडा जेवा अनेक तीर्थ स्वरूप मंदिरोनी यात्रा माटे वे दिवस पसार थया अने सत्कार साथे शासन ध्वज फरकावता बेन्ड आदि आनंदना नाद साथे चतुर परिपाटीना महोत्सव मनावी प्रयाण थता अढीया हारिज मुंजपुर थइने श्री शंखेश्वर तीर्थ धाम पोंच्या श्री धरणेन्द्र पद्मावती आदि अनेक देवोथी अधिष्ठित तेथी लोकमां मोटो महिमा प्रत्यक्ष प्रभाव पाडनार करनार पार्श्वनाथ प्रभुनी यात्रा माटे बे दीवस पसार थयो सकल संघना स्वामी वात्सल्य संघवी तरफथी थया सकल संघना समुदाय वच्चे तीर्थ माला परिधापन विधि पन्यासजीए नंदि क्रियानी विधि पूर्वक करावी राधनपुर वाला जयंतिभाइना भेटो थयो

तेओ मधुर कंठे सिद्धाचलादिना स्तवनो ढाला गवरावता यात्रालु गणमा अमृत वरसावता जाणी साथे लेवानु सिद्ध कर्यु अने हमेशा स्तवना गवरावता कोइ वखत मुनि मुक्तिविजयजी पण संगीतना स्वाद करावता अति आनंद उभराता प्रयाण थतां पसामरा वशाढा पाटडी थने उपरी यात्रातीर्थ पसार थया पातालथी प्रगट थयेल प्रभु रूपभदेवनु प्रसिद्धती र्थीं यात्रा करीने धज्राणा पधार थया नागरीक संघ साथे नवावना पाटडी कुंवर अने अमलदार वर्ग स्वागत माटे सामे आवेल संघवीया साथे नवाबनी मुलाकात थइ अने कार्य सेवाना प्रश्नमा पाताना नवाबसथी सज्ज घोडस्वार पालीताणा सुधी पोचाडवा हुकम कर्या ज हस्ता शासन ध्वज फरकावता आगल चालता तेम राजस्थान सरकारना शस्त्र सज्ज शुभटा रस्ताना रक्षण साथे सामैयामानी शोभामा वधारो करता हता प्रयाण थतां पीपली धरसढ मधाण राजसीतापुर थइ कटुम्मा पन्यास भद्रकर

विजयजीना भेटो थया हमशनी विधिमुजब व्याख्यान पन्यास मगलविजयजीनु थया पछी तमने पण आंबिल मारे उपदेश धारावरसानी अने आठम पण आवेली जथी सुरेन्द्रनगरना सघ भक्तिरागना पक्वाना कर्या छता मोटा भाग आंबिल कर्या तप जप ध्यानथी कर्म नकार निर्विर दर्शन विरलापार ॥ ए सूत्र सफल कर्युं धीना दीवस माटे अति आग्रह छता नीरुपाय वधमान पुरी (वढवाण) पोच्या सुरेन्द्रनगरथी गामेगामना प्रवेशमां प्रभुन चादिना रथमा जिनागमन करी वरसी दानो वरसाद सघना तरफथी कायम थता ने अन्य दर्शनीयान पण अनुमादन रूपे शासन प्रभावना थती हती चैत्य परिपाटी आदिकाया करी साननां नदी कीनारे शुल पाणी प्रभुना प्रति बोध वाला प्रभावीक स्थान छचना वेन्डना नयनाद्व करता पादुकानी वदन विधिमा प्रभुना परमार्थ उपगाराना गीत करी आनन्द अनुभवी शीयाणी तीर्थ पडार थयो ने सप्रति महाराजाना पुराणतीर्थमां शांतिनाथ प्रभुनी यात्रा करी लीबडी पोन्या वरसीदान वरघाडना सघना सामैयामा पण शिखर बधा मन्दिरोना यात्रा करी शिवगजवाला मघनी फतहचद गोमराजना धर्मपत्नी छ हरि पालता होवाथी मघनी भक्ति माटे चूडा साथे आवी उच्चकोटीनु स्वामिवात्सल्य कर्यु सघवीय पण हमशना रीवाज प्रमाण कीमति शालनो व्याख्यानमा पहरामणी करी मीनापुर थइ राणपुर प्रवेश थया त्याना धमधनाढ्य नरो तमभाग्य यात्राळुआन आश्चर्य करावे तवी विधिनु स्वामीवात्सल्य उदार, भाव कर्यु अने सघवीयाना समुदायने पोताना मकानमा पधरावी चादिना पात्रमां सन्मानथी भोजनादि विधि करी अलाउ थइ बोटादमां पण भाव भाव स्वागत थयु मात एकादशीना सत यागालु दर्श अहोरात पौषध कर्या दान्सो कल्याणकनु आराधन करवा बे दिवस पात्र थया श्री सघना दर्शन माटे तखतगढवा भादधर्म नथमल पुनमचंद आवेल अने स्वामीवात्सल्य यथार्थ करेल लाठीन्द लाखीयाणी, पछेग्राम थइ सघ वलभीपुर पोच्यो आगम सुत्रोना उध्धार करनार देवर्धिगणिक्षमाश्रमण आचार्यश्री मल्लवादीजी धनेश्वरसूरीश्वरजी जेवा युगप्रधान पुरुषोना दर्शन करी उपकार याद कर्या

तथा घणा वखतना भूख्याने धवरजा भोजननी जम शत्रुंजयना शिखरो दखाया शासन ध्वज माहविजयनी जेम फरकता साया अने कर्मवैरीना विजयनी जम वाजी गो वगाडता शत्रुजयना दर्शन माट नगर बहार मेदा- नमां गया वदना विधिमां आज मारा नयण सफल थया, बापलडा रे पातक्म तमे सु करशो रहीने, एवा सगीत सुरो जयतिभाइए गवराव्या अक्षत साथे सानाह्पा अने सुगधी फुला साचा मोतीनो मेलाप करी तीरथपद पूजाने थाला गिरिराजन वधाव्यो हृदना शत्रुस्नानथी जीवन पावन कयु तीथजागरण कर्यु प्रभावना विगेरेमां दिवस सफल करी उमराला सणोसर नांधणवदर जमणवाव थइ फागण वदी दसमने पालीताण पोच्या हमरा शत्रुजय शीखरनी दर्शन विधि करता रोमराजी उछलनी अने गिरिराज स्पर्शनानी भावना आनंद उमरका करती नागरीक सघ साथे पेढीना मुनीमजी स्वागत सामग्री लइ सामे आव्या तिलकपुजोना हारोनी विधि साथे सोभाग्यवतीए गहुलीओ करी अक्षतथी चतुर्विधसघने वधाव्यो प्रवेशमां ठाम ठाम गहुलीओ साथे पुलना हारोथा सघवीआने उभरावी दीधा गोडीजी भाटामदिरजीनी चैत्यपरिपाटी करीने सामैयु खुशाल भुवन धर्मशाले पोच्यु तीर्थमहिमानु व्याख्यान श्रवण कर्यु तीर्थ तरस्याना अगी यारसनी प्रभातना प्रकाश थता सामैयु सज्ज थयु यात्रालुगण मोहवैरीना मूल उखेडवा रणहकानी जेम वाजीत्रो वगाडता तलाटीमां जयनाद करता पोच्या गिरिराजनी तवीसतीर्थ करीनी पादुकाओनी वदन विधिमां जयतीभाइए स्तवनो गवरावी जीभ अने जीवन पावन थाय तम कर्यु सोना रुपाना फुल साथे साचा मोति मेलवी अक्षतानी अंजलीया भरी थाल भरी भरी मोतिढे वधावो रोमराजीना हर्ष वधामणा करी सघयात्रा साथे चढवानु चालु कर्यु आबाळ वृद्ध सुधीना वाहन के डोलान पाप समजी कायाना कष्टमां कर्मना घाव पाडवानु कल्याण समजी जयणा विधिने साचवता रस्तानी सिद्ध पादुकाओनी वदन विधि करतां दादाना दरबारमां पोच्या मोक्षना मदिरनी प्रदक्षिणा आदिविधि पूवक प्रवेश करी समकित द्वार गभारे पेसताजीनु गीत चालु करी दीठो दीठो आनद पुरे एम शिव

सुदरीना स्वामीने प्रसन्न करी सिध्ध थयानु सगपण कर्यु पांच पांन्डेने क्षेम सिध्ध करवानु वरदान मांगी लीधु शत्मुद्रोना स्वामी वंदन विधि करी रायण पादुका पुडरिक स्वामिजीनी पूजा विधि साथे पाच चैत्य वंदनमां नवनवा आनंद करी यात्रा सफन करी सघां आठ दिवसना पडव थया तमां एकेक्दीवमना क्रमे काया नवट्का पेटी पादुका देवागड छ गाउनी प्रदक्षिणा श्रेणुजी नमीस्नान षदंगगिरिवर चैत्य परिपाटी शासन ध्वज अने संघ वेडवाजीपना जयनाद साथे आराधन विधि करी यात्राने स्वामिवात्सल्या कायम थना साधुसाध्वीयानी उत्तार भक्तिमां संघवीया सिद्धाचल सफल करता तीर्थना शणगार रूप अनेक संस्थाओनी मुलाकात लई मान मलावडा थया अने पांचसा रुपिया जेटी सद्यावनाथी श्रीविलसातु श्राविकाश्रम मीतिसुरीश्वरजी पाठशाला गुरुकुल विगेरेन भेटणा कया विदायगिरिना आगल दिवस यात्रालु वर्ग सधर्मियानी संघभक्तिना स्वाद सफल करवा व्याख्यानमां चतुर्विध संघ भेगा थया पन्यासम गलविजयजी विगेरे बक्ताओए जीरावला जेवा दूर दूरथी शाश्वता तीर्थनी छ हरीपालन यात्राना लाभ उदारता तथा बहुमानथी शासन प्रभावना माटे धन्यवादना गुणगान कर्या अने चार्तनी क्रमथी मानपत्रनी फुलाना हार सघ भट करी संघवीयाये पण पोतानी लघुताना शब्दोथी क्षमा याचना मागी लीधी

चद्दर सुदी एकमना विदाय गिरिना निमित्ते तीर्थमाला परिधान विधि दादाना दरबारमां रगमडपमां पन्यास मगलविजयजी गणी आदि चतुर्विध संघ भेगा थइ नदि क्रीया विधि करावी रुपिया साधारण हजारनी बोली पूर्वक शिवसुंदरीना विवाहनी जेम प्रभुन प्रदक्षिणा करी यात्रीओ नाद साथे संघवीया अने संघपणन इन्द्रमाला सबंधी वर्ग पहेरावी जयनाद साथ फुलना हारोनो वरसाद थयो घली विशेषता ए हती जे पांचे संघवीयाये सजोडे ब्रह्मचर्यव्रत प्रभु साक्षीय सिध्धाचलमां उचरी शिवसुंदरीनी वरमालाने सफल करी यात्रा विधिमां आनंद करी

स्थान पर आव्या अने दरेक यात्रालुना दुधथी पाद प्रक्षालन करी तिलक अने श्रीफल साथे रुपिया अगीयार अने चादीनी वाटकीयो भेट करी अतिम स्वामिवात्सल्यने यथार्थ कर्यु विशेषतामां परमतपस्वी दलपतभाइ पालीवाला कायम पौषध व्रत करी निरंतर आंबिल उपवास करता हता तथा राधनपुरवाला जयसिंभाइनी भक्ति भावना हार्दिक तीर्थ गुणगानने याद करी कीमतिशाळानी पहेरामणी करी धन्यवाद आप्या नोकर वगने पण योग्य बक्षीस आपी याचक वर्गने पण आनंदीत कर्या साधु साध्वीयानी वस्त्र कामल विगरथी गुरुभक्ति करी प यासमंगलविजयजी पासे मंगलीक श्रवण साथ वासक्षेप विधिमां धर्मलाभ आशीर्वाद लीधो एम शासन प्रभावना द्वारा तीर्थंकर पन्नु पुन्य उपार्जन करी सिद्धाचल तीर्थनी जयनाद बोलता स्वस्थान जवानु प्रयाण कर्यु इतिशुभ भूयात्

अनुक्रमाणिका

शुद्धि पत्रक

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३	९	थामने	सामने
४	१७	सुम्रताचार्य	सुव्रताचार्य
४	१८	अतिरित्त	अतिरिक्त
४	१९	घम	धर्म
५	२२	भयभ्रा त	भयभ्रान्त
७	२	जसे	जैसे
८	१४	तलाश	तपास
९	४	सघन	सघन
९	२३	तिल कराक	तिलक कराकर
१०	८	हये पाने	हाथ पाने
१२	१२	घ्रूतमें	घूतमें
१३	१	वल्लमा	वल्लभा
१४	१	विल य	विलम्ब
१४	५	तां	तू
१४	९	पारण	पारणा
१४	१८	दमयन्ती	दंपती
१६	८	कहा	कहीं
१७	२२	भापत	अर्पित

१८	१७	द्वैपायत	द्वैपायन
१९	१	।द्य	द्यि
१९	१२	दद्दिणार्य	दक्षिणार्ध
२०	६	द्वारारो	द्वाररो
२२	११	अरपाया	अरपागी
२२	२०	वलि	वाले
२३	१३	उदरपूर्णा	उदरपूर्त्ति
२६	१९	वहावरि	पहावसि
२७	८	छुढा	छुटा
२७	८	अणुल्लिकाय	अणुल्लिया
३१	१	कर्णाधातन	वर्णाघातन
३१	३	माभार्थ	भावार्थ
३२	६	भा	मी
३३	६	र्पुंखिनया	र्पुंद्धि नेया
३४	१८	सा धवी	स घवी
३६	१०	मोयाच्चाधुना	मोयघ तच्चाधुना
३७	१	सा धवी	संघवी
३९	७	निष्करा	निष्फल
४०		पुत्रके	
४१		विनयोद्याम	
४४			

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४८	१२	तच्छुभम्	तच्छुभम्
४८	१४	प्रभुमिश्च	प्रभुभिश्च
४८	१४	भगत	भन
४९	२०	शुक्लदिन	सितदिन
५२	५	विचारणेऽन्धि	विचारणा ध
६१	१८	महेच्छाना	महेच्छाना
६२	५	सहस्मा	सहस्त
६५	३	दूध	दुध
६५	६	चारणको	चारणको
६७	१४	अनुकम्यादान	अनुकम्पादान
६८	१३	उद्दक्के	अद्दके
६९	१		,
६९	१९	विद्यांश्च	विद्वांश्च
७०	१	वे दागे	वे दानां
७४	१	माक्ष	मोक्ष
७४	११	शास्त	शास्त्र
७६	१०	जा	जो
७७	१६	धुरान रिदा	धुत्तनरिदा
७९	१	गुणकी	गुणोकी
७९	२	पुत्राको	पुत्रोको

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
८२	१८	घृत	घृत
८३	६	श्वसुरस्य	श्वशुरस्य
८४	२	वहति	वहति
८५	१	युगलक	युगलिक
८५	२	पूजा	पूजा
८५	४	करजो	करसो
८६	६	पश्चातापो	पश्चात्तापो
८६	२०	उपर्जन	उपार्जन
९४	४	उबमाणेण	उवमाणेण
९४	२१	निट्ठअखरद्दि	निठ्ठअखरद्दि
९५	१०	तत्ववेदिभि	तत्त्ववेदिभि
९८	१८	सम्यक्त्वनी प्राप्ति	सम्यक्त्वनी प्राप्ति
९८	१८	जीनेश्वरकी	जिनेश्वरकी
९९	३	सोनेया	सोनैया
९९	२०	भाधनासे	भावनासे
१०१	४	शुराखि	गुरोखि
१०२	६	पिताका	पिताका
१०३	१	भाजनके	भोजनके
१०५	२०	लाभकी	लोभकी
१०६	८	हसी	हांसी
१०७	११	दुकजपुराए	दुक्खपुराए

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१०७	१६	बाध	बोध
१०८	७	शुद्धमत	शुद्धा शुद्ध मत
१०८	२०	पुडरीकिणी	पुडरिकिणा
११०	२	चरित्र	चारित्र
११०	९	उ हाने	उ होन
११०	२३	फसा	पसा
११३	१३	कदाप	कदापि
११३	२०	आर	और
११४	१४	पिताने	पिठान
११५	१	मतान्य	महात्म्य
११७	१०	प्रमाकर	प्रभाकर
११७	१६	रखखवा	रखा
११७	७	गर्मके	गभर्
११९	१३	सह ध्रुवम्	सद ध्रुवम्
१२३	२	वरीके	वैरीके
१२५	९	अविवाह्ता	अविवाहिता
१२६	१८	महोल्वण	दाहोल्वण
१२७	८	कहा कि	कहा है कि
१२७	९	क्रयकट	क्रयकूट
१२८	७	साधुवृत	साधुवृत्त
१२९	१३	ऽस्ति मदराम	मदराम

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१२९	११	धृणाति	धृणोति
१३०	९	विनश्यति	विनश्यन्ति
१३०	१०	निरधिभोगी	निरवधिभागी
१३०	१४	निरवद दृशि	निरवद्यदर्शि
१३०	१७	जिज्ञासु द्रुत	जिज्ञासुद्रुत
१३०	१८	मोक्षपुरे	मोक्षपुरे
१३०	२०	स्तनन्द्रेषु	घन स्तान्द्रेषु
१३१	११	धरां	धरां
१३२	३	निरारक्ष	निरवशक्षो
१३३	१०	साधुवत्	साधव
१३६	१४	श गुनमें	श गुणमें
१४४	९	छाट	छाटे
१४५	२०	दिधाधर	दिगाधर
१४६	१८	प्रद्युम	प्रद्युम्न
१४७	११	विद्याधर	विद्याधर
१४७	१६	वराह	वराह
१५१	५	आलसी	आलसु
१५१	६	परन्दा	परीदा
१५१	१४	दीन्हेरदा	दीनहन्ना
१५३	१८	आरदशज्ञ	अनारदशज्ञ
१५८	११	दान	दाम

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१५९	७	घास	चारा
१५९	१४	र्शाम्रनामे	शीघ्रनाजे
१६०	१६	मनुप्य	मनुष्य
१६२	४	पतरि	पत्रि
१६२	११	प्रशासनीय	प्रशसनीय
१६४	८	यह	वह
१६६	१०	व्यर्थ	व्यर्थ
१६६	१२	निनागम	जिनागम
१६७	१४	नुपक्रमाणि	नुपक्रमण
१६८	१२	दुरापातप	दुरामातप
१६९	१०	त्रिप्लिवा	विप्लवा
१६९	१३	सरसता	मरसतां नय
१७०	२	भजे	भज
१७२	९	चारा	विचारा
१७८	१७	केवलएहि	केवलएगेहि
१७८	१८	इय	इह
१७८	१८	रध्रणा	रधणा
१७८	१९	जहरगढा	जहणेगढा
१७८	१९	सजुता	विसजुत्ता
१७८	२०	ववएस	मएस
१७९	२१	हाना	होना

१८०	११	विशात्याधिक	विरात्यधिक
१८१	४	धोपूमै	धीपूर्व्यं
१८४	३	दुर्म्भे	दुजम
१८७	११	भवाति	भवति
१८७	२१	ही	हि
१९०	१३	नियम	नियत
१९०	१७	सुस्थिर वा	सुस्थित दुस्थित वा
१९१	९	स्वेच्छाचारी	स्वेच्छाचारी
१९२	१	महात्म्य	माहात्म्य
१९४	७	विचार	विचार कर
१९८	१२	प्राप्यनि	प्राप्यति
२०१	६	यदा	यदा
२०३	३	नहा	नहीं
२०७	४	धर्मं	धर्मे
२०८	३	नजीविन	जीवित
२०८	४	कीर्तिवान्	कीर्तिमान्
२०८	१८	प्रबन्ध	प्रबोध
२०९	२०	आर	और
२११	१२	साधन	साधन
२१५	१८	जयानु	उतातु
२१६	१६	पुरिमुंस	घर्म्मूल

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२१८	१८		नी लिटिके पिछे ऐसा पाठ समजना 'इसके लिए मरी उपमा निर्गुण पुरुषके साथ न घटे, अब सूरिने कहा के ते मनुष्यरूपेण भवन्ति काका " ये मनुष्यरूपसे काका है तब काकने कहा के —
२२०	४	कृताध्व	कृतार्ध्व
२२१	१	दा	दा
२२२	३	भाज	भाज धन
२२२	४	कीर्तिर्यश	कीर्तिर्यत
२२२	८	कदाप	कदापि
२२८	१०	विद्वत्कर्मे	विद्वत्कर्मे
२३३	२२	याक्	यथा
२३४	५	दीनदीना	दीनादीना
२३५	५	विद्याग्रहण	विद्याग्रहण
२३६	५	नो	नौ
२३८	१	हा	हो
२४१	१६	चतुस्त्रिशत	षट्त्रिंशत
२४१	१६	२३४	२३६
२४३	११	धरसे	घरसे
२४३	२१	हाता	होता
२४५	१७	कार्य न्विारक	कार्यविचारक

পৃষ্ঠা	পংক্তি	অশুদ্ধ	শুদ্ধ
২৪৪	২১	[illegible]	[illegible]
২৪৭	৭	[illegible]	[illegible]
২৪৮	১৮	[illegible]	[illegible]
২৪৯	১১	[illegible]	[illegible]
২৫০	২০	[illegible]	[illegible]
২৫১	১০	[illegible]	[illegible]
২৫১	১০	[illegible]	[illegible]
২৫২	৯	[illegible]	[illegible]
২৫২	২০	[illegible]	[illegible]
২৫২	২০	[illegible]	[illegible]
২৫৩	১১	[illegible]	[illegible]
২৫৫	১৩	[illegible]	[illegible]
২৫৭	১৭	[illegible]	[illegible]
২৫৮	১৪	[illegible]	[illegible]
২৫৯	১৮	[illegible]	[illegible]
২৬০	৮	[illegible]	[illegible]
২৬১	৫	[illegible]	[illegible]
২৬৮	১	[illegible]	[illegible]
২৬৯	১৫	[illegible]	[illegible]
২৭০	১৬	[illegible]	[illegible]
২৭১	৬	[illegible]	[illegible]

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२७१	९	सम्य	सत्व
२७३	१६	³कूप में	²कुप में
२७४	११	नरवक्षत	नखक्षत
२७५	४	जघन्य	जघन्य
२७५	१५	गणिकाके	गणिकाके
२७५	१९	हुइ	हुइक
२७६	७	दर्म	धर्म
२७६	१४	वे और विशेय	और विशेष
२७६	१७	शवती	अवती
२७७	९	सुप्रानदीक	क्षाप्रानदीके
२७८	१४	तीर्थ'कारो	तीर्थ करा
२७८	१५	निप्रधसा	निप्रासा
२७८	१८	आर्तध्यान	आर्तध्यान
२७९	१२	तिभिमआ	तिनिमया
२७९	१३	बद्रा	पद्मा
२७९	१७	गआगिदत्तो	गओगिदत्तो
२८१	११	मकरध्यज	मकरध्वज
२८१	१६	प्रलय	प्रात्र
२८२	२०	आपत्ति	आपत्ति
२८३	८	वाग्वार	वार वार
२८३	९	पतरकी	पथ्थरकी

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२८३	१८	अव	अय
२८४	५	चल वसंगे	चले जायंगे
२८७	२०	आसिष्ट	आकृष्ट
२८७	१७	नामाङ्कित	नामाङ्कित
२८८	१५	मग्नयलसे	मगयलसे
२८८	२३	हाथ	साथ
२९०	९	तथ्रेतामहि	तथैतामहि
२९३	५	मिश्रनन्द	मिश्रानन्द
२९४	४	तदनिके	तदानेके
२९६	९	योडशास्त्र भस्य	सप्तदशास्त्र भस्य
२९७	४	आतिदक्ष	अतिदक्ष
२९७	६	याहुवलीका	बाहुबलीका
२९७	१८	करेंगे	वसा करेंगे
२९८	९	छोटे	बड
२९८	६	रायुद्गाइ	रा युद्दशद
२९८	६	युद्धाई	युद्दशद
३०१	१	विधा	विद्या
३०३	९	सम्पूण	सम्पूर्ण
३०३	१३	वाहुबलिका	बाहुबलिका
३०३	२०	मुच्छितप्राय	मुर्च्छितप्राय
३०४	२५	वचन	बच्च

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३०८	१३	[illegible]	[illegible]
३०९	४	[illegible]	[illegible]
३०९	१२	[illegible]	[illegible]
३१०	४	मानापिंड	[illegible]
३१०	११	[illegible]	[illegible]
३१०	१४	जयसुदरी	जयसुन्दरी
३१४	१	भाव	मान
३१८	१६	[illegible]	[illegible]
३१९	८	लामानैव	लोमो नैव
३२७	१५	जन	जैन
३२८	७	[illegible]	[illegible]
३२९	११	पुडत	[illegible]
३३०	१९	[illegible]	[illegible]
३३५	५	[illegible]	दो
३३८	२०	यहा	यहीर
३४०	१४	लाग	[illegible]
३४०	१७	हुदना	हृदनो
३४१	५	दशो	दो
३४३	१	मं	मे
३४६	२	लातुर	लालुर
३४६	४	खोमापद	[illegible]

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३५०	६	भ्रमित	भ्रमणा
३५०	७	लावणेमें	लहाणीमें
३५३	३	स्वनिद्रा	स्वनि दा
३५६	२	गिन कर	बिना गिन कर
३५७	१०	पारसी	पोरसी
३६२	६	ाक्या	क्रिया
३६२	१७	शाघ्र	शीघ्र
३६७	७	कायालर्गमें	कायात्सर्गमें
३६७	१५	,	,,
३६८	२	उद्गितानि	उद्दितानि
३६८	६	मध्यायन	मध्ययन
३६८	१३	पच्चखखाणके	पच्चक्खाणके
३७०	१४	सके	सके य
३७१	१६	हा गया है	हो गया है
३७२	२२	दा	दो
३७४	११	इने	इसने
३७४	१६	मं	हैं
३७५	२३	धाहिने	मोहिने
३७६	१४	राजगृह	राजगृहे चला
३७७	१०	दिखा वडे	दिखा पर वड
३८०	५	धनद	

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३८०	१५	ग्रहण	ग्रण्ण
३८२	७	धनदत्त	धनदत्ता
३८३	२३	वह	वहाणगाञने
३८४	८	निक्ल	भक्षणकर
३८४	१०	वमा	वैसा
३८४	१४	मच्छित	मूर्च्छित
३८४	१८	मगीधर	घगीधर
३८४	१९	मरयादर	मत्यादर
३८५	३	हागा	होगा
३८६	३	मतयादर	मरयादर
३८६	११	स्वाभी	स्वामी
३८९	२१	प्रब घ	प्रब घ ॥२५०॥
३९०	४	महात्म्य	माहात्म्य
३९०	७	,	,,
३९०	१८	पिचार	विचार
३९१	६	डुप्पणिहाण	दुप्पणिहाण
३९१	७	रतार	रतार
३९१	९	दु प्रिणिधान	दुप्पणिधान
३९१	१४	क्से	वैसा
३९१	१५	वहो	हो वह
३९१	१६	होती	हो ता

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३९३	४	दश	सौ
३९४	७	अमाण	अमाणा
३९४	१३	होना	होता
३९४	१६	निनमाणु	निमाणु
३९५	१४	कर रह	कर रहा
३९५	१०	व्यादि	व्याधि
३९६	९	गाडत	डालते
३९६	१२	महोत्सव	महोत्सव
३९७	७	मिष्या	मिथ्या
३९७	१२	अन्त कारणरुपी	अन्तःकरणरुपी
३९७	१५	स्याग	त्याग
३९८	५	दुर्भ द्य	दुर्भेद्य
३९८	१५	नर्य के	सूर्य के
३९९	४	शून्यघरके	शून्यघरके
४००	९	चलकर	चव कर
४००	१२	श्रष्ठि	श्रेष्ठि
४००	१५	कादश्या	कादश्या
४००	१६	एकादशयि	एकादशमि
४००	२१	यकबार	एक बार
४०१	५	शोर बल	शोर बकोर
४०२	४	ग्यारह	ग्यारह

पृष्ठ.	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४०३	३	धर	घर
४०३	१०	मा	मी
४०४	४	षोडशस्तभस्य	सप्तदशस्त भस्य
४०५	९	अषाढा	आषाढा
४०५	१८	आग्रह	आग्रह
४०६	११	प्ररित	प्रेरित
४०७	६	रक्षेपु	रक्षेयु॰
४०७	१६	ज्ञातीश्च	ज्ञातिश्च
४१०	४	भवात्	भवत्
४१०	५	बाधते	बाधते
४१०	८	अथ मु	अथ मुजको
४११	१६	युष्मा	युष्मा
४१३	१८	कथानातुसार	कथनानुसार
४१४	५	किरत	फिरसे
४१४	८	ाकया	किया
४१५	५	पत्य	पेल्य
४१५	११	चेल्लुह्यति	चेल्लुय्य ति
४१९	४	बहुघा	बहुधा
४१९	१६	मिश्यात्व	मिथ्यात्व
४२०	११	इनपकार	इस पकार
४२०	१७	जसे	जैसे

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४२१	१६	तबील	तबोल
४२२	४	तिअवरणाण	निअवरणाण
४२४	५	नधर्मकी	अधर्मकी
४२५	८	श्रुतक	श्रुतां
४२४	२२	अजवमें	अजीवमें
४२८	१८	जागया	जायगा
४३०	१	साधुआ	साधु
४३०	४	गाडकर	डालकर
४३०	१५	नियाणु	नियाणा
४३१	१	हानेपर	होनेपर
४३१	५	वधुको	वधुका
४३१	६	मोदशास्त भस्य	सामदशास्तभस्य
४३२	१२	यहा	यहां
४३३	११	शरीरको	शरीरको
४३३	१३	काश्यगात्री	काश्यपगोत्री
४४०	३	नत्यधीमखली	नत्यधीमखली
४४०	४	भवोधेषु	भवोधेषु
४४१	१६	राज्यगदी	राज्यगादी
४४२	८	क्रोधसे	क्रोधसे
४४२	१०	भस्मीवूत	भस्मीभूत
४४३	१९	भत्स्य	मत्स्य

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४४५	८	ग्रद३	खोज
४४७	७	पन्द्रशान्त भस्य	सप्तदशान्त भस्य
४४८	६	तया	तथा
४४८	१५	सत्र	सद
४५४	२३	रहिन	रहित
४५७	४	जसा	जैसा
४५८	७	भतिभांति	मनिभान्ति
४५८	२३	सप्तदशास्य भस्य	अष्टादशान्तभस्य
४६४	११	वास	वाह
४६४	१६	सारिम	मरिल
४६५	१५	महा	नहीं
४६५	२०	कालयथर्या	कालयोथरा
४६५	२०	विचीरस	विचारश
४६६	२०	कृत्प्न	कृतघ्न
४६७	१३	महात	मह ति
४६७	१७	कृतम्न तया	कृतघ्नतय
४६९	१६	सप्तदश	अष्टादश
४७१	१	महीं	नहीं
४७२	१५	चाहिवे	चाहिय
४७३	४	औद	और
४७५	१४	नव	नैव

পৃষ্ঠা	পংক্তি	অশুদ্ধ	শুদ্ধ
৪৭৬	১৬	[illegible]	[illegible]
৪৭৬	২২	দিব্য	দিব্য
৪৭৭	২২	দুরান্ত	দুরন্ত
৪৭৮	৬	ঐ রাজ	ঐ রাস্তা ধরা
৪৮০	১৩	শীর্ষ	[illegible]
৪৮১	১০	দৌরত্ব	[illegible]
৪৮২	৪	চিন্তা	চিন্তা
৪৮২	৮	কন্যাধারী	কন্যাধারা
৪৮৩	২১	হুপণী	হাতী
৪৮৪	২৩	দল	দক্ষ
৪৮৫	৮	আত্মীয়	আত্মীয়
৪৮৬	২	দর্শিত	দর্শিতে
৪৮৬	৪	দর্শি	হাতী
৪৮৮	৬	অধিকৃত	অধিকার
৪৮৮	২২	ভো	ভী
৪৮৯	৩	অধিকারী	অধিকার
৪৯০	২১	[illegible]	[illegible]
৪৯১	৬	কল	[illegible]
৪৯১	১৮	বিটপ	বিটপ
৪৯২	২৩	[illegible]	[illegible]
৪৯২	৩	আরোহ	[illegible]

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४७३	५	उतराध्यन	उत्तराध्ययन
४७३	१५	स्थानांगा	स्थानांग
४७५	१६	धरक	परक
४७६	१८	मवप	मवमें
४८२	४	अधिका	अधिका
४८२	८	बहुमाबागम	बहुमानपूर्वक
४८३	११	बड़े पद	बड़े पद
४८४	११	देख	देख
४८५	८	बागुअपि	आगुआयु
४८८	६	अभिग्रह	अभिग्रह
४८८	१५	गुरुकी	गुरुकी
४८८	२२	कस	कैसे
४९०	२१	श्री ताडमाग्ला	श्री ताडनामागणा
४९१	७	जन	जैन
४९१	२१	सप्तदश	अष्टादश
४९२	३	आवश्य	आवश्यक
४९३	१५	स्थानांगा	स्थानांग
४९५	१६	धरक	धरके
४९७	१०	साधुआंका	साधुओंका
४९८	११	आगोज	आठो
४९८	१४	अतरिक्त	अतिरिक्त

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	१०	[illegible]	[illegible]
[illegible]	११	[illegible]	[illegible]
[illegible]	१	[illegible]	[illegible]
[illegible]	११	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५१४	११	छउमत्थ	छउमथ्य
५१५	५	खेलती	दफलती
५१५	१५	आपतु	अपितु
५१५	२०	करना	करेंगे
५१५	२४	व्यवहारसे	व्यवहारम
५१६	१५	विघसे	विधिसे
५१९	२०	बुज	कुछ
५१९	२३	विद्यान् ओंसे	विद्वानोंसे तु
५२१	६	इसलिये जीव	इसलिये जीव, अजीव, नाजीव ऐसे तीन राशी सिद्ध हुई, इस
५२३	१०	भाणी	भाणी
५२६	१८	ओद	और
५२७	४	द्वप	द्वेप
५२७	१७	पृथ्वी पृथ्वी	पृथ्वी
५२७	२१	मशभत	महाभूत
५२८	५	देखरर	देखकर
५२८	१४	शाशी	राशी

पूज्यपाद प्रात स्मरणीय १००८ श्री नीतिसूरीश्वरजी म साहेब

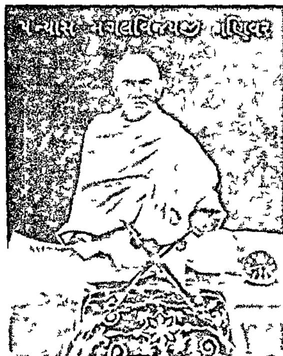


शान्तौ चन्द्रसम गुणौ रविसमः क्षान्तौ धरित्रीसम,
सत्ये धर्मसम श्रुतौ गुरुसम धैर्ये हिमाद्रे सम ।
धर्माचारविचारचारुनिपुण शास्त्रार्थबोधे रत
सोऽयं नीतिसूरीश्वरो गणपति पायात्सदापायत ॥

पूज्यपाद प्रात स्मरणीय १००८ श्री हर्षसूरीश्वरजी म सा



वन्दे तं भवतारकं गुणनिधिं कारुण्यरत्नाकरम्,
स्याद्वादाश्रितवाग्सुधाजलधरं ज्ञानक्रियालङ्कृतम् ।
पञ्चाचारविशुद्धसंयमधरं ध्याने च मग्नं सदा,
शान्तं श्रीगुरुहर्षसूरिमवनौ भव्यप्रचूडामणिम् ।



पूज्यपाद प्रातःस्मरणीय १००८ श्री हर्षसूरीश्वरजी म ए देव



वन्दे त भवतारक गुणनिधिं कारुण्यरत्नाकरम्,
स्याद्वादान्वितवाक्सुधाजलधर ज्ञानक्रियालङ्कृतम् ।
पञ्चाचारविशुद्धसंयमधर ध्यान च मग्न सदा
शान्त श्रीगुरुहर्षसूरिमवनौ सर्विसचूडामणिम् ।


પંન્યાસ મંગલવિજયજી ગણિવર

गुप्तदानेश्वरी श्रेष्ठिवर
बाबुलाल त्रिलोकचंदजी
पादरली



श्री उपदेश प्रासाद भाषान्तर

भाग ८

स्थंभ १५

व्याख्यान २११

जुहार करनेका स्वरूप

"वर्षके आरभमें जुहार करने की पध्धति की उत्पत्ति"

अयोऽन्यजनजोत्कारा भवति प्रतिपद्दिने।
तत्स्वरूपं तदा पृष्ट पुनर्जगाद साधुप ॥१॥

भावार्थ -पड़वा के दिन प्रात काल को जो लोग परस्पर जुहार करते हैं उसका स्वरूप राजाके पूछने पर गुरु महाराज ने बतलाया कि —

हे संप्रति राजा! परस्पर जुहार करने का यह कारण है कि गौतम गणधर को अमावस्या (दीपावली) की रात्रिके अन्तिम भागमें केवलज्ञान प्राप्त हुआ। अत प्रात कालमें नये राजाके सिंहासनारूढ होने के सदृश सब गणधर वहा आकर उनकी वन्दना करने लगे। उसी समयसे प्रणाम करने की यह प्रथा प्रचलित हुई है। इसका दूसरा कारण यह है

कि प्राचीनकालमे अवती नगरीमें धर्म नामक राजा राज्य करता था । उस के नमूचि नामक प्रधान था । एक दिन उस नगरमें मुनिसुव्रत स्वामीके शिष्य श्री सुव्रतसूरि पधारे। उनको वदन करने के लिये श्री धर्मराजा अपने प्रधान नमूचि को साथ लेकर गया । देशना के समय उस सचीवने यह प्रश्न किया कि "यह सम्पूर्ण विश्व स्वप्नवत् है, जीव के नाश होने पर सब नाश हो जाता है, जीव परलोकमे किसी गति को प्राप्त नहीं करता, अर्थात् जीव तो इस पचभूत के पींड का ही नाम है और परलोक नहीं है ?" इस प्रकार अपने मत को स्थापन करने वाले सचीव को सूरि के शिष्यने वादमें परास्त कर दिया । इस पर क्रोध के वशीभूत हो रात्रि के समय हाथम तलवार ले वह सचीव उन मुनि के प्राण लेने की अभिलाषासे उन के समीप गया । वहां शासन देवीने उसे स्तभित कर दिया । प्रातःकाल जब राजा आदिने उसे वहीं चित्र म आलेखितसा देखा तो राजाने शासनदेवी तथा गुरु से क्षमा याचना कर उसे मुक्त कराया । पुरवासियों ने उसे बहुत धिक्कारा अत वो लज्जित हो नगरसे निकल भटकता भटकता हस्तिनापुर नगरमें पहुँचा । उस नगरमें पद्मोत्तर नामक राजा राज्य करता था । उसके उत्तम शीलसे सुशोभित ज्वालादेवी नामक पट्टरानी तथा विष्णुकुमार व महापद्म नामक दो पुत्र थे । राजाने विष्णुकुमारको राज्य पद तथा छोटे पुत्र को युवराज्यपद दिया ।

नमूचि प्रधान उसकी कलकुशलता युवराजको दिखाई, जिससे प्रसन्न होकर उसको अपना प्रधान पद दिया, एक बार उस नमूचिने सिंहरथ नामक बडे योद्धाको जीता, जिससे युवराज प्रसन्न होकर उसे एक वरदान दिया। नमुचिने यह वरदान उसके पास ही धरोहररूपसे रख छोड़ा। एक दिन ज्वालादेवीने हर्षित होकर रथयात्रा करनेकी अभिलाषासे सुवर्ण और रत्नोंसे शोभित एक जैनरथ तैयार कराया, उसी समय उसकी शोक्यने भी इर्षासे प्रेरित हो एक ब्रह्मरथ बनाया तब वे दोनों रथ मार्ग में आमने-सामने मिले तो उन दोनोंके बीच वाद विवाद छिड़ गया। दोनों पक्षोंमें से कोई भी रथ खिंचने वाले पुरुष दूसरे रथको मार्ग देकर आगे नहीं बढ़े। अतः क्लेश निवृतिके लिये राजाने दोनों रथोंको वापस लौटा दिये। इस पर महापद्म इसमें उसकी माताका अपमान हुआ समझ उसके मनमें अत्यन्त दुःखी होकर परदेश चला गया। वहां अनुक्रमसे चक्रवर्ती योग्य समृद्धि प्राप्त कर वापस उसकी जन्मभूमिको लौटा तब पिताने बडे उत्सवके साथ उसका नगरमें प्रवेश कराया। तत्पश्चात् बत्तीस हजार राजाओंने बारह वर्ष तक महापद्मका राज्याभिषेक किया।

राज्याभिषेकके पश्चात् पद्मोत्तर राजा विष्णुकुमार सहित सुव्रताचार्यके पास दीक्षाग्रहन कर स्वर्ग सिधारा। विष्णुकुमार को छ हजार वर्ष पर्यन्त तीव्र तप करनेसे वैक्रियादिक अनेक ऋद्धियें प्राप्त हुईं।

महापद्म राजाने उसकी माताका रथयात्राका मनोरथ बडे उत्सव के साथ पूर्ण किया। तथा उसने पापका नाश करने के लिए माताके कथनानुसार समग्र पृथ्वीको जिनेश्वरोंके चैत्योंसे विभूषित किया।

एकबार जब सुव्रताचार्य हस्तिनापुरमें अनेक साधुओं सहित चातुर्मासका अभिग्रह धारण कर रहे तब अपने पूर्वके वैरका स्मरण कर नमुचिने चक्रवर्ती राजासे अपने धरोहर वरदानकी याचना की कि, "हे राजन्! कार्तिक मासकी पूर्णिमा पर्यन्त मुझे छ खंड का राज्य भोगने दीजिये।" राजाने वचन बध होनेसे उसे अपना सम्पूर्ण राज्य सोप दिया और स्वय उस अवधितक अन्तःपुरमे रहे।

सर्व धर्मका द्वेषी नमुचि निरंकुशपनसे छ खंडका राज्य करने लगा। समग्र पृथ्वीका नमुचि नया राजा होने से सर्व राजाओंने उसे भेंटे दे दे कर उसकी आज्ञाको अगीकार किया। तत्पश्चात् नमूचिने जीव हिंसायुक्त यज्ञ आरंभ किया। सर्व ब्राह्मणो ने उसे आशिर्वाद दे दे कर उसके यज्ञ कर्मकी भूरी भूरी प्रशंसा की, उस समय उसने सुव्रताचार्यको बुलाकर कहा की 'तुम मुजे के अतिरिक्त अन्य सर्व वेषधारी और ब्राह्मण चक्रवर्ती तथा यज्ञरुप धर्म कर्ता जानकर नमस्कार और प्रशंसा करते है किन्तु तुम ऐसा नहीं करते, सो क्या तुम मुजसे भी बढ कर हो? अत मेरी पृथ्वीमे कोई भी साधु न रहने पावे। यदि मेरी पृथ्वी मे कोई साधु सात दिनसे अधिक रह गया तो मैं उसको मार डालुंगा, जिसके लिए मुझे कोई दुषण मत देना!"। यह सुनकर

नगरवासियोंने उसे बहुत नम्र वचनों से समझाया, किन्तु उसने अपना आग्रह नहीं छोड़ा। ईसपर आचार्य महाराजने विचार किया कि, "ईसका राज्य तो सर्व स्थल पर है, फिर हम वर्षाकालमें सात दिनकी अवधि में कहां जावे?" ऐसा विचार कर उन्होंने अन्य साधुओं से पूछा कि, "क्या आप में कोई ऐसी लब्धि वाला है कि जो मेरू पर्वत के शिखर पर रहने वाले विष्णुकुमार मुनिको यहां बुलावे?" एक शिष्यने अपनेमे ऐसी शक्ति होना बतलाया। गुरु आज्ञा ले मेरू पर्वत पर गया। विष्णुकुमार मुनिने जब चोमासा मे उसके ईस प्रकार अकस्मात् आनेका कारण पूछा तो उसने यथार्थ रूपसे सर्व वृतान्त कह सुनाया। फिर विष्णु-मुनि उस साधुके साथ नमुचि की सभा में आये जहाँ नमुचिके सिवा अन्य सब राजाओंने उसकी वन्दना की। वहां विष्णु मुनिने नमुचि राजा से कहा कि, "हे राजन्! एक स्थान पर चोमासेमें रहने के अभिग्रह वाले मुनि ईस समय कहां जायेंगे? अतः उनके रहने के लिए कुछ भूमि दीजिये।" नमुचिने तीन कदम पृथ्वी देनेका वचन दिया। यह सुन क्रोधित हो विष्णुमुनिने वैक्रिय लब्धिसे लाख योजन प्रमाण शरिर बना एक पैर पूर्व दिशाकी जम्बूद्वीपकी भूमि पर और दूसरा पैर पश्चिम दिशाकी भूमि पर रखकर कहा कि, "हे पापि! अब तीसरा पैर रखने की जगह कहां बतलाता है?" यह सुन भयभ्रान्त हो नमुचि मौन हो जब खड़ा रह गया तो विष्णुमुनिने तीसरा पैर उसकी पृष्ठ पर

रक्खा जिससे जैसे त्रिविक्रमने बली राजाको पातालमें पहुचा दिया था, उसी प्रकारको नमुचि भी [1]द्रव्यसे तथा भावसे पाताल मे गया। उस समय पर्वत भी कपायमान हो गये ग्रह भयभीत हो गये, और इन्द्रादिक देवता भी 'यह क्या हो गया ?" ऐसा देख सम्भ्रान्त हो गये। फिर अवधि द्वारा ईसका कारण जानकर ईन्द्रने विष्णु मुनिके क्रोधको शान्त करने के लिए सगीत जानने वाले गधर्वा को भेजा, जिन्होंने मुनिके कर्ण समिप अमृतमए गीत नृत्य आरभ किया, जिससे मुनिकी कोपाग्नि शात हुई और वे अपने मूलरुपमें आ गये। महापद्म चक्रवर्तिने भी लज्जीत हो नमस्कार किया जिसको मुनि ने उपालभ किया कि, "तेरे राज्य करते हुए भी यदि शासन मे ऐसी हीनता व कष्ट हों तो फिर अन्य क्षुद्र राजाओं के राज्यमे ऐसा हो तो उसमे उनका क्या दोष है ?" आदि चक्रवर्ती को उपदेश देकर आचार्यके समक्ष जा यथार्थ वार्ता सुना, आलोचना कर, प्रायश्चित लेकर प्रतिक्रमण किया। ईस स्थान पर शासनकी भक्ति के लिए उन्होने यह कार्य किया है अत उनका इसमे कोई दोष नही है, तिस पर भी सज्झाय ध्यानादिकमें किन्चित् [2]मूराल्व और विभाव प्रसगत्व[3] होने से उन्होने गुरु के समक्ष इर्यापाथिकि पडिकमया द्वारा

---

१ द्रव्य से शरीर पाताल मे समा गया भावसे मृत्यु को प्राप्त कर सातवे नरकमें गया।

२, किसी सझाय ध्यानादिकमे हानि आना ३ विभाव दशाका प्रसग का उपस्थित होना।

आलोचना की, और अन्तमें विष्णुमुनि ने मोक्ष गति प्राप्त की।

इस प्रकार महाउपात शांत हो जाने पर जैसे पुन जन्म और चैतना प्राप्त हुआ हो उस प्रकार से सर्व मनुष्यों ने शुभ वस्त्र अन्नपान आदि ग्रहण किये और परस्पर जुहार किया इसीसे प्रति वर्ष मनुष्य पड़वा के दिन उत्तम वस्त्र, अन्न, पान, जुहार और घरकी शोभा आदि महोत्सव करते हैं।

जो साधुओंकी निन्दा करते हैं वे मनुष्य होते हुए भी पशु तुल्य हैं इसकी प्रसिद्धि के लिए राजाने घर घर गोहिसा कराया। अभी भी मारवाड आदिमे गोवरका गोहिसा किया जाते है "जुहार करनेके दिन प्रथम गणधर गौतमस्वामीने श्री वीतराग शब्द के अर्थ को विचारते हुए केवल ज्ञान रूप लक्ष्मी को, जिनेन्द्रशासन के राज्य को, और गुणके समूहकी शक्तिको प्राप्त की थी।"

॥ इत्यब्ददिन परिमितोपदेश प्रासादवृत्तौ पंच दशमस्तम्भस्य द्विशतएकादशतम सम्बन्ध ॥

---

१ "गोहिसा" क्या है यह कुछ समझ मे नहीं आता है।

व्याख्यान २१२

पूजा की विधि

निश्चयाद्‌द्रव्यजीवेन पूजा कार्या जिनेशितुः ।
दमयन्त्येव कल्याण-सुखमतति दायिनी ॥१॥

भावार्थ –"भव्य प्राणियों को दमयन्ती सदृश कल्याण एवं सुख सम्पत्ति को देने वाली जिनेश्वर की पूजा अवश्य करनी चाहिए ।"

दमयन्ती की कथा

कोसला नगरी में निषध नामक राजा था । उसको नल और कुवर नामक दो पुत्र थ । उसी समय विदर्भ देशमें भीम नामक राजा था, जिसके दमयन्ती नामक एक पुत्री थी । जिस के सर्व अग सुन्दर थ और वह समग्र कलाओं में कुशल थी । जब वो पुत्रि अठारह वर्षकी हुई तो भीम राजाने पुत्री के योग्य वर तलाश करने की अभिलाषा से स्वयवर रचा । जहा नल और कुवर सहित निषध आदि अनेकों राजा गये । उस स्वयवर में अपनी दासी द्वारा किए वर्णन सहित दमयतिने नलके गलेमें वरमाला आरोपण की । शुभ दिन को पाणिग्रहन के उत्सवमें भीम राजाने नल को हाथी, घोडे, रथ, रत्न आदि अनेक वस्तुये भेट दी । कुछ दिन वहां रह पुत्रों और पुत्रवधू सहित जब निषध

राजा वापस कोसलानगरी को लौटा तो भीम राजा भी अपनी पुत्री को शिक्षा देने के लिए कुछ दूर जा उसे विदा करा वापस लौट आया।

मार्ग चलते जब वे एक सघन वनमें पहुचे तो सूर्यास्त हो गया था, घोर अधकार के कारण मार्ग का दिखना तक बन्द हो गया, जिससे उनकी सैना बार बार पग पग पर पथ भ्रष्ट होकर अत्यन्त दुःख का अनुभव करने लगी। उस समय दमयन्तीने अपने मस्तक को पोछ अग जन्मसे रहे स्वाभाविक तिलक को प्रदर्शित किया, जिस के प्रकाश के तेज म उस दम्पती ने समीप वर्ता प्रतिमा धारण कर खडे हुए एक मुनि को देखा। उस साधुके शरीरके साथ वहा एक मदोन्मत्त हाथी उसकी सुड घिस रहा था। जिससे हाथीका मद माधुके शरीरके चिपक गया था व उस के गन्ध से भौंरे भौंरे गुन्जारित करते हुए उस निःस्पृह मुनिको पीडा पहुचा रहे थे। इस प्रकार मुनिके स्वरूपको देख निषध राजा आदि सब अपने वाहनों से उतर कर उस मुनिको नमस्कार करने लगे। उनकी धर्मदेशना सुन कर उन्हों ने प्रश्न किया कि, "हे स्वामी! दमयन्ता के कपाल से उद्योत कैसे प्रगट हुआ?" इस पर मुनिने उनका पूर्वजन्म का वृत्तान्त सुनाया कि "पूर्वभवमें इसन पाचसो आंबिल किये थे, भावि तीर्थंकर श्री शांतिनाथकी पूजा की थी, तप की समाप्ति पर विधिपूर्वक उद्यापन किया था और चोवीश तीर्थंकरो के भालस्थल पर रत्नजडित सुवर्ण के तिलक कराकर

चढ़ाये थे, उस पुण्य के प्रभाव से इस भव मे उसके भाल स्थल म तिलक के आकार का एक सूर्य के खड सदृश स्वाभाविक उद्योत हो गया है ।"

इस प्रकार अमृतमय वाणी सुन हर्षित हो निषध अपने नगर को चले आये । वहा निषध राजा नलका राज्याभिषेक कर, स्वय दीक्षा ग्रहण कर, स्वर्ग सिधाया और नलराजा अनुक्रमसे तीन खडका राजा बना ।

अब उसका राज्य हथे पाने की इच्छा से कुबर सदैव उसके छिद्र ढूढने लगा । नल भी भाइको साथ जुआ खेलते खेलते अनुक्रम से दुर्योगसे नल राजा अपनी स्त्रीको भी जुएमे हार गया । इस पर कुबरने आनन्दित होकर कहा कि, ' हे भाइ ! अब पृथ्वी और अपनी स्त्री का त्याग कर ।" तब नल मात्र एक ही वस्त्र धारण कर कोसला नगरी मे अकेला चल दिया । नगर के लोगों तथा प्रधानाने कुबरसे प्रार्थना कर दमयन्ती को भी उसके साथ भेजा । वे स्त्री पुरूष चलते चलते एक बडे अरण्य में पहुचे । मध्यान्ह समय मे फलो का आहार किया व रात्रिमे किसी लतागृहमें जा रात्रि निर्गमन की राजा नलने स्त्री को प्रवासमे महा बधनरूप समझ उसको सोती हुई छोड़कर चले जाने की इच्छा से नेत्रोंमे पानी भर, हाथ मे छुरी ले अपने खून से उसके वस्त्र को छोर पर लिखा कि, "हे प्रिया ! यहा से वटवृक्षकी ओर कुडिनपुर जाने का मार्ग है, और

दाहिनी ओर पलाश के वृक्ष के समीप होकर कोसला नगरी जाने का मार्ग है इस लिये जहा तेरी इच्छा हो वहा चलि जाना, मैं इस स्थिति मे अत्यन्त लज्जीन होता हू अत तुझे यहा ही छोड़कर जा रहा हू ।"

उपरोक्त विवरण लिख दमयन्ती को अकेली सोती छोड़ जब राजा नल आगे बढ़ा तो प्रातःकाल म समीपवर्ती भाग में उसने अपने चारों ओर दावानल जलती देखी । उसमे होने वाले अनेक प्राणियों के आक्रन्द में उसने मनुष्य वाणी सुनि कि, 'हे इक्ष्वाकु कुल मे मुकुटरूप नल! मेरी रक्षा कर, रक्षा कर ।" यह सुन इधर उधर दृष्टिपात करने पर उसने एक लतागुल्म मे सर्प को देखकर कहा कि, "हे सर्पराज! आप मेरे नाम तथा मनुष्य भाषा को कैसे जानते हैं?" उसने उत्तर दिया कि, "पूर्वभव के संस्कार से जानता हू अत मेरी रक्षा कर, रक्षा कर।" नलने जब उसे वहाँ से खींच कर बाहर निकाला तो उस कृतघ्न सर्पने उसे तुरन्त ही डस लिया । उस के विष के व्याप्त होने से जब उस का शरीर कुबड़ा हो गया तो वह रोदित होकर अनेक प्रकार से विलाप करने लगा । जिसे सुन सर्प बोला कि, "हे पुत्र! मे तेरा पिता हूं । मैंने माया द्वारा तुझे सताया है । मैं ब्रह्म देवलोकसे तेरे स्नेह से प्रेरित होकर यहा आया हू । हे पुत्र! तुझे अभी भरतार्ध का राज्य भोगना अवशेष है अत तू यह श्रीफल और कडिया ग्रहण कर । श्रीफल से जब जब तू वस्त्र निकाल लेगा

घ कडियेमे से अलकार निकाल कर धारण करेगा तब तब तू अपने मूल स्वरूप को प्राप्त होगा ।" ऐसे वचन कह कर तथा नल द्वारा प्रार्थना किये जाने पर उसे सुसुमारपुरी पास उसी समय रख वह सर्प अदृश्य हो गया ।

जब नल राजा सुसुमारपूरी आया तब वहा एक मदोन्मत्त हाथी बड़ा भारी उपद्रव मचा प्रजा का सहार कर रहा था । उस हाथी को कोइ वश मे न कर सका जिस को स्वबुद्धिसे वश मे कर उसके स्थान पर बाँध नल नगर वासियों सहित दधिपर्ण राजाके पास गया । राजाने उस कुबडेका यथायोग्य आदर-सत्कार कर उसके वश आदि का हाल पूछा कुबडेन कहा की, "मै राजा नलका रसोइया हू और सूर्यपाक रसवती जानता हू । नल राजा धूतमें सर्वस्व हार कर अपनी स्त्री सहित कहीं चला गया इसलिये मैं यहा आया हू ।" यह सुन दधिपर्ण राजाने शोकातुर हो नलराजाका प्रेत कार्य किया और कुबडे को अपने पास रख लिया ।

एक दिन उपवनकी शोभा देखने को निकले हुए कुबडे को एक ब्राह्मण ने आकर सगीत में इस प्रकार दो श्लोक कहे कि —

अनार्याणामलज्जाना, दुर्बुध्धीना हतात्मना ।
रेखा मन्ये नलस्येव, यः, सुप्तामत्यजत्प्रिया ॥१॥

निश्वाम्य वल्लभा स्निग्धा, सुप्तामेकाकिनीं वने,
त्यक्तुकामोपि जात किं, तत्रैव हि न भस्मसात् ॥२॥

" जो नल राजाके सदृश सोती हुई स्त्रीको त्याग देता है उस प्राणिको अनार्य पुरुषो म, निर्लज्ज म, और आत्मघा में प्रथम रेखा समान समझना चाहिये। स्नेहपात्रि प्रियाको निश्वास दिला, खेदितकर, वनमें अकेली सोती छोड़ त्याग देने की ईच्छावाला नल उसी समय भस्मी भूत क्यो नही हो गया ?" इस प्रकार श्लोक सुन कुबडेने 'बहुत अच्छा गाया " ऐसा कह उसकी प्रशंसा की और उससे पूछा कि, "तू कौन है ? तूने नल राजा का वृतान्त कहांसे और कैसे सुना है ? और नल के जाने पश्चात् क्या हुआ !" ईस पर उस ब्राह्मणने कहा कि, 'दमयंतिने जब प्रातःकाल अपने पतिको अपने समीप नहीं देखा तो वह शोकविह्वल हो उसे इधर उधर ढूंढने लगी। ऐसा करते हुए उसकी दृष्टि अकस्मात् उसके वस्त्रके छोर पर लिखे अक्षरो पर पडी। उनको पढकर तथा उसके अर्थको समझ "वड वृक्षकी ओर के मार्गसे अपने पिता के घर चली जाऊ " ऐसा विचारसे वह वहांसे उस ओर ही चल पडी। आगे जाते उसने जब मार्गमे कुछ सार्थको लूटने की प्रवर्तीवाले चोरोको ललकार कर भयातुर कर दिया तो सार्थपतिने कुलदेवी के सदृश उसे नमस्कार कर उसके स्वमुखसे उसका सब वृतान्त सुना। वृतान्त सुन उसे नलकी स्त्री जान, उसे अपनी बहिन सदृश मान अपने साथ ले लिया। फिर वर्षाकालके आजानेसे

दमयन्ती यह सोचकर कि "सार्थको बहुत विलय होगा" बिना सार्थवाहकी आज्ञा लिये ही वह वहांसे अकेली ही निकल पड़ी। आगे जाने पर किसी राक्षसने उपद्रव किया किन्तु वो उससे लेश मात्र भी नही डरी इसलिये उसके स त्वसे सतुष्ट होकर राक्षसने कहाकि, "हे देवी! तू दु खी न हो, बारह वर्ष के अन्तम तरा वापस तेर पतिसे समागम होगा।' तत्पश्चात् दमयन्ती किसी पर्वतकी गुफा म रह श्री शान्तिनाथका मिट्टीका बिब बना उसकी पूजा करने लगी और स्वभाव म पक कर भूमि पर पडे फलोंसे उपवासादिक तपका पारण करके धमा राधन करने लगी। चोमासेक अ त मे उपरान्त सार्थवाह उसकी खोज करत हुए उस गुफा में जब उसे श्री शान्तिनाथकी पूजाम तत्पर देखी तो वह अत्य त हर्षित हुआ और उसके उपदेशसे जैन धर्म अ गिकार किया। उन वनमे पासमे स्थित तपस्वी भी दमयन्ती की वाणी से प्रतिबोधित हुए। यहां तापसपुर नामक नगर था। एकबार यशोभद्रसूरि जब वहां पधारे तो दम यन्तीके पूछने पर उन्होंने उसके पूर्व भवका इस प्रकार वर्णन किया कि,—' पूर्व भवमे तू मम्मण नामक राजाकी वीरमती नामक स्त्री थी। एक दिन वे दमयन्ति किसी स्थानका जा रहे थे कि सामने आते हुए एक मुनि दिखाई पडे जिसे उन्होंने अप शकुन समझ उन्हें बारह घडी तक वहां रोक रक्खा व जो उस दम्पति ने उस मुनि से इस भव में तुम दोनों को बारह वर्ष का विरह सहना पड़ा।" ऐसा कह आचार्य विहार कर गये।

एक दिन किसी ने आकर दमयन्ती से कहा कि, 'तेरे पति को मैने अभी यहा समीप मे ही देखा है।" ऐसा सुन वह नलक ल उसे ढूढने के लिये वन मे गई जहा किसी राक्षसो ने महान उपद्रव किया परन्तु उस को उसने अपने शियल व्रत के प्रभाव से शान्त कर दिया। वहा से चल वह अचलपुर पहुची। उस नगर मे चन्द्रयशा नामक उस की मासी वहा के राजा की रानी थी। दमयन्ती को सुशील देख अपने घर ले गई जहां उस की दानशाला मे दमयन्ती नित्य-प्रतिदान देने लगी। उसने वहा रहते हुए पींगल नामक चोर को भी मोत से बचाया।

एक बार हरिभद्र नामक ब्राह्मण कुन्टिपुर से वहा आया जिसने दानशाला म दान लेने जाने समय दमयन्ती को वहा देखकर पहिचान लिया और उस की मासी से जाकर उसका सब वृतान्त मूल से अन्त तक कह सुनाया इस स चन्द्रयशा से उसे अपनी बहिन की पुत्रि जान उसे राजमहल मे ले गई और अब तक अपना परिचय न देने के लिए उसे ओलवा दिया। फिर अनेक प्रकार से उस का सत्कार कर बड़ी धूमधाम के साथ उसे उस के पिता के घर कुन्दिन-पुर पहुचा दिया।

एक बार भीम राजा का दूत उसके कार्य वश जब दधिपर्ण राजा के पास गया तो उसने वहा नगर में पद पद पर सुना तथा स्वय आकर देखा कि " नल का रसोईया

कुबडा सूर्यपाकरसवती उसको जानता है।" उसने अपने नगर में जा अपने राजा भीम से यह सब वृत्तान्त कह सुनाया। दूत के वचन सुन इसकी विशेष परीक्षा करने के लिये भीम राजा ने एक ब्राह्मण को सुसुमारपुर भेजा। उस ब्राह्मण ने यहा जाकर कुबडे से कहा कि, "तेरे को देख कर मुझे अत्यन्त खेद होता है क्यों कि मैं तो यहा नल राजा के होने की सभावना से आया था, परन्तु कल्पवृक्ष कहा और एरड वृक्ष कहा? माणिक्य कहा और पत्थर कहा? इस प्रकार आज तक कुबडे कुबड़ा हो गया है।" यह सुन कुबड़ा रो पड़ा और उसने ब्राह्मण को सूर्य पाक रसवती खिला, बहुत सा सुवर्ण दान दे विदा किया। उसने लौट कर राजा भीम से लक्ष सुवर्ण का दान देना रोना और सूर्य पाक रसवती खिलाना आदि का सब वृत्तान्त कहा। जिसे सुन दमयन्ती ने कहा कि "हे पिता। इस विषय में किसी प्रकार का विचार नही करना चाहिये। अवश्य कुबडे के साथ में स्थित वो आपका जामाता ही है।" इस पर भीम राजाने दमयती का झूठा स्वयवर प्रारभ कर सुसुमारपुर राजाके दधिपर्ण को बुलाने के लिये दूत भेजे। क्यो कि ऐसा करने से यदि नल राजा वहा होगा तो वो अवश्य यह बात सुनकर राजा दधिपर्ण के साथ यहा आ जायगा क्यों कि पशु भी स्त्री का पराभव सहन नही कर सकते।

दधिपर्ण राजा दमयन्ती के अनुराग से प्रेरित होकर दी हुई अवधि में मात्र एक दिन अवशेष रहने पर भी कुबड़ा

सारथिकी सहायतासे उसी दिन कुंडिनपुर जा पहुंचा और कुबड़ा द्वारा सूर्यपाक रसवती बनवा परिवार सहित भीम राजा को भोजन कराया। तत्पश्चात् " यह निषध राजा का पुत्र नल ही कुबडेके रूपमे है क्योंकि श्वेताम्बर मुनिका वचन कभी मिथ्या नही होता " ऐसा पक्का निश्चय कर क्षमा पूर्वक दमयन्तीने अपने पतिसे कहा कि, " हे नाथ ! उस दिन तो आप मुझे वनमें सोती हुई को छोड़कर चले गये थे किन्तु अब मुझ जगती हुई को क्यों कर छोड़ सकोगे? " यह सुन नलने अपना स्वरूप प्रगट किया। जिसे देख भीम राजा नलको अपने सिंहासन पर बिठा अत्यन्त हर्षित हो दोनों हाथ जोड़ कर कहने लगा कि, " इस मेरे राज्य और आपत्ति रहित सम्पत्तिका आप आनन्दसे उपभोग कीजिये और आपके आज्ञांकित हमको भी आपकी रुचि अनुसार रहते रहीये। " दधिपर्ण राजाने भी नलको देख उसे नमस्कार कर आश्चर्यसे कहा कि " हे देव ! मैंने यदि अज्ञानतासे आपके प्रति कोई अयोग्य आचरण किया हो तो आप कृपया सबको क्षमा करना। "

तत्पश्चात् नल राजा सर्व राजाओं तथा सैन्यको साथ ले पृथ्वीको कंपाता हुआ कोसला नगरीकी ओर चल पड़ा। वहां युद्ध करते हुए क्रीडा मात्र में कुबर को परास्त कर स्वयं राज्याधिपति हो गया। इस पर भरतार्धके सब राजाओं ने नलको भेटे अर्पित की तथा नलने भी उनको जब तक वे उसकी आज्ञा का पालन करते रहें तब तकके

लिए अभयदान दिया। अनुक्रमसे पुष्कल नामक अपने पुत्रको राज्य भार सौंप नल राजा ने दमयन्ती सहित शास्त्रानुसार जैन दीक्षा ग्रहण की। नल राजा के शरीर में स्वाभाविक कोमलता होने से संयममें वे जब अतिचार लगाने लगे तो उसके पिता निषध देवता ने आकर उसे फिरसे दृढ़ किया। तत्पश्चात् दमयन्तीके भोगका अभिलाषी होने पर भी मनको हराम रोक, दीक्षा पालनमें असमर्थ होने से, अनशन अंगीकार कर, मृत्यु प्राप्त कर वह कुबेर नामक उत्तर दिशा का लोकपाल बना। दमयन्ती भी अनशनसे मृत्यु प्राप्त कर उस की प्रिया हुई। फिर कालक्रमसे दमयन्ती द्वारिका नगरीमें कनकवती नामक वसुदेव प्रिया हुई। वहा वो जैन धर्ममें आसक्त हो सांसारिक सुख भोगती थी कि श्री नेमिनाथ प्रभुका वहा समोवसरण हुआ कृष्ण परिवार सहित उनको वन्दना करने गया। भगवानने देशना दी। देशनाके अंतमें कृष्णने प्रश्न किया कि, "हे स्वामि! यह नगरी अक्षय है या इसका क्षय होगा?" भगवानने कहा की, "हे कृष्ण! द्वैपायन ऋषिके शापसे इस नगरीका क्षय होगा।" इस प्रकार श्री नेमिनाथके मुहसे द्वारिकाका दाह होना सुन अनेक यादवकुमार तथा उनकी स्त्रियोंने दीक्षा ग्रहण की। उस समय वसुदेवकी ७२९९८ स्त्रियोंने भी प्रभुके पास दीक्षा ग्रहण की। मात्र देवकी और रोहीणी दो घर पर ही रही। कनकवतीने चारित्र ले उत्कृष्ट भावना रख, शुक्लध्यान धारण कर, केवलज्ञान प्राप्त किया। फिर देवताओं

द्वारा दिये गये साध्वी के वेष धारण कर अनेकों जीवोंको प्रतिबोधित कर, अन्तमे कर्म क्षय कर मुक्तिको प्राप्त किया।

[इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशप्रासादवृत्तौ पंचदशम स्तंभस्य २१२ द्वादशाधिकद्विशततम संबंध]

व्याख्यान २१३

दीप पूजा

जिनेंद्रस्य पुरो दीपपूजां कुर्वन् जनो मुदा।
लभते पृथुराज्यादिसंपदं धनदुःस्थवत् ॥१॥

भावार्थ —" जिनेश्वरकी हर्षसे दीपपूजा करनेवाला मनुष्य निर्धन धनाके सदृश बड़ी राज्यसमृद्धिको प्राप्त करता है।"

दीपपूजा पर धनाका दृष्टांत

इस जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्र के दक्षिणार्थ भरतमे मगध नामक देशमे पद्मपुर नगर है। उस नगरका कलाकेली नामक राजा था। उसके पांच लाख अश्व, छ सौ मदोन्मत्त हाथी, और अनेको रथ तथा पत्तिये थीं। इस प्रकार पुण्यके प्रभावसे राजाको महान् राज्य लक्ष्मीकी प्राप्ति हुई थी। ऐसे राज्यसुखको भोगते हुए राजा कलाकेलीसुख पूर्वक दिन निर्गमन करता था।

एक बार पद्मवन नामक चैत्यसे शोभित पद्मवन नामक उद्यानमें मनुष्योंमें केवली, सर्वज्ञ और सर्वदर्शी, आदेय नाम कर्मवाले तेवीसवे तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथ स्वामी अनेक गणधर तथा साधु परिवार सहित' और करोड़ों भुवनपति व्यंतर, ज्योतिषि तथा विमानवासी देवों सहित समवसर्यें। चतुर्विध देवताओंने समवसरणकी रचना की। जब पूर्व द्वारासे समवसरणमें प्रवेश कर भगवान सिंहासन पर बैठे, और बारह पर्षदा भी आकर स्व स्व स्थान पर बैठ गई तब कला केली राजा और अन्य नगरवासीभी भगवान की वन्दना करनेको आये। उस समय अनेकों त्रायस्त्रिंशत् देवताभी आये थे। भगवानने पर्षदाके समक्ष निम्नस्थ देशना दी कि —

मन्न जिणाण आण, मिच्छ परिहरह धरह सम्मत्त।
"छव्विह आवस्सयमि, उज्जुत्तो होइ पइदिवम ॥१॥

भावार्थ —हे भव्य जीवो! जिनेन्द्रकी आज्ञाका मान्य करो, मिथ्यात्वका त्याग करो, सम्यक्त्व को धारन करो, और अहर्निश छे प्रकारके आवश्यकमें उद्यमवंत बनो। तथा

पव्वेसु पोसहवय, दाण सील तवो अ भावो अ।
'सज्झाय नमुक्कारो, परोवयारो अ जयणा अ ॥२॥

भावार्थ —पर्वतिथिमें पौषध व्रत, तथा दान, शील, तप, भावना, स्वाध्याय, नमस्कार, परोपकार, और यतना आदि करना चाहिये।" तथा

जिणपुआ जिणथुणन, गुरुथुअ साहमिआण वच्छल्ल।
सव्व विरइमनोरह, एमाई सड्ढकिच्चाइ ॥२॥

भावार्थ —"जिनपूजा, जिनेश्वर की स्तुति, गुरुकी स्तुति, साधर्मिक वात्सल्य और सर्व विरतीका मनोरथ करना चाहिये क्योंकि ये श्रावकके कर्तव्य है।"

हे भव्य प्राणियों! मोहनी आदि आठ कर्मके वशसे ससारी जीव जन्म मरणादि अनेक दुःखोसे व्याप्त चतुर्गति रूप भयंकर ससारकान्तारमें वारवार परिभ्रमण करता है। यह जीव प्रथम अकाम निर्जरासे हुए पुन्यके उदयसे अव्यवहार राशिसे निकल व्यवहार राशिमे आता है फिर यथा प्रवृत्ति करण करके आयुष्य रहित साता कर्मकी उत्कृष्ट स्थिति खपाकर पल्योपमके असख्यातवें भाग न्यूनी एक कोडा कोडी सागरोपमकी करता है। उतनी लघुस्थिति जैसे पर्वतसे गिरता पाषाण फूटाता पिटाता गोल होजाता है उस न्यायसे करता है तथा शुभ भावका बधन करता है। यथाप्रवृत्ति करणद्वारा ही जीव प्रथम बादर पृथ्वीकाय में पर्याप्त भावसे उत्पन्न होता है। तत्पश्चात् कोइ भव्य जीव अनुक्रमसे सज्ञीपचेन्द्रिय मनुष्यपन प्राप्त कर अल्प ससारी हो आर्यक्षेत्रमें उच्च कुलमे उत्पन होता है। इस प्रकार आर्यक्षेत्र, मनुष्यभव, उच्चकुल, सुगुणकी जोगवाई आदि धर्मसामग्री प्राप्त कर जीवको आत्माका शुद्ध स्वभावसे अथवा गुरुके उपदेशसे ईस प्रकार आत्मस्वरूपका चितवन करना चाहिये कि "यह मेरा आत्मा असख्यात प्रदेशवाला है। यह द्रव्या-

र्थिकनयसे एक है, और पर्यायार्थिक नयसे अनेक परिणाम वाला है। ज्ञान, दर्शन, रुप, शुद्धगुण के पर्याय वाला है उस आत्माके अनन्त अस्ति धर्म हैं, अनन्त नास्ति धर्म हैं, और उसमे अनेकों सामान्य तथा विशेष धर्मोंका भी समावेश है अपितु वे सब पुद्गल भावसे रहित हैं। वस्तुगत भावसे तीनो कालोंमें अनन्ति कर्म प्रवृत्तिसे रहित हैं। साकारोपयोग (ज्ञान) तथा अनाकारोपयोग (दर्शन) ये स्वभाववाला है कदाचित चैतन्य भावोंको नहीं छोडता है। वे मेरा आत्मा शाश्वत है। शरीर, लेश्या, जोग, कषाय और क्लेश रहित हैं, अर्थात अशरीरी, अलेशी, अयोगी, अकषायी, और अक्लेशी है, परमचिदानंद स्वरूपी है, द्रव्यार्थि नयकी मुख्यतासे नित्य है, और पर्यायार्थिक नयकी अपेक्षा से अनित्य है। रत्नत्रयी (ज्ञान, दर्शन, चारित्र) मय है। श्रद्धा भासन, और रमणताके लक्षनोंवाला है तथा उत्तम निमित्त कारणसे उसका उपादान सुधरता है अत इस प्रकार से उसके शुद्ध स्वरुप का निरंतर ध्यान करते रहना चाहिये।

ऐसी सदृश अमृत पार्श्वनाथ स्वामीने धर्म देशना दी जिसे सुनकर राजादि सब नगर निवासी हृष्ट तुष्ट हुए, चितमें आनन्दित हुए, प्रीतियुक्त हुए, परम शान्त भावको प्राप्त हुए और हर्षसे उल्लासित हृदय वाले हुए। वर्षाकी धारासे गिराये कदंब पुष्पों सदृश उनके रोमाच प्रफुलित हो उठे, यावत् अस्थि मज्जा पर्यन्त धर्मके रागसे संगित हो गये। उनमें से कई जीवोंने चारित्र ग्रहण किया, कईने बारह प्रकारका श्रावक धर्मको अंगीकार किया और कईने रात्रि भोजनकी

विरति, अनन्तकायका त्याग, अभक्ष्य भोजनका परिहार और बासी द्विदलका वर्जन आदि पचक्खान किये। तत्पश्चात् पर्षदा स्व स्व स्थानको लौट गई। फिर चन्द्रावली रानीने हस्त कमल जोड़कर नम्रतासे भगवानको पूछा कि, 'हे करुणा सागर, परम दयाके भंडार और त्रिभुवनमें सूर्य समान भगवंत! आपकी जय हो। हे प्रभो! मुझे किस कर्मके कारण यह राज्य संपदा प्राप्त हुई है? कृपया वह बतलाइये।" पार्श्वनाथ स्वामीने कहा कि, 'हे राजन्! तेरा पूर्वभवका वृत्तान्त सुन।"

इस जंबूद्वीपके भरत क्षेत्रमें दक्षिणार्ध भरतमें अंग नामक देश है। जिसमें रमा नामक नगरी है। जहां जीतारी नामक राजा राज्य करता था। उस नगरीमें धना नामक एक निर्धन वणिक रहता था। वह जिस तिस उद्योगसे आजी विका (उदर पूर्णा) करता था। एक बार रमापुरीके समीपवृति उद्यानमें बाईसवें तीर्थंकर बालब्रह्मचारी श्री नेमीनाथ भगवान अठारह गणधर अठारह हजार साधु, और छत्तीस हजार साध्वियोंके परिवार सहित समवसर्ये। उनके देहकी कान्ति श्याम कमलके सदृश थी देहका प्रमाण दस धनुष ऊंचा था और चारों प्रकारके देवता उनके चरण कमलकी सेवा करते थे। उस उद्यानमें देवताओंने समवसरणकी रचना की। उसके मध्य भागमें सिंहासन पर नेमनाथ स्वामी विराजमान हुए और सर्व पर्षदा भी आई। उस समय इन्द्रोंने देशना दी कि,

१ भुवन पति व्यंतर ज्योतिषि और वैमानिक

भवे जीवा विवज्ज ति, मुञ्च ति य तहेव य ।
सव्वकम्म खवेऊण सिद्धिं गच्छइ नीरया ॥१॥

भावार्थ —"जैसे जीव संसारमें बंधते हैं वैसे ही मुक्त भी होते हैं और सबे कर्मोंका क्षय कर आसक्ति रहित पनसे सिद्धिपद प्राप्त करते हैं ।"

इसप्रकार जब धर्मदेशना चल रही थी तब वह धना नामक वणिक भी वहा जा पहुचा । उस समय भगवानने यह उपदेश दिया कि, "जो भव्यप्राणी जिनेन्द्रकी दीपपूजा करते हैं वे राज्य लक्ष्मीको प्राप्त कर अन्तमे मोक्षकी प्राप्ति करते हैं ।" ऐसा धर्मोपदेश सुन हर्षित हो धनाने मनमें विचार किया कि, "मैं सदैव जिनेश्वरकी दीपपूजा करूगा ।" ऐसा अभिग्रह धारण कर श्री नेमिनाथको वन्दना कर धना अपने घर लौट आया । तत्पश्चात् जीव हिंसा न हो उस प्रकारसे अपने तीन रत्नके उद्योतके निमित्त वह सदैव विधि पूर्वक दीपपूजा करने लगा । ऐसा करनेसे मनुष्यका आयुष्य बांध मृत्यु प्राप्त कर कलावेली नामक तू राजा हुआ है, और ऐसी राज्य समृद्धिको प्राप्त की है ।"

इस प्रकार श्री पार्श्वनाथ स्वामीसे अपना पूर्वभव सुन आनन्दित हो राजा कलावेली प्रतिदिन द्रव्य पूजा तथा भावपूजा विशेषरूपसे करने लगा और सुखपूर्वक रहने लगा । वह राजा अनेक प्रकारके सुख भोग अनुक्रमसे सिद्धिपदको प्राप्त करेगा ।

---

१ शुभ तथा अशुभ ।

"हे भव्य प्राणियों ! अपने अज्ञानके नाश करने के लिए कलाकेली राजा सदृश ज्ञानका विकास करने वाली द्रव्य एव भावसे विधिपूर्वक दीपपूजामें आदर करो ।"

[इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशप्रासादवृत्तौ पचदशम स्तम्भस्य २१३ त्रयोदशाधिकद्विशततम' प्रबध]

व्याख्यान २१४

अल्प ज्ञानसे सुख प्राप्ति

ज्ञान शिक्षयेदल्प हि, भवेन्न निरर्थकम् ।
स्वल्पाक्षर महिम्नापि, यवेन जीवरक्षित ॥१॥

भावार्थ — अल्प मात्र ज्ञान भी निरर्थक नहीं होता क्यों कि थोडेसे ज्ञानकी महिमासे भी यव नामक राजर्षिने अपने जीवकी रक्षा की थी ।"

यव ऋषिकी कथा

विशाला नगरीम यव नामक राजा था। उसके गर्दभिल्ल नामक पुत्र अणुल्लिका नामक पुत्रि और दीर्घपृष्ट नामक प्रधान था । एक दिन रात्रिके पिछले भागमें जग जाते पर राजाने विचार किया कि," मैने पूर्व भवमें कोई ऐसा अद्भूत सुकृत किया होगा कि जिससे उस सुकृतके प्रभावसे आज में समुद्र पर्यंत समग्र पृथ्वीको स्वतत्रता पूर्वक भोग

भवे जीवा विमज्जति, मुच्चति य तहेव य ।
सव्वकम्म खवेऊण सिद्धिं गच्छइ नीरया ॥१॥

भावार्थ -"जैसे जीव संसारमें बंधते हैं वैसे ही मुक्त भी होते हैं और सर्व कर्मोंका क्षय कर आसक्ति रहित पनसे सिद्धिपद प्राप्त करते हैं ।"

इसप्रकार जब धर्मदेशना चल रही थी तब वह धना नामक वणिक भी वहां जा पहुंचा । उस समय भगवानने यह उपदेश दिया कि, "जो भव्यप्राणी जिनेन्द्रकी दीपपूजा करते हैं वे राज्य लक्ष्मीको प्राप्त कर अन्तमें मोक्षकी प्राप्ति करते हैं ।" ऐसा धर्मोपदेश सुन हर्षित हो धनाने मनमें विचार किया कि, "मैं सदैव जिनेश्वरकी दीपपूजा करूंगा ।" ऐसा अभिग्रह धारण कर श्री नेमिनाथको वन्दना कर धना अपने घर लौट आया । तत्पश्चात् जीव हिंसा न हो उस प्रकारसे अपने तीन रत्नके[१] उद्योतके निमित्त वह सदैव विधि पूर्वक दीपपूजा करने लगा । ऐसा करनेसे मनुष्यका आयुष्य बांध मृत्यु प्राप्त कर कलावेली नामक तू राजा हुआ है, और ऐसी राज्य समृद्धिको प्राप्त की है ।"

इस प्रकार श्री पार्श्वनाथ स्वामीसे अपना पूर्वभव सुन आनन्दित हो राजा कलावेली प्रतिदिन द्रव्य पूजा तथा भावपूजा विशेषरूपसे करने लगा और सुखपूर्वक रहने लगा । वह राजा अनेक प्रकारके सुख भोग अनुक्रमसे सिद्धिपदको प्राप्त करेगा ।

१ शुभ तथा अशुभ ।

"हे भव्य प्राणियों! अपने अज्ञानके नाश करने के लिए पलाकेली राजा सदृश ज्ञानका विकास करने वाली द्रव्य एवं भावसे विधिपूर्वक दीपपूजामें आदर करो।"

[इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशप्रासादवृत्तौ पञ्चदशम स्तंभस्य २१३ त्रयोदशाधिकद्विशततम प्रबंध]

व्याख्यान २१४

अल्प ज्ञानसे सुख प्राप्ति

ज्ञान शिक्षयेदल्प हि, भवेत्तन्न निरर्थकम्।
स्वल्पाक्षर महिम्नापि, यवेन जीवरक्षितं ॥१॥

भावार्थ — अल्प मात्र ज्ञान भी निरर्थक नहीं होता क्यों कि थोडेसे ज्ञानकी महिमासे भी यव नामक राजर्षिने अपने जीवकी रक्षा की थी।"

यव ऋषिकी कथा

विशोला नगरीमें यव नामक राजा था। उसके गर्दभिल्ल नामक पुत्र अणुल्लिका नामक पुत्रि और दीर्घपृष्ट नामक प्रधान था। एक दिन रात्रिके पिछले भागमें जग जाने पर राजाने विचार किया कि," मैंने पूर्व भवमें कोई ऐसा अद्भुत सुकृत किया होगा कि जिससे उस सुकृतके प्रभावसे आज मैं समुद्र पर्यंत समग्र पृथ्वीको स्वतंत्रता पूर्वक भोग

रहा हू । अत इस भवमें भी मुझे कोई ऐसा सुकृत्य करना चाहिये कि जिससे मेरा आगे आनेवाला भव भी सुधर सके।" ऐसा विचार प्रात काल अपने पुत्रको राज्य भार सौंप, उसे कई प्रकारकी हित शिक्षा दे, उपवनमें आये गुरुको वन्दना कर उनसे चारित्र ग्रहण किया। तत्पश्चात् वैयावचमें तत्पर रह तीव्र तप करने लगा और गुरु महाराजके साथ साथ विहार करने लगा। गुरुने उसे शास्त्राभ्यासके लिए बहुत कुछ कहा परन्तु वह कुछ भी न शिख शका और कहने लगा कि मैं वृद्ध हूँ इसलिये मुझसे अब पढा नहि जा सकता है,'

एकवार लाभका कारण जान गुरु महाराजने यवमुनि को उसके पुत्रको प्रबोध करनेके लिये विशाला नगरीको भेजा। गुरु वचनको पुष्पमाला सदृश शिरोधार्य कर वह वहांसे चल पडे। मार्गमें उन्होंने विचार किया कि, "जब मुझे किंचित् मात्र भी शास्त्रज्ञान नहीं है तो फिर पुत्र तथा अन्यको क्या उपदेश दूंगा।" इसप्रकार विचार कर ही रहा था कि समीपवर्ती खेतमें जो खानेकी इच्छासे आये हुए किन्तु भयसे चारों ओर देखते हुए गधेको कृपकने कहा कि –

ओहावसि वहावसि मम चेव निरिक्खसि।
लक्खिओ ते अभिप्पाओ जव भक्खेसि गद्दा ॥१॥

भावार्थ –"हे गर्दभ! तू उतावला उतावला आ रहा है और मेरी ओर देखता जाता है परन्तु मैं तेरे अभिप्राय को जानता हु कि तेरी जव भक्षणकी अभिलाषा है।"

इन वचनोंको सुन यवमुनि इसे अमोघ शस्त्रकी मार जान उसे महाविद्या सदृश स्मरण करता हुआ आगे बढा । कुछ दूर जाने पर किसी ग्रामके समीप कुछ बच्चे खेल रहे थे । उनमें से एक बच्चेने लकडीके टुकडेकी एक अणुल्लिका फेंकी । उसको अन्य बच्चोंने खोजा किन्तु जब वो उन्हें दिखाई नहीं पड़ी तो एक बच्चेने कहा कि,

अओ गया, तओ गया, जोइज्ज ति न दीसई ।
अम्ह न दिट्ठि तुम्हे न दिट्ठि, अगडे छुद्धा अणुल्लिकाय ।१।

भावार्थ –यहासे गई, वहासे गई, खोजने पर भी नहीं मिली हमने नहीं देखा तुमने नहि देखा परन्तु वह अणुल्लिका खड्डेमें पडी है ।"

यह गाथा भी यव मुनिने तत्काल कण्ठस्थ कर दी और उसका भी बारबार स्मरण करता हुआ वह और आगे बढा । कई दिनोंकी यात्रा कर वह विशाला नगरी जा पहुँचा वहा उसने एक कुभारके घर जाकर रात्रिविश्राम किया । उस कुभारके घरमें एक चूहा इधर उधर दौड रहा था जिसको देख कुभार बोला कि –

सुकुमालयकोमलमद्दलया, तुम्हे रत्तिहिंडणसीलनया ।
अम्ह पसाओ नत्थि ते भय, दिह पिट्ठाओ तुम्ह भय ॥१॥

भावार्थ –"कोमल अगवाले हे भद्र ! तेरा रात्रिमें चलनेका स्वभाव है । तुझे हमारी ओर लेश मात्र भी भय नहीं है किन्तु दीर्घपृष्ठेका तुझे भय है ।"

इस गाथाको भी यव मुनिने कंठस्थ कर लिया। फिर इन तीनों गाथाओंको कल्पवृक्ष, चिन्तामणि रत्न, और कामधेनु समान जान उनकी बारबार आवर्तन करने लगा। उस विशाला नगरीमें दीर्घपृष्ठ मंत्रीने यह सोच कर कि, 'गर्दभिल्ल राजाको किसी भी उपायसे मार उसके राज्य पर मेरे पुत्रको बिठा, उसका विवाह अणुल्लिका साथ करुगा।' उस राजाकी बहिन अणुल्लिकाको उसके घरके गुप्तगृहमें गुप्तरूपसे छिपा दिया। राजाके सुभटोंने उसको बहुत खोज की किन्तु उसका कहीं पता न चल सका। उस समय मंत्रीने यवमुनिको आया जान विचार कियाकि," ईस यव मुनिको तपके प्रभावसे ज्ञान प्राप्त हुआ होगा इसलिये यह तो मेरा सब कपट जानकर राजासे कह देगा और राजा मुझे मेरे कुटुम्ब सहित मार डालेगा ईसलिये मुझे पहिलेसे इसका भी कुछ उपाय करना उचित है। यह सोच यह रात्रिके समयमें ही गर्दभिल्ल राजाके पास गया। राजाने जब उसे बिना अवसर आनेका कारन पूछा तो उसने कहाकि, "चारित्रसे भ्रष्ट होकर आपके पिता यहां आये है और रात्रिको कुंभारके घर ठहरे है वे प्रातःकाल यहां आकर आपका राज्य ले लेंगे। "यह वचन सुन राजाने कहाकि, "यदि पिताजी मेरा यह राज्य वापस ले लेंगे तो मैं तो ईसे मेरा अहोभाग्य समजुंगा।" मंत्रीने कहा कि "आपको प्राप्त हुआ राज्य वापस लौटा देना अनुचित है।

---

१ सर्पका

कोणिक राजाकी तरह ऐसे पिताको तो मार डालना ही योग्य है।" इस प्रकार कह विविध प्रकारकी युक्तियोंसे कपटी मन्त्रीने राजाको समझाया। अत रात्रिमे ही पिताका वध करनेके लिए गर्दभिल्ल राजा हाथमे खड्ग ले कुभार के घर गया और घरके दरवाजेकी साधमेंसे पिताको देखने लगा। वे उसी समय यव मुनिने सहज बुद्धिसे प्रथम गाथा का उच्चारण किया जिसको सुन राजाने विचार कियाकि, "अहो! मेरे पिताने तो मेरा अभिप्राय जान लिया है। क्योंकि वह कह रहे है कि हे गधा! अर्थात् हे गर्दभिल्ल! तू यव अर्थात यव ऋषिको भक्षण करने की अभिलाषा रखता है।" इस प्रकार राजाने स्वबुद्धिसे उस गाथाका अर्थ किया और फिर विचारने लगा कि—

"इधर उधर देखते हुए मुझे मेरे पिताने ज्ञान द्वारा जान लिया परन्तु यदि सचमुच ज्ञानी होगा तो मेरी बहिन के समाचार भी अवश्य कह देगा।" इस प्रकार विचार कर ही रहा था कि उसी समय यव मुनिने दूसरी गाथाका उच्चारण किया जिससे सुन उसने उस दूसरी गाथाका यह अर्थ किया कि' "मैंने बहिन अणुल्लिका की सर्वत्र खोज की परन्तु उस अणुल्लिकाको किसीने गुप्तगृहमें छिपा दिया है" इस प्रकार अर्थ लगाकर फिर विचार करने लगा कि।" यदि अब मेरी बहिनको जिसने छिपाया हो उसका नाम भी प्रकाशित करदें तो बहुत ही अच्छा हो।" उसी समय मुनिने फिर-तीसरी गाथाका उच्चारण किया। जिसे सुन उसने उसका

यह अर्थ लगाया कि," तू कोमल है, रात्रिमें चलनेका तेरा स्वभाव है, तू हमसे डरता है परन्तु तुझे हमसे कोई भय नही है तुझे तो दीर्घपृष्ट नामक मन्त्रीसे भय रखना चाहिये।" ऐसा अर्थ विचार समस्त शंका दूर हो जाने वह दरवाजा खोल अन्दर आया और अपने ज्ञानी पिताको मारनेकी इच्छा वाले अपने आपको निन्दा करता हुआ गर्दभिल्ल अश्रुपात सहित अपने पिता मुनिको वन्दना कर अपना अपराध निवेदन कर क्षमा याचना की। यह सब सुन मुनि मौन रहा क्योंकि "मौनं सर्वार्थसाधकम्"

तत्पश्चात् राजा अपने घर लौट आया। रात्रिके व्यतीत होने पर प्रातःकालमें उसने अपने भटों (सिपाहीयों) से मन्त्री के घरकी तलाशी लीवा उसके गुप्त गृहसे अपनी बहिनको खोज निकाला। मन्त्रीको उसके कुटुम्ब सहित देश बाहर कर दिया और ज्ञानीकी प्रशंसा कर उसको नमस्कार कर उसके वचनानुसार धर्मका अंगिकार किया।

इस प्रकार पुरजन सहित अपने कुटुम्बको प्रतिबोधित कर यव राजर्षि गुरू समीप गये। गुरु महराज भी सर्व वृत्तान्त सुन विस्मय चकित हो गये। कि यव मुनि भी आलस्यका त्याग कर विनय सहित श्रुतका अभ्यास करने लगे। पढ़नेका फल प्रत्यक्ष देख, ज्ञानाभ्यास कर, तप तप अनुक्रमसे सिधायें।

अब इस दृष्टान्त का व्यतिरेक दृष्टान्त कहा जाता है —

येनाधीतं[१] श्रुतग्रंथं कर्णाघातेन यच्छ्रुतम् ।
स्वमतिकल्पनापूर्वं वदेत् स मौढ्यमश्नुते ॥१॥

भावार्थ – "जिसने श्रुतग्रंथका अभ्यास तो नहीं किया हो परन्तु मात्र कानोंसे श्रवण कर फिर अपनी मति कल्पनानुसार जवाब देता हो वो मूर्खपनको प्राप्त होता है ।"

इस विषयमें एक दृष्टान्त है कि–किसी गच्छके आचार्यने अपने आयुष्यका अन्त जान उपदेशसे कुछ सिद्धांत के और स्थूल समाचारीके ज्ञाता किसी साधुको आचार्यपद पर स्थापित किया । वह आचार्य आगमका ज्ञान न होने पर भी गुरुकी महिमासे प्रसिद्धिको प्राप्त हुआ । एकबार वो विहार करते करते पृथ्वीपुर नामक नगरमें गया । वहां के श्रावकोंने बडे उत्सवपूर्वक उनका पुरप्रवेश कराया । उस नगरमें पहिले कई जैनाचार्योंने राज्यसभामें अनेक परवादियोंको कईबार पराजित किया था । उन परवादियोंने फिरसे उनकी उन्नतिसे ईर्षावश पूर्वमें पराजित होनेपर भी फिरसे अपने महत्वकी हानिके भयसे इन नवीन आचार्यके शास्त्र सम्बन्धि ज्ञानकी परीक्षा करनेके लिए अपने वर्गसे एक सेवकको उनके पास भेजा । उसने वहां जाकर सूरिसे प्रश्न किया कि, 'हे भगवान ! पुद्गलके कितनी इन्द्रिय होती है ?' इसपर सिद्धान्त ज्ञान रहित सूरिने बहुत देर तक विचार किया तो किसी स्थलमें सुना हुआ उनको स्मरण आया कि, पुद्गल एक

१ सिद्धान्तका ।

समयमे लोकान्त तक जाता हैं। पचेन्द्रिय विना इतनी शक्ति किसीकी हो सकती है ?" ऐसा अपने मनमे निश्चय कर सिद्धान्तादिककी अपेक्षा बिना ही स्वमति कल्पनासे उसने उत्तर दिया कि, "हे भद्र! पुद्गलके पाच इन्द्रिय होती हैं।" ऐसा उत्तर सुन उसने यह विचार कीया कि, "जब इसे अपने शास्त्रका भी ज्ञान नहीं है तो फिर अन्य शास्त्रका ज्ञान तो कैसे हो सकता है ?" उसने परवादियोंसे जाकर यह सर्व हाल कह सुनाया जिससे उन्होंने नवीन आचार्यके ज्ञान का प्रमाण जान कर राजसभामें उसका पराभव किया। जिसके फलस्वरुप जैनधर्मकी बड़ी हानि हुई और कइ लोग धर्म भ्रष्ट हो गये। इससे संघने उन आचार्यको वहासे दूर देशमे भेज दिया। इस प्रकार कल्पवृत्तिमे दृष्टान्त कहा गया है।

ऐसे गुरु चारित्र ग्रहण करने पर भी और उपदेश देनेमे तत्पर होने पर भी शास्त्र सम्बन्धि ऐसा ज्ञान न होनेसे उत्सूत्रप्ररुपणा भी करते हैं और अपने आश्रितोंको उत्कट भव समुद्रमे डूबाते हैं। इसलिए ऐसे "अबहु श्रुत" को उत्सूत्र बोल जानेके भयसे धर्मका उपदेश देना भी योग्य नहीं है।

"इसप्रकार अनेक दृष्टान्तोंसे जानकर संसाररुपी शत्रु के विजयके लिए ज्ञानी गुरुके आश्रयसे हे विवेकी भव्य जीवों! तुम्हे प्रत्यक्षगुणवाले सिद्धान्तके विचारोंका आश्रय लेना चाहिये।"

[इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशप्रासादवृत्तौ पञ्चदशस्तम्भस्य चतुर्दशोधिकद्विशततम प्रबन्ध ॥२१४॥]

व्याख्यान २१५

ज्ञान—विराधनाका त्याग

जघन्योत्कृष्टभेदाभ्या, त्याज्या ज्ञानविराधना ।
ज्ञानस्य ज्ञानिना, भक्तिर्वृद्धि नेया च धर्मिभि ॥१॥

भावार्थ –धर्मिष्ट पुरुषोंको जघन्य तथा उत्कृष्ट भद द्वारा ज्ञानकी विराधनाका त्याग करना चाहिये, और ज्ञान तथा ज्ञानीकी भक्तिमें वृद्धि करना चाहिये ।"
ज्ञानकी जघन्य विराधना इस प्रकार है –

पुस्तक, पाटी, ठवणी रूमाल, (पुस्तक बधन), लेखनि, आदि ज्ञानके उपकरणोंको चरण आदि कनिष्ट अवयवासे स्पर्श करने, मुखके पास वस्त्र रखने बिना पढने, पढाने, और पुस्तकको काखमे रखने, आहार निहार तथा योग आदिके समय ज्ञानके उच्चार करने आदिसे महान् ज्ञानावरणीय कर्मका बध होता है । पुस्तक या उसके पत्ते अथवा लिखे हुए कागज आदि पासमें हो और लघुशंका आदि की जाय तो उससे भी महान् ज्ञानावरणीय कर्मका बन्धन होता है इसलिए इसे महा आशातना समझना चाहिये । नवकारवाली, पुस्तक आदि पूज्य उपकरणके साथ गृहपति तथा

चरवलाका स्पर्श नहीं करना चाहिये । मुहपत्ति थूक आदि से उच्छिष्ट होती है, इसलिये उसको पुस्तकके साथ तथा स्थापनाचार्यके साथ नहीं रखना चाहिये, अलग ही रखना चाहिये । पुस्तक बांधनेका रूमाल भी केवल पृथ्वी पर नहीं रखना चाहिये अन्यथा महान् आशातना होती है और ज्ञानावरणीय कर्मका बंधन होता है । लिखे हुए कागज के टुकड़े भी यदि उच्छिष्ट भूमि पर पड़े हों तो उनको उठाकर उत्तम उच्चस्थान पर पैरोंसे कुचले न जा सके वहां रखदेना चाहिये । ऐसा करनेसे ज्ञानकी वृद्धि होती है । इसकी महीमा आधुनिक समयमें भी प्रत्यक्ष देखी गई है । लिखित पत्रोंको किसीभी कारणसे नहीं बेचना चाहिये । लोभवश लिखित पत्र कूटा कर उसकी कोई वस्तु बनानेके लिए भी नहीं देना चाहिये तथा दिवालीके पर्वमें गंधक सोरा आदि भरकर फटाके, फूलझड़ी, टट्टा आदि जो बनाये जाते हैं उनके उपयोगके लिए भी नहीं देना चाहिये । क्यों कि उनमें सब अक्षर जलकर भस्म हो जाते हैं और ऐसा करनेसे महान् ज्ञानावरणीय कर्मका बंध होता है । ज्ञानकी विराधनाके उपरोक्त कारणोंके अतिरिक्त अन्य प्रकार विवेकी पुरुषोंको अपने आप समज लेना चाहिये ।

अब ज्ञानकी उत्कृष्ट विराधना बतलाई जाती है –

१. श्रीमत् जिनागमका सूत्र, उसका अर्थ तथा दोनोंका वितथकरण-उत्सूत्र भाषण मरीचि, जमालि, लक्ष्मणा साध्वी

तथा सावद्याचार्य आदिकी तरह नहीं करना चाहिये। ऐसा करनेसे महान् ज्ञानावरणीय कर्मका बन्ध होता है —

ज्ञान तथा ज्ञानीकी भक्ति इस प्रकार करनी चाहिये — जिनआगम तथा जिनेश्वरादिके चरित्रवाले पुस्तक आदि न्याय से मिले द्रव्य द्वारा अच्छे कागज पर विशुद्ध अक्षरोंसे लिख वाना तथा गीतार्थ मुनिके पास पढ़ना चाहिये। उनके प्रारम्भमें प्रसंग उपर बड़ा उत्सव करना चाहिये। अहर्निश पूजादिक, बहुमान पूर्वक गुरुका व्याख्यान श्रवण करना, कि जिससे अन्य भव्य जीवोंको बोध दायक हो। ज्ञानके पुस्तक पढ़ने वाले तथा पढ़ाने वालेको अन्न, वस्त्र, आदि उपष्टम देना चाहिये।

ऐसा कहा जाता है कि—दुषम कालके वशसे जब बारह वर्षका दुष्काल पड़ा तब सिद्धान्तको विच्छिन्न प्राय हुए जानकर उसका नितान्त विच्छेद होगा ऐसा विचार कर नागार्जुन, स्कन्दिल आदि आचार्यने एकत्रित होकर उनके पुस्तक लिखवाये अतः पुस्तकें लिखवानी चाहिये और उत्तम वस्त्र आदिसे उनकी पूजा करनी चाहिये।

श्रीधर्मघोषसूरिके उपदेशसे मंत्री पेथड़ने उनके मुखसे एकादशांगी सुनना आरम्भ किया, उसके पांचवें अंगमें जहां जहां, "गोयमा (हे गौतम!) ऐसा पद आता था वहां उसने सुवर्ण मोहर से उसकी पूजा की, इस प्रकार प्रत्येक प्रश्न पर सोनेकी मोहर रखनेसे छत्तीस हजार सोनेकी

मोहरे एकत्रित हो गई। उसने यो द्रव्य खर्च कर समग्र आगमके पुस्तक लिखवा, उनके लिए रेशमी वस्त्रके बधन बनवाकर उनसे भरूच, सुरगिरी, माडवगढ़, अर्बुदाचल आदि स्थानोंमें सात ज्ञानके भडार खोले।

श्री कुमारपाल राजाने सातसो लेखकोंसे छ लाख और छत्तीस हजार आगमकी सात प्रत सुनहरी अक्षरोंसे लिखवाई, और श्रीहेमाचार्य रचित साडे तीन करोड़ श्लोककी इक्कीस प्रत लिखवा कर इक्कीस ज्ञानके भडार खोले। कहा है कि —

कालानुभावा मतिमाद्याच्चाधुना पुस्तकमतरेण '
न स्यादत पुस्तकलेखन हि श्राद्धस्य युक्ततितरा विधातुम्॥१॥

भावार्थ –वर्तमान समयमें कालके अनुभावसे तथा मतिकी मन्दतासे विना पुस्तकके ज्ञान नहीं रह सकता है इसलिए श्रावकोंको निरन्तर पुस्तके लिखाते रहना अत्यन्त योग्य है।"

जिनप्रतिमा करानेसे भी सिद्धान्तोंके लिखाने तथा उनके श्रवण करनेमें बडा पुण्य होता है, क्यों कि ज्ञानके अभाव में प्रतिमाका महत्व कैसे जाना जा सकता है? इसलिए ज्ञान के भडार धर्मकी दानशालाके समान शोभा पाते हैं। गुरु विना शिष्यकी तरह पुस्तकों विना विद्वता भी नहीं आ सकती है।" आदि उपदेश सुन वस्तुपाल मन्त्रीने अढारह करोड द्रव्य खर्च कर तीन ज्ञान भण्डार लिखाये।

थरादके सघवी आभु नामक श्रेष्ठीने तीन करोड द्रव्य खर्चकर सर्व सूत्रोंकी एक एक प्रत सुनहरी अक्षरों से व अन्य ग्रन्थोंकी एक एक प्रत स्याहीसे लिखवाई थी। कहा है कि —

न ते नरा दुर्गतिमाप्नुवन्ति न मूकतां नैव जडस्वभावम् ।
नैवान्धतां बुद्धिविहीनतां च ये लेखयन्त्यागमपुस्तकानि ॥१॥

भावार्थ –"जो मनुष्य सिद्धान्तकी पुस्तकें लिखवाते है वे दुर्गति, मूकपन, जड़ता अधता, और बुद्धिरहितपन को प्राप्त नही होते है ।

अपितु किसी प्रकारसे जिनागमका (श्रुत ज्ञानका) मात्र ज्ञान करनेसे भी अतिशायिपन दिखाई देता है इस विषयमें कहा है कि "श्रुतके उपयोगमें वर्तते छद्मस्थ मुनि द्वारा लाया हुआ आहार कदाचित् अशुद्ध होतो भी केवली उपयोग करते है, क्योंकि एसा न करनेसे श्रुतका अप्रमाणपन होता है ।"

अत सम्यक् प्रकारसे सूत्रार्थका उपयोग पूर्वक निरन्तर सर्व अनुष्ठान करने चाहिये । उपयोग रहित क्रिया द्रव्य क्रियापनको प्राप्त होती हैं ।

ज्ञानकी विराधनासे बधे हुए पापकर्म ज्ञान पचमी के आराधन करनेसे नष्ट हो जाते है ।

कहा है कि –

उत्सूत्रजल्पाच्छ्रुति शब्दव्यत्ययात् क्रोधादनाभोग
हठाच्च हास्यत*

बद्धानि यज्ज्ञानविराधनोद्भवात् कर्माणि याति
श्रुतपचमीव्रतात् ॥१॥

भावार्थ –उत्सूत्रकी प्ररूपणासे, सूत्रका अर्थ विपरीत करनेसे, क्रोधसे, अनाभोगसे, हठसे, और हास्यसे ज्ञानकी विराधना द्वारा बधे कर्म ज्ञान पचमीके व्रतसे नास हो जाता है ।"

इसका तात्पर्य गुणमजरि और वरदत्तके दृष्टान्तसे स्पष्ट हो जाता है ।

- गुणमजरी और वरदत्तकी कथा

इस भरतक्षेत्रमे पद्मपुर नामक नगर है जिसमे अजीतसेन नामक राजा राज्य करता था । उसके शिलव्रत धारि अति प्रिय यशोमति नामक रानी थी । उसके वरदत्त नामक एक पुत्र हुआ । उसने उसे आठ वर्षके होने पर पढनेके लिए एक अध्यापकके पास रक्खा वहा वह सदैव पढने लगा किन्तु उसको एक भी अक्षर स्मरण न रह सका । उसके युवा होने पर पूर्व कर्मके उदयसे उसे कुष्टकी व्याधीने आदवाया जिससे उसका शरीर क्षीण होने लगा ।

उसी नगरमें सात करोड़ सोमेका मोहरोंका अधिपती सिंहदास नामक श्रेष्ठि रहता था जिसके कर्पूरतिलका नामक पत्नी थी। उनकी पुत्री गुणमंजरी नामक बाल्य वयसे ही रोगी और मूगी थी। उसके रोगकी निवृत्ति के लिए श्रेष्ठीने अनेकों उपाय किये किन्तु वे सब ऊसर भूमिमें वृष्टि होने सदृश, खल पुरुषके वचन सदृश और शरद् ऋतुकी मेघगर्जना सदृश निष्फल हो गये। वह सोलह वर्षकी हो गई किसीने उसके साथ लग्न नहीं किये।

एकबार उस नगरमें चारों ज्ञानके धारक, बारहसो छत्तीसगुण निधि और धैर्यद्वारा मेरू पर्वतका भी तिरस्कार करने वाले विजयसेन गुरू पधारे। वनपालके मुहसे उनका आना सुन उसको पारितोषिक देकर पुरवासियों सहित राजा गुरूकी वन्दना करने गया। गुरूकी विधि पूर्वक वन्दना कर नमन कर उनके पास बैठ ईस प्रकार देशना सुनि कि —

क्षपयेन्नारक कर्म, यद्दीर्घिर्षकोटिभि'
यत्तदुच्छ्वासमात्रेण ज्ञानयुक्तस्त्रिगुप्तिवान् ॥१॥

भावार्थ —"नारकोंके जीव जितने कर्मों को कई करोड़ों वर्षोंमें खपाते है उतने कर्म [1]त्रिगुप्तिमान् ज्ञानी मात्र एक श्वासोच्छ्वासमें खपा देता। "अपितु" छट्ठ अट्ठम दशमक्त, द्वादशभक्त आदिका तप करने वाले जीव के आत्माकी जितनी शुद्धि होती है। उससे भी अनेक गुनि शुद्धि

[1] मन वचन और कायाकी गुप्ति।

प्रत्येक दिन भोजन करने वाले एक ज्ञानिकी आत्माको होती है यह ज्ञान पांच प्रकारका कहा गया है। जिसमे भी श्रुतज्ञान स्वय तथा दूसरेके लिए उपकारी होनेसे श्रेष्ठ है। अन्य चार ज्ञान मु गे है अर्थात् वे अपने निज स्वरूपका वर्णन करनेमे भी असमर्थ है जब कि श्रुतज्ञान तो स्वयको तथा अन्यको प्रकाश करनेमे दिपक सदृश समर्थ है। अपितु श्रुतज्ञान किसीको दिया भी जा सकता है। और किसीसे लिया भी जा सकता है। अन्य चार ज्ञान न किसीको दिये जा सकते है। न किसी अन्यसे लिए जा सकते है। तीर्थंकर नाम करम भी धर्मोपदेश द्वारा निजराको प्राप्त होता है इसलिये अध्ययन श्रवण आदि से निरन्तर श्रुतज्ञानकी आराधनाके लिये प्रयत्न करते रहना चाहिये। जो अज्ञानी जीव मन, वचन, और कायाके योग से ज्ञानकी आशातना करते है व शरीरसे रोगी, सून्य मनवाले तथा मूगे आदि होते हैं और अनेक भवों में परिभ्रमण करते है। कहा भी हैं कि —

अज्ञानतिमिरग्रस्ता, विषयामिषलपटा. ।
भ्रमति शतशो जीवा, नानायोनिषु दु खिता ॥१॥

भावार्थ —अज्ञानरूपी अधकारसे ग्रस्त और विषयरूपी आमिष (मास) मे लपट सेकड़ो जीव नाना प्रकारकी योनीमें दुखित होकर परिभ्रमण करते हैं

धर्मदेशना सुनकर सिहदासने विज्ञप्ति की कि "हे भगवान्! मेरि पुत्रके शरीरमें किस कर्मके कारण ये सब

च्याधियें हुई हैं।" सूरि महाराजने कहा कि, "हे श्रेष्ठि! तेरी पुत्री द्वारा पूर्वभवमें बांधे हुए कर्मोंका हाल सुनें।

धातकी खण्डमें खेटकपुर नामक नगरमें जिनदेव नामक एक श्रेष्ठी रहता था। उसके सुन्दरी नामक प्राण प्रिया थी। जिसने पांच पुत्र तथा चार पुत्रियोंको जन्म दिया था। श्रेष्ठीने बड़े उत्सवके साथ पांचों पुत्रोंको अध्यापकके पास रक्खे परन्तु वे चपलता, आलस्य और अविनय करते हुए वहां रहने लगे। कहा है कि –

आरोग्यबुद्धिविनयोद्यमशास्त्ररागा,
पचान्तरा पठनसिद्धिकरा नराणाम्।
आचार्यपुस्तकनिवासमहायभिक्षा॥
बाह्याश्च पंच पठनं परिवर्धयन्ति॥१॥

भावार्थ –"आरोग्य, बुद्धि, विनय, उद्यम और शास्त्र पर प्रीति–ये पांच अभ्यन्तर कारण मनुष्यके अभ्यासकी सिद्धि करने वाले होते हैं और अध्यापक पुस्तक, निवास, सहाय तथा खाने-पीनेकी सुविधा इन पांच बाह्य कारणोंसे विद्याकी वृद्धि होती है।"

एक बार उन उन्मत्त बालकोंको पंडितने शिक्षा दी और "कचाग्रे वसति विद्या" अर्थात् लकड़ीके अग्र भागमें विद्या बसती है" ऐसा विचार कर उनको लकड़ीसे पीटा।

वे रोते रोते घर पहुचे और लकड़ी द्वारा शरीर पर लगे क्षतको उनकी माताको दिखलाया। जिन्हे देख उनकी माता सुन्दरीने कहा कि, "हे पुत्रो! पढ़नेमें क्या विशेषता है? जबकि जन्म, जरा और मृत्यु तो पढ़े तथा अपढ़ किसीको नहीं छोडती" कहा भी है कि –

पठितेनापि मर्तव्य, शठेनापि तथैव च।
उभयोर्मरण दृष्ट्वा, कठशोप करोति क ॥१०॥

भावार्थ –"पढ़ा हुआ मनुष्य भी मृत्युको प्राप्त होता है और मूर्ख भी मृत्युको प्राप्त होता है। उन दोनोंकी एक समान मृत्यु देख कर ऐसा कौन पुरुष होगा जो व्यर्थमे अपने कठका शोषण करेगा?।"

यस्यास्ति वित्त, स नर कुलीन स पडित, स श्रुतिमान् गुणज्ञ
स एव वक्ता स च दर्शनीय'सर्वेगुणा.काचनमाश्रयन्ते ॥११॥

भावार्थ –जिसके पास द्रव्य है वह पुरुष कुलीन है, पडित है शास्त्रका ज्ञाता है, गुणज्ञ है, वक्ता है और दर्शनीय है अर्थात् सर्वगुण एक कचनके ही आश्रिभूत हैं।"

अपितु धनवान् महा मूर्ख मनुष्यके पास भी पडित दैन्य वचन बोलते है अपितु पडित बहुधा निर्धन ही होते है इसलिए हे पुत्रों! तुम्हारी मूर्खता ही श्रेष्ठ है

इसलिये अब आजसे तुमको पढ़ने नही जाना चाहिये। कदाच तुम्हारा पडित तुमको बुलाने आये

वो तुम दूरसे ही उस पर पत्थरोंका प्रहार करना और उसे तुम्हे मारनेका सब फल एक ही समयमे बतला देना ऐसी शिक्षा दे पुत्र परके राग और ज्ञानके द्वेपसे उसने लेखनी पाटी, पुस्तक आदि सबको अग्निमे डाल जला दिया। एक दिन यह हाल जान श्रेष्टीने उसकी स्त्रीसे कहा कि "हे भद्रे! तूने ऐसी मूर्खतापूर्ण चेष्टा क्यों की? इस पाँचो मूर्ख पुत्रोका विवाह तथा उद्धार कैसे होगा?" कहा है कि --

क्षण रक्ता विरक्ताश्च, क्षण सर्वेषु वस्तुषु।
अज्ञानेनैव कुर्वन्ति प्राणिन कपिचापलम्॥९॥

भावार्थ — क्षणभरमे सर्व वस्तुओं पर आशक्ति और क्षणभरमें विरक्ति, ऐसी सदृश चपलता प्राणी अज्ञान द्वारा ही करता है।" अपितु

माता शत्रु पिता वैरी पुत्रा याभ्या न पाठिता,
सभामध्ये न शोभन्ते, हंसमध्ये बका यथा॥१०॥

भावार्थ — जिन्होने अपने बालकोंको नहीं पढ़ाया वे माता पिता उनके पुत्रोंके वैरी और शत्रु हैं, क्यों कि हंसो में बगुले सदृश वे अज्ञानी बालक विद्वानोंकी सभामें शोभा नहीं देते।"

यह बात सुन सुन्दरीने हसकर कहा कि "तुमने पढित होकर क्या किया? क्या तुमने जगतका दारिद्र दूर कर दिया? शेष सुखतो पुण्यसे ही प्राप्त होते हैं पढ़ने पढ़ाने के अभाव

पाच वर्ष और पाच महिने पयन्त करना पडेगा। उस तपके दिन दोनो समय याने प्रात एव साय प्रतिक्रमण करना, त्रिकाल देववन्दन करना, तथा उपवास करके सम्पूर्ण पौषध व्रत करना और पाच मूल भेद तथा इकावन उत्तर भेदके नाम पूर्वक इकावन प्रदक्षिणा करना तथा इकावन खमासमण देना और उस दिन नया शास्त्र पढ़ना पढाना तथा श्रवण करना। कहा भी है कि —

अपूर्वज्ञानग्रहण महती कर्मनिर्जरा।
सम्यग्दर्शननैर्मल्यात् कृत्वा तत्त्वप्रबोधन ॥१॥

भावार्थ —अपूर्व ज्ञान ग्रहण करनेसे महान कर्म निर्जरा होती है और सम्यक् दर्शनकी निर्मलता होनेसे तत्त्व का भी बोध होता है।

ज्ञान पचमीके दिन यदि पोसह नहीं किया हो तो पाट पर पुस्तक की स्थापना कर उसकी दाहिनी और पाच बत्तियोंका दिपक जलाना तथा सन्मुख पाच स्वस्तिक (साथीया) बनाना, ज्ञान भडारोंकी पूजा करना, ज्ञान द्रव्यकी वृद्धि करना, और "ॐ—ह्रीं नमो नाणस्स" ईसमत्र द्वारा दो हजार जाप करना। ईस प्रकार कदाच प्रतिमास न कर सकेतो जीवन पर्यन्तकार्तिक शुक्ला पचमीको तो अवश्य इस प्रकार ज्ञानका आराधना करनी चाहिये। अथवा उस दिन जिनेश्वर के पास और पुस्तकके समीप चैत्यवन्दन कर ज्ञानस्तव पढ़"

१ वीस नोकरवाली

मतिज्ञानाराधनार्थ करेमि काउस्सग्ग ऐसा कह वंदण० और अन्नथ्य० कह एक नवकारका काउस्सग करना चाहिये। फिर नमोऽर्हत्० कह निम्नस्थ काव्य गंभीर स्वरसे बोलना चाहिये

अष्टाविंशतिभेदभिन्नगदितं ज्ञानं शुभाय मति
सप्रज्ञामिनिबोधिकं श्रुतनिधे र्हेतुश्च बुद्धिप्रभे।
पर्याया कथिता इमे चतुर्विधा ज्ञानस्य चैकार्थिनं
सम्यग्दर्शनिसत्क्माप्तकथितं वंदामि तद्भावत ॥१०॥

भावार्थ –"प्रथम मतिज्ञान अठाईस प्रकारका बतलाया गया है, वह शुभकारी है, चार प्रकारकी प्रज्ञा सहित है, अभिनिबोधिक है, श्रुतज्ञानका हेतु है। बुद्धि, प्रभा आदि इसके अनेक प्रकारके पर्याय कहे गये हैं। यह ज्ञान समकित धारीको होता है। ऐसे तीर्थंकर द्वारा भाषित मतिज्ञानको मैं भावसे वन्दना करता हूँ।"

फिर चैत्यवन्दन आदि पूर्वमें कहे अनुसार करके श्रुतज्ञानाराधनार्थं करेमि काउस्सग्ग कह वन्दण० अन्नथ्थ कह एक नवकारका काउस्सग कर निचे लिखे काव्यका पाठ करना चाहिये।

अन्यज्ज्ञानचतुष्टय स्वविषय नैवाभिधातुं क्षम।
श्रीमत्केवलिनोऽपि वर्णनिकरज्ञानेन सत्त्वं जगुः।
स्पष्टं स्वोरपरप्रबोधनविधौ सम्यक् श्रुतं सूर्यव-
द्भेदा पूर्वमिता श्रुतस्य गणिभिर्वंद्या स्तुवे तान्मुदा ॥११॥

भावार्थ – "श्रुतज्ञानके अतिरिक्त अन्य चारों ज्ञान स्व विषयका निरूपण करनेमें असमर्थ हैं। श्रीमान् केवली भी वर्ण समुदायके ज्ञान द्वारा ही तत्वकी घोषणा करते है। अपितु सम्यग् श्रुतज्ञान ही सूर्य सदृश स्व तथा परको बोध करनेमें स्पष्ट है। उस ज्ञानके चौदह भेद हैं और उसको गणधर वन्दना करते हैं। ऐसे श्रुत ज्ञानकी मैं भी हर्ष पूर्वक स्तुति करता हूँ।

फिर तीसरा चैत्यवन्दन करके "अवधि ज्ञानाराधनार्थं करेमि काउस्सग" आदि पूर्वोक्त प्रकारसे वह काउसग पाल कर निचे लिखा काव्य पढ —

अन्व तत्पनकावगाहनसम चासख्यलोकाश्रम
ज्ञान ग्यादवधेश्च रुपिविषय सम्यग्दशा तत्क्षमम्

दगादौ भवप्रात्मिज नपु तथा तिर्यक्षु भावोद्भवम्
षड् भेदा' प्रभुमिथ यस्य कथिता ज्ञान भजेनतत्सदा ॥३॥

भावार्थ – "तीसरे अवधिज्ञानकी अवगाहना जघन्य पनक जितनी हैं और उत्कृष्ट असख्य लोकाकाश प्रमाण है, वह ज्ञान रूपी द्रव्यको जान सकता है, सम्यग्दृष्टि जीव के लिए शुभकारी होती है। वह देव तथा नारकीको भव प्रत्यय होता है और मनुष्य तथा तिर्यचको भावसे अर्थात् गुण प्रत्यय उत्पन्न होती है। प्रभुने इसके छ भेद बतलाये हैं ऐसे अवधि ज्ञानकी मैं निरन्तर उपासना करता हू।"

फिर चोथा चैन्यवन्दन कर "मन पयव ज्ञानाराधनार्थं करेमि काउसग्ग" ऐसा बोल शेष सब पूर्वोक्त प्रकारसे कह निचे लिखा काव्य पढे:--

साधूनामप्रमादतो गुणरता तूर्यं मन पर्यव
ज्ञान तद्द्विविध त्वनि द्रियभव तत्स्वात्मक दहिनाम्
चेतो द्र्यनिदेशवस्तुविषय द्वीपे च सार्धद्विक
सद्ज्ञानगुणाचितान् व्रतधरान् वंदे सुयोग मुदा ॥४॥

भावार्थ -"अप्रमत्त गुणस्थानमे रह साधुओंको चोथा मन पयवज्ञान होता है उसक दो भद है, वह इन्द्रियके विषय वाला न होकर आत्मविषयी है। अढीद्वीपम रहने वाले प्राणियोंके चितव्यमे रही सब वस्तुके विषयको जानते हैं। इस ज्ञानके धारक गुणी मुनियोंकी मैं हप पूवक भावसे वन्दना करता हू।"

फिर पाचवा चैन्यवन्दन कर "केवलज्ञानाराधनार्थं करेमि काउस्सग्ग" आदि सब पूर्वोक्त प्रकारसे कह निचे लिखा काव्य पढे -

निर्भेद विशद करामलकवज्ज्ञेय परिच्छेदकं
लोकालोकविभासक चरमचिन्नात्य व्रजेत्यात्मत ।
निद्रास्वप्नसुजागरातिगदश तूर्या दशा सगत
वंदे कार्तिकपचमीश्रुतदिने सौभाग्यलक्ष्म्यास्पदम् ॥५॥

भावार्थ –" अन्तिम (पाचवा) केवलज्ञान है। वह एक ही प्रकारका है। करामलकके समान निर्मल है। वस्तुओं का परिच्छेद करने वाला है। लोक तथा अलोकको प्रकाशित करने वाला है। ज्ञानी आत्माको किसीभी समय प्राप्त हो जाने पर फिर कदापि विलग नहीं होता, और जो ज्ञान निद्रा, स्वप्न और जागृत इन तीनों दिशाओंको लाघ कर उजागर दिशाको प्राप्त हो गया है। ऐसे सौभाग्य लक्ष्मीके स्थान रुप केवलज्ञानको मैं कार्तिक शुक्ला पचमीके दिन वन्दना करता हूँ।" इस प्रकार पाचों ज्ञानकी आराधनाकी विधि कहि गई है।

इस प्रकार ६४ मास तक आराधना करने पर जब तप पूर्ण हो तब चैत्य तथा ज्ञान, दर्शन और चारित्रके प्रत्येक उपकरण पाच पाच रखकर उद्यापन[1] करना चाहिये। कहा है कि –

उद्यापन यत्तपम समर्थने तच्चैत्यमौलौ कलशाधिरोपणम्।
फलोपरोपोऽक्षतपात्रमस्तके, ताम्बूलदानं कृतभोजनोपरि ॥१॥

भावार्थ – तपके समर्थनके लिये उद्यापन करना उतना ही श्रेयष्कर है जितना कि चैत्यके शिखर पर कलश चढ़ाना अक्षतपात्र पर फल चढाना और भोजन कराकर तांबूल भेट करना।"

---

१ उजमणा

ऐसा गुरुका उपदेश सुन गुणमञ्जरीने विधि पूर्वक ज्ञान पञ्चमीका तप अङ्गीकार किया।

तत्पश्चात् अजीतसेन राजाने सूरिसे प्रश्न किया कि, "हे स्वामी! मेरे पुत्र वरदत्तको किस कारणसे अभ्यास करने पर भी कुछ नहीं आता है?" गुरुने कहा कि उसका पूर्व भव सुनिये –

इस भरतक्षेत्रमें श्रीपुर नामक नगरमें वसु नामक एक श्रेष्ठी रहता था। उसके वसुसार और वसुदेव नामक दो पुत्र थे, वे एक दिन क्रिड़ा करनेको वनमें गये। जहां गुरुके मुखसे धर्म देशना सुन, घर आ पिताकी अनुमति ले उन दोनो भाइयोंने चारित्र ग्रहण किया। उनमेंसे छोटा भाई वसुदेव मुनि सिद्धान्त रूपी समुद्रका पारगामी हुआ और अनुक्रमसे उसने आचार्यपद प्राप्त किया। वह सदैव पांचसो साधुओं को उपदेश देता था। एकदिन जब वे आचार्य संथारेमें सोते थे तब किसी मुनिने आगमका अर्थ पूछा। उसके जाने पश्चात् दूसरा मुनि आया, वह भी अर्थ पूछकर चला गया। इस प्रकार एकके बाद दूसरे कई साधु आ आकर अर्थ पूछ पूछ कर चले गये। फिर आचार्यको कुछ निद्रा आई कि उसी समय किसी अन्य साधुने आकर पूछा कि, "हे पूज्य! इसके आगेका वाक्य कह कर उसका अर्थ समझाइये।" उस समय सूरिने मनमें विचार किया कि, "अहो! मेरा बड़ा भाइ तो सुखसे निद्रा निकालता है, स्वेच्छासे भोजन

करता है और स्वेच्छासे बोलता है यदि ऐसा सुख किसीभी प्रकारसे मुजे भी मिल जाये तो बड़ा अच्छा हो। क्यो कि –

मूर्खत्व हि सखे ममापि रुचित तस्मिन् यदष्टौ गुणा,
निश्चिन्तो बहुभोजनोऽत्रपमना नक्त दिवाशायक.
कार्याकार्यविचारणेऽन्धबधिरो मानापमाने समः
प्रायेणामयवर्जितो दृढवपु मूर्ख सुख जीवति ॥१॥

भावार्थ –"हे मित्र ! मूर्खपन मुजे भी रुचीकर है क्योंकि उसमे आठ गुण होते हैं –१ प्रथम तो मूर्खको कोई भी चिन्ता नहीं होती, २ बहुत भोजन करता है, ३ लज्जा रहित होता है, ४ रात्रि, दिन सोनेका काफी समय मिलता है, ५ कर्तव्य और अकर्तव्य के विचार मे अध और बधिर होता है, ६ मान तथा अपमानमे समान होता है, ७ बहुधा व्याधि रहित होता है और ८ शरीर पुष्ट होता है अत मूर्ख मनुष्य सुख-पूर्वक जीवन व्यतीत करता है।"

अत मुजे आजसे ही पढने पढानेका कार्य बन्द कर देना चाहिये। इस प्रकार विचार कर उस आचार्यने पुण्य रूपी अमृतका घड़ा फोड़ दिया और पापका घड़ा भर बारह दिन तक मौन रहे। फिर वो बिना पापकी आलोचना किये ही रौद्रध्यान द्वारा मृत्युको प्राप्त हो गये। वे तेरे यही इस पुत्र के रूपमे उत्पन्न हुए हैं, और पूर्व सचित कर्मसे

सूरि तथा कोढी बने है, उन सूरिका बड़ा भाई मरकर मान स सरोवरमें हम हुआ है ।"

इस प्रकार गुरू महाराज द्वारा बताया हुआ पूर्व भव सुननेसे वरदत्तको जातिस्मरण ज्ञान हो आया, इसलिये उसने कहा कि, "अहो ! भगवतका वचन अक्षरे अक्षर सत्य है, अहो ! कैसा ज्ञान ?" फिर राजाने कहाकि, हे भगवान् ! मेरे इस पुत्रका रोग कैसे जायेगा ?" गुरूने कहा कि 'पूर्वोक्तानुसार यथाशक्ति पंचमी तप करनेसे सब कुछ ठिक हो जायगा !" फिर कुमारने भी गुणमंजरी सदृश विधि पूर्वक तप अंगीकार किया जिसकी आराधना से उन दोनोंकी सब व्याधियोंका अंत हो गया ।

वरदत्त कुमारने स्वयंवरसे एक हजार कन्याओंके साथ विवाह किया और अन्तमें राज्य सुख भोग अपने पुत्रको राज्य सौंप दीक्षा ग्रहण की ।

गुणमंजरीको भी उत्तम मार्ग प्राप्त हो जानेसे उसका पाणिग्रहण भी जिनचन्द्र नामक एक श्रेष्ठी पुत्रके साथ हो गया । उन्होंने बहुत काल तक संसार सुख भोग विधि पूर्वक तपका उद्यापन कर दीक्षा ग्रहण की । अनुक्रमसे वरदत्त और गुणमंजरी दोनों काल कर वैजयन्त नामक अनुत्तर विमानमें उत्तम देवता हुए ।

आयुष्यके क्षय होनेपर वैजयंत विमानसे चव कर वरदत्तका जीव जंबूद्वीपके महाविदेह क्षेत्रमें पुंडरीकिणी नगरीमें

अमरसेन राजाकी भार्या गुणवतीकी कुक्षिमें सूरसेन नामक पुत्रपनसे उत्पन्न हुआ। युवावस्था आनेपर उसने सो राजकन्याओंके साथ विवाह किया। उसके पिता उसे राज्य सौंप परलोक सिधार गये। एकबार उस नगरीके समीपवृत्ति उद्यानमें श्री सीमधर स्वामी समवसर्ये। यह सुन सूरसेन राजा उनके पास गया, और विधि पूर्वक भगवानको वन्दना कर देशना सुनि। देशनामें भगवानने फरमाया कि, "हे भव्य प्राणियो! सौभाग्य पचमी अर्थात् ज्ञान पचमीका तप वरदत्त सदृश करना चाहिये।" यह सुन सूरसेन राजाने पूछाकि, "हे भगवन्! आपने जिसकी प्रशसा की वो वरदत्त कौन था? तब भगवानने उसका सब वृतान्त कह सुनाया जिसे सुन राजा अत्यन्त हर्षित हुआ और उसने उस भवमे भी अनेकों पुरवासियों सहित ज्ञान पचमीका व्रत अगीकार किया। दस हजार वर्ष पर्यन्त राज्यका प्रतिपालन कर उसके पुत्रको राज्य सौंप उसने सीमधर स्वामीसे चारित्र ग्रहण किया। वे राजर्षि एक हजार वर्ष तक विधि पूर्वक चारित्र पाल केवलज्ञान प्राप्तकर मोक्ष गये।

गुणमजरीका जीव वैजयन्त विमानसे चव कर जम्बूद्वीपके महाविदेह क्षेत्रमें रमणी नामक विजयमें अमरसिंह राजाकी पत्नी अमरवतीके गर्भमे पुत्र रुपसे उत्पन्न हुआ। प्रसव होने पर पिताने उसका नाम सुग्रीव रक्खा। उसके बीस वर्षके होने पर उसके पिताने उसे राज्य सौंप दीक्षा ग्रहण की।

सुग्रीव राजाने अनेक राजकन्याओंके साथ पाणि ग्रहण किया। उसके चोरासी हजार पुत्र हुए। फिर उसने पुत्रको राज्य दे दीक्षा ग्रहण की। यथाविधि चारित्र पालन करने व तप करनेसे उसे केवलज्ञान प्राप्त हो गया। देशना मे सर्वत्र अपना चरित्र सुनाने लगा। इस प्रकार वे राजर्षि एक लाख पूर्वतक चारित्रका सेवन कर अतमें परम ज्ञान मय, चिद्रूप, चिदानद और चित घन ऐसे मोक्षको प्राप्त हुए।

"जिस ज्ञानपचमीकि आराधन करनेसे वरदत्त तथा गुणमजरीको दोना प्रकारकी सौभाग्य लक्ष्मी प्राप्त हुई उस ज्ञानपचमी जैसा अन्य कोई भी दिन ज्ञानकी वृद्धिके लिए श्रेष्ठ नहीं है ईसलिए आत्माके हितके इच्छुक पुरुषोंको विधि पूर्वक ज्ञानपचमीकी आराधना करनी चाहिये।"

[इत्य द्दिनपरिमितोपदेशप्रासादवृत्तौ पंचदशमस्त भम्य पंचदशाधिकद्विशततम प्रबध,]

व्याख्यान २१६

अभयदान

अभय सर्वसत्वेभ्यो यो ददाति दयापर
तस्य देहाद्विमुक्तस्य भय नास्ति कुतश्चन

भावार्थ —"जो दयालु मनुष्य सर्व प्राणियोंको अभयदान देते हैं वे मनुष्य देहसे मुक्त हो जाते हैं अर्थात् मृत्यु हो जाने पर भी उन्हे किसीका भय नहीं रहता।"

अभयदान पर दृष्टान्त-

जयपुर नगरमें घना नामक एक माली रहता था। उसने बेइन्द्री पाच पूरोंका दयासे रक्षण किया। वह माली मर कर कुलपुत्र हुआ। बाल्यकालमें ही उसके माता पिता मर गये इसलिये वो परदेशके लिये रवाना हुआ। मार्गमें रात्रिका समय हो जानेसे उसने किसी अरण्यमें एक वट वृक्षके नीचे रात्रि विश्राम लिया। उस वृक्ष पर पांच यक्ष रहते थे। उन्होंने उसे देखा तो ज्ञान द्वारा यह जान करकि, "यह हमारा पूर्व भवका उपकारी है" उससे कहा कि, "तुझे आजसे पाचवें दिन राज्य मिलेगा" यह सुन वह कुलपुत्र बहुत खुश हुआ। प्रातः काल वहासे चल कर वह पाचवें दिन वाराणसी नगरीमें जा पहुचा। वहांका नरपाल नायक राजा पुत्र रहित मर गया था। उसका राज्य उसे मिला। उसने राज्यका भार प्रधान पर आरोपण कर वह सुखमें मग्न रहने लगा। एक बार सीमावृत्ति राजा उसके राज्यका उच्छेद करनेको चढ़ आये। उस समय उसके प्रधानने आ उसे द्यूत क्रीड़ा करनेसे रोक यह वृतान्त कहा और द्यूतक्रीडा छोड़ लडाइ करनेको आनेके लिये निवेदन किया परन्तु उसने उसकी बात पर जब कोई ध्यान नहीं दिया तो उसको रानीने भी खलमें पासा डालनेसे रोका इस पर उसने कहा कि -

स वट पञ्च ते यक्षा ददन्ति च हरन्ति च
अक्षान् पातय कल्याणि यद्भाव्य तद् भविष्यति

भावार्थ :-'हे कल्याणी ! वट पर रहने वाले पाच यक्षोंने यह राज्य दिया है सो यादवे ईसे वापस लेना चाहेंगे तो ले लेंगे इसलिए हे स्त्री ! तू तो तेरे पासे डाल, जो होना होगा सो होगा ।"

ऐसा कहने पर वे यक्ष उन शत्रुओंको बांध उसके पास ले आये और उन्हे उसके पैरोंमें नत मस्तक किया जिसे देख लोगोंको बड़ा आश्चर्य हुआ ।

एक दिन ज्ञानी गुरुका समागम होनेसे राजाने अपना पूर्व भव पूछा जिसके उत्तरमें गुरुने कहा कि, "पूर्व भवमें तूने पाच पुराका रक्षण किया था । वे पाचों मरकर यक्ष हुए हैं उन्होंने इस तेरे राज्यका रक्षण किया है।" ऐसा सुन राजाने बाव, कुआ, तालाब और जलाशयोंमें गलणिये लगाई और सर्वत्र अमारिकी घोषणा कराई ।

पापी मनुष्य जो मांस खाते हैं उनके प्रति उपदेश कहते हैं कि—एक बार श्रेणिक राजाने सभामें पूछा कि, "आज कल हमारे नगरमें सबसे सस्ती वस्तु कौनसी है ? उस समय निर्दय क्षत्रिय बोले कि, हे महाराज आजकल मांस सबसे सस्ता है ।" यह सुन अभयकुमार मंत्रीने विचार किया कि,- "आज मुझे इन लोगोंकी परीक्षा लेनी चाहिये कि जिससे फिर कभी ऐसे वचन न बोले ।" ऐसा विचार रात्रिके समय अभयकुमार स्वयं क्षत्रियोंके घर पृथक् पृथक् गये और उनसे कहा कि,

"हे राजपूतो ! आज राजा को महान् व्याधिने आदबाया है, वैद्योने कई प्रकारकी औषधीये दी किन्तु उन किसीसे उपचार न हो सका, इसलिए उन्होंने कहा कि, 'यदि मनुष्यके कलेजाका मात्र दो टाक जितना भी मांस मिल सके तो राजा जीवित रह सकता ह अन्यथा मृत्यु अवश्य भावी हैं। अत तुम उसके ग्रासमेसे आजिविका करने वाले हो सो क्या इतना कार्य भी उसका न कर सकोगे ।' यह सुन जिसके वहा प्रथम गया वो राजपूत बोला कि "हजार मोहर लेकर मुजे तो छोडिये और अन्य स्थान पर जाइये ।" तब अभयकुमार वो द्रव्य ले दूसरे स्थल पर गया और वहा पर भी उसी प्रकारसे कहा तो उसने भी हजार मोहरे दी परन्तु मास नहीं दीया । इस प्रकार सब स्थलमे भटकते भटकते सम्पूर्ण रात्रि निर्गमन कर उसने एक लाख सोनेकी मोहरे इकट्ठी की । प्रात काल सभामें आ सर्व क्षत्रियोंको वो द्रव्य दीखा अभयकुमार बोला कि, "हे क्षत्रियो ! तुमने कहा था कि आजकल मास सबसे सस्ता है परन्तु मुजे तो इतने भारी द्रव्य पर दो टाक मास भी न मिल सका ।" यह सुन जब सब क्षत्रियों लज्जित होकर मौन हो गये तो अभयकुमारने कहा कि—सबको अपनी आत्मा प्यारी होती है तुम मात्र दूसरेके मासके लोलुपी होकर ऐसे वाक्य बोलते हो । कहा है कि –

अमेध्यमध्ये कीटस्य सुरेन्द्रस्य सुरालये
समाना जीविताकाङ्क्षा सम मृत्युमय द्वयोः ॥१॥

भावार्थ –" विष्ठामे रहने वाले किडे और स्वर्गमे रहने वाले सुरेन्द्रको जीवित रहनेकी एक समान ही आकांक्षा होती है । " अपितु

दुर्योनिमपि ममाप्त प्राणी मर्तुं न वाञ्छति
स्वादुमन्तो भवन्ति स्वस्वाहारा कुक्षितावपि ॥२॥

भावार्थ –" दुष्टयोनीमे जन्मा हुआ जतु भी मरनेकी इच्छा नहीं करता क्योंकि खराब पृथ्वीमे भी प्राणियोंको अपना आहार स्वाद वाले ही लगत है । अपितु जो मनुष्य हिंसा करते है वे अति दुखी होते है । जैसे

गोपो बब्बुलशूलाग्रे प्रोतयूकोत्थपातकात्
अष्टोत्तरशत वारान् शूलिकारोपणान्मृत ॥१॥

भावार्थ –" एक गवालेने बबूलकी सूल पर एक जूको पिरोयाथा, जिसके पापसे वह ग्वाला एकसो आठ बार सूली पर चढनेकी शिक्षासे मृत्युको प्राप्त हुआ । " इसका दृष्टान्त इस प्रकार है कि –

नागपुर नगरमें माधव नामक एक गवाला रहता था। वह एक दिन गायें चरानेको वड अरण्यमें गया । वहाँ सूर्यके प्रचण्ड तापसे वचनेके लिये एक बबूलके वृक्षके नीचे बैठा । उस समय उसके सिरसे एक जू उसकी गोदीमें आगिरी । उसे उस निर्दई गवालेने " यह जू मेरे देहका सत्व-

पीजाती है । ' ऐसा विचार उसे धम्बूलकी तीक्ष्ण सूल पर पीरोदी । उस पापके उदयसे उसी भवमें वह गवाला चोरीके अपराधमें पकडा गया और सूलो पर चढाया जाकर मारा गया । उसके बाद भी इसी प्रकार एकसो सात बार भिन्न भिन्न भवोंमें चोरी आदिके अपराधमें सूलीका दुःख भोग कर मरा । एकसो मातवे भवमें जब उस पाप कर्मका उदय अल्प मात्र रह गया तो उसने तापसी दीक्षा ग्रहण की और सदैव वनमें रहकर सूखे पत्र, फल, फूल आदि भक्षण करने लगा । इस प्रकार निःसंगपनसे व्रतका पालन करनेसे उसे विभंग ज्ञान उत्पन्न हुआ । एक बार उस अरण्यके नजदीक के नगरसे राजाके अलंकारोंकी पेटी कोई चोर उठा कर ले गया जिसको पकडनेके लिये राजाके सिपाही उसके पीछे पीछे दौडे । उनको पीछा करते देख चोर रत्नालंकारकी पेटी अरण्यमें उस तापसके पास रख वट वृक्ष पर चढ़ गया । जब सिपाही वहा पहुचे तो तापस सोता हुआथा और पेटी उसके पास रखी हुईथी । वे पेटि सहित तापसको पकड कर राजाके पास ले गये । तापस विभंगज्ञानसे सर्व हकीकत जानते हुए भी अपने पूर्व कृत कर्मकी निन्दा करता हुआ मौन ही रहा । अन्यायी राजाने उसे सूली पर चढा दिया परन्तु पूर्वकर्मके क्षयसे वह मर कर देवता हुआ ।

इति अभयदान दृष्टान्त

दानके निम्नस्थ पाच प्रकार है :—

अभयं सुपत्तदाणं अणुकम्पा उचियकित्तिदाणं च
दोहि पि मुक्खो भणिओ तिन्नि भोगाई दीयंति

भावार्थ —'अभयदान, सुपात्रदान, अनुकम्पादान, उचितदान और कीर्तिदान, ये प्रकारके दान हैं। इनमें से प्रथम दो प्रकार के दान मोक्षकी प्राप्तिके हेतु हैं और शेष तीन प्रकारके दान सांसारिक सुख भोगके देने वाले हैं।"

इनमेंसे प्रथम हनन, बन्धन आदि भयसे भयभीत हुए जीव-जन्तुओंके प्राणोंका रक्षण कर उनको निर्भय करना अभय दान कहलाता है जिसका स्वरूप उपर बताया जा चुका है।

दूसरा सुपात्र दान इसमें "सु" अर्थात् "उत्तम" और "पात्र" अर्थात् "ज्ञानादि तीन रत्नोंका स्थान" या "सु" अर्थात् "विशेषतया" और "पात्र" अर्थात् "पापसे रक्षण करने वाला" इस प्रकार अन्वर्थ संज्ञा वाला सुपात्र दान दुर्लभ है।

तीसरा अनुकम्पा दान अर्थात दीन और दुःखी लोगों को पात्र तथा अपात्रका बिना विचार किये मात्र दया कर अन्नादिक देना। कहा है कि —

दानकाले महेच्छाना किं पात्रापात्रचिंतया।
दीनाय देवदुष्यार्धं यथादात् कृपया प्रभु ॥१॥

भावार्थ —दाताको दान देते हुए पात्र तथा अपात्र का विचार क्या करना ... भगवाने

नृपासे आधा देव दूष्य गरीब (ब्राह्मण) को दिया था।"

इस दुषम कालमें जगडुशा श्रावकने निचे लीखे श्लोकमें अंकित अनुसार धान्यके मुडे[1] मात्र दयासे ही दूसरे राजाओं को दिये थे।

अठ्ठ य मूडसहस्सा विसलरायस्स बार हम्मीरे।
इगवीस य सुत्ताणे दुब्भिक्खे जगडुसाहुणा दिन्ना ॥१॥

भावार्थ –जगडुशाह श्रावकने दुकालके समय विसाल राजा को आठ हजार मुडे, हमीर राजाको बारह हजार मुडे और दिल्लीके सुलतानको इक्वीस हजार मुडे धान्य दीया था।

नवकरवाली मणिअडा, ते पर अलगा चार।
दानशाला जगडुतणी, दीसे पुहवी मुजार ॥

अर्थात्–उस दुकालके समय जगडुशाहने ११४ दान शालायें स्थापितकी। प्रतिदिन प्रातःकाल जगडुशाह जिस स्थान पर बैठ कर यथेष्ट दान देते थे वहा कोइ लज्जावान् कुलस्त्रियें आदि प्रगट रूप से दान नहीं ले सकतीथी ईस लिये उनको प्रच्छन्न रूपसे दान देनेके लिये उन्होने एक पर्दा बंधवा दियाथा कि जिससे वे उसमेंसे हाथ निकाल कर दान ले सके। एक दिन विसल राजा उसके भाग्यकी परीक्षा करने के लिये वेष बदल कर अकेला गया और पर्देमें से हाथ बढाया। जगडुशाहने शुभ लक्षण वाला भाग्यशाली हाथ देखकर विचार किया कि, "जगतके मनुष्यों द्वारा मान

करने योग्य यह किसी राजाका हाथ है परन्तु अभी दैवयोग से यह ऐसी स्थितिको प्राप्त हुआ जान पडता है ईस लिये यह आ जीवन सुखी हो जाये ऐसा कार्य करना चाहिये ।" ऐसा विचार कर उसने अपने हाथकी अगुलीसे मणि जडित मुद्रिका (अगुठि) निकाल कर उसके हाथमें रखदी । उसे देख राजा अत्यन्त आश्चर्यमें हो गया क्षण भर पश्चात् फिर जब उसने अपना बाया हाथ पर्देमेंसे बाहर निकाला तो जगडुशाहने उसमें भी अपनी दूसरी अगूठी रख दी । वे दोंनो अगुठियों लेकर विसल राजा अपने महलमें गया । दूसरे दिन जगडुशाहको बुलाकर "यह क्या है" ऐसा कह उसने उसकों दोंनों मुद्रिकाये बतलाइ । जिन्हे देख जगडुशाहने कहा कि –

सर्वत्र वायसा कृष्णा सर्वत्रहरिता शुका ।
सर्वत्र सुखिना सौख्य, दुःख सर्वत्र दुःखिनाम् ॥१॥

भावार्थ –"कोव सर्वत्र काले ही होते हैं, तोते सर्वत्र हरे ही होते हैं सुखी पुरुष सर्वत्र सुखी हो होते हैं और दुःखी पुरुष सर्वत्र दुःखी ही होते हैं ।"

ऐसा सुन राजाने प्रसन्न हो जगडुशाहका प्रणाम निषेध[1] कर उसे हाथी पर बिठा उसके घर भेजा । इस प्रकार धार्मिकपन अनुकम्पा दान द्वारा ही सुशोभित होता है । यह तीसरा अनुकम्पादान बतलाया गया है ।

---

[1] जगडूको राजाको प्रणाम करनेकी आवश्यकता नहीं है ।

अब चौथा उचित दान बतलाया जाता है—योग्य अवसर पर इष्ट अतिथि (महमान) को, देवगुरुके आगमनकी तथा नये बनाये मन्दिर और बिंबकी बधाई देने वालेको, काव्य श्लोक, किसी सुभाषित या विनोदपूर्ण कथा आदिके कहने वालेको प्रसन्न चित्तसे दान देना उचितदान कहलाता है। जैसे चक्रवर्ती निरंतर प्रभातकालमें विहार करते तीर्थंकरकी स्थितिकी सूचना देनेवालेको वर्षासन देते हैं। कहा है कि—बारह कोटि सुवर्ण अथवा बारह लाख द्रव्य अथवा छ लाख द्रव्य चक्रवर्ती एक समयमें प्रीति दानमें देते हैं। वर्तमान-कालमें भी श्री सिद्धाचल पर प्रासादकी समाप्ति पर बधामणी देने वालेको वाग्भट्ट मंत्रीने सुवर्णकी बत्तीस जीमें दी थी। एकबार जुनागढ़के रोंगार राजा शिकार खेलने गये। उन्होंने अनेक शशलाओंका शिकार किया। अब वह उनको अपने घोड़की पृष्ठ बांध कर वापस लौट रहा था तो मार्गमें वह पथ तथा साथियोंसे बिछुड़ पड़ गया अर्थात् अकेला भूला पड़ गया। उसने उस समय एक बेबुलके वृक्षकी शाखा पर चढ़कर बैठे हुए दुटण नामक चारणको देखकर उससे पूछा कि,—"अरे तू मार्ग जानता है ?" तो उस दयालु चारणने कहा कि —

जीव वध्धतां नरगगइ, अवध्धतां गइ सग्ग।
हु जाणु दो वाटडी, जिण भावे तिण लग्ग ॥१॥

अर्थ —"जीवका वध करने वाला नरकगामी होता है! और दयापालन करने वाले स्वर्गारोही होता हैं मैं तो ये

दो मार्ग ही जानता हूँ, सो तू जिस मार्गको अच्छा समझे उसीमें गमन कर।"

इसप्रकार हृदय पर गहरा प्रभाव डालने वाली इध जैसी उसकी वाणीके सुननेसे राजाको तत्काल विवेक उत्पन्न हो गया और उसने यहा ही जीवन पर्यंत प्राणीवध नहि करनेका नियम ग्रहण कर लिया तथा उस चारणको अश्व और ग्राम आदि देकर उसका गुप्त सदृश सत्कार किया, विक्रम राजाने जब सिद्धसेन गुरुको हार्दिक प्रणाम किया तो उन्होंने उसे धर्मलाभ दिया। राजाने पूछा कि-"हे पूज्य गुरु! इस धर्मलाभसे क्या होता है?" इस पर गुरुने कहा कि —

दुर्वारा वारणेन्द्रा जितपवनजवा वाजिन स्यदनौघा
लीलावत्यो युवत्य प्रचलितचमरैर्भूषिता राज्यलक्ष्मी।

उच्चं श्वेतातपत्रं चतुरुदधितटीसकटा मेदिनीयं
प्राप्यन्ते यत्प्रभावात्त्रिभुवनविजयी सोऽस्तु ते धर्मलाभ॥१॥

भावार्थ —"जिसके प्रभावसे मदोन्मत्त हाथी, पवनके वगको जीतने वाले घोडे, रथके समूह, विलासवाली स्त्रिये, चलायमान श्वेत चामरासे शोभित राज्यलक्ष्मी, बड़ा श्वेतछत्र और चार समुद्र पर्यंतकी समग्र पृथ्वी प्राप्त होती है वो त्रिभुवनको जितने वाला धर्मलाभ रूप आशीर्वाद तुम्हें दिया गया है।"

इसप्रकार सूरिके वचन सुन उनके गुणोंसे हर्षित हो राजाने उनको एक करोड़ सोनेकी मोहरें भेट की, परन्तु सूरिके निःस्पृह होनेसे उन्होंने उन्हें धर्मस्थानमें लगा दि।

ऐसे अनेकों दृष्टान्त उचितदानके विषयमें कहे जा सकते हैं, अब कीर्तिदान अर्थात् कीर्तिके लिए जो दान भिक्षुकादिकको दिया जाता है उसके बारेमें कहा जाता है। उसके दृष्टान्त इसप्रकार हैं।

एकबार जब सपादलक्ष देश (मालवा) के अधिपति अर्णो राजा पर दिग्विजयकी अभिलाषासे निकले हुए कुमारपाल ने चढ़ाई की तो उस समय उसने स्वारोंसे घोड़ोंके पलान (सामान) को पुजवाये। जिसको देख उसके साथके बहुतर सामन्त राजाओंने मजाक की कि-"ये बनिये सन्श कुमारपाल लड़ाईमें क्या करेगा?" ऐसा उनका अभिप्राय जान कुमारपालने सोलह मन सुपारीकी बोरी जो मार्गमें पड़ी थी, उसको भालेके अग्र भागसे उठाकर उछाला और लोहेके सात कड़ाहोंको आपसमें टकराकर लोहेके भालासे छेद दिया। उस समय योग्य वचन बोलनेमें चतुर आम्रभट्टने कहा कि-

रे खड़ रन्नु जीवडा, एणे मयगल मारइ,
न पीये अणगल नीर, तेही राय संहारइ,
अवर न बंधे कोइ, समर रयणायर बंधे,
चगे राय परमार, अपररायने रुंधे,

ए कुमारपाल थोपे चडयो, फाडे मत्त कडाही;
तीम जे जिणधम्म न मनसि, तेहनी तेहवी चाड ॥१॥

यह कविता सुनकर राजाने कविताके प्रत्येक अक्षर अर्थात् अक्षर जितने घोडे दिये ।

एक बार कुमारपाल राजा जय द्वारा आवर्त पूर्वक वदन करी श्री हेमचंद्राचार्य गुरुको प्रमान थ उस समय उसने उसकी पीठ पर हाथ रखा जिस दरम्यान कविने कहाकि,

हेम तुमारा करमही, दीसइ अद्भुत सिद्धि,
जे चपे हेठा मुहा, ते पाम हरि सम ऋद्धि ॥१॥

यह दोहा सुन कुमारपालने उसे उसके हाथोंके कडे खोल कर दे दिये । इस प्रकार कीर्तिदान पर भी यहांको दृष्टान्त उपर ध है,

"सुपात्र दान और अभयदानसे मुक्ति प्राप्त होती है, अनुकम्यादान से सुखकी वृद्धि होती है, उचित दानसे प्रशंसा बढती है और कीर्तिदानसे सर्वत्र महानता मीलती है ।"

[इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशप्रासादवृत्तौ पञ्चदशस्तंभस्य; षोडशाधिकद्विशततमः प्रबंध ॥२१६॥]

व्याख्यान २१७

दान धर्मकी देशना

श्राद्धाना पात्रभक्ताना, कार्पण्यदोषमुक्तये ।
देशना दानधर्मस्य, देया तीर्थहितेच्छुभि. ॥१॥

भावार्थ —"सुपात्रकी भक्ति करने वाले श्रावकोंने कृप णताल्पी दोषका निवारण करनेके लिए तीर्थने हितेच्छु साधुओंको दान धर्मकी देशना देना चाहिये ।"

दान धर्मकी देशना इसप्रकार है —

कालेऽल्पमपि पात्राय, दत्त भूयो भवेद्यथा ।
जिनाय चदनादत्ता कुल्मापा कल्मपच्छिदे ॥२॥

भावार्थ —"योग्य समये सुपात्रको अल्प मात्र दिया हुआ दान भी महान् फलका देनेवाला होता है । जैसे चदन बालाने श्री भगवानको मात्र उडदके बाकले दिये थे किन्तु वे भी उसके पापके नाश करने वाले हो गये ।"

जब वीर भगवानका किया हुआ अभिग्रह छ महिने बाद पूर्ण हुआ तो देवताओंने उस समय साडे बारह करोड़ सुवर्णकी वृष्टि की जिससे धनावह श्रेष्ठीका घर भर गया जिसे देख उसके पड़ोसमें रहने वाली एक बुढियाने विचार

किया कि-"मात्र उड़दके बाकले दनसे जब एक दुर्बल तपस्वी इतनी बडी समृद्धि दे सकता है तो मैं किसी पुष्ट अगवाळे मुनिको घी और मिश्री सहित परमान्न द्वारा सतोषी बना क्यों न अपार लक्ष्मी ग्रहण करूं ? "ईसलिये वह किसी हृष्ट पुष्ट शरीर वाले मुनिवेशधारीको बुला क्षीरका दान देकर बारबार आकाशकी ओर देखने लगी। उसे ऐसा करते देख उस वेषधारी साधुने उस बुढियाका अभिप्राय जान उससे कहा कि-'हे मुग्धा ! मेरे तप द्वारा और तेरे भाव द्वारा तथा आधाकर्मीक आरम्भ दानसे तेरे घरमें रत्न की वृष्टितो नहीं होगी किन्तु पत्थरकी वृष्टि अवश्य होगी क्योंकि दान देन व लेनेवालेकी एसी शुद्धि नहीं है। इस प्रकार वाक्य कह उसने उस बुढियाको प्रतिबोध किया।

अपितु जो नामसे योग्य गुणवान हो वह ही श्रेष्ट पात्र है, अन्य कदापि नहीं। पात्र परीक्षाके विषयमे युधिष्ठिर और भीमके सवादमे कहा है कि—हस्तीनापुर नगरमें एक बार जब धमपुत्र (युधिष्ठिर) सभामें बैठे थे उस समय द्वार पर खड़े भीमसेनने आकर धर्मराजसे कहा कि -

मूर्खस्तपस्वी राजेन्द्र, विद्वांश्च वृषलीपतिः ।
उभौ तौ तिष्टतो द्वारे, कस्य दानं प्रदीयते ॥१॥

भावार्थ -"हे राजन् ! एक मूर्ख है लेकिन तपस्वी है, और दूसरा विद्वान् है किन्तु वृषलीपति (भ्रष्ट) है।

चे दानी द्वार पर खडे हैं उनमेंसे दान किसको दिया जाये" युधिष्ठिरने कहा कि –

सुखसेव्य तपो भीम, विद्या कष्ट दुराचरी ।
विद्या सपूजयिष्यामि तपोमि किं प्रयोजनम् ॥२॥

भावार्थ –हे भीम ! तपका सेवन सुख पूर्वक होता है परन्तु विद्यातो महान कष्टसे प्राप्त होती है इसलिये मैं विद्याका ही सत्कार करूंगा, मात्र तपसे क्या प्रयोजन है ?" यह सुन भीमसेनने कहा कि –

श्वानचर्मगता गंगा क्षीर मद्यघटास्थितम् ।
कुपात्रे पतिता विद्या, किं करोति युधिष्ठिर ॥ ३

भावार्थ –' हे राजा युधिष्ठिर ! जैसे कुत्तेके चमडेकी मसकमें भरा गंगाजल और मदिराके घडेमें भरा दूध काममें नहीं लिया जाता है उसी प्रकार कुपात्रमे स्थित विद्याभी क्या कामकी है ?" भीमसेनके यह वचन सुन सभामें बैठे कृष्ण द्वैपायन बोले कि–

न चैकविद्यया पात्र, तपसापि च पात्रता ।
यत्र विद्याचरित्रे च, तद्धि पात्र प्रचक्ष्यते ॥ ४ ॥

भावार्थ –न तो मात्र विद्यासे ही पात्र कहलाता है और न केवल तपसे ही पात्रता कहलाती है परन्तु जहा विद्या

और आचार दोनों विद्यमान हों वह ही पात्र कहलाता है।"

ऐसा होनेसे पात्रको दान दनाही कल्याणकारी है। वह दानभी भाव पूर्वक देना चाहिये। कहा है कि –

दातव्यमिति यद्दानं, दीयतेऽनुपकारिणे।
क्षेत्रे काले च भावे च, तद्दानं सात्विकं स्मृतम् ॥१॥

भावार्थ –"देने योग्य दान भी यदि अनुपकारिको[1] दिया जाय यथा योग्य क्षेत्र, काल और भावका विचार कर दिया जाये वो सात्विक दान कहलाता है।"

ऐसा सात्विक दान शालिभद्र आदिने दिया था।

यस्तु प्रत्युपकाराय, फलमुद्दिश्य वा पुनः।
प्रदीयते परिक्लिष्टं तद्दानं राजसं स्मृतम् ॥ २ ॥

भावार्थ –जो दान उपकारके उल्लेख प्रत्युपकारके लिए दिया जाये अथवा जो दान किसीभी फलकी इच्छासे दिया जाये वो दान राजस कहलाता है।" इस विषयमें चंदन बालाकी वृद्ध पड़ोसनका दृष्टान्त पहले कहा जा चुका है।

क्रोधाद्बलाभियोगाद्वा, मनोभावं विनापि वा।
यद्दीयते हितं वस्तु, तद्दानं तामसं स्मृतम् ॥ ३ ॥

---

१ अपने पर उपकार करने वालेको नहीं परन्तु मात्र पात्रता देखकर

भावार्थ -क्रोधसे, बलात्कारसे अथवा मनके भाव बिना जो अच्छी वस्तु भी दानमें दीजाये तो वह दान तामस कहलाता है ।" इस सम्बन्धमें श्रेणिक राजाकी कपीला दासी का दृष्टान्त प्रसिद्ध है । बिना किसी इच्छाके दान देने वाले दुर्लभ हैं । कहा है कि -

दुल्लहाओ मुधादाई, मुधाजीवी वि दुल्लहा ।
मुहादाइ मुहाजीवी, दोवि गच्छंति सुग्गइ ॥ १ ॥

भावार्थ -किसी प्रकारकी इच्छा बिना दान करने वाले दुर्लभ हैं और निष्कपट मनसे आजीविका चलाने वाले भी दुर्लभ हैं, अन्यथा ऐसे दातार और ऐसे आजीविका कमाने वाले दोनों सद्गतिको प्राप्त करते हैं ।"
इस विषय पर भागवत षणवीका दृष्टान्त प्रसिद्ध है कि -

किसी तपस्वीने किसी भक्तसे कहा कि, "तेरे घर मुझे चातुर्मास तक रहने दे" उस पुरुषने कहा कि, "यदि तुम उसके बदलेमें मेरा कोई प्रत्युपकार न करोतो खुशीसे रह सकते हो ।" तपस्वीने यह शर्त मंजूरकी जिस पर उक्त भक्तने उन्हें रहनेके लिए आवास दिया और आहारादिक द्वारा उसकी भक्ति करने लगा । एक बार चोराने आकर उसका घोडा चुरालिया परन्तु गावके बाहर निकलते हुए प्रातःकाल होजानेसे चोरोंने विचारा कि, "अब इस समय यह घोड़ा हमसे नहीं लेजाया जा सकेगा।" इसलिये वे उस घोडेको घने वृक्षोंकी आड़में बांध कर चले गये । प्रात

कालमें जब वह तपस्वी स्नान करनेको तालाब पर गया उस समय उसने तालाबके समीप साकडी गलीमें उस घोड़ेको बाधा हुआ देखा तो उसने पहचान लिया कि " यह घोड़ा तो मेरे उपकारी भागवत पटलका है जो कि चोर चुराकर ले गये थ । " वह उसका धोया हुआ वस्त्र भूल जानेके मिष से वहा रख कर गया और भागवत पटलसे कहा कि, " मैं मेरा एक धोया हुआ वस्त्र तालाब पर ही भूल आया हू सो उसको मगवाने ।" ईस पर उसने अपने नोकरको वह वस्त्र लेनेको भेजा । उसन वहा जाकर जब वस्त्र उठाया तो उसके समीप ही अपने शेठका घोडा बाधा हुआ देखा इसलिए उसको भी ले आया और अपने स्वामीको यह सारा वृतान्त कहा । स्वामीने मनम विचार किया कि, 'अहो ! इस तपस्वीने दूसरे बहानसे मेरे पर उपकार किया है ।" उसने तपस्वीको बुलाकर कहा कि-' हे भद्र ! अब आप यहासे चले जाइये क्योंकि उपकारीको दिया हुआ दान निष्फल हो जाता है ।"

अब मुधाजीवि (निष्कपट जीवन वाले) का दृष्टान्त कहा जाता है –

किसी राजाको वैराग्य उत्पन्न हुआ इसलिये उसने धर्मकी परीक्षा करनेको विचार किया कि, " वास्तविक रूपसे दान लेकर कौन भोजन करता है ? उसकी मैं जाच करू ।" उसने उसके नोकरको हुकम दिया कि सब स्थान पर जाकर

भावार्थ -क्रोधसे, बलात्कारसे अथवा मनके भाव बिना जो अच्छी वस्तु भी दानमें दीजाये तो वह दान तामस कहलाता है ।" इस सम्बन्धमें श्रेणिक राजाकी कपीला दासी का दृष्टान्त प्रसिद्ध है । बिना किसी इच्छाके दान देने वाले दुर्लभ हैं । कहा है कि –

दुल्लहाओ मुधादाई, मुधाजीवी वि दुल्लहा ।
मुहादाइ मुहाजीवी, दोवि गच्छति सुग्गइ ॥ १ ॥

भावार्थ -किसी प्रकारकी इच्छा बिना दान करने वाले दुर्लभ हैं और निष्कपट मनसे आजीविका चलाने वाले भी दुर्लभ हैं, अन्यथा ऐसे दातार और ऐसे आजीविका कमाने वाले दोनों सद्गतिको प्राप्त करते हैं ।"
इस विषय पर भागवत कथाकी दृष्टान्त प्रसिद्ध है कि –

किसी तपस्वीने किसी भक्तसे कहा कि, "तेरे घर मुझे चातुर्मास तक रहने दे" उस पुरुषने कहा कि, "यदि तुम उसके बदलेमें मेरा कोई प्रत्युपकार न करोगे तो खुशीसे रह सकते हो ।" तपस्वीने यह शर्त मंजूरकी जिस पर उक्त भक्तने उन्हें रहनेके लिए आवास दिया और आहारादिक द्वारा उसकी भक्ति करने लगा । एक बार चोरोंने आकर उसका घोडा चुरालिया परन्तु गांवके बाहर निकलते हुए प्रातःकाल होजानेसे चोरोंने विचारा कि, "अब इस समय यह घोडा हमसे नहीं लेजाया जा सकेगा ।" इसलिये वे उस घोडेको घने वृक्षोंकी आड़में बांध कर चले गये । प्रात

कालमें अब वह तपस्वी स्नान करनेको तालाब पर गया उस समय उसने तालावके समीप बावडी गलीमें उस घोडेको बाधा हुआ देखा तो उसने पहचान लिया कि "यह घोडा तो मेरे उपकारी भागवत पटेलका है जो कि चोर चुराकर ले गये थ। "वह उसका धोया हुआ वस्त्र भूल जानेके मिष से वहा उस घर गया और भागवत पटेलसे कहा कि, "मैं मेरा एक धोया हुआ वस्त्र तालाव पर हा भूल आया हू सो उसको मगवाये।" इस पर उसने अपने नौकरको वह वस्त्र लेनेको भेजा। उसने वहा जाकर जब वस्त्र उठाया तो उसके समीप ही अपने शेठका घोडा बाधा हुआ देखा इसलिए उसको भी ले आया और अपने स्वामीसे यह सारा वृत्तान्त कहा। स्वामीने मनमे विचार किया कि, "अहो! इस तपस्वीने दूसरे बहानेसे मेरे पर उपकार किया है।" उसने तपस्वीको बुलाकर कहा कि–' हे भद्र! अब आप यहासे चले जाइये क्योंकि उपकारीको दिया हुआ दान निष्फल हो जाता है।"

अब मुधाजीवि (निष्कपट जीवन वाले) का दृष्टान्त कहा जाता है –

किसी राजाको वैराग्य उत्पन्न हुआ इसलिये उसने धर्मकी परीक्षा करनेको विचार किया कि, "वास्तविक रूपसे दान लेकर कौन भोजन करता है? उसकी मैं जाच करू।" उसने उसके नौकरको हुक्म दिया कि सब स्थान पर जाकर

ऐसी घोषणा करो कि, "राजा लड्डु देता है सो आकर ले जाओ" उसके ऐसा करनेसे कोई भिक्षुक लड्डु लेनेको आये। उनको राजाने पूछा कि, "तुम किसके द्वारा जिन्दा रहते हो ?" तब उनमेंसे एकने कहाकि, "मैं मुखके द्वारा जीवित रहता हूं।" दूसरेने कहा कि, "मैं पैर द्वारा जिन्दा रहता हूं।" तिसरेने कहाकि, "मैं हाथ द्वारा जिन्दा रहता हू" चोथेने कहा कि, 'मै लोगोकी कृपासे जीवित रहता हूं" और पाचवें जैन साधुने कहाकि, "मैं मुधा जीवी हूं।" फिर राजाने फिरसे पूछा कि "किस प्रकार !" तो पहलेने कहा कि–"मैं कथा कहने वाला हूं। मनुष्योंको रामायण आदिकी कथा सुनाता हैं जिससे मेरी आजीविका चलती है इसलिये मुख द्वारा जीवित रहता हैं।" दूसरेने कहा कि, "मैं कासद (हलकारा) हूँ लोगोकी खबरें पहुचा कर आजीविका चलाता हूँ इसलिये पग द्वारा जीवित रहता हूँ।" तीसरेने कहा कि, "मैं लेखक हूँ। लिखकर आजीविका चलाता हूँ इसलिये हाथ द्वारा जीवित रहता हूँ।" चोथेने कहा कि, "मैं भिक्षुक हूँ। लोगोंकी कृपासे भीख मागकर आजीविका चलाता हूँ।" जैन साधुने कहा कि, "मैं गृहस्थका पुत्र हूँ, परन्तु संसारकी असारता देख कर वैराग्य उत्पन्न हो जानेसे मैंने दीक्षा ग्रहण की है इसलिये यथाकाल जैसा भी आहार मिल जाये उसी आहारसे चला लेता हूँ अत मुधाजीवि हूँ।" ऐसा सुन कर राजाने विचार किया कि, "अहो! यह धर्म ही सर्व दुःखोका नाश

करने वाला और मोक्ष मिलाने वाला है।" ऐसा निश्चय कर उसने जैन धर्म अंगीकार किया।

अपितु दान रूप अलंकार रहित लक्ष्मी पत्थर और मल रूप ही है। देखो, नवनंद राजा कृपणताके दोषसे पात्र दान किये बिना मात्र प्रजाको अत्यन्त कष्ट पहुंचा कर सुवर्णकीनो डुगरिये बनाई, व दुर्भाग्यसे समय पाकर पत्थर की हो गई अभीतक व डुगरिये पाटलीपुर नगरके समीप गंगा नदीके किनारे पर पीले पत्थर सदृश दिखवाई देती है, राजगृह नगरीमें ममण श्रेष्ठीने मणिजडित दो बैल बनवायेथे उनमेंसे एक बैलका सींग अधुरा था जिसको पूरा करनेके लिये वह अनेक प्रकारके कष्ट सहन करता था, परन्तु पात्र दान न करनेसे वे बैल पृथ्वीके पृथ्वीमेंसे विनाश पाये। ईसलिये मिले धनका सुपात्रमें दान करना चाहिये।

दान यदि शत्रुको दिया जाये तो वैरका नाश करता है, सेवकको देनेसे वह विशेष भक्ति मान होता है, राजा को देनेसे उत्कृष्ट सम्मान मिलता है और भाट कवि या चारण आदिको देनेसे सर्वत्र यशका विस्तार होता है दान किसीभी स्थान पर निष्फल नहीं जाता। इसमें भी सुपात्रको देनेसे विशेष कल्याणकारी होता है। कहा है कि –

जले तैलं खले गुह्यं, पात्रे दानं मनागपि।
प्राज्ञे शास्त्रं स्वयं याति विस्तारं वस्तुशक्तितः॥ १॥

भावार्थ – "जलमे तेल, राजपुरुषोंमे गुप्त बात, सुपात्रमें अल्प मात्राभी दान, समझदारमे विद्या और सत्पुरुष के साथ प्रीति, इनके अल्प होने परभी अनेक प्रकारसे विस्तारको प्राप्त हो जाती है।"

यहा पर यदि किसीको शका हो कि–"पात्र और अपात्रका विचारतो कृपण पुरूष करता है। उदार पुरूष नहीं करता। इस विषयम कहा है कि –

पत्तपरिक्खह कि करू, दीजे मग्गताहि।
कि वरिसतो अबुहरू जोवे सम विसमाइ ॥ १ ॥

भावार्थ –"पात्रकी परीक्षा क्या करना ? जो मागे उसे देना। क्या मेघ सम विषम प्रदेश देख कर वृष्टि करता है ? नही वह सर्वत्र करता है।" इस शकाका निवारण किया गया है कि—

वरिसो नग्गिो अबुहर, वरसोडा फल होसु।
धतुरे विष इक्खु रस, एवडो अन्तर होय ॥

"हे वरसाद ! भले तू चाहे जहा बरस परतु वरसनेका फल देख। धतुरेमं तो तेरे जलसे विष उत्पन्न होता है और गन्नेम ईक्षु रस उत्पन्न होता है। इतनाही पात्र और अपात्रमे भेद होगा।"

[इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशप्रासादवृत्तौ पचदशस्तम्भस्य सप्तदशाधिकद्विशततम. प्रबध ॥ २१७ ॥]

व्याख्यान २१८

सुपात्रदान पर दृष्टान्त

पात्र यच्छति यो नित्त निजशक्त्या सुभक्तित ।
सौख्यानां भाजन स स्याद्यथा धन्योऽभवत्पुरा ॥ १ ॥

भावार्थ –जो पुरुष अपने शक्ति अनुसार भक्ति पूर्वक पात्रको दान देते हैं वे धन्नाकी तरह सर्व सुखके भाजन होते हैं।"

धन्नाका दृष्टान्त

पृथ्वीपुरनगरसे एक वणिक अपने कुटुम्ब सहित दैवयोगसे प्रतिष्ठानपुरमें आया। उसके कुलमेंसे एक बुढियाका छोकरा लोगोंके बछडे चरा कर निर्वाह करता था। एक दिन किसी पर प्रत्येक घरमें लोगोंको खीर खाते देखकर उस लडकेको भी खीर खानेकी इच्छा हुई। वह अपने घर आ उसकी माता से बार बार कहने लगाकि –"मुझे खीर खिला" कहाभी है कि –

चोरो बालकानि य, दुज्जण निज्जाय विप्प पाहुणया।
नयणि धुत्तन रिदा परस्स पीड न याणति ॥ १ ॥

भावार्थ – "चोर, बालक, दुर्जन, वैद्य, ब्राह्मण, पाहुणा, वैश्या, धूर्त और राजा ये दूसरेके दुःखको नहीं जानते।"

पुत्र के वचन सुन बुढ़िया दरिद्री होनेसे खीर नहीं बना सक्ती थी इसलिये वह शोक्में रोने लगी। उसकी पडोसी स्त्रियाने उस पर दया कर उसे दूध, सक्कर, घी और चावल उत्तनी सर्व सामग्री दी। बुढ़िया दुध व चावलकी खीर बना ऊसमें घी तथा सक्करडाल पुत्रको परोस कर किसी कार्यवश दूसरेके घर पर गई थी कि उसी समय एक महात्मा मुनि मासखमणके पारणेके लिए वहा पधार गये। ऊन्हें देख वह लडका अत्यंत प्रसन्न हो कर बोला कि, हे दयाके भंडार मुनि! यह खीर ग्रहन कीजीये।" मुनिने पात्रा रक्खा और उसने खीर उसम उनको वहरा दी। उस समय उसने मनुष्य आयुष्यका बंध किया। 'फिर उसकी माने बाहरसे आकर बो सब अवशेष खीर ऊसका खिलादी। जिस सर्वके खाजानेसे उसे विसूचिरकी व्याधिन आ घेरा और वह उस व्याधिसे उसी रात्रि का मरकर उसी नगरमे धनसार श्रेष्ठिका पुत्र हुआ। उसके तीन बड़ा भाई विवाहित थ उसके पश्चात् यह चौथा नामक पुत्र हुआ। ईसके जन्मसे ही धन सार श्रेष्ठीका धन अधिकाधिक बढने लगा। धना के योग्य वयके होने पर उसने समग्र कलाएँ सीग्वी और उसने उत्तम गुणोंस उसके माता पिताका अति प्रीतिपात्र हो गया ऊस समय ऊसके तीना बड़े भाई उनके माता पितासे कहने लगे कि ईसके छोटे होने पर भी तुम इसका अत्यन्त आदर क्यों करते हो? "इस पर वे बोले कि," इसके गुणोंसे यह विशेष सत्कार लायक हैं। ' यह सुन उन तीनोने कहा कि

"यदि ऐसा है तो उसके व हमारे गुणकी परीक्षा कर लीजिये। पिताने परीक्षा करने लिए चारों पुत्रोंको बत्तीस बत्तीस सुवर्ण मोहर दी, और कहा कि इस द्रव्यसे व्यापार कर लाभ उठाओ।"

धनाने उस दिन पशु व्यापारमें लाभ होता जान उस द्रव्यसे एक ऊंटवान मेढा खरीदा और राजपुत्रोंके मेंढे के साथ हजार सोना मोहरकी शर्त लगी उसकी युद्धमें लड़ाई जिसमें राजपुत्रका मेंढा हार गया और धना एक हजार सोनकी मोहरें ले घर लौटा। उसके तीनों बड़े भाइयोंने भी उनको दी बत्तीस बत्तीस सोना मोहरों से भिन्न भिन्न व्यापार किया परन्तु उसमें किसीको भी कोई लाभ न हो सका।

इसप्रकार धनाके अनेको उपाय सफल हुए जिसकी प्रशंसा सारे शहर में हो गई। उस गांवमें एक धनाढ्य श्रेष्ठी रहता था वह अत्यन्त कृपण था। उसने उसके घरमें गड्ढा खुदवाकर बहुतसा द्रव्य उसमें छुपा दिया और अपद्रव्य से अमूल्यरत्न खरीद,कर उसके सोनके पलंग के पाये आदिमें गुप्त रुपसे छिपा दिये और वह उस खाटे पर रात के पलंग को रखकर निरन्तर सोता रहता था। जब उसकी मौतकी घड़ी आई तो उसने अपने पुत्रोंसे कहा कि "जब मैं मर जाउं तब इस पलंग सहित मेरा अग्निसंस्कार कर देना।" अनुक्रमसे कोई भी पुण्य,दान किये बिना वह वृद्ध मर गया। उसके पुत्र पलंग सहित उसे श्मशानमें उठा कर लाये, क्योंकि उनको इस बातका पता नहीं था कि

ईस पलग मे रत्न खरे पडे है"। स्मशान में चाडालने अपनी अधिकार होनेसे वह पलग मागा। उन्होने देनेको मनाकिया ईसलिये उनदानोंय आपसमे झगडा हो गया अन्त मे उनके सम्बधिओ के कहने से उन्होन वह पलग चडालको दे दिया। चाटाल उस खाट को वेचने के लिये बाजार में गया। उस समय लन्धलक्ष धनाने कुछ चिन्होंसे उस पलागको द्रव्य सयुक्त जान योग्य मूल्य द उसे खरीद लिया। घर जाकर जब उस पलगको तोडा तो उसमे कई अमूल्य रत्न निकल पडे जिससे धना बडा धनाढ्य हो गया। यह देख उसके भाईओ को उस पर बडी इर्षा हुइ और वे उसको मार टालने के उपाय तक सोचने लगे। जिसकी सूचना उन भाईयोकी स्त्रीयोने जो धनाको पुत्र समान प्रिय मानती थी वे एकान्त में दी 'सूचना पा धना घरसे अकेला ही निकल पडा ओर भटकता भटकता राजगृह नगरी पहुच उसकी बाहर एक उद्यानमे विश्राम लेने कों बैठा। वह उद्यान जो कुछ समय पूर्व दैवयोग से सूक गयाथा धनाके पुण्य प्रभाव द्वारा वापस तत्काल नवपल्लवित और पुष्पफल युक्त हो गया। इस चमत्कारको देख उस उद्यान के रक्षकने उसका वृत्तान्त उस उद्यानके स्वामी कुसुमपाल श्रेष्ठीसे जाकर कहा। जिसे सुन कुसुमपालश्रेष्ठी भी विस्मित हो गया वो धनाको बुलाकर उसने घेर ले गया और उसका उसकी पुत्रीके साथ विवाह कर दिया। उस समय उस नगरी मे श्रणीकराजा राज्य करते थे उन्होने भी हर्षित होकर उनकी पुत्री धनाको भेटकी।

राजपुत्रीकी सखी सुभद्रा नामक शालिभद्रकी बहिन थी, उसका भी उसके स्वजनाने धनाका विवाह किया। इन दोनो लड़कियोंका लग्न श्रेणिक महाराजाने बड़ी समृद्धि पूर्वक किये। राजाने इनके रहनेके लिये बड़ बड़े महल दिये जिनमे रह धना पूर्वजन्ममें दिये सुपात्रदानका फल भोगने लगा। श्रेणिक राजाने कइ ग्राम भेट भी दिये।

एक समय जब धना अपने महलकी खिड़कीमें बैठा हुआ था, तो उसने उसके कुटुम्बको गरीब दशामें शहरमें फिरते देखा इससे वह सत्कार पूर्वक उसके घर बुलाया और उन्हे कई गांव देकर प्रसन्न किया। कुछ समय व्यतीत होने पर धनाके तीनो बड़े भाइयोने एक दिन उनके पितासे कहा कि "हे पिता! घरका समग्र द्रव्य आपका आज बांटकर हमारा भाग हमको दो। पिताने कहा कि, "हे मूर्खो! अभीतक तो तुम सब धनाके उपार्जित द्रव्यका ही उपयोग कर रहे हो। इसमे मेरा क्या है कि मैं तुम्हें बांट दू? इस पर उन्होने कहा कि, 'जब धना घरसे भगा था, तब चोरकी तरह घरमें से रत्नादि अच्छी अच्छी वस्तुए लेकर गया था इससे अब धनाके पुन बाहु राज्य भोगे परंतु हम तो अब बिना हमारा भाग लिये आयन्दा कलसे भोजन तक नहीं करेंगे"। इस प्रकार कुटुम्बमें क्लेश होनेकी संभावना देख धना उसी रात्रिको अकेला घर छोड़कर चल दिया।

चलते चलते वह कौशाम्बी नगरी पहुंचा, जहां मृगावती राणीका पति शतानीक राजा राज्य करता था। धना नगरीके

बीच बाजारमें गया । वहा उसने राजा द्वारा की गई यह घोषणा सुनि कि-राजाके भंडारमें एक अमूल्य रत्न है, उसकी जो परीक्षा करेगा उसको राजा निचे लिखी वस्तुए देगा —

हस्तिना शतमेकं च वाजिनां शतपंचकम् ।
सौभाग्यमंजरीं पुत्रीं ग्रामपंचशतीयुताम् ॥

" भावार्थ — एक सो हाथी, पाचसो घोडें और पाचसो गाव सहित सौभाग्यमंजरी पुत्री (देगा)"

यह उद्घोषणा सुन धना उसका निवारण कर राजसभामें गया, और रत्नकी परीक्षामें निपुण होनेसे उसने उस रत्नकी परीक्षा की । राजने विस्मित हो प्रचुर द्रव्य सहित उसे उसको पुत्रिको विवाह दिया । वहा सुखमें निमग्न होकर धना समय निर्गमन करने लगा ।

एकदिन अपनी कीर्तिके लिए लोकरितिके अनुसार धना ने नगरकी समीपवृति जगामें एक तालाब खुदवाना आरंभ किया ।

इधर धनसार श्रेष्ठीके घरमेंसे जबसे धना गया तब से उनकी स्थिति कमजोर पडने लगी और अन्तमें ऐसी स्थिति हो गई कि —

घृतं नास्ति तैलं नास्ति, नास्ति मुद्गो युगन्धरी ।
वल्लार्थं लवणं नास्ति, तन्नास्ति यत्प्रभुज्यते ॥

भावार्थ —" घी नहीं, तैल नहीं, मग या जुवार भी नहीं दालमे डालनेको नमक भी नहीं अर्थात् एसी कोई

भी वस्तु नहीं है कि जो खाई जासक" ऐसी स्थिति हो जाने से धनसार शेठने धनाकी दो पत्नियोंको तो उनके पियर (पिताके घर) भेज दिये और शालिभद्रकी बहेनसे कहा कि "हे वत्से! तू तेरे भाई के घर जा" तो सुभद्रा ने कहा कि –

सुखे च विभवोल्लासे, स्थेय स्त्रीभि पितुर्गृहम्।
श्वशुरस्य गृह दु से, सुखे तो स्थेऽपि सर्वदा ॥१॥

भावार्थ — "सुखमें और वैभवके समय स्त्रियोंको अपने पिताके घर जाना चाहिये और ससुरेके घरमें तो सुखमें, दु खमें, और खराब स्थितिमें सर्वदा रहना चाहिये।

बहुके ऐसे वचन सुन धनसार अत्यन्त हर्षित हुआ। फिर पुत्रों और बहुओंको लेकर वह रात्रिमें गांवसे निकल पड़ा और फिरता फिरता वह कौशाम्बी नगरीमें जा पहुंचा वहां उसने सुना कि,—'यहां पर एक तालाब खुदवाया जा रहा है।" इसलिये वह भी अपनी आजीविका चलानेके लिये कुटुम्ब सहित वहां गया। वहां पुरुषोंको सदैव दो दिनार और स्त्रियोंको एक दिनार दी जाती थी, व इसके अलावा खाया हुआ अन्न सबको दिया जाता था। इसलिए वह भी नौकरके दूसरे मजदूरोंके साथ कुटुम्ब सहित मजदूरी करने लगा। एक दिन धन्ना घोड़े पर सवार हो उस तालाबको देखने आया। वहां मजदूरोंके साथ अपने कुटुम्बको काम करता देखकर वह विचार करने लगा कि-" अहो! दैवने यह क्या किया?"

बीच बाजारमें गया। वहां उसने राजा द्वारा की गई यह घोषणा सुनि कि-राजाके भंडारमें एक अमूल्य रत्न है, उसकी जो परीक्षा करेगा उसको राजा निचे लिखी वस्तुए देगा —

हस्तिना शतमेकं च वाजिनां शतपंचकम् ।
सौभाग्यमंजरीं पुत्रीं ग्रामपंचशतीयुताम् ॥

"भावार्थ — एक सो हाथी, पांचसो घोडें और पांचसो गांव सहित सौभाग्यमंजरी पुत्री (देगा)"

यह उद्घोषणा सुन धना उसका निवारण कर राजसभामें गया, और रत्नकी परीक्षामें निपुण होनसे उसने उस रत्नकी परीक्षा की। राजाने विस्मित हो प्रचुर द्रव्य सहित उसे उसकी पुत्रिको विवाह दिया। वहां सुखमें निमग्न होकर धना समय निर्गमन करने लगा।

एकदिन अपनी कीर्तिके लिए लोकरिति के अनुसार धना ने नगरकी समीपवृति जगामें एक तालाव खुदवाना आरंभ किया।

इधर धनसार श्रेष्ठीके घरमेंसे जबसे धना गया तब से उनकी स्थिति कमजोर पडने लगी और अन्तमें ऐसी स्थिति हो गई कि —

घृत नास्ति तैल नास्ति, नास्ति मुद्गो युगंधरी ।
चल्लार्थं लवण नास्ति, तन्नास्ति यत्प्रभुज्यते ॥

भावार्थ —" घी नहीं, तैल नहीं, मग या जुवार भी नहीं चालमें डालनेका नमक भी नहीं अर्थात् एसी कोई

भी वस्तु नहीं है कि जो खाई जासके" ऐसी स्थिति हो जाने से धनसार शेठने धनाकी दो पत्नियोंको तो उनके पियर (पिताके घर) भेज दिये और शालिभद्रकी बहेनसे कहा कि "हे वत्से! तू तेरे भाई के घर जा" तो सुभद्राने कहाकि –

सुखे च विभवोल्लासे, सेव्य स्त्रीभिः पितुर्गृहम्।
श्वशुरस्य गृहं दुःखे, सुखे दौ स्थेऽपि सर्वदा ॥१॥

भावार्थ — "सुखके और वैभवके समय स्त्रियोंको अपने पिताके घर जाना चाहिये और सासरेके घरमें तो सुखमें, दुःखमें, और खराब स्थितिमें सर्वदा रहना चाहिये।

वहुके ऐसे वचन सुन धनसार अत्यन्त हर्षित हुआ। फिर पुत्रों और बहुओंको लेकर वह रात्रिमें गांवसे निकल पड़ा और फिरता फिरता वह कौशाम्बी नगरीमें जा पहुंचा वहां उसने सुना कि,— 'यहां पर एक तालाव खुदवाया जा रहा है।" इसलिये वह भी अपनी आजीविका चलानेके लिये कुटम्ब सहित वहां गया। वहां पुरुषोंको सदैव दो दिनार और स्त्रियोंको एक दिनार दी जाती थी, व इसके अलावा पकाया हुआ अन्न खानेको दिया जाता था। इसलिए वह भी सरोवरके दूसरे मजदूरोंके साथ कुटुम्ब सहित मजदूरी करने लगा। एक दिन धन्ना घोड़े पर सवार हो उस तालावको देखने आया। वहां मजदूरोंके साथ अपने कुटुम्बको काम करता देखकर वह विचार करने लगा कि–" अहो! दैवने यह क्या किया?"

गोभद्रो जनको यस्या, भद्रा यस्या जनन्यहो।
शालिभद्रानुजा सेय, शीर्षं वहति मृत्तिराम् ॥ १॥

भावार्थ —" जिसका पिता गोभद्र है और जिसकी माता भद्रा है। यह शालिभद्रकी कनिष्ट बहिन सिरपर मिट्टी उठाकर डालती है।"

यह विचार धनाने अनजान बन उनसे पूछा कि "तुम कहा रहते हो? और कहांसे आये हो?" सेठने लज्जा सहित अपने कुटुम्बका सब वृतान्त कहा और प्रार्थनाकी कि, "हे जगतपालक! मेरे कुटुम्बको छाछके बिना बड़ा कष्ट होता है इसलिए छाछ दिलानेकी कृपा करें।" धनाने कहा कि छाछ लेनेके लिए तुम तुम्हारी वहुओंको खुशी खुशी मेरे घर भेजना।" इससे वे चारों वहुएं वारिवारीसे छाछ लेनेके लिए उसके घर जाने लगी। एक दिन सुभद्राकी वारि होनेसे वह गई। उसको धनाने पूछा कि—"हे भद्रे तू कौन है?" वह लज्जासे नीचा मुह रखकर बोली कि—' तुम मुझे वार वार मत पूछो। मैं गोभद्र सेठकी पुत्री और शालिभद्रकी बहिन हू। तुम्हारे नामके एक श्रेष्टीके पुत्रके साथ मेरा विवाह हुआ था, परन्तु परम क्लेश होनेसे वे मुझे तज कर किसी स्थानको चले गये हैं। यह सुन धनाने पूछा कि— हे भद्रे! पतिके वियोगमे तू कसे रहती है? तू पतिव्रत छोडकर मेरेमे भोग भोगव यह सुन सुभद्राने कहा कि —

गतियुगलकमेरो मत्तपुष्पोत्करस्य
तिनयनतनुपूजा वाऽथवा भूमिपात
निमलकुलभवानाम गनाना शरीरम्
पतिकरकरजो वा सेवते महाजिह्व ॥१॥

भावार्थ — खीले पुष्पकी दो ही गति होती है या तो वह महादेवके शरीरकी पूजाके उपयोगमे आता है अथवा घर घर भूमि पर गिर पडता है इसी प्रकार निर्मल कुलमें उत्पन्न हुई स्त्रीयोंके शरीरका भी उसके स्वामीके हाथका ही स्पर्श होता है अथवा अग्नि ही उसका सेवन करती है।"

इस प्रकार अनेक प्रकारसे उसकी परीक्षा लेने पर उसे दृढ शीलवाली जान धनाने पुत्रका सब वृत्तान्त उससे कहा जिससे सुभद्रा उस अपना भर्तार जान लज्जाके मारे नीचे देखने लगी। धनाने उसे घरमे सुन्दर पदवी दे सबकी स्वामिनी बनाई।

धनमाग्ने जब यह बात सुनि तो वो लोगोंमें धनाकी निन्दा करते हुए धनाके घर पहुचा। धनाने उसे अपना परिचय दे, नमस्कार कर उसे अपने घर रक्खा। इसी प्रकार अपनी मा तथा बडे भाइयोंको भी अपने घरमें रक्खा फिर उन बडे भाईयोकी तीनो स्त्रियों बच रही जिन्होने सोचा कि,— ' अपने सासु-ससुर तथा स्वामीको धनाने कैद कर लिया है इस लिये उसकी फरियाद करनेके लिये हमे शतानीक राजाकी सभामे जाना चाहिये।" ऐसा निश्चय कर उन

वहुओंने राजसभामें जा राजाको आशींवाद देकर कहा कि, "हम उदर निर्वाहके लिये आपके नगरमें आई हैं, परन्तु तालाव खुदवाने वाले धनाने हमारे समस्त कुटुम्बको हर लिया हैं उनको जीवित बचाया है कि मार डाला है इसका भी हमे पता नही है। अत हे पाचवे लोकपाल[1] ! आप इसका पता चलाइये।" ऐसी पुकार सुन शतानीक राजाने अपने सेवकों भेज धनाको कहलाया कि,– 'इन प्रार्थियोंके कुटुम्बीजनो को जल्दी छोड दो।" धनाने उत्तरमे कहलाया कि,—मैं कदापि अन्याय नही करता और यदि करु तो भी उसमे राजाका दखल अदाजी करनेकी क्या आवश्यकता है?" ऐसे गर्विष्ट वचन सुन उसके राजाने जामाता होने पर भी राजाने उसपे मारनेको सेना भेजी, लडाइमे पुण्यशाली धनाकी विजय हुई। ईस पर प्रधानोने राजासे विनतिकी कि "हे राजेन्द्र ! धना कदापि ऐसा नही है कि वो कोई अनीति करे, वह ते। महा धर्मात्मा तथा परस्त्रीका सहोदर है, इस लिये इन स्त्रीयो को ही विशेष पूछनेसे सच बातका पता चलेगा" ऐसा कह राजाके मनको शा त कर प्रधानने उन स्त्रीयोंसे पृछा कि,– "क्या धना नामक कोई तुम्हारा स्वजन है? उन्होने उत्तर दिया की, "हा धना नामक हमारा देवर (पतिका लघुभ्राता) था। परन्तु वह तो घरकी समग्र लक्ष्मीका त्याग कर हमको छोड़कर न जाने कहा चला गया था। वह जीवित भी है या नहीं इसका भी हमको कुछ पता नही है।"

---

१ राजा पाचवा लोकपाल कहलाता है।

प्रधानोंने पूछा कि, क्या तुम तुम्हारे वर धनाके शरीर पर के कीसी चिन्हको जानते हो ?' उन्होने कहा कि— "हा, यह जब नाना बच्चा था तब उसे स्नान कराते हुए हमने उसके पैरमे एक पद्म चिन्ह अवश्य देखा था।" यह सुन प्रधानने धनाको वहा बुलवाया। धनाने वहा आ अपनी भाभियोंको नमस्कार कर कहा कि,– "क्या! श्रेणिक राजाकी पुत्रिके पति धनाको जान कर तुमने मुझे बुलवाया है।" इन स्त्रियोंने कहा कि,– "हम भक्ति पूर्वक तुम्हारे पैर धोकर तुम हमारे देवर हो या नही इसकी परीक्षा करेंगी" धनाने कहा कि,– "परस्त्रीके स्पर्श करनसे पाप लगता है। मैं तो पर स्त्रीसे बोलता तक नहीं फिर स्पर्शकी तो बात ही कहा रही?" फिर प्रधानों तथा राजाके कहने से धनाने हास्य करना छोडकर उनकी भाभियोंको आदर सत्कार सहित उसके घर भेजा। उसने उसको पाचसो गाव देकर दोना पत्नियोंको साथ ले धना राजगृह नगरी गया, वहा अन्य श्रेणीयोंकी चार लडकियोंसे उसने विवाह किआ इस प्रकार धनाके आठ स्त्रिये हो गई।

धन्नाके भाइयाने पाचसो गावोंमे अहंकारसे अपनी आज्ञाका पालन कराया। उनके दुर्भाग्यसे उन सब गावोंमे दुष्काल पड गया। लोग कौओंके समान गांव छोड छोड कर भग गये। वे दुर्भागी तीनों भाइ गहूंके पोठिये भर कर राजगृह नगरीमे बेचनेको आये। धनाने जब उनको देखा तो सत्कार पूर्वक उन्हे अपने घर ले गया परन्तु उन्हे छोटे

भाइने यहा रहना पसन्द नही किया, इस लियेउनके कहनेसे धनाने सब द्रव्यका बराबर हिस्सा कर उनको चोदह चोदह करोड सोनेकी मोहर दी । वे जब द्रव्यको लेकर नगरके बाहर जा रहे थ तो गावकी मर्यादमें ही धनके अधिष्ठायक देवोंने उसका रोका और कहा कि, "यह धन तुम्हारे भाग्य का नहीं है इस धनका भोक्ता तो भाग्यशाली धना ही है।" ऐसे वचन सुननेस उनका गर्व जाता रहा, और वे वापस लौट कर धनाकी शरणम चल गय । धनाने सत्कार कर उनको अपने घरम रक्खा इसलिये वे वहा सुख पूर्वक रहने लगे।

एक ज्ञान चार ज्ञानके धारक धर्मघोषसूरि वहा पधारे धना उनके भाइयो सहित सूरिको वन्दना करने गया । सूरिको वन्दना कर, देशना सुन उसने नम्रतापूर्वक उसने पूछा कि, "हे भगवान ! मेरे तीनो भाई किस कर्म वश निर्धन रह गय ?" जिसे सुन गुरुने उनका पूर्वभव सुनाया कि –

'किसी गावमे तीनों भाई काष्टके भारे बेचकर अपनी आजीविका चलाते थ । एकबार लकड़ी काटनेके लिए वे अपना भोजन साथमे लेकर वनमे गये । मध्याह्नकालमे भोजन करने बठे, उस समय कोई साधु मासक्षमणके पारणे वहा आये। उन्हें देख दान दानकी इच्छा होनेसे उन्होंने उनके भोजनमेसे दान दिया । किन्तु मुनिके जान पश्चात् वे पश्चाताप करने लगे कि, "हमने बड़ी भूल की, यह साधु बेकार ही अपना भोजन लेकर चलगया और हम भूखे रहगये । यह साधु किसी उत्तम कुलका न था, परन्तु उसमे उसका कोई दोष नही है

ा ही मूर्छ्र धन बेशाग धूग्र मरे।" इस प्रकार पश्चाताप ाते हुए व उनश पर गय। आयुष्यके क्षय होन पर वे अलङ्क्रिधान दयनरपा प्राप्त कर यहासे चलकर यहा उत्पन्न र हे। पूर्वमें मुनिदानदा दान देकर पश्चाताप करनसे इन्द्र न भवमें बारबार निरादन प्राप्त हुआ है। कहा है कि –

पश्चातापो न तत्कार्यो, दत्ते दाने मनीषिभि ।
किंतु पुण्यद्रुमो मानसेन परिषिच्यते ॥ १ ॥

भावार्थ — 'दान देकर मन्न पुरुषोंको पश्चाताप कदापि ही करना चाहिये। परन्तु भावसम जल द्वारा पुण्य रूपी दक्ष सिंचन करना चाहिये।

फिर शालिभद्रकी बहिन सुभद्राने गुरुसे पूछा कि, हे गुरु! किस कमने मुझ मिट्टी ढाना पड़ा?' गुरुने हा कि, "यह पूर्वभवमें धना एक बुढ़ियाका यह पुत्र था ौर गौव चराया करता था इस समय तुम चार स्त्रियाव सके पड़ोसम रहने वाली पड़ोसिनियाँ थी। धन न ्ौर माती ौर उसकी माता जब रोने लगी तो उस समय तुम चारों याऽ पड़ोसिनियोंने इकट्ठी होकर उसको खीर बनानेके लिए ुममेंसे एकने दूध, दूसरीने चावल, तीसरीने शक्कर और ोथीने घी दिया था उस कारणसे तुम चारोंने जो पुण्य पार्जन किया था उसके प्रभावसे इस भवमें तुम राजपुत्रि ादि हुई हो। अब हे सुभद्रा! तूने सिर पर मिट्टी ढोनेका ो कर्म बाधा था उसका कारण सुन। पूर्वमें तेरी दासीने

सिर पर छाणे उठाते समय अधिक भार लगनेसे तुझे कुछ निवेदन किया, जिस पर तूने तिरस्कार पूर्वक उससे कहा कि " तूतो बडी शेठाणी है। सेरेसे वजन कैसे उठा जा सके ? " ऐसे शब्दोंसे उसे बहुत दुःख हुआ। उसी कर्मसे तेरे शालिभद्रकी बहिन होते हुए भी तुझे मिट्टी वहन करनी पडी।"

इस प्रकार सबका सन्देहका निवारण कर गुरुने विहार किया। धना सदैव सुखमे मग्न रह समय निर्गमन करने लगा। अन्तमें किस प्रकार उसे वैराग्य प्राप्त होने पर उसने दीक्षा ग्रहण की इसका वृत्तान्त शालिभद्रकी कथामेसे सुज्ञ पुरुष पढ लेवें।

" जो निर्भागी पुरुष प्रथम मुनिको दान देकर पीछे पश्चात्ताप करते हैं वे रैवयोगसे मिले श्रेष्ट वाहनका त्याग कर उपरसे समुद्रमे झपापात करने जैसा करते हैं। "

[इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशप्रासादवृत्तौ पंचदशम स्तंभस्य अष्टादशाधिकद्विशततमः प्रबंध. ॥२१८॥]

व्याख्यान २१९

धर्मके चार भेद

दान सुपात्रे विशद च शील तपो विचित्र शुभभावना च
भवार्णवोत्तारणयानपात्र, धर्मं चतुर्धा मुनयो वदन्ति ॥१॥

भावार्थ – "सुपात्र दान, निर्मल शील, विचित्र प्रकारका तप और शुभ भावना–ये संसार समुद्रको तैरनेके चार वाहन समान धर्मके चार प्रकार मुनियोंने वर्णन किये हैं । किया जाता है –

ऐश्वर्यराजराजोऽपि रूपमीनध्वजोऽपि च
सीतया रावण इव त्याज्यो नार्या नर पर ॥१॥

भावार्थ – "चाहे ऐश्वर्यमें चक्रवर्ती सदृश और रूपमें कामदेव जैसा भी क्यों न हो फिर भी पर पुरुषका उसी प्रकार त्याग कर देना चाहिये जैसे कि रावणका सीताने त्याग किया था ।"

रावणने सीताको राज्य, अलंकार आदि दे कर अनेक प्रकारका लाभ बताया फिर भी वह महासती अपने शील व्रतसे भ्रष्ट नहीं हुई । कहा भी है कि –

सीतया दुरपवादभीतया पावके स्वतनुराहुतीकृता
पावकस्तु जलतां जगाम यत्र शीलमहिमा विजृम्भितः ॥१॥

सिर पर छाणे उठाते समय अधिक भार लगनेसे तुझे कुछ निवेदन किया, जिस पर तूने तिरस्कार पूर्वक उससे कहा कि " तूतो बडी शेठाणी है। तेरेसे वजन कैसे उठा जा सके ? " ऐसे शब्दोसे उसे बहुत दुःख हुआ। उसी कर्मसे तेरे शालिभद्रकी बहिन होते हुए भी तुझे मिट्टी वहन करनी पडी।"

इस प्रकार सबका सन्देहका निवारण कर गुरुने विहार किया। धना सदैव सुखमें मग्न रह समय निर्गमन करने लगा। अन्तमें किस प्रकार उसे वैराग्य प्राप्त होने पर उसने दीक्षा ग्रहण की इसका वृतान्त शालिभद्रकी कथामेंसे सुज्ञ पुरुष पढ लेवें।

" जो निर्भागी पुरुष प्रथम मुनिको दान देकर पीछे पश्चाताप करते हैं वे देवयोगसे मिले श्रेष्ठ वाहनका त्याग कर उपरसे समुद्रमे झपापात करने जैसा करते हैं। "

[इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशप्रासादवृत्तौ पंचदशम स्तंभस्य अष्टाटशाधिकद्विशततम. प्रबंध. ॥२१८॥]

व्याख्यान २१९

धर्मके चार भेद

दान सुपात्रे विशदं च शील तपो विचित्र शुभभावना च
भवार्णवोत्तारणयानपात्र, धर्मं चतुर्धा मुनयो वदन्ति ॥१॥

भावार्थ – "सुपात्र दान, निर्मल शील, विचित्र प्रकारका तप और शुभ भावना–ये संसार समुद्रको तैरनेके चार वाहन समान धर्मके चार प्रकार मुनियोंने वर्णन किये है। कहा जाता है –

ऐश्वर्यराजराजोऽपि रूपमीनध्वजोऽपि च
सीतया रावण इव त्याज्यो नार्या नरः परः ॥१॥

भावार्थ – "चाहे ऐश्वर्यमें चक्रवर्ती सदृश और रूपमें कामदेव जैसा भी क्यों न हो फिर भी पर पुरुषको उसी प्रकार त्याग कर देना चाहिये जैसे कि रावणका सीताने त्याग किया था।"

रावणने सीताको राज्य, अलंकार आदि दे कर अनेक प्रकारका लाभ बताया फिर भी वह महासती अपने शील व्रतसे भ्रष्ट नही हुई। कहा भी है कि –

सीतया दुरपवादभीतया पावके स्वतनुराहुतीकृता
पावकस्तु जलतां जगाम यत्तत्र शीलमहिमा विजृम्भितः ॥१॥

भावार्थ – " अपवादसे भयभीत हो सीताने अपना देह अग्निमे होम दिया था, परन्तु उस समय अग्नि भी जल सदृश शीतल हो गई थी, उसमे म त्र ल्लासमान शील का महिमा ही कारण भूत था, अत दूसरोंको भी शीलव्रत के पालन करनेका प्रयत्न करते रहना चाहिये । "

शील पालने पर दृष्टान्त

वसन्तपुरमे शिवंकर नामक व्रतधारी श्रावक रहता था। वहा एकबार धर्मघोषसूरि आये, जिनको वन्दन करने को शिवंकर गया । वन्दना कर गुरुके पास कुछ आलोचना ली और हर्षपूर्वक बोला कि, " हे भगवन ! मेरे मनमें लाख साधर्मि भाइयोंको भोजन करानेकी अभिलाषा है, परन्तु मेरे पास इतना द्रव्य नही है इस लिये अब मैं क्या करु कि जिससे मेरे मनोरथ पूर्ण हो सके ? " गुरुने कहा कि, " तू मुनिसुव्रतस्वामीकी वन्दनके लिये भरुच जा । वहा जिनदास नामक श्रावक रहता है, उसको सौभाग्य देवी नामक भार्या है उन दोनोंको तेरी सर्व शक्तिसे भोजन, अलंकार आदि देकर प्रसन्न कर उनके वात्सल्यसे तुझे लाख साधर्मीको भोजन करान जितना पुण्य प्राप्त होगा " इस प्रकार गुरुके वचन सुन उसने उनको प्रणाम किया और भोजनादिक भक्ति द्वारा जिनदासकी सेवा की ।

तत्पश्चात् शिवंकरने गांवमें जाकर लोगोंसे पूछा कि, ये जिनदास कैसा है ? सत्य है कि दम्भी ! लोगोंने कहा कि, " हे बाहु ! सुन, जब यह जिनदास सात वर्षकी

थयता था, तब वह एक दिन उपाश्रय गया जहां गुरुके मुहसे उत्तम शीलोपदेशमालाका व्याख्यान सुनकर उसने एकान्तरे ब्रह्मचर्य पालनेका नियम ग्रहण किया । इसी प्रकार सौभाग्य देवीने भी नाल्यावाश्रम साध्वीके पास एकान्तरे शीलपालना अंगिकार किया । दैवयोगसे उन दोनोंका परस्पर पाणी ग्रहण हो गया, परन्तु शीलपालनके प्रथम जिन दिनोंकी जिनदासको छूट थी उन दिनोंमें सौभाग्य देवीको नियम था और जिस दिन सौभाग्य देवीको छूट थी उस दिन जिनदासको नियम था ऐसी दशा होनेसे सौभाग्यदेवीने जिनदाससे कहा कि, "हे स्वामी! मैं तो निरन्तर शीलका पालन करूंगी, आप खुशीसे दूसरी व्याह साथ लगन कर लीजिये।" उसने कहा कि "मुझ तो फिर लग्न करनेकी आवश्यकता नहीं है क्योंकी मैं तो योग्य अवसर पर दीक्षा लूंगा।" फिर उन दम्पतियोंने गुरुके पास आ जीवन पर्यंत संपूर्ण लिये ब्रह्मचर्य अंगीकार कर लिया और पहेरामणा आदि कर श्री संघका भी सत्कार किया। उस दिन उन दम्पतिका सदृश बालब्रह्मचारी हम सुना तक नहीं।" इस प्रकार वृतान्त सुन शिवशंकर उस जिनदास का विशेष रूपसे सेवाभक्ति कर अपने गांव गया।

इसी प्रकार द्रौपदी, कलावती, शीलावती, सुभद्रा, सुदर्शन शेठ और जम्बूस्वामी आदिक सेंकडों दृष्टान्त शीलोपदेश माला' शीलकुलक आदिसे शीलव्रतके महात्म्य पर जाने जा सकते हैं।

अब तप धर्मका वर्णन किया जाता है तपके समान भाव मंगल दूसरा एक भी नहीं है, क्योंकी उसी

भवमें नियमा मुक्ति पाने वाले तीर्थ करोंने तप किया था, इस विषयमे कहा है कि–

सवच्छरमुसभजिणो, छम्मासा वद्धमाणजिणचन्दो।
इअ विहरिआ निरसणा, जइज्जए उवमाणेण ॥ १ ॥

भावार्थ —' ऋषभ स्वामीने एकवर्ष तक और जिनोंमे चन्द्र सदृश वर्धमानस्वामीने छ महिने तक निरन्तर अनसे (उपवास करके) विहार किया था, इसलिए दूसरोंको भी यथा शक्ति तपके विषयमें प्रयत्न करना चाहिये।"

तपसे इष्ट मनोरथकी सिद्धि होती है। चक्रवती राजा अट्ठम तप करके ही मागध, वरदाम नामा, सिन्धु और प्रभासका अधिष्ठायक देवोको जीतते हैं तथा हरिकेशी आदि मुनिकी तरह तपसे देव सानिध्य हो जाता है। श्री ऋषभदेव स्वामीकी पुत्री बाहुबलीकी बहिन सुन्दरीके समान तप करना चाहिये। उसका तप पर निचे लिखी प्रसिद्ध है।

सट्ठि वाससहस्सा, अनिलय अविलाइ विहिआइ।
जीए निक्खमणऽए, सा सुदरी साविआ धन्ना ॥ १ ॥

भावार्थ —' जिस सुदरी श्राविकाने दीक्षा लेनेके लिए साठ हजार वर्षतक निरन्तर आंबिल किये उसे धन्य है।" अपितु तपसे कोढ़ आदि व्याधिये भी नाश होजाती है।

छज्जइ सणकुमारो, तवबलखेलाइलद्धिसपन्नो।
निठुअखरडि अंगुलि, सुवन्नसोह पयासतो ॥ १ ॥

भावार्थ —" छखण्डके जीतने वाले सनत्कुमार चक्रव-
को तपके प्रभावसे खल्लौषधिआदि अनेक लब्धियें प्राप्त
ई थी, जिससे उसन उसकी कोढवाली अगुली पर थूक
सुवर्णसमान कान्तिवाली बना बतलाया था। सनतकुमारके
ता ग्रहण करने बाद जब उसके शरीरकी चिकित्सा करनेके
मिसे वैद्यका रूप धारण करके मिथ्यात्वी देव उसके परीक्षा
नको आये थे, बस समयकी यह घटना है। इसलिये तप
श्य करना चाहिये। कहा भी है कि –

विरज्य विषयेभ्यो यैस्तपे मोक्षफल तप ।
तैरेव फलमगस्य जगृहे तत्ववेदिभि ॥ २ ॥

भावार्थ — ' विषयोंसे विरक्त होकर जिसन मोक्ष
त देनेवाले तपका आराधन किया है उन्ही तत्वज्ञानियोंने
मनुष्यदेहका फल ग्रहण किया है।"

जो अपने स्वार्थके लिये त्रस एव स्थावर अनेक प्राणि
का क्षय करनेवाला, वज्र जैसे कठिन, लोहेके तपत गोले
मान जहा तहा विनाश करन वाला और वस्त्रादिक अनेक
तुओंका भी विनाश करनेवाला है एसा पुष्ट शरीर भी तदन
सार हा है, ईसके द्वारा तप साधन करलेना ही एक मात्र
र है। क्यो कि –

अथिरेण थिरो समलेण निम्मलो परवसेण साहिणो ।
देहेण जइ विढप्पाई धम्मो ता कि न पज्जुत ॥ १ ॥

भावार्थ —" यह देह अस्थिर, मलीन और पराधीन है इससे यदि स्थीर, निर्मल और स्वाधीन धर्मका उपार्जन किया जा सकता है तो उसका उपयोग क्यों न करना चाहिये ?" वह तप शरीरकी समाधिद्वारा करना चाहिये। कहा है कि —

सो अ तवो कायव्वो, जेण मणो अमुण न चिंतेइ।
जेण न इन्दियहाणि, जेण य जोगा न हायंति ॥ १ ॥

भावार्थ —" जिस तपके करनेसे मन अवगुणका चिंतन न करे, जिससे इन्द्रियोंकी हानि न हो, और जिसके द्वारा मन, वचन और कायाका योग क्षीण न हो ऐसा तप करना चाहिये।"

ऐसा तप जो मात्र कर्म निर्जराके लिये ही करना चाहिये। कहा है कि,—" इसलोक सम्बंधी सुख सम्पत्तिके लिए तप न करना चाहिये, परलोकमें सुख प्राप्त होनेकी अभिलाषासे भी तप नहीं करना चाहिये, लोगोंकी प्रसंशा प्राप्त करनेकी इच्छासे भी तप नहीं करना चाहिये। तप मात्र निर्जरा हेतुसे ही करना चाहिये।" विवेक रहित किया तप मात्र शरीरको कष्टकारक ही होता है। देखो! तामली तापसने जितना तप किया था उतना तप यदि कोई जैन शासनविधि अनुसार निरिच्छभावसे करे तो उससे सात जीव सिद्धिको प्राप्त हो सक्ते हैं परन्तु अज्ञानके दोषसे वह केवल ईशान देवलोकमे ही जा सका था।

अपितु तपस्वीको क्रोधका भी त्याग कर देना चाहिये। क्योंकि क्रोधरूपी अग्नि महान् तपको भी उसीप्रकार जला डालती है जैसे अग्नि चन्दनके काष्ट समूहको भी एक क्षणमात्र मे जला डालती है। कहा है कि —

एकेन दिनेन तेजोव्यूह षण्मासिक ज्वरो हन्ति।
कोप क्षणेन सुकृत यदर्जित पूर्वकोट्यापि ॥१॥

भावार्थ —जिसप्रकार एक दिनका ज्वर छ महिनेके तेज समूहका नाश कर देता है, उसीप्रकार कोप कोटिपूर्व द्वारा उपार्जित सुकृतका भी एक क्षणभरमें नाश कर देता है" अपितु —

द्रुमोद्भव हति विष न हि द्रुम न वा भुजगप्रभव भुजगमम्।
अत समुत्पत्तिपद दहत्यहो महोल्वण क्रोधहलाहल पुन ॥२॥

भावार्थ —"वृक्षसे उत्पन्न होनेवाला विष वृक्षका नाश नहीं करता और सर्पसे उत्पन्न हुआ विष सर्पका नाश नही करता परन्तु अहो! क्रोधरूपी महा भयंकर हलाहल विष तो अपने उत्पत्ति स्थानको ही जलाकर भस्म कर देता है।" अपितु —

कषाया देहकारायां, चत्वारो यामिका इव।
यावज्जाग्रति पार्श्वस्था तावन्मोक्षः कुतो नृणाम् ॥३॥

भावार्थ –देहरूपी केदखानेमें जबतक चार कषायरूपी चार चोकीदार समीपस्थित जगते रहते हैं तबतक मनुष्यका मोक्ष कैसे हो सकता है ?"

इसपर शुक्कागुली भमकारकका दृष्टान्त प्रसिद्ध है जिसे अन्य ग्रन्थोंसे पढ लेवे । यथाविधि तप करने वाले श्रावकों को अन्तमे उसका उद्यापन करनेसे बड़ा फल मिलता है कहा है कि –

वृक्षो यथा दोहदपूरणेन, कायो यथा षड्रसभोजनेन ।
विशेषशोभा लभते यथोक्तेनोद्यापनेनैव तथा तपोऽपि ॥१॥

भावार्थ –"जैसे दोहदपूर्ण करनेसे वृक्ष और छ रस के भोजनसे शरीर विशेष शोभाको प्राप्त होता है, उसीप्रकार विधिपूर्वक उद्यापन करनेसे तप भी विशेष शोभाको प्राप्त होता है । अपितु –

लक्ष्मी• कृतार्था सफल तपोऽपि, ध्यान सदोच्चैर्जिनबोधिलाभ•।
जिनस्य भक्तिर्जिनशासनश्रीर्गुणाः स्युरुद्यापनतो नराणाम् ॥२॥

भावार्थ –"विधिपूर्वक उद्यापन (उजमणा) करनेसे लक्ष्मी कृतार्थ हो जाती है, तप सफल हो जाता है, उच्च प्रकारका ध्यान प्राप्त होता है सम्यक्त्वकी प्राप्ति, जीनेश्वरकी भक्ति और जिनशासनकी शोभामें वृद्धि होती है आदि अनेक गुण होता है।"

श्री पेथड़ सघवीने नवकार मन्त्रके आराधनके लिए उजमणा किया था । जिसमें सुवर्ण मुद्रिका, मणि, मुक्ताफल, प्रवाला, सब किस्मके फल सर्वजातिके सोनैया आदि द्रव्य, सर्व जातिके पक्वान, चदरवा, महाध्वजायें आदि अड़सठ अड़सठ रखकर अति विस्तृत, सबको विस्मित करने वाला उद्यापन किया था । इस प्रकार अन्यको भी यथाशक्ति करना चाहिये ।

अब भावधर्मका वर्णन किया जाता है

दान तपस्तथा शील नृणा भावन वर्जितम् ।
अर्थहानि क्षुधापीडा कायक्लेशश्च केवलम् ॥१॥

भावार्थ —" भाव बिना दान करनसे मात्र द्रव्यकी हानि होती है, भाव रहित तपसे मात्र क्षुधा-पीड़ा ही सही जाती है, और भाव रहित शीलव्रतसे तो मात्र कायक्लेश ही होता है । इसके बिना अन्य कोई लाभ नही होता । "

भावना भरतचक्री सदृश भाना चाहिये कि जिससे भोग भोगने पर भी मुक्ति प्राप्त होसके । मरुदेवा माताने कभी कोई एकासना (व्रत) भी नही किया था फिर भी मात्र भावनासे ही उन्होंने मुक्ति प्राप्त की थी । तथा प्रसन्नचन्द्रमुनिको, वल्कलचीरीको और गौतम स्वामी द्वारा प्रतिबोधित पन्द्रहसो तापसोंको मात्र भावनासे ही केवलज्ञान प्राप्त हुआ था । कहा है कि —

थोवपि अणुठाण, भावविसुद्ध हणइ कम्ममलं ।
लहुओ वि सहस्सकिरणो, तिमिरसमूह पणासेइ ॥ १ ॥

भावार्थ —" अल्पमात्र अनुष्ठानभी यदि विशुद्ध भावसे किया होता तो वह कर्ममलका नाश कर देता है, क्योंकि छोटा (अल्प होता हुआ) भी सूर्य अधकार समूहका नाश कर देता है।"

भाव दो प्रकारका है । प्रशस्त और अप्रशस्त । इनमेंसे जिनाज्ञामे तत्पर होकर, किसीभी नियाणा रहित, इच्छा रहित, मात्र ससारका पार पानेके लिए, दानादि धर्मका विस्तार करनेसे प्रशस्त भाव होता है और किसी भी आशसादि दोष सहित दानादिक अनुष्ठान करनेसे अप्रशस्त भाव होता है।"

भावसे चित्तकी एकाग्रता रखनेसे जीव मोक्षगामी हुए हैं, परन्तु भावरहित अनेक प्रकारके दानादिक करनेसे एक भी जीव मोक्षमे नहीं गया हैं। साराश यह है कि—

चित्तमाध्यमिह दानमुत्तम, शीलमप्यविकल सुदुर्धरम्
दुष्कराणि च तपासि भावना, स्वीयचित्तवशगेति भाव्यताम् ॥१॥

भावार्थ —" मनके भावसे उत्तमदान देना, दु खसे पाल सके ऐसा निर्मल शील पालना, कष्टसे कर सके ऐसा तप करना और चित्तको स्थिर रखकर भावना भाना।"

[इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशप्रासादवृत्तौ प चदशस्तम्भस्य नवदशाधिकद्विशततम. प्रबध' ॥ २१९ ॥]

व्याख्यान २२०

विवेकी का कर्तव्य

विवेकवान्नर कश्चित्, स्वभावाद्धर्मतत्वताम्
शीघ्रं विज्ञाय गृह्णाति, कपिलाह्नगुरोरिव ॥१॥

भावार्थ – "कोई एक विवेकी जीव स्वभावसे ही धर्मतत्व को जानकर कपिल गुरुके समान तत्काल उसको ग्रहण कर लेता है।"

कपिल मुनिकी कथा

कौशाम्बी नगरीमें जीतशत्रु राजा राज्य करता था जिस के चौदह विद्याका पारगामी काश्यप ब्राह्मण पुरोहित था। उसके यशा नामक पत्नी और कपिल नामक पुत्र था। उस पुत्रके बाल्यावस्थामें ही उसका पिता मर गया, इसलिये कपिलको बालक तथा अज्ञानी जानकर राजाने उसके बापके स्थान पर अन्य किसी अयोग्य ब्राह्मणको पुरोहित पद स्थापन किया। वह सदैव घोडे पर बैठ, सिर पर छत्र रख अनेक सेवकों को साथ ले राजद्वारमें जाया करता था, उस समय उसे देख कपिलकी माता रुदन करती थी। एक बार अपनी माताको रोती देख कपिलने पूछा कि, "हे माता! तू इस ब्राह्मणको देखकर क्यों रोती है? मुझे इसका सच सच कारण बतला।" तब उसकी माताने कहा कि,— "हे पुत्र! तेरे

पिताके स्थान पर राजाने इस ब्राह्मणको रक्खा है। इस समय यह जैसा सम्पत्तिशाली दिखाई देता है, वैसे ही तेरे पिताभी प्रथम थे। इसलिये इसको देखने पर तेरे पिताका स्मरण हो आनेसे खेद वश मैं रोती हूं। तेरे मूर्ख होनेसे तेरे पिता की लक्ष्मी इसे प्राप्त हुई है" कपिलने कहा कि, हे माता! मेरे पिताका स्थान मुझे कैसे मिल सकता है?" उसने कहा कि, "तू विद्याअभ्यास कर कि जिससे राजा तुजे तेरे पिताके स्थान पर स्थापन करेंगे।" उसने कहा कि, "हे माता! मैं किसके पास पढ़ु?" उसने कहा कि "इस नगरीमे तो सब तेरे द्वेषी हैं, इसलिये तू श्रावस्ती नगरी चला जा। वहा तेरे पिताका मित्र इन्द्रदत्त पंडित ब्राह्मण रहता है वह तुजे समग्र कलाप्रवीण कर देगा।" यह सुन कपिल श्रावस्ती नगरी चला गया। वहा इन्द्रदत्तके चरणोंमे नमस्कार कर उससे नम्रतासे विनती की कि– "हे पूज्य काका! मेरी माताने मुझ तुम्हारी पास भेजा है, इसलिये मैं अभ्यास करनेको आया हूं।" यह सुन इन्द्रदत्तने उसे पुत्र समान गोदिमे बिठा खुशीके समाचार पूछे, फिर उसे भोजन कराकर कहा कि, "मैं तुझे विद्याभ्यास कराउंगा, परन्तु तेरे भोजनका क्या होगा? क्योंकि मेरे घरकी स्थिति ऐसी नही है कि मैं तुझे खिला सकूं" तब कपिलने कहा कि, मैं भिक्षावृत्ति कर निर्वाह करलुंगा, इन्द्रदत्तने कहा कि, "हे वत्स! भिक्षा लेनेके लिये भटकनेसे विद्याभ्यास नही हो सकता और भोजनके बिना भी अभ्यास नही हो सकता, क्योंकि बिना भोजनके मृदंग भी नही बज सकता। इसलिये पहले

भोजनके लिये प्रबध करना चाहिये। ऐसा कह उस बालक को साथ ले इद्रदत्त शालिभद्र शेठके घर पर गया। उसके घरके पास खडा हो उच्च स्वरसे गायत्री मत्रका उच्चारण कर यह घोषित किया कि यहा कोई ब्राह्मण है। शालिभद्र शेठने उसे बुलाकर पूछा कि, "हे ब्राह्मण! तुझको क्या चाहिये? जो इच्छा हो वो मागो" इद्रदत्तने कहा कि "यह ब्राह्मण पुत्र विद्याका अर्थी है। इसे आप सदैव भोजन करावे कि मैं इसे पढा सकू, मेरे पास धन नही है इसलिये मैं आप से इसके लिए सदैवका भोजन मागता हू।" यह सुनकर श्रेष्ठीने उसे सदैव भोजन कराना स्वीकार किया और उसी दिनसे कपिल इद्रदत्तके पास पढने लगा, और शालिभद्रके यहा भोजन करने लगा।

शालिभद्र शेठके यहाँ जब वह जीमने बैठता था, तब एक दासी उसे भोजन परोसने आया करती थी। उसके साथ हास्य विनोद करते करते अनुक्रमसे वह उस दासी पर आसक्त हो गया, और दासी भी उस पर मोहित हो गई और व दोनो स्त्री पुरुष की तरह क्रिड़ा करने लगे। "अहो! विषयको धिक्कार है। क्योंकि विषयमें आसक्त प्राणीको कृत्यका लेश मात्र भी भान नही रहता है, इस प्रकार क्रीड़ा करते उन्हे कुछ दिन व्यतीत हुए। एकबार दासीने कपिलसे कहा कि, "मेरे तो तुमही स्वामी हो परन्तु तुम धन रहित हो। इस लिये मैं मेरे निर्वाहके लिए अन्य पुरुषकी सेवा करना चाहती हू? पतिबुद्धिसे नही।" कपिलने उसकी स्वीकृति प्रदान की।

एकवार उस नगरमें सर्व दासियोंका कोई उत्सव था, उस समय उस दासीके पास माल आदि खरीद करनेको कोई भी द्रव्य न होनेसे वह बड़ी खिन्न हो गई। उसे उदास देखकर कपिलने पूछा कि, "हे प्रिया? तू आज उदास क्यों है?" उसने कहा कि 'आज सब दासियोंका उत्सव है, जिसके लिये पुष्पपत्र आदिकी आवश्यक्ता है। यदि मेरे पास पुष्पमालादि न हो तो अन्यदासियोंमें मेरी हांसी होती हैं।" उसके ऐसे वचन सुन उसके दुःखसे दुखित कपिल भी उदास हो गया, और कुछ भी न बोल सका। उसे इस प्रकार दुःखित देख दासीने कहाकि, 'हे स्वामी! आप खेद न करें। इस नगरमें एक धना शेठ रहता है। उसको जो प्रातःकाल जाग्रत करता है उसे वह दो मासा सुवर्ण देता है इसलिये यदि तुम वहां जाकर उसको प्रथम जगा दोगे तो वह तुम्हें दो मासा सोना देगा। वह तुम लाकर मुझे दे देना जिससे मेरा व तुम्हारा दोनोंका कार्य सिद्ध हो जायगा।" कपिलने यह बात स्वीकार की।

फिर वह कपिल उस दिनकी रात्रिमें, "दूसरा कोई प्रथम जाकर न जगा दे" इस भयसे मध्यरात्रिमें ही जग पड़ा और चान्दनी रात होनेसे कितनी रात्रि और अवशेष है इसका ध्यान रक्खे बिना ही वह चल पड़ा। मार्गमें जाते कोटवालने उसे चोर जानकर पकड़ा, और बांध दिया क्योंकि "चोरके आचरण भी वैसे ही होते हैं" प्रातःकालमें सिपाई उसे प्रसेनजित राजाके पास ले गये। राजाने उससे पूछा

कि, "हे ब्राह्मण! तू कौन है? कहां रहता है? और इस गांवमें क्यों आया है?" इसपर कपिलने पिछला सब वृत्तान्त कह सुनाया। जिसे सुन राजाको दया आनेसे उसने उससे कहा कि, "हे महात्मा! तेरी जो इच्छा है सो माग मैं तुझे तेरी इच्छासे अधिक ही दूगा!" कपिलने कहा कि, "हे राजन्! मैं विचार कर फिर मागुगा।" ऐसा कह वह अशोक वनमें जा विचार करने लगा कि, "दो मासा सोना मांगनेसे तो वस्त्र आदि कुछ नहीं आ सकते, इसलिये सो मोहर मांग लूं? सो मोहरसे भी घर, गहना आदि नहीं बनाये जा सकेंगे इसलिये हजार मागु? हजारसे भी पुत्रके विवाह आदि उत्सव नहीं हो सकेंगे इसलिये एक लाख मोहरें मागु? लाखमें भी दान, मानपूर्वक मित्र, बांधव गरीब आदि का उद्धार नहीं हो सकेगा, इसलिये करोड़ मागू? सो करोड़ मागु? हजार करोड़ मागु?" इसप्रकार विचार करते करते उसके शुभ कर्मका उदय हो जानसे उसको ऐसी बुद्धि उत्पन्न हुई कि—

जहा लाहो तहा लोहो, लाहलाहा पवड्ढइ।
दोमासकणयकज्जं, कोटिये वि न निठियं ॥ १॥

भावार्थ —"जैसे जैसे लाभ होता है, वसे वसे लोभ होता है। लाभसे लाभकी वृद्धि होती है क्योंकि दो मास सुवर्ण मोहरोंसे क्रोड तक भी उसकी पूर्ती नहीं हो रही है।"

"अहो! लोभरूपी सागर दुर्धर है, जिसको पूर्ण करनेकी किसीमें भी शक्ति नहीं है। मैं विद्याध्ययनके लिए यहां आया था, घर छोड़कर परदेशमें दूसरेके घर पर आया। इन्द्रदत्त मुझे धर्मार्थिसे ही विद्या पढाता है, और शालिभद्र शेठ भोजन कराता है तिसपर भी मुझ अल्पबुद्धिने यौवनके मदसे दासीके साथ गमन किया। मेरे निर्मल कुलको कलंकित किया इसलिये विषयोको ही धिक्कार है, कि जिसके लिये मनुष्य ऐसी हंसी एवं दुःखका पात्र बनता है। ऐसा विचार करते करते वह विषयोंसे विरक्त हो गया। उसे जातिस्मरण ज्ञान होनेसे वह स्वयंबुद्ध हो गया। उसने उसके सिरके बालोको अपने हाथसे ही उखाड़ दिया और देवताओं द्वारा दिये गये रजोहरण, मुख वस्त्रिका आदि मुनिवेशको धारण किया। तत्पश्चात् कपिल मुनि प्रसेनजित राजाके पास गया, राजाने पूछा कि, "यह क्या किया ?" उसने "जहा लाहो तहा लोहो०" यह गाथा सुनाकर अपने विचार प्रगट किये। राजाने कहा कि, 'मेरी आज्ञा है। तू सुखपूर्वक संसारिक भोग भोगव और दुष्कर व्रतको छोड़ दे।" कपिल मुनिने कहा कि, "ग्रहण किया हुआ व्रत मैं प्राणान्त होने पर भी नहीं छोड़ सकता। मैं अब निर्ग्रन्थ हो गया हूं, अतः हूं जाता ! तुमने लाभ हो।" ऐसा कह कपिल मुनि वहांसे निकल ममता रहित अहंकार रहित और इच्छारहित होकर विहार करने लगे। इस प्रकार व्रतका पालन करते हुए जब कपिल मुनिको छः महिने व्यतीत हो गये तो उन्हें केवल ज्ञान उत्पन्न हो गया।

राजगृह नगरीके पास अठारह योजन विस्तारवाली भयकर अटवी है जिसमें बलभद्र आदि पाचसो चोर रहते है वे बोध भोग्य है ऐसा जानकर कपिलमुनि अटवीमें गये। वे चोर उनके पास आये। पल्लिपतिने मुनिसे कहा कि, "क्या आपको नाचना आता है?" लाभ होता जान मुनिने कहा कि, "बिन बाजित्रके नृत्य नही हो सक्ता।" चोरोंने कहा कि, "हम हाथसे तालियें बजावेग, आप नाचिये।" इसपर कपिलमुनि यत्न पूर्वक नृत्य करने लगे, और चोर चारों ओर घूमघूम कर तालिये बजाने लगे। नाच करते करते मुनि प्राकृत भाषामें यह गाथा बोलने लगे कि—

अधुवे असासयमि, ससारम्मि दुक्खपुराए।

कि नाम हुज्ज त कम्म, जेणाहं दुग्गइ न गच्छेज्जा॥१॥

भावार्थ—"अधुव, अशाश्वत, और दु खसे पूर्ण इस ससारमे ऐसा कौनसा कर्म है कि जिससे जीव दुर्गतिमें न जाये?"

इसप्रकार कपिलमुनिने पांचसो गाथा कही जिनके सुननेसे उन पाचसो चोरोको बोध हो गया। उनको गुरूने चारित्र और देवताओंने मुनिवेष दिया, उसे धारणकर वे महर्षि हो गये। फिर वे सब केवली गुरुके साथ पृथ्वी पर विहार करने लगे। कई वर्ष विहारकर कपिल केवली मोक्ष सिधारे।

" " "इस प्रकार कपिलमुनिने सम्यक् भाव द्वारा केवलज्ञान प्राप्त किया, और बलभद्र आदि चोरोंको प्रतिबोधित कर सिद्धि पदको प्राप्त हुए।"

[इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशप्रासादवृत्तौ पञ्चदशम स्तंभस्य विंशत्यधिकद्विशततम प्रबन्धः ॥२२०॥]

व्याख्यान २२१

शुद्धव्रत पालनका फल

बहुकाल व्रत चीर्णं, सातिचारं निरर्थकम्।
एकमपि दिनं साधोर्व्रतं शुचि शुभकरम् ॥१॥

भावार्थ – अतिचार सहित बहुत समय तक व्रतका आचरण किया हो तो भी वह निरर्थक है, और एक दिन भी पवित्रतासे अर्थात् अतिचार रहित मुनिव्रतका पालन किया हो तो वह शुभ फलकी प्राप्ति कराता है"
इस पर एक दृष्टान्त है कि–

कंडरीक पुंडरीककी कथा

जम्बूद्वीपके महाविदेह क्षेत्रमें पुंडरीकिणी नगरी है। उसमें महापद्म नामक राजा राज्य करता था। उसके दो पुत्र थे। राजाको धर्म श्रवण करनेसे वैराग्य प्राप्त हो जाने पर

उसने अपने बडे पुत्र पुंडरीकको राजगादी दी, और छोटे पुत्र कंडरीकको युवराज पद दिया । वे दीक्षा ले कर्मका क्षय कर मुक्त हुए ।

एक बार कुछ साधु उस नगरमें आये, जिनको वन्दना करनेको दोनों भाई गये । उनको मुनिने धर्मतत्त्व समझाया कि —

भ्राम्यन् भवार्णवे प्राणी, प्राप्य कृच्छ्रान्नृणां भवम्
पातयन्तो हारयन्ति मुधा, कोऽन्यस्ततो जड ॥१॥

भावार्थ – जो प्राणी इस संसार समुद्रमें भटकते हुए महा कठिनतासे प्राप्त हुए इस वहाण सदृश मनुष्य भवको पाकर व्यर्थ खो देते हैं, उनसे अधिक मूर्ख दूसरा कौन कहला सकता है ?

इस प्रकार देशना सुन वैराग्य प्राप्त कर दोनों भाई घर आये । पुंडरीकने छोटे भाइसे कहा कि, " हे वत्स ! यह राज्य ग्रहण कर, मैं दीक्षा लूंगा ।" कंडरीकने कहा कि " हे भाई ! इस संसार दुःखमें मुझे क्यों डालना चाहते हो ? मैं तो दीक्षा लूंगा ।" बडे भाईने कहा कि, " हे भाई ! युवावस्थामें इन्द्रियोंका समूह नही जीता जा सकता और परिसह भी सहन नही हो सकते ।" कंडरीकने उत्तर दिया कि, "हे भाई ! नरकके दुःखसे परीसहादिक कोई अधिक नही हैं, इसलिये मैं तो चारित्र अंगीकार करूंगा ।" कंडरीकका ऐसा आग्रह

"इस प्रकार कपिलमुनिने सम्यक् भाव द्वारा केवलज्ञान प्राप्त किया, और बलभद्र आदि चोरोंको प्रतिबोधित कर सिद्धि पदको प्राप्त हुए।"

[इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशप्रासादवृत्तौ पञ्चदशम स्तम्भस्य त्रिंशत्यधिकद्विशततमः प्रबन्धः ॥२२०॥]

व्याख्यान २२१

शुद्धत पालनका फल

बहुकाल व्रत चीर्णं, सातिचार निरर्थकम्।
एकमपि दिन साधोर्व्रत शुचि शुभफलम् ॥१॥

भावार्थ – अतिचार सहित बहुत समय तक व्रतका आचरण किया हो तो भी वह निरर्थक है, और एक दिन भी पवित्रतासे अर्थात् अतिचार रहित मुनिव्रतका पालन किया हो तो वह शुभ फलकी प्राप्ति कराता है"
इस पर एक दृष्टान्त है कि –

कडरीक पुडरीककी कथा

जम्बूद्वीपके महाविदेह क्षेत्रमें पुण्डरीकिणी नगरी है। उसमें महापद्म नामक राजा राज्य करता था। उसके दो पुत्र थे। राजाको धर्म श्रवण करनेसे वैराग्य प्राप्त हो जाने पर

उसने अपने बड़े पुत्र पुंडरीकको राजगादी दी, और छोटे पुत्र कंडरीकको युवराज पद दिया । वे दीक्षा ले कर्मका क्षय कर मुक्त हुए ।

एक बार कुछ साधु उस नगरमें आये, जिनको वन्दना करनेको दोनों भाई गये । उनको मुनिने धर्मतत्त्व समझाया कि —

भ्राम्यन् भवार्णवे प्राणी, प्राप्य कृच्छ्रान्नृणां भवम्
पोतवद्यो हारयति मुधा, कोऽन्यस्ततो जड ॥९॥

भावार्थ – जो प्राणी इस संसार समुद्रमें भटकते हुए महा कठिनतासे प्राप्त हुए इस जहाज सदृश मनुष्यभवको पाकर व्यर्थ खो देते हैं, उनसे अधिक मूर्ख दूसरा कौन कहला सकता है ?

इस प्रकार देशना सुन वैराग्य प्राप्त कर दोनों भाई घर आये । पुंडरीकने छोटे भाइसे कहा कि, "हे वत्स ! यह राज्य ग्रहण कर, मैं दीक्षा लूंगा ।" कंडरीकने कहा कि "हे भाई ! इस संसार दुःखमें मुझे क्यों डालना चाहते हो ? मैं तो दीक्षा लूंगा ।" बड़े भाइने कहा कि, "हे भाई ! युवावस्थामें इन्द्रियोंका समूह नहीं जीता जा सकता और परिसह भी सहन नहीं हो सकते ।" कंडरीकने उत्तर दिया कि, "हे भाई ! नरकके दुःखसे परीसहादिक कोई अधिक नहीं है, इसलिये मैं तो चारित्र अंगीकार करूंगा ।" कंडरीकका ऐसा आग्रह

होनेसे पुडरिकने उसे आज्ञा दी, और उसने बडे उत्सव पूर्वक दीक्षा ग्रहण की। पुडरीक तो मन्त्रियोंके आग्रहसे भाव चरित्र ग्रहण कर घरमे ही रहा। कडरीक ऋषिने ग्यारह अगोका अध्ययन किया परन्तु सब सूखे भोजनसे तथा घोर तप करनेसे उसके शरीरमें अनेकों रोग उत्पन्न हो गये।

कुछ समय पश्चात् गुरूके साथ विहार करते हुए कडरीक मुनि अपने गावमे आये। पुडरीक राजा उन्हे वन्दना करने गया। सर्व साधुओंको वन्दना किया, परन्तु शरीर कृश होने से वे अपने भाईको न पहचान सके। इसलिये उन्होने गुरु महाराजसे अपने भाइके समाचार पूछा। गुरुने कडरीक मुनिकी ओर सकेत कर कहा कि, "ये जो मेरे पास बैठे हुए हैं वे ही तुम्हारे भाइ हैं।" राजाने उनको नमस्कार किया। फिर उनका शरीर रोगग्रस्त जान गुरुकी आज्ञा ले राजा उन्हे शहरमें ले गया, और उसकी वाहनशालामें रख अच्छी से अच्छी राजऔषधियो द्वारा उनको रोग रहित किया। यहा राज्य सम्बधी स्वादिष्ट भोजन करनेसे वे मुनि रस लोलुपी हो गये, जिससे उनकी यहासे विहार करनेकी इच्छा न हुई। इस पर राजा उन्हे सदैव कहने लगा कि, "हे पूज्य मुनि! तुमतो अहर्निश विहार करने वाले हो। द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव इन चारों प्रकारके प्रतिबधसे रहित हो। अब निरोगी होनेसे आप विहार करनेको उत्सुक होगे। आप निग्रथिको धन्य है। मै अधन्य हू क्योंकि मै भोगरुपि कीचड्में फसा हुआ दुख पाता हू।" आदि वचन राजाने

वारवार कहे, जिससे कडरीक मुनि लज्जित हो वहासे विहार कर गुरूके पास गये ।

एक दिन वसत ऋतुमे अपनी अपनी स्त्रियोंके साथ क्रीडा करते नगर जनोंको देखकर चारित्रावरण कर्मके उदयसे कडरीक मुनिका मन चारित्रसे चलायमान हो गया, इसलिये वह विना गुरुकी आज्ञा लीये ही पुडरीकिणी नगरीके समीप वर्ती वनमे चला आया, और पात्र आदि उपकरणाको वृक्ष की शाखा पर लटका कर कोमल कोमल हरे घास पर लौटने लगा । उसको इस प्रकार सयमसे भ्रष्ट चित्त हुए उसकी धाय माताने देखा । उसने नगरमें जाकर यह बात पुडरीक राजासे की । जिसे सुन राजा परिवार सहित तत्काल वहा पहुचा। उस समय कडरीकको चिन्तातुर, प्रमादी और भूमिको खोदते देखकर राजाने कहा कि, " हे सुख दुःखमे समान भाव वाले ! हे निस्पृह ! हे निर्ग्रंथ ! हे मुनि ! तुम पुण्यशाली हो, और सयम पालन करनेसे धन्य हो ।" आदि अनेक प्रकारसे उसकी प्रशसा की । फिर भी वह नीचे ही देखता रहा, और कुछ भी उत्तर नही दिया । इससे राजाने उसको सयमसे भ्रष्ट तथा सयमकी अनिष्टा वला जानकर पूछा कि, " हे मुनि ! इस भाईको क्यों नही देखते ? प्रशस्त ध्यानमे मग्न हो कि अप्रशस्त ध्यानमे ? यदि अप्रशस्त ध्यानमे आरूढ हो तो तुमने पूर्वमे बलात्कारसे बडा भाररात्र्य ग्रहण किया है जिससे चिन्हभूत पात्रादिक मुझे दो, और परिणाममे महान् विरस फल देनेवाले राज्यके चिन्हभूत यह पट्ट हस्ती आदि

तुम ग्रहण करो।" इस प्रकार राजाके वचन सुनकर कंडरीक बहुत हर्षित हुआ, और तत्काल यह हस्ती पर बैठकर नगरमे गया। सज्जनोंमे श्रेष्ट पुंडरीकने विलाप करती रानियों आदिको सापकी कांचलीके समान त्याग कर, यतिका वेष धारण कर तत्काल वहांसे विहार किया।

इधर कंडरीकने बहुत समयसे भूख होनेसे उसी दिन बिना भक्षाभक्षका विचार किये अनेक प्रकारका भोजन किया। उस आहारके कृश शरीरसे नहीं पचने तथा रात्रिमें भोग विलासके लिये जागरण करनेसे उसे तत्काल रात्रिमे ही विसूचिकाकी व्याधिने आ घेरा उसका पेट फूल गया, अपान वायु बन्ध हो गया, और तृषाक्रान्त होनेसे अत्यन्त पीड़ा पाने लगा। उस समय "व्रतका भंग करनेसे यह महान् पापी है" ऐसा सेवकोंने सोचकर उसका कोई उपचार भी नहीं किया। इसलिये उसने सोचा कि, "यदि यह रात्रि किसी तरहसे निकल जाये तो मैं प्रातःकाल ही सब सेवकोंको मरवा डालूंगा।" इसप्रकार रौद्रध्यान ध्याता हुआ उसी रात्रिको कंडरीक मरगया, और सातवी नरकमे अप्रतिष्ठान नामक नरकावासमे उत्पन्न हुआ।

पुंडरीक राजर्षिने तो अपने नगरसे रवाना होते ही अभिग्रह किया कि, "गुरूसे व्रतग्रहण करने ही बाद भोजन करुंगा।" ऐसे अभिग्रहसे मार्गमें क्षुधा, तृषा आदि परिषह सहन करते हुए भी तथा कोमल देहधारी होते हुए भी वह

किञ्चितमात्र भी खण्डित नहीं हुआ। दो दिनसे छट्ठका तप होते हुए भी उन्होंने पाम जा चारित्र ग्रहण किया। फिर गुरुकी आज्ञा से पारणा करनेके लिए गोचरी करने गये। जिसमें तुच्छ और लुखा आहार पाकर उससे ही उन्होंने पहले कभी नहीं किया था, इसलिये ऐसा आहार करनेसे उनको अतितीव्र वेदना हुई। फिर भी शुभ आराधना कर पुंडरीक राजर्षि मृत्युको प्राप्त हुए और सर्वार्थसिद्धि नामक विमानमें उत्पन्न हुए। इस विषयमें छट्ठ आगम कहा है कि —

वाससहस्सपि जइ, काउण वि संयम विउल पि।
अंते वि लिट्ठमाणो, न वि सिज्झइ कंडरीयव्व ॥ १॥

भावार्थ —" हजारों वर्ष तक विपुल संयम पालने पर भी यदि अन्तम क्लिष्ट अध्यवसाय हो जायतो वह कंडरीककी तरह सिद्धिपदको कदापि प्राप्त नहीं कर सकता।"

अप्पेणवि कालेण, केइ जहा गहियसीलसामन्ना।
साहंति नियय कज्ज, पुंडरिय महारिसीव्व जहा ॥ २॥

भावार्थ —"अल्पकालके लिये भी चारित्र ग्रहण कर जो उसका यथार्थरूपसे पालन करता है वह पुंडरीक सदृश अपने कार्यको सिद्ध करलेता है।"

" इसप्रकार सम्यक् प्रकारसे चारित्र पाल कर कई जीव मोक्षगतिको प्राप्त करते हैं और अन्य अतिचार सहित बहुत समय तक चारित्र पालते हैं फिर भी सिद्धिपदको प्राप्त नहीं कर सकते।"

[इत्यब्दिनपरिमितोपदेशप्रासादवृत्तौ पचदशम स्तम्भस्य एकविंशत्यधिकद्विशततम. प्रबंध ॥२२१॥]

व्याख्यान २२२

सत्संग

"उत्तम पुरुषको सत्संग करना चाहिये" ऐसे सत्पुरुषके शिक्षा वाक्यकी पुष्टिके लिये कहा है कि —

> उत्तमाधमयो संगफलं लब्धं परीक्षया ।
> प्रभाकरेण विप्रेण, ततः कार्या सुसंगतिः ॥ १ ॥

भावार्थ —" प्रभाकर नामक ब्राह्मणने उत्तम और अधम संगतिका फल प्राप्त किया है। उसका दृष्टान्त सुन सुज्ञजनों को परीक्षा कर सत्संग करना चाहिये ।"

प्रभाकर विप्रका दृष्टान्त

वीरपुर नगरमें दिवाकर ब्राह्मण रहता था, जो उसके षट्कर्ममें तत्पर था। उसके प्रभाकर नामक पुत्र था, जो सातों व्यसनोंमें आसक्त था, और निरंकुश हाथीकी तरह चारों ओर भटकता था। एक बार उसको उसके पिताने शिक्षा दी कि, "हे पुत्र ! तू सत्संग कर। धूर्त और अधम पुरुषोंके संगसे अच्छे शीलका भी नाश हो जाता है। कहा है कि —

> पश्य सत्संगमाहात्म्यं, स्पर्शपाषाणयोगतः ।
> लोहं स्वर्णीभवेत् स्वर्णयोगात् काचो मणीयते ॥ १ ॥

भावार्थ —"सत्संगका महात्म्य देखो कि पारस पथ्थरके योगसे लोहा भी सुवर्ण हो जाता है, और सुवर्णके योगसे काच मणि हो जाता है।"

विकाराय भवत्येव, कुलजोऽपि कुसंगतः।
कुलजातोऽपि दाहाय, शंखो वन्हिनिषेवणात् ॥ २॥

भावार्थ —"कुलवान् मनुष्य भी कुसंगसे विकारी होजाता है। देखो! उत्तम जातिका शंख भी यदि अग्निका सेवन करता है तो वो भी मात्र दाहके लिये ही होता है।"

अतः हे पुत्र! तू विद्वानोंका संग कर, शास्त्राभ्यास कर, काव्यरूपी अमृतरसका पान कर, कलायें शीख, धर्म कर, और अपने कुलका उद्धार कर। इस प्रकार अनेक शिक्षायें दीं परंतु वह तो कहने लगा कि —

न शास्त्रेन क्षुधा याति, न च काव्यरसेन तृट्।
एकमेवार्जनीयं तु, द्रविणं निष्फलाः कलाः॥ १॥

भावार्थ —"शास्त्रसे क्षुधाका नाश नहीं होता और काव्यके रससे तृषा नहीं जाती, इसलिये मात्र धनकाही उपार्जन करना चाहिये। इसके अतिरिक्त, सब कलायें निष्फल हैं।"

पुत्रकी इस युक्तिसे पिताजी खेदित होकर मौन रहा और अधिक शिक्षा देना बन्द कर दिया। उसकी मृत्युके समय वात्सल्यके लिए पुत्रको बुला कर कहाकि, "हे पुत्र!

यद्यपि तुझे मेरे वाक्या पर विश्वास नहीं है, फिर भी इस श्लोकको ग्रहण कर कि जिससे मेरा समाधि मरण हो सके।"

कृतज्ञस्वामिम सर्ग मत्तमस्त्रीपरिग्रहम्।
कुर्वं मित्रमलोभ च, नरो नैवावसीदति॥ १॥

भावार्थ —"कृतज्ञ (इज्जत करनेवाले) स्वामीका सग करने वाला, उत्तम कुलकी स्त्रीके साथ विवाह करने वाला, और निर्लोभी पुरुषसे मित्रता करने वाला कभी दुःख नहीं पाता है।"

उत्तमं सह सागत्य, पडितैः सह सकथाम्।
अलुधैः सह मित्रत्व, कुर्वाणो नैव सीदति॥ २॥

भावार्थ —"उत्तम पुरुषोंकी सगति, पडितोंके साथ वार्तालाप और निर्लोभीसे मित्रता करने वाला मनुष्य कभी भी खेदित नहीं होता।"

इन दोनों श्लोकोंमेंसे एक श्लोक पिताके आग्रहसे प्रभाकरने ग्रहण किया। कुछ समय पश्चात् उसका पिता मर गया, फिर उस श्लोककी परीक्षा करनेके लिए प्रभाकर देशान्तरमें जाते हुए किसी गावमें एक सिंह नामक क्षत्रिय रहता था, जो बड़ा कृतघ्नी था, उसके आश्रित होकर रहा। उस सिंहके एक अधम दासी थी, जिसको प्रभाकरने स्त्रीके रूपमें अपने घरमें रक्खा, और लोभनदी नामक अत्यन्त लोभी और निर्दाक्षिण्य जनामें मुख्य वणिकके साथ मित्रता की।

एक बार उस नगरके राजाने सिद्धको बुलाया, जिसके साथ प्रभाकर भी राजसभामें गया। "यह राजा विद्वानोंसे प्रीति करनेवाला है" ऐसा जानकर प्रभाकरने कहा कि —

मूर्खा मूर्खैः सम सग, गावो गोभिर्मृगा मृग ।
सुधीभिः सुधियो याति, समशीले हि मित्रता ॥ १ ॥

भावार्थ —' मूर्ख मूर्खके साथ, गाय गायोंके साथ, मृग मृगोंके साथ और पंडित पंडितके साथ मित्रता करते है अर्थात् समान स्वभाववालेकी ही मित्रता होती है।"

यह सुन राजा संतुष्ट हुआ, और प्रभाकरको बहुत गाव ग्राम आदि इनाम दिया तथा प्रभाकरने सिद्धको दे दिया। इस प्रकार अनेकवार उसने सिद्ध पर उपकार किया। दासीको भी वस्त्रालकार आदि पुष्कल द्रव्य दिया और लोभनदी मित्रको भी समृद्धिशाली बना दिया।

सिद्धको एक मोर अपने प्राणोसे भी अधिक प्यारा था। उसका मास खानेका दोहद उसकी दासी, जिसको प्रभाकरने स्त्री बनाकर रक्खा था, उसे गर्भके अनुभावसे हुआ। प्रभाकरने अपने पिताके श्लोककी परीक्षा करनेके लिए उस मोरको किसी अन्यस्थानमें छिपाकर दूसरे मोरके माससे उसका दोहद पूर्ण किया। भोजनके समय सिद्धने हरएकस्थान पर अपने मोरकी खोज की, किंतु वह वहां नहीं मिला। इसलिये उसने उद्घोषणाकी कि, "जो मोरकी सूचना देगा उसे

सिंह राजा आठसो सोनाकी मोहरे देगा।" यह सुनकर उस दासीने सोचा कि "मेरे पतिने जो उसके मोरको मारडाला है, यदि यह सूचना मै सिंहको देदू तो मुझे ८०० सोनेकी मोहरे मिल जायगी। रहा पतिका प्रश्न, सो पति तो यदि प्रभाकर नही तो अन्य कोई भी दूसरा मिल ही जायेगा। ऐसा निश्चयकर द्रव्यके लोभसे सिंह राजाके पास गई और कहा कि, "हे राजा! प्रभाकरकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई है, क्योंकि उसे मैने स्वामीके प्रिय मोरको नही मारनेको कहा था, फिर भी उसने मेरा दोहद पूर्णकरनेके लिए दूसरे मोरको न लाकर आपके मोरको ही मारडाला है।" इस प्रकार दासीके वचन सुन क्रोधित सिंह ठाकुरने प्रभाकरको पकडनेके लिए सेवकोंको दौडाया। प्रभाकरने भी वृतान्त सुन कृत्रिम भयभित हो लोभनदी मित्रके घर जाकर उससे कहा कि, "हे मित्र! मेरी रक्षाकर, रक्षाकर," लोभनदीने वृतान्त सुनकर कहा कि, "तूने सिंह ठाकुरका क्या बिगाड किया है" प्रभाकरने कहा कि, "राजाके मोरको मेरी प्रियाके दोहद पूर्णकरनेको मैने मारडाला है।" इसपर उस अधम मित्रने कहा कि, "तू तो द्रोही है तुझे निर्भय स्थान कहा मिल सकता है? अपने घरमे जलता हुआ घासका पूला कौन फैंकेगा?" आदि कठोर शब्द कहे। जब प्रभाकर मित्रके घरमे घुसने लगा तो लोभनदीने जोरसे चिल्लाया, जिससे तत्काल राज सेवकोंने आकर उसे पकड लिया, और उसे सिंह राजाके पास लेगये। सिंहने भृकुटी तानकर कहा कि,

"हे अधम ब्राह्मण! मेरा मोर ला, अन्यथा तेरे इष्ट देवका स्मरण करले।" प्रभाकरने दीनता पूर्वक उत्तर दिया कि, "हे देव! आपही मेरे स्वामी, पिता और शरणभूत हैं इसलिये इस सेवकका यह एक अपराध क्षमा कीजिये।" ऐसे नम्रवचन कहने पर भी नीच प्रकृति सिंहने उसे मारडा लनेके लिये भटोंको सुप्रत कर दिया। प्रभाकरकी अर्ज पर कोइ ध्यान नही दिया गया। फिर प्रभाकरने मनमें सोचा कि, "मेरे तो पिताके वचन देव तुल्य हैं। उन वचनोंके उल्लं घनसे मुझे तत्काल यह फल मिला है।" ऐसा विचार कर गुप्त रखा मोर सिंह राजाको दे उसकी आज्ञा ले स्त्री तथा मित्रको वहीं छोड़ वह वहांसे चला।

मार्गमें जाते प्रभाकरने विचार किया के —

नृणां मृत्युरपि श्रेयान्, पंडितेन सह ध्रुवम्।
न राज्यमपि मूर्खेण, लोकद्वयविनाशिना॥ १॥

भावार्थ —"मनुष्योंको पंडितके साथ मरना श्रयस्कर है परन्तु मूर्खके साथ रहकर राज्य भी करना श्रेष्ठ नहीं है, क्यों कि मूर्ख की संगति इलोक और परलोक दोनोंका विनाश करने वाली है।"

अनुक्रमसे प्रभाकर चलते चलते सुन्दरपुर नगरमें पहुचा। वहां हेमरथ राजा राज्य चलाता था, जिसके गुण सुन्दर नामक पुत्र था। वह कुमार नीच पुरुषोंके संगसे और व्यसनसे रहित था, और कृतज्ञ, चतुर और प्रियजनों पर

प्रीति रखनेवाला था। उसको प्रभाकरने नगरके बहार शस्त्र-शास्त्रका अभ्यास करते देखा, इसलिये उसके पास जा विनय-पूर्वक उसने उसको नमन किया। कुमारने भी प्रसन्न दृष्टिसे उसके सामने देख उसका सत्कार किया। कहा है कि—

प्रसन्ना दृष्ट् मन शुद्ध, ललिता वाग् नत शिर ।
सहजार्थिंगिय पूजा, विनापि विभव सताम् ॥१॥

भावार्थ —" प्रसन्न दृष्टि, शुद्ध मन, सुन्दर वाणी और मस्तकका झुकाना ये बिना वैभवके भी सत्पुरुषोंकी सहज अर्थिक लिये पूजाकी सामग्री है।"

प्रभाकरने भी कुमारकी स्नेह पूर्वक बातचित देखकर सोचा कि—

अम्याशो विशदा मूर्तिर्मित च मधुर वचः ।
नयमौचित्यचातुय कटरे स्वच्छतात्मन ॥ १ ॥

भावार्थ —"अहो! इस कुमारकी निमल मूर्ति, परिमित और मधुर वचन, योग्यता पूर्वक सुंदर चतुराई और आत्माकी निमलता कितनी सुंदर है।"

बाल्येऽपि मधुरा केऽपि द्राक्षावत् केऽपि चूतवत् ।
विपाकेन कदापी द्रवाम्णीफलवत् परे ॥२॥

भावार्थ —"कई द्राक्षकी तरह बाल्यावस्थासे ही मधुर होता है, कई आम्र फलके सदृश परिणाममें मधुर

होते हैं, और कईतो इन्द्रवारुणीके फलके सदृश कदापि मधुर नहीं होते हैं।"

अपितु "यत्राकृतिस्तत्रगुणा वसन्ति" जहां मधुर आकृति है, वहां गुणका भी निवास है। ऐसी कहावत है आदि विचारकर प्रभाकरने उस कुमारकी सेवा स्वीकृतकी। कुमारने उसे साथमें रहनेको स्थान दिया जिसमें वह रहने लगा, फिर कौमारावस्थासे ही प्रेम सम्पादित की और स्थिरता विनयादिक गुणयुक्त किसी ब्राह्मण पुत्रिके साथ उसने विवाह किया, और वसन्त नामक किसी गृहस्थके साथ मित्रता की। यह श्रेष्ठी परोपकार करनेमें निरन्तर तत्पर रहता था, और उस नगरमें वह मुख्य गिना जाता था।

उस नगरके राजा [illegible] के मरने पर जब कुमार गुणसुन्दर राजा हुआ तो राज्यकार्यमें समर्थ प्रभाकरको उसने अपना मंत्री बनाया।

एकवार किसी अन्य राजाने राजा गुणसुन्दरको दो उत्तम लक्षणवाले घोडे भेट किये किन्तु उन घोडोंको विपरित शिक्षा दी हुई थी। इस बातको नहीं जानते हुए राजा और प्रधान उन घोड़ो पर सवार हो अश्वक्रीड़ा करने निकले। चाबुक लगनेसे दोनों घोडे बडे वेगसे दौड पडे। उनका वेग रोकनेको ज्यों ज्यों वे प्रयत्न करते त्यों त्यों वे और अधिक तेज[1] हो जाते, क्योंकि उन्हें तो विपरित शिक्षा

१ लगाम खिंचने पर खड़े रहनेके बदले अधिक दौड़नेकी उनको टेव डाली हुई था।

दी हुई थी। ऐसा करते वे बहुत दूर निकल गये और एक विकट अरण्यमें जा पहुचे। मार्गमें जाते हुए बुद्धिमान् मन्त्रीने एक आवलेके वृक्षसे तीन आवले ले लिये थे। अन्तमें थक कर कुमार तथा मन्त्रीने लगार ढिली छोड दी, जिससे घोडे तुरन्त खडे हो गये। वहासे वे वापस लौटे। मार्गमें जब राजाको अत्यन्त तृषा लगी तो मन्त्रीने उन्हे एक आवला भेट किया। थोडी दर बाद फिर तृषा लगनेपर दूसरा आंवला भेंट किया। फिर थोडी दर बाद तीसरा आवला भी दे दिया। इस प्रकार तीन आवलोंसे समय बीताया जितनेमें सेना भी आ पहुची उन्होने पानी पी स्वस्थ हो नगरमें प्रवेश किया।

गुणसुन्दर राजाका पुत्र पाच वर्षका हो गया था। वह सदैव मन्त्रीके घर क्रीड़ा करनेके आया करता था। एक बार परीक्षा करनेके लिए मन्त्रिने उस कुमारको छिपा दिया। भोजन समय राजाने उसकी सर्वत्र खोज कराई, किन्तु किसी भी स्थान पर उसका पता न चला। राजा अत्यन्त क्रोधित हुआ, और सब सेवक परिवारके मुख फिके पड़ गये। उस समय किसीने कहा कि, "आज कुमार मन्त्रीके घर गये थे" यह सुन सबने मन्त्री पर शका की। मन्त्री भी उस समय दरबारमें नहीं गया था। उसकी पत्नीने कहा कि, "हे स्वामी! आज दरबारमें क्यों नही गये?" मन्त्रीने कहा कि, "हे प्रिये! आज राजाको मुह बतानेकी मेरी शक्ति नही है, क्योंकि आज मैंने राजकुमारको मारडाला है।" उसने कहा कि, "हे नाथ! यह क्या किया? परन्तु अब आप

खेदमत करना। मै राजाके यह कहुगी, कि मैने ही गर्भके प्रभावसे दोहदके लिए राजपुत्रको, जो मेरी दृष्टिमें वैरीके समान दाह करता था, इसलीए मारडाला है। मै ईस प्रकार राजासे कहुगी। " इतनेम उसका मित्र श्रेष्ठी आया, उसने भी सब बाते सुनकर कहा कि, " मे ही राजाका कोप दूर करुगा तुम बिलकुल फिकर मत करना। ऐसा कह मत्री तथा उसकी भार्याको आश्वासन दे, वह राजाके पास गया और कहा कि, " हे देव! कुमारके सम्बन्धमे विपरीत हकीकत हो गई है परन्तु उसमे मत्रीका कोई दोष नही है।" उसी समय मत्रीकी स्त्रीने भी आकर कहा कि, " मेरे लोहके कारण यह अयोग्य कार्य मेरेसे होगया है।" उसके बाद मत्री भी आया और भयसे कापतासे वन कहने लगा कि, " हे राजन्! मै ही अपराधी हु। मै ही सर्वथा वध करने योग्य हू। मेरे किये अकार्यसे दुखी होकर मेरी स्त्री उसका अपराध होना कहती है।" यह सब बात सुनकर राजाने विचार किया कि, " यह मत्री सब प्रकारसे चतुर, हितकारी और आवले खिलाकर मेरे प्राणोकी रक्षा करने वाला है।" ऐसा विचार कर मत्रीको सब लोगोके समक्ष कहा कि—

मित्र त्व यदि नादास्यस्तदा धात्रीफलानि मे
तदा क्वाह क्व राज्य च क्व मुत क्व परिच्छद

भावार्थ—" हे मित्र! यदि उस दिन तू मुझे आवले नहीं देता तो आज मै कैसे होता? मेरा राज्य कहासे-

होता? पुत्र कैसे हुआ होता? और यह परिवार भी कहासे होता?

मन्त्रीने कहा कि —"हे प्रभु! आपको कृतज्ञता दिखाते हैं परन्तु मुझे कुमारकी हत्याको सो दंड देना चाहिये।" इसपर राजाने कहा कि, "तूने मुझे तीन आंवले दिये थे, उनमेंसे अभी तो मात्र एक ही खतम हुआ है।" यह सुन प्रधानने कहा कि, "हे गुणसागर! जब आप ऐसा कहते हैं, तो मैंने तीनों आंवले भर पाये, आप पुत्र सहित चिरकाल राज्य करें।" ऐसा कह राजपुत्रको ला उसके समक्ष उपस्थित किया। सब अत्यन्त हर्षित हुए। राजाने पूछा कि, "ऐसा क्यों किया?" तो मन्त्रीने अपने पिताके उपदेशसे लगाकर आज तककी सब घटनायें कह सुनाई। राजाने यह सब वृत्तान्त सुन उसकी बुद्धकी प्रशंसा होना लार लज्जित हुआ और मन्त्रीको उसका आधा आसन देकर कहा कि, "हे मित्र! मैंने तीन अमूल्य आंवलेमेंसे एक को जो मेरे पुत्रतुल्य माना सो उचित नहीं किया।" ऐसे कई प्रतिवाक्योंसे उसका सत्कार किया। इसप्रकार प्रभाकर मन्त्री उत्तम राजाका आश्रय पाकर बहुत सुखी हुआ और उनके साथ रहकर चिरकाल तक राज्यका प्रतिपालन किया।

"प्रभाकरकी तरह सज्जन और दुर्जनकी संगतीका फल प्रत्यक्ष देखकर विवेकी प्राणियोंको सुख और सद्गुण की प्राप्तिके लिए निरन्तर सज्जनोंका ही संग करना चाहिये।'

[इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशप्रासादवृत्तौ पंचदशमस्तंभस्य-द्वाविंशत्यधिकद्विशततम प्रबंध ॥ २२२ ॥

व्याख्यान २२३

अंतरंग छ शत्रुओंको जीतनेके विषय पर

काम क्रोधस्तथा लोभो, हर्षो मानो मदस्तथा ।
षड्वर्गमुत्सृजेदेन, तस्मिंस्त्यक्ते सुखी भवेत् ॥१॥

भावार्थ —"काम, क्रोध, लोभ, हर्ष, मान और मद इन छ शत्रुवर्गका त्याग कर देना चाहिये क्योंकि उनका त्यागनेसे ही मनुष्य सुखी बन सकता है।"

इस गाथाका विस्तारार्थ निम्नस्थ है।

काम अर्थात् पर स्त्री पर अथवा अविवाहिता (कुंवारी) स्त्री पर अति आसक्ति रखना। ऐसा काम रावण और पद्म नाभ आदिकी तरह विवेक तथा राज्यसे भ्रष्ट करते, और नरकादि गमनका हेतु भूत है। कहा है कि —

तावन्महत्त्वं पांडित्यं, कुलीनत्वं विवेकिता ।
यावज्ज्वलति चित्तान्तः पापः कामपावकः ॥१॥

भावार्थ —"जब तक मनुष्यके चित्तमें दुष्ट कामरूपी अग्नि प्रज्वलित नहीं होती, तब तक ही उसकी महत्ता, विद्वता, कुलीनपन और विवेकपन होता है।" अपितु

नान्यः कृतनयादाधिर्नाधिर्नान्य क्षयामयात् ।
नान्यः सेवकतो दुःखी नान्यः कामुकतोऽन्धलः ॥२॥

आग्यायिकानुरागी, भ्रमति सदा पुस्तकं श्रोतुम्।
दष्ट इव कृष्णसर्पं पलायते दानधर्मेभ्य ॥३॥

भावार्थ – "कथा सुननेका रागी लोभी सदैव पुस्तक श्रवण करनेको जाता है, परन्तु जब दान धर्मकी बात आती है उस समय मानो जैसे कृष्ण सर्पसे डसा गया हो वैसे वहांसे तुरन्त भग जाता है।"

उत्सृज्य साधुवृत्त, कुटिलधिया वंचित परो येन।
आत्मैव मूढमतिना, हतसुकृतो वंचितस्तेन ॥४॥

भावार्थ –"जिसने सदाचारका त्याग कर कुटिल बुद्धि से दूसरोंको सताया है उस मूढमतिको समझना चाहिये कि उसने ऐसा कर अपने सुकृतका ही नाश कर अपने आपको ही सताया है।"

महीयसाऽपि लाभेन, न लोभ परिभूयते।
मात्रासमधिक वृत्र, मात्राहीनेन जीयते ॥५॥

भावार्थ – 'द्रव्यादिक महान लाभसे भी लोभका अन्त नहीं होता, क्योंकि जो अधिक मात्रा वाला है वह कम मात्रा वालासे नहीं जीता जा सकता।"

मान अर्थात् अपने दुराग्रहको नहीं छोड़ना अथवा दूसरेके युक्तियुक्त वचनोंको नहीं मानना। यह मान तत्त्व असत्यके विचार नहीं करनेवाले दुर्योधन जैसे दुराग्रहीको विशेष होता है। कहा है कि –

दृग्भ्या निलोक्ते नोर्ध्वं, सप्तांगैश्च प्रतिष्ठित ।
स्तब्धदेह सदा सोष्मा, मान एव महागज. ॥१॥

भावार्थ –"मान एक बड हस्तीके समान है, क्योंकि हाथीकी तरह मानी पुरुष अपनी दृष्टिसे ऊँचा नहीं देखता, सप्ताग राजलक्ष्मीसे प्रतिष्ठित रहता है, उसका शरीर स्तब्ध हो जाता है, और सदैव ऊष्मासहित होता है, अर्थात् फूत्कार करता रहता है। इसप्रकार हाथी और मानीकी समानता है।"

ऐसे मानका त्याग करनेसे ही बाहुबलीको केवलज्ञान उत्पन्न हुआ था इसलिये इसका त्याग करना चाहिये।

मद अर्थात् प्राप्त हुए बल, कुल, ऐश्वर्य स्वरूप तथा विद्या आदिका अहंकार नहि करना, अथवा इसीको बलात्कार कर बाँध देना। कहा है कि –

एक सकलजनानां, हृदयेषु कृतासदोऽस्ति मदशत्रु ।
येनाविष्टशरीरो, न शृणोति न पश्यति स्तब्ध ॥१॥

भावार्थ –'मदरूपी शत्रु एक होने पर भी सब प्राणीयोंके हृदयमें निवास करता है, और मद शत्रु जिसके शरीरमें प्रवेश करता है, वह पुरुष स्तब्ध होकर न तो कुछ देख सकता है, न कुछ सुन सकता है।"

शौर्यमदो रूपमद', शृंगारमद कुलोन्नतिमदश्च ।
विभवमदो जातिमद', मदवृक्षा दहिनामेते ॥२॥

भावार्थ –"शौर्यमद, रूपमद, काममद, उच्चकुलमद, धनमद और जातिमद, ये मनुष्यके मदरूपी वृक्ष हैं ।

शौर्यमद स्वभुजदर्शी, रूपमदो दर्पणादिदर्शी च ।
काममद स्त्रीदर्शी, विभवमदस्त्वथ जात्यन्धः ॥ ३ ॥

भावार्थ –"शौर्यके मदवाला अपनी भुजाको ही देखता है, रूपके मदवाला आयना (काच) ही देखा करता है काम मदवाला स्त्रियोंको ही देखता रहता है, और वैभवका मदवाला तो जन्मान्ध सदृश ही होता है ।"

सावधयः सर्वमदा, निजनिजमूलक्षयेविनश्यति ।
गुरुमद एकः कुटिलो, विजृम्भते निरवधिभोगी ॥४॥

भावार्थ –"ये सब मद तो अवधिवाले होते हैं अर्थात् ये अपने अपने मूलके क्षय हो जाने पर नष्ट हो जाते हैं, परन्तु सर्प सदृश कुटिल एक गुरुमद तो एसा है कि जो बिना अवधिके ही विकसित हो जाता है ।"

मौनेन मामताना, नि.स्पन्ददृशि, प्रवृद्धविभवानाम् ।
भ्रूभगमुखविकारे, धनिकाना भ्रूयुगे चिटादीनाम् ॥५॥

जिह्वासु दुर्विदुषा, रूपवता दर्शनकेशवेशेषु ।
वैद्यानामोष्टपुटे, ग्रीवाया गुणिनियोगिगणवानाम् ॥६॥

स्कधतटे सुभटाना, हृदये वणिजा करेषु शिल्पवताम् ।
गडेषु कुजराणा, स्तनतटेषु तरुणीनाम् ॥७॥

भावार्थ –" सामन्तोंके मौनमें, अधिक वैभववालाके स्थिर [1]दृष्टिमें, धनिकके भ्रकुटीके भंगम अथवा मुहके विकारमें, विषयी (जार) पुरुषाके भ्रकुटीमें, उद्धत विद्वानोंके जबानमें, रूपवानके गात तथा कस रचनामें, वैद्योंके होठ पर, बड़े अधिकारी या सूरोंके ग्रीवाम, सुभटोंके रक्त पर, वणिकके हृदयमें कारीगरों के हाथमें' हाथियोंके गंडस्थलमें और स्त्रियोंके दृढ़ स्तनमें मद रहता है ।" उत्तम चित्तवालेको एमा मद कदापि नहीं करना चाहिये । क्यों कि —

पातालान्न समुद्धृतो बलिनृपो नीतो न मृत्यु क्षय ।
नोन्मृष्ट शशलाञ्छनस्य, मलिन नोमूलिता व्याधय ।
शेषस्यापि धरा निधृत्य न कृतो भारावतार क्षण ।
चेत सत्पुरुषाभिमानगणना मिथ्या वहँल्लज्जसे ॥८॥

भावार्थ — ' हे आत्मा ! तू न पातालमेंसे बलि राजाका उद्धार नहीं किया, यमराजाका क्षय नहीं किया, चन्द्रका कलक दूर नहीं किया, व्याधियोंको निर्मूल नहीं कि, तथा पृथ्वीको धारण कर शेष नागका एक क्षण भर भी भार हलका नहीं किया तो फिर सत्पुरुषपनके अभिमानकी व्यर्थ डींग हांकते तुझे शरमाना चाहिये ।"

हर्ष अर्थात् बिना कारण ही दूसरोंको दु ख देकर अथवा स्वय शिकार या द्यूत आदि व्यसनोंको अगीकार कर मनमें खुश

---

[1] वैभव मदवाले ऊंचे नहीं देखते ।

होना, यह हर्ष दुर्ध्यानमें मग्न चित्तवालेको ही अच्छा लगता है। कहा है कि—

परवसण अभिनदइ निरवरको निदउ निरणुतावो।
हरिसिज्जइ कयपावो रुद्दज्झाणोवगयचित्तो ॥ १ ॥

भावार्थ – रौद्रध्यानमें अवगत चित्तवाला प्राणी दूसरों को कष्टमे पड़ा देखकर खुश होता है' निरपेक्षनसे रहता है, निर्दइ होता है, पापकर पश्चातापं नही करता परन्तु पापकर उलटा खुश होता है।"

तुष्यन्ति भोजनैर्विप्रा, मयूरा घनगर्जितै।
साधव परकल्याणे, खला परविपत्तिभि ॥२॥

भावार्थ – ब्राह्मण भोजनसे हर्षित होते है, मयूर मेघ गर्जनसे हर्षित होते है, साधू पर कल्याणसे हर्षित होते हैं, और खल पुरुष दूसरोंकी आपत्ति देखकर हर्षित होते है।"

देखो! दुर्योधन यह सुनकर तथा देखकर अत्यन्त हर्षित हुआ था' कि वनवासमें पाडव दु खीत है। इसी प्रकार धवल श्रेष्ठी श्रीपाल राजाको समुद्रमे फेक अपनी इष्ट सिद्धि हुई मान अति हर्षित हुआ था।

उपरोक्त छ अतरग शत्रुओके निद्य होने, अपकीर्ति तथा अनर्थके हेतु भूत होनेसे और परलोकमे दुर्गतिके कारण होनेसे विवेकी पुरुषोंको त्याग देने योग्य है।

"जो विवेकी महात्मा ईन छ अंतरंग शत्रुओंका त्याग कर देते है, वे गृहस्थाश्रममें रहते हुए भी धर्मकार्य, सत्कीर्ति सुख और शोभा आदिको प्राप्त करते है ।"

[इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशप्रासादवृत्तौ पंचदशस्तम्भस्य त्रयोविंशत्यधिकद्विशततम प्रबंध ॥२२३॥]

व्याख्यान २२४

कर्मयोगसे पतित होने पर भी जो फिरसे अपने आत्माको तारता है, उसे धन्य है।

शिथिला संयमे योगे, भूत्वा भूयोऽप्रमादिनः ।
भवंति ते प्रशस्याः स्युर्यथा सेलकसाधुवत् ॥१॥

सेलकमुनिका दृष्टान्त।

जब नो (९) योजन विस्तार वाली और बारह योजन लम्बी द्वारिका नगरीमें कृष्ण वासुदेव राज्य करते थे, उस समय सोलह हजार राजा उनकी आज्ञामें थे । उनके प्रद्युम्न आदि साडे तीन करोड़ पुत्र थे । उनमें शाम्ब आदि पुत्र किसीसे दमन करने योग्य न थे । इसी नगरीमें थावच्चा पुत्र नामक एक गृहस्थकुमार था, जिसको उसके माता पिताने एक ही दिनमें बत्तीस कन्यायें ब्याही थी । वह उनके साथ पंचेन्द्रिय विषय सुख भोगता था । एक दिन दस धनुष्य प्रमाण ऊंचि कायावाले श्री नेमिनाथ तीर्थंकर अठारह हजार साधु परिवार सहित वहां समवसर्य, जिनकी सूचना वनपालकके मुहसे

सुन वासुदिकी भेरीसे उद्घोषणा करा चतुरंग सेना सहित श्रीकृष्ण प्रभुको वन्दना करने गये । सब पुरवासियोंके साथ थावच्चा पुत्र भी वन्दना करने गये । वहां प्रभुकी धर्म देशना सुन बोधित हो थावच्चा पुत्रने घर लौटकर उसकी मातासे कहा कि, " मुझे दीक्षा दिलाओ " माताने संसारसुख का बहुत लोभ दिलाया, परन्तु उसके वचनका उस पर कोई प्रभाव नही पड़ा । तब उसकी माता कृष्णके पास गई और भेट रखकर विनती की कि, " हे राजन् ! दीक्षा लेनेको इच्छुक मेरे पुत्रको आप कुछ शिक्षा दीजिये, यदि यह मेरा एकाकी पुत्र दीक्षा ले लेगा तो मैं निराधार किस प्रकार जीवित रहूंगी ? कृष्ण उसको धीरज बंधा, सेना लेकर उसके घर पर गये, और थावच्चा पुत्रसे कहा कि– " हे वत्स ! तू संसारके विलासों को आनन्दसे भोग, हमारी छत्र छायामें तेरा कोई अहित नही कर सकता । " इस पर थावच्चा पुत्र हंस कर बोला कि,– ' हे राजन एक मृत्यु ही मुझ अनन्त बार विडंबना देती है, यदि आप मेरे इस अहितका निवारण कर सके तो समझुंगा कि आप मेरे सचमुच हितवांछक है । " कृष्णने कहा कि, ऐसा तो परमानन्दकी प्राप्ति होने पर ही संभव है " तब थावच्चा पुत्रने उत्तर दिया कि इसीलिये मृत्यु द्वारा किये अहितका निवारण करनेके लिये ही मैं श्री नेमिनाथके चरण कमलोंकी सेवा करनेका इच्छुक हूं ।"

इस प्रकारका दृढ विश्वास देखकर कृष्णने हर्षित होकर नगरमें उद्घोषणा कर दी कि– " इस थावच्चा पुत्रके साथ

जो कोई दीक्षा ग्रहण करेगा, उसके कुटुम्बका पालन पोषण तथा दीक्षाका उत्सव कृष्ण स्वयं करेंगे।" इसी उद्घोषणा होनेसे एक हजार पुरुष दीक्षा लेनेको तैयार हो गये। इन सबके साथ थावच्चा पुत्रका दीक्षा महोत्सव कृष्णने किया। हजार पुरुषोंसे वहन हो सके ऐसी शिविकामें बैठकर हजार दीक्षाभिलाषी पुरुषों सहित थावच्चा पुत्र श्रीनेमीश्वर पास गया। उस समय थावच्चा माताने प्रभुसे कहा कि, "इस शिष्य रूप भिक्षाको ग्रहण कीजिए, और इसे दोनों प्रकारकी शिक्षा प्रदान कीजिये।" फिर उसने अपने त्यागी पुत्रसे कहा कि—"हे पुत्र! इस चारित्र पालनमें किंचित् मात्र भी प्रमाद मत करना।" तत्पश्चात् थावच्चा पुत्रने हजार पुरुषों सहित प्रभुके पास प्रव्रज्या ग्रहण की। अनुक्रमसे सामायिकसे ले कर चौदह पूर्व तकका अभ्यास कर वे एक हजार शिष्योंके आचार्य हुए। एकवार जिनेश्वरकी आज्ञा लेकर विहार करते करते थावच्चापुत्र आचार्य सेलकपुरमें समवसरे। उस नगरमें पांचसो मंत्रियोंका स्वामी सेलक राजा राज्य करता था। उसने यह समाचार सुन आ कर आचार्यके पास धर्मदेशना सुनी और, पांचसो अमात्य सहित श्रावक धर्म अंगीकार किया।

सौगंधिकनगरमें सुदर्शन नामक एक सेठ्ठी रहता था। एकवार चारों वेदोंका ज्ञाता, तथा शौच, संतोष, स्वाध्याय, तप, तथा देवके ध्यान आदि नियमवाला, और गेरुए रंगके वस्त्रोंको धारण करनेवाला शुक नामक परिव्राजक एक हजार

शिष्यों (तपस्वियों) सहित वहां आया। उसका शौच मूलक सौख्य धर्म सुन कर सुदर्शनने उसे ग्रहण किया। एकबार विहार करते करते थावच्चापुत्र आचार्य उस नगरमें आया। उनका आना सुन सुदर्शनने उनकी परीक्षा लेनेके लिए उनके पास जाकर उनसे पूछा कि, "तुम्हारा शौच मूलक धर्म है या दूसरा?" सूरिने कहा कि, "हे श्रेष्ठी! हमारा विनय मूलक धर्म है। वह भी साधु और श्रावकके भेदसे दो प्रकारका है, और उसके अन्य क्षात्यादि दश प्रकार हैं।" ऐसे शब्दोंसे प्रतिबोध करा सुदर्शनको श्रावक धर्म अंगीकार कराया। वह जीवादि तत्त्वोंका स्वरूप जानकर अस्थिमज्जाए जैनधर्मका अनुयायी हुआ। तदनन्तर उसका पूर्वगुरू शुक परिव्राजक शिष्या सहित उस नगरमें आया। वहां सुदर्शनको अन्य धर्ममें आसक्त देख उसने कहा कि, 'अरेरे! क्या तू पाखंडियोंके चंगुलमें फँस गया?" श्रेष्ठीने कहा कि, "मेरे गुरू चार ज्ञानके धारक थावच्चापुत्र आचार्य यहीं पर हैं उन्होंने मुझे विनयमूल धर्म सिखाया है।" यह सुन शुक परिव्राजक अपने हजार शिष्या सहित उस श्रेष्ठिके साथ सूरिके पास जा उसने प्रश्न किया कि:—हे भगवन्! क्या तुम्हारे यात्रा, यापनिका, अव्याबाधा और प्रासुक विहार है?

सूरि—हे शुक! यह सब हमारे हैं।

शुक—हे स्वामी! तुम्हारे कौनसी यात्रा है?

सूरि—हे शुक! साधुओंको ज्ञानादिक तीन रत्न प्राप्त करने चाहिये। इसे यात्रा कहते हैं।

शुक—हे भगवन्! तुम्हारे यापना क्या है?

सूरि—हे शुक! यापना दो प्रकारकी होती है। इन्द्रिय यापना और नोइन्द्रिय यापना। इनमेंसे शुभ और प्रशस्त मार्ग के अनुसरणसे पांच इन्द्रिय संबन्धी यापना शुभ है और क्रोधादि रहित अन्तःकरण होनेसे नोइन्द्रिय यापना भी प्रशस्त है।

शुक—हे भगवन्! अव्याबाधा क्या है?

सूरि—हे शुक! त्रिविध प्रकारकी व्याधियें हमको नहीं सताती है। वह अव्याबाधा है।

शुक—हे आचार्य तुम्हारे प्रासुक विहार किस प्रकार है?

सूरि—स्त्री, पशु और नपुंसक रहित वसतीमें, जीव रहित स्थानमें, पाट-पाटली आदि यतनापूर्वक ग्रहण करके हम विचरते रहते हैं। यह हमारा प्रासुक विहार है।

तदन्तर शुक आचार्यने छट्ठे अंगमें वर्णित प्रश्न पूछे कि, "सरिसवया भक्षण करने लायक है कि वह अभक्ष्य है?" इसका योग्य उत्तर सुनकर वह सुलभबोधि शुक प्रतिबोधित हुआ, और अनुक्रमसे उसने सूरिपद प्राप्त किया। थावच्चा-पुत्र आचार्य अपना निर्वाण समय समीपजान हजार मुनियों सहित शत्रुंजय पधारे। वहां एक महिनेका अनशन ग्रहण कर अन्तकृत्केवली हो मुक्ति पद प्राप्त किया।

शिष्यों (तपस्वियों) सहित वहां आया। उसका शौच मूलक सौख्य धर्म सुन कर सुदर्शनने उसे ग्रहण किया। एकवार विहार करते करते थावच्चापुत्र आचार्य उस नगरमें आया। उनका आना सुन सुदर्शनने उनकी परीक्षा लेनेके लिए उनके पास जाकर उनसे पूछा कि, "तुम्हारा शौच मूलक धर्म है या दूसरा?" मुनिने कहा कि, "हे श्रेष्ठी! हमारा विनय मूलक धर्म है। वह भी साधु और श्रावकके भेदसे दो प्रकारका है, और उसके अन्य क्षात्यादि दश प्रकार हैं।" ऐसे शास्त्रोंसे प्रतिबोध करा सुदर्शनको श्रावक धर्म अंगीकार कराया। वह जीवादि तत्त्वोंका स्वरूप जानकर अस्थिमज्जाएं जैनधर्मका अनुयायी हुआ। तदनन्तर उसका पूर्वगुरू शुक परिव्राजक शिष्यों सहित उस नगरमें आया। वहां सुदर्शनको अन्य धर्ममें आशक्त देख उसने कहा कि, 'अरेरे! क्या तू पाखंडियोंके चगुलमें फँस गया?" श्रेष्ठीने कहा कि, "मेरे गुरू चार ज्ञानके धारक थावच्चापुत्र आचार्य यहीं पर हैं उन्होंने मुझे विनयमूल धर्म सिखाया है।" यह सुन शुक परिव्राजक अपने हजार शिष्यों सहित उस श्रेष्ठिके साथ सूरिके पास जा उसने प्रश्न किया कि —हे भगवन्! क्या तुम्हारे यात्रा, यापनिका, अव्याबाधा और प्रासुक विहार है?

सूरि—हे शुक! यह सब हमारे हैं।

शुक—हे स्वामी! तुम्हारे कौनसी यात्रा है?

सूरि—हे शुक! साधुओंको ज्ञानादिक तीन रत्न प्राप्त करने चाहिये। इसे यात्रा कहते हैं।

शुक—हे भगवन्! तुम्हारे यापना क्या है?

सूरि—हे शुक! यापना दो प्रकारकी होती है। इन्द्रिय यापना और नोइन्द्रिय यापना। इनमेंसे शुभ और प्रशस्त मार्ग के अनुसरणसे पांच इन्द्रिय सम्बन्धी यापना शुभ हैं और क्रोधादि रहित अन्तःकरण होनेसे नोइन्द्रिय यापना भी प्रशस्त है।

शुक—हे भगवन्! अव्याबाधा क्या है?

सूरि—हे शुक! त्रिविध प्रकारकी व्याधियें हमको नही सताती है। वह अव्याबाधा है।

शुक—हे आचार्य तुम्हारे प्रासुक विहार किस प्रकार है?

सूरि—स्त्री, पशु और नपुंसक रहित वसतीमें, जीव रहित स्थानमें, पाट-पाटली आदि यतनापूर्वक ग्रहण करके हम विचरते रहते हैं। यह हमारा प्रासुक विहार है।

तदन्तर शुक आचार्यने छट्ठे अगमें वर्णित प्रश्न पूछे कि, "सरिसवया भक्षण करने लायक है कि वह अभक्ष्य है!" इसका योग्य उत्तर सुनकर वह सुलभबोधि शुक प्रतिबोधित हुआ, और अनुक्रमसे उसने सूरिपद प्राप्त किया। थावच्चा-पुत्र आचार्य अपना निर्वाण समय समीपजान हजार मुनियों सहित शत्रुंजय पधारे। वहां एक महिनेका अनशन ग्रहण कर अन्तकेवली हो मुक्ति पद प्राप्त किया।

शिष्यों (तपस्वियों) सहित वहां आया। उसका शौच मूलक सौख्य धर्म सुन कर सुदर्शनने उसे ग्रहण किया। एकबार विहार करते करते थावच्चापुत्र आचार्य उस नगरमें आया। उनका आना सुन सुदर्शनने उनकी परीक्षा लेनेके लिए उनके पास जाकर उनसे पूछा कि, "तुम्हारा शौच मूलक धर्म है या दूसरा?" मुनिने कहा कि, "हे श्रेष्ठी! हमारा विनय मूलक धर्म है। वह भी साधु और श्रावकके भेदसे दो प्रकारका है, और उसके अन्य क्षात्यादि दश प्रकार हैं।" ऐसे शब्दोंसे प्रतिबोध करा सुदर्शनको श्रावक धर्म अंगीकार कराया। वह जीवादि तत्त्वोंका स्वरूप जानकर अस्थिमज्जाए जैनधर्मका अनुयायी हुआ। तदनन्तर उसका पूर्वगुरु शुक परिव्राजक शिष्यो सहित उस नगरमें आया। वहां सुदर्शनको अन्य धर्ममें आशक्त देख उसने कहा कि, "अरेरे! क्या तू पाखंडियोंके चंगुल्में फँस गया?" श्रेष्ठीने कहा कि, "मेरे गुरू चार ज्ञानके धारक थावच्चापुत्र आचार्य यहीं पर हैं उन्होंने मुझे विनयमूल धर्म सिखाया है।" यह सुन शुक परिव्राजक अपने हजार शिष्यों सहित उस श्रेष्ठिके साथ सूरिके पास जा उसने प्रश्न किया कि:—हे भगवन्! क्या तुम्हारे यात्रा, यापनिका, अव्याबाधा और प्रासुक विहार है?

सूरि—हे शुक! यह सब हमारे हैं।

शुक—हे स्वामी! तुम्हारे कौनसी यात्रा है?

सूरि—हे शुक! साधुओंको ज्ञानादिक तीन रत्न प्राप्त करने चाहिये। इसे यात्रा कहते हैं।

शुक—हे भगवन् ! तुम्हारे यापना क्या है ?

सूरि—हे शुक ! यापना दो प्रकारकी होती है । इन्द्रिय यापना और नोइन्द्रिय यापना । इनमेंसे शुभ और प्रशस्त मार्गके अनुसरणसे पाच इन्द्रिय सबन्धी यापना शुभ है और क्रोधादि रहित अन्तःकरण होनेसे नोइन्द्रिय यापना भी प्रशस्त है ।

शुक—हे भगवन ! अन्याबाधा क्या है ?

सूरि—हे शुक ! विविध प्रकारकी व्याधिये हमको नही सताती है । वह अन्याबाधा है ।

शुक—हे आचार्य तुम्हार प्रासुक विहार किस प्रकार है ?

सूरि—स्त्री, पशु और नपुसक रहित वसतीमें, जीव रहित स्थानमें, पाट-पाटली आदि यतनापूर्वक ग्रहण करके हम विचरते रहते हैं । यह हमारा प्रासुक विहार है ।

तदनतर शुक आचार्यने छट्ठे अगमें वर्णित प्रश्न पूछे कि, "सरिसवया भक्षण करने लायक है कि यह अभक्ष्य है ?" इसका योग्य उत्तर सुनकर वह सुलभबोधि शुक प्रतिबोधित हुआ, और अनुक्रमसे उसने सूरिपद प्राप्त किया । थावच्चा-पुत्र आचार्य अपना निर्वाण समय समीपज्ञान हजार मुनियों सहित शत्रुंजय पधारे । यहां एक महिनेका अनशन ग्रहण कर अन्तकेवली हो मुक्ति पद प्राप्त किया ।

निद्रा भग हुई, और वे यह कहते हुए बैठे कि "मुझे कौन जगाता है ?" तब पथक विनयपूर्वक नम्र होकर बोला कि, "हे स्वामिन् ! मुझे विचार है कि चातुर्मासीके क्षामणेके लिए मैंने आपको जगा दिया, अतः मेरा अपराध क्षमा कीजिये ।" इसप्रकार उसके विनय युक्त वाक्योंसे लज्जित होकर सेलकाचार्य उसकी अनुमोदना करने लगे, और प्रमादमें आसक्त हुए अपनी अनेक प्रकारसे निंदा करने लगे, "अरेरे ! मैंने रसमें गृद्ध होकर चारित्र रत्नको मलीन कर दिया । इस शिष्यको धन्य है, कि जिसने मुझ बाह्य तथा अभ्यन्तर दोनो दशाओंसे जागृत किया । अहो ! कहा मैं ? और कहा मेरा यह शिष्य ? मेरेमें और इसमें बहुत अन्तर है । मेरा गुरु तो सचमुच यह ही है, क्योंकि इस पथकने मेरा पथ प्रशस्त किया है । इसने सचमुच अपना "पथक" अर्थात् "मार्ग दिखाने वाला" नाम आज सार्थक कर दिया है । अपितु इसने वन्दना नहीं करने योग्य मुझको द्वादशावर्त वन्दनपूर्वक वन्दना की, और मेरे दोषोंको जानते हुए भी इसने उनको गुप्त ही रक्खा ।" इसप्रकार उसकी प्रशंसा कर सूरिने विचार किया कि, "कल मैं मडुक राजाकी आज्ञा लेकर यहांसे विहार कर फिरसे निर्मल संयमका पालन करूंगा ।" फिर उसी प्रकार कर, आलोचना द्वारा अपनी आत्मशुद्धि कर सेलक गुरु अनेक भव्य प्राणियोंको बोधित कर अन्तमें पांचसो मुनि सहित सिद्धाचल पर पधारे । वहां एक मासका अनशन कर मासके अन्तमें परमानंद पदको प्राप्त हुआ ।

" अठारहवें भद्र गुरुको भी प्रथम साधु, विना छोड़े श्रामणानि विधिके बहाने, मार्ग पर न आवे, और अन्तमें वे सेलक सूरि सिद्धाचल पर सिद्धिपदको प्राप्त हुए ।"

[इत्यब्दिनपरिमितोपदेशप्रासादवृत्तौ पञ्चदशमस्तम्भस्य चतुर्विंशत्यधिकद्विशततम प्रबन्ध ॥ २२४ ॥]

व्याख्यान २२५

कार्तिकी पूर्णिमाका माहात्म्य

य कुर्यात् कार्तिकी राकामत्राहंध्यानतत्पर ।
स भुक्त्वा सर्वसौख्यानि, निर्वृत्ति लभते तत ॥१॥

भावार्थ –' जो पुरुष यहां (सिद्धाद्रि पर) जिनश्वरके ध्यानमे तत्पर होकर कार्तिकी पूनम कर वह इस लोकमें सर्व सुख भोग कर फिर मोक्ष सुखको प्राप्त करता है ।"

एकेनाप्युपवासेन कार्तिक्या विमलाचले ।
ऋषिस्त्रीबालहत्यादि पातकान्मुच्यते जन ॥२॥

भावार्थ –' शत्रुञ्जयगिरि पर कार्तिक पूर्णिमाके दिन मात्र एक उपवास करनेसे मनुष्य ऋषि हत्या, स्त्री हत्या, और बालहत्या आदि पापोंसे मुक्त हो जाता है ।" इसपर निम्नस्थ दृष्टान्त है ।

निद्रा भंग हुई, और वे यह कहते हुए बैठे कि "मुझे कौन जगाता है?" तब पंथक विनयपूर्वक नम्र होकर बोला कि, "हे स्वामिन्! मुझे धिक्कार है कि चातुर्मासीके खामणेके लिए मने आपको जगा दिया, अतः मेरा अपराध क्षमा कीजिये।" इसप्रकार उसके विनय युक्त वाक्योंसे लज्जित होकर सेलकाचार्य उसकी अनुमोदना करने लगे, और प्रमादमें आसक्त हुए अपनी अनेक प्रकारसे निन्दा करने लगे, "अरेरे! मैंने रसमें गृद्ध होकर चारित्र रत्नको मलीन कर दिया। इस शिष्यको धन्य है, कि जिसने मुझे बाह्य तथा अभ्यन्तर दोनों दशाओंसे जागृत किया। अहो! कहा मैं? और कहा मेरा यह शिष्य? मेरेमें और इसमें बहुत अन्तर है। मेरा गुरु तो सचमुच यह ही है, क्योंकि इस पंथकने मेरा पथ दर्शन किया है। इसने सचमुच अपना "पंथक" अर्थात् "मार्ग दिखाने वाला" नाम आज सार्थक कर दिया है। अपितु इसने वन्दना नहीं करने योग्य मुझको द्वादशावर्त्त वन्दनपूर्वक वन्दना की, और मेरे दोषोंको जानते हुए भी इसने उनको गुप्त ही रक्खा।" इसप्रकार उसकी प्रशंसा कर सूरिने विचार किया कि, "कल मैं मंडुक राजाकी आज्ञा लेकर यहासे विहार कर फिरसे निर्मल संयमका पालन करूंगा।" फिर उसी प्रकार कर, आलोचना द्वारा अपनी आत्मशुद्धि कर सेलक गुरु अनेक भव्य प्राणियोंको बोधित कर अन्तमें पाचसो मुनि सहित सिद्धाचल पर पधारे। वहा एक मासका अनशन कर मासके अन्तमें परमानंद पदको प्राप्त हुआ।

"आचारसे भ्रष्ट गुरुको भी पांचसौ साधु, बिना छोडे क्षामणादि विधिसे बहाने, मार्ग पर ले आये, और अन्तमें वे सेलक सूरि सिद्धाचल पर सिद्धिपदको प्राप्त हुए।"

[इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशप्रासादवृत्तौ पंचदशस्तंभस्य चतुर्विंशत्यधिकद्विशततम प्रबंध ॥ २२४ ॥]

व्याख्यान २२५

कार्तिकी पूर्णिमाका माहात्म्य

य कुर्यात् कार्तिकी राकामत्रार्हद्ध्यानतत्पर ।
स भुक्त्वा सर्वसौख्यानि, निर्वृत्तिं लभते तत ॥१॥

भावार्थ –' जो पुरुष यहां (सिद्धाद्रि पर) जिनेश्वरके ध्यानमें तत्पर होकर कार्तिकी पुनम करे वह इस लोकमें सर्व सुख भोग कर फिर मोक्ष सुखको प्राप्त करता है।"

एकेनाप्युपवासेन कार्तिक्या विमलाचले ।
ऋषिस्त्रीबालहत्यादि पातकान्मुच्यते जन. ॥२॥

भावार्थ –' शत्रुंजयगिरि पर कार्तिक पूर्णिमाके दिन मात्र एक उपवास करनेसे मनुष्य ऋषि हत्या, स्त्री हत्या, और बालहत्या आदि पापासे मुक्त हो जाता है।" इसपर निम्नस्थ दृष्टांत है।

द्राविड वालिखिल्ल कथा ।

ऋषभदेवका द्राविड़ नामक पुत्र था । उसके द्राविड़ और वालिखिल्ल नामक दो पुत्र थे । एकवार द्राविड़को मिथिलाका राज्य और वालिखिल्लको लाख गाव देकर द्राविड़ने प्रभुके पास दीक्षा ग्रहण की । बादमें द्राविड़ने अपने छोटे भाइको अधिक सम्पत्तिवान् देखकर उसकी उन्नति सहन न कर सकनेसे उस पर द्वेष करने लगा । वालिखिल्ल भी यह हाल सुनकर बड़े भाईसे द्वेष करने लगा । इसप्रकार द्वेषी होनेसे एक दूसरेका राज्य छीननेका प्रयत्न करने लगा, और परस्पर अवसर ढूढने लगे । एकवार जब वालिखिल्ल द्राविड़के नगरमे आता था, तो द्राविड़ने उसे उसके नगरमे आनेसे रोका । जिससे वालिखिल्ल कुपित हुआ, और उसने युद्ध करनेको अपनी सेना एकत्रित की । द्राविड़ भी युद्ध करनेको तैयार हो गया । दोनों सामने-सामने आ गये । बीचमे पाच योजन युद्ध भूमि छोड़कर दोनोने सेनाका पड़ाव डाला । दोनोंकी सेनामे दस-दस लाख हाथी घोड़े और रथ थे, तथा दस-दस क्रोड़पति थे । निश्चित दिन युद्ध आरभ हुआ । हाथिवाले हाथि वालोंके साथ, और पत्ति पत्तिके साथ इसप्रकार समान युद्ध होने लगा । इसप्रकार निरन्तर युद्ध करते हुए सात महिने व्यतीत हो गये । जिसमें कुल दस क्रोड़ सुभट मारे गये । इतनेमे वर्षाऋतुके आ जानेसे युद्ध विराम कर वे लोग घास और पत्तोंकी झोंपडीये बनाकर वही रहे ।

अनुक्रमसे वर्षाकाल व्यतीत हुआ । सब धान्य और औषधियें पक गई । उस समय द्राविड़ अपने परिवार सहित वनकी शोभा देखनेको निकला । आगे जाते हुए अपने विमलमति प्रधानकी प्रेरणासे किसी तपस्वीके आश्रममें गया । वहां जटारूपी मुकुटसे सुशोभित, वल्कल वस्त्र धारण किये, दर्भासने बैठे सुवल्गु नामक कुलपतिको देखा । उसके पास अनेकों तपस्वी बैठे हुए थे । उसकी आकृति शांत एवं दयालु देख पड़ती थी, ऐसे कुलपतिको देख द्राविड़ राजाने उसे प्रणाम किया । मुनिने भी ध्यान छोड़ राजाको आशिर्वादिक वचनों द्वारा हर्षित किया । फिर कुलपति अनुग्रह बुद्धिसे धर्मदेशना देने लगा कि, "हे राजन्! यह संसाररूपी सागर अनन्त दुःखरूपी जलसे भरा हुआ है, काम क्रोधादिक मगर के समूहसे यह अति भयंकर है । इसमें समस्त जगतको हड़प करनेकी लालची लोभरूपी वड़वानल मौजुद है, और उसमें स्थित विषयरूपी आवर्तमें निमग्न हुए सुर, असुर और राजा आदि कोई भी उसमेंसे नहीं निकल सकते हैं । इस संसारमें जिसको राज्य मिला है, वो अन्तमें नरकगामी ही होने वाला है, अतः हे राजन्! तुझे ऐसे नरकरूप अनर्थको देने वाले राज्यके लोभसे भाईके साथ महा अनर्थकारी युद्ध करना योग्य नहीं है । जो एक रख्न मात्र पृथ्वीके लोभसे अपने बन्धु आदिका नाश करते हैं, वे अनन्त दुःख प्राप्त करते हैं । इसलिये हमारे भी कृष्णप्रभुके पौत्रोंको ऐसा क्लेश करना उचित नहीं है ।"

द्राविड वालिखिल्ल कथा ।

ऋषभदेवका द्राविड़ नामक पुत्र था । उसके द्राविड़ और वालिखिल्ल नामक दो पुत्र थे । एकबार द्राविड़को मिथिलाका राज्य और वालिखिल्लको लाख गाव देकर द्राविड़ने प्रभुके पास दीक्षा ग्रहण की । बादमें द्राविड़ने अपने छोटे भाईको अधिक सम्पत्तिवान् देखकर उसकी उन्नति सहन न कर सकनेसे उस पर द्वेष करने लगा । वालिखिल्ल भी यह हाल सुनकर बड़े भाईसे द्वेष करने लगा । इसप्रकार द्वेषी होनेसे एक दूसरेका राज्य छीनलेनेका प्रयत्न करने लगा, और परस्पर अवसर ढूढने लगे । एकबार जब वालिखिल्ल द्राविड़के नगरमें आता था, तो द्राविड़ने उसे अपने नगरमें आनसे रोका । जिससे वालिखिल्ल क्षुभित हुआ, और उसने युद्ध करनको अपनी सेना एकत्रित की । द्राविड़ भी युद्ध करनेको तैयार हो गया । दोनों सामने-सामने आ गये । बीचमे पाच योजन युद्ध भूमि छोड़कर दोनोंने सेनाका पड़ाव डाला । दोनोंकी सेनामें दस-दस लाख हाथी घोड़ और रथ थे, तथा दस-दस क्रोड़पति थे । निश्चित दिन युद्ध आरभ हुआ । हाथियाले हाथि वालोंके साथ, और पत्ति पत्तिके साथ इसप्रकार समान युद्ध होने लगा । इसप्रकार निरंतर युद्ध करते हुए सात महिने व्यतीत हो गये । जिसमें कुल दस करोड़ सुभट मारे गये । इतनेमे वर्षाऋतुके आ जानेसे युद्ध विराम कर वे लोग घास और पत्तोंकी झोंपडीयें बनाकर वही रहे ।

अनुक्रमसे वर्षाकाल व्यतीत हुआ । सब धान्य और औषधियें पक गई । उस समय द्राविड़ अपने परिवार सहित वनकी शोभा देखनेको निकला । आगे जाते हुए अपने विमलमति प्रधानकी प्रेरणासे किसी तपस्वीके आश्रममें गया । वहां जटारूपी मुकुटसे सुशोभित, वल्कल वस्त्र धारण किये, पर्यकासने बैठे सुवल्गु नामक कुलपतिको देखा । उसके पास अनेकों तपस्वी बैठे हुए थे । उसकी आकृति शात एव दयालु दिख पड़ती थी, ऐसे कुलपतिको देख द्राविड़ राजाने उसे प्रणाम किया । मुनिने भी ध्यान छोड राजाको आशिर्वादके वचनों द्वारा हर्षित किया । फिर कुलपति अनुग्रह बुद्धिसे धर्मदेशना देने लगा कि, "हे राजन् यह ससाररूपी सागर अनन्त दु खरूपी जलसे भरा हुआ है, काम क्रोधादिक मगर के समूहसे यह अति भयकर है । इसमें समस्त जगतको हड़प करनेकी लालची लोभरूपी वडवानल मौजुद है, और उसमे स्थित विषयरूपी आवर्तमे निमग्न हुए सुर, असुर और राजा आदि कोई भी उसमेसे नहीं निकल सकते हैं । इस ससारमे जिसको राज्य मिला है, वो अन्तमें नरकगामी ही होने वाला है, अत हे राजन् ! तुझ ऐसे नरकरूप अनर्थको देने वाले राज्यके लोभसे भाइके साथ महा अनर्थकारी युद्ध करना योग्य नहीं है । जो एक खड मात्र पृथ्वीके लोभसे अपने बन्धु आदिका नाश करते हैं, वे अनन्त दु ख प्राप्त करते हैं । इसलिये हमारे श्री कृष्णप्रभुके पौत्रोंको ऐसा क्लेश करना उचित नहीं है ।"

इसप्रकार कुलपतिके वचन सुन कर द्राविड़ राजा बोला कि,–" हे भगवन्! पूर्वमें भरत तथा बाहुबली आदिने भी इस कारणसे परस्पर युद्ध किये थे। फिर हमारा इसमें क्या दोष है?" मुनिने कहा कि, "हे राजन्! भरतने पूर्व जन्ममें साधुओंको आहार देकर चक्रवर्तीपन उपार्जन किया था, और बाहुबलीने साधुओंकी वैयावच्च करके बाहुका बल उपार्जन किया था। दोनोंको अपने अपने शुभ कर्मोका फल मिला था। भरत चक्रीने तो चक्ररत्न आयुधशालामें न देखनेसे युद्ध किया था और बाहुबलीने यह सोचकर कि, "पिताने जो मुझे राज्य दिया है उसे भरत ले लेना चाहता है। तो क्या मैं इतना निर्बल हु कि उसे देदू? अर्थात् उसकी आज्ञा मानलू? मैं तो पिताके चरण कमलों सिवा अन्यको मस्तक नही झुकाउगा? आदि कारणोंसे उनके युद्ध हुआ था। ऐसा होने पर भी देवताओंके कहनेसे उन दोनोंको बोध हो गया और उन्हान अपनी आत्माको तारलिया उस लिए हे राजन्! ऐसे पुरुष सिहकी तुम्हे स्पर्धा नही करना चाहिये।

इस प्रकार कुलपतिके वचन सुन द्राविड राजा लज्जित होकर पश्चाताप करने लगा। उस ने कहा कि, "हे मुनि! मुझ मूर्खने अज्ञानतासे मेरे काका की समानता ग्रहण की है परन्तु काच कभी भी चिन्तामणिके प्रभावको प्राप्त नही कर सकता। आपने मुझे घोर नरकमें पडनेसे बचालिया है और अब मेरे विवेकरुपी नेत्र खुल गये है" यह कह वह स्वय

अपने छोटे भाईको खमानेको गया। वालिखिल्ल भी बडे भाईको सन्मुख आते देख खुद ही उसके सामने गया, और उसके पैरोमे गिर पडा। द्राविड़ने उसे उठाकर स्नेह पूर्वक उसको आलिंगन किया। वालिखिल्ल बोला कि, "हे भाई! आप मेरे ज्येष्ट भ्राता है इसलिए मेरा राज्य ग्रहण कीजिये" द्राविड भी गद्‌ गद्‌ कंठसे कहने लगा कि, "हे भाई! राज्यसे क्या? इस संसारके काम भोग अनित्य हैं, दुर्गतिमे पड़ते प्राणियोंको धर्मके अतिरिक्त अन्य कोई वस्तु शरण भूत नही हैं इसलिये मुझेतो व्रत अंगीकार करना हैं, इससे तुझ खमानेके लिए आया हू।" छोटे भाईने कहा कि, "हे भाई! यदि आप सब प्रकारसे श्रय करने वाले व्रतके अभिलाषी हैं, तो मुझे भी वही अंगीकार करना है।" ऐसा कह दोनोंने अपने अपने पुत्रोंको राज्य सौंप अपने अपने मंत्रियों सहित दस करोड पुरुषोंके साथ तेज तापसके पास जा व्रत ग्रहण किया। वे सब कन्दमूलका आहार करते थे, गंगा जलमे स्नान करते थे, और अल्प कषाय तथा अल्प निद्रावाले बनकर जपमाला द्वारा श्री युगादीश्वर प्रभुका स्मरण करते थे। तथा परस्पर धर्मकथा करते थे, इस प्रकार उन्होंने एक लाख वर्ष वही निर्गमन किये।

एक बार नमि विनमी नामक विद्याधर राजर्षिके दो प्रशिष्य आकाश मार्ग द्वारा वहाँ आये। उनको उन सब तपस्वियोंने वन्दना कर पूछा कि, "तुम कहा जाते हो?" तब वे दोनो मुनि उनको धर्मलाभकी आशिष देकर बोले

कि, "हम पुंडरीक गिरिकी यात्रा करनेको जा रहे है।" तपस्वियोंने पूछा कि उसगिरिका कैसा माहात्म्य है?" मुनियोंने कहा कि —

अनंता मुक्तिमासेदुरा तीर्थप्रभावतः।
सेत्स्यंति बहवोऽप्यत्र शुद्धचारित्रभूषिताः ॥१॥

भावार्थ —" यहां (सिद्धाचल पर) तीर्थके प्रभावसे शुद्ध चारित्रसे सुशोभित अनन्त जीव मुक्ति गये हैं, और अब भी अनन्त जीव यहां सिद्धि पद प्राप्त करेंगे।"

इस प्रकार लाख वर्षतक कहते भी उस तीर्थकी महिमाका पार नहीं पा सकते। उस तीर्थमें नमि विनमि नामक मुनीन्द्र दो करोड़ मुनियों सहित पुंडरिक गणधरके समान फाल्गुन शुक्ल दसवीके दिन मोक्ष गये हैं। पूर्वमें श्रीमान् अनन्त ज्ञान गुण भंडार श्रीऋषभदेवके गणधर आदि केवलीके वचनसे जैसा कि हमने सुना है कि "भविष्यमे इस तीर्थमे अनेकों उत्तम पुरुष सिद्ध पदवीको प्राप्त करेंगे श्री रामचन्द्र राजर्षि तीन करोड़ मुनियोंके साथ सिद्धि प्राप्त करेंगे, इकानवे लाख मुनियोंके सहित नारदजी मुक्ति पावेंगे, साढे आठ करोड़ मुनियों सहित सांब और प्रद्युम्न सिद्धि पावेंगे, बीस करोड़ मुनियों सहित पांडव सिद्धि पायेंगे, थावच्चा पुत्र तथा शुक आचार्य आदि हजार हजार साधुओं सहित मुक्ति पावेंगे, पांच सो साधु सहित सेलक राजर्षि सिद्धि पायेंगे, तथा श्री ऋषभदेव स्वामीके शासनमें भी

असहय कोटिसह साधु मुक्ति पद प्राप्त करेंगे । इसका केवल ज्ञानी भी इस तीर्थका महिमा वर्णन करनम अशक्य है ।" आदि माहात्म्य सुनकर वे सब तपस्वि पुंडरीक तीर्थकी यात्रा करनेको उत्सुक हो गये, और उन्होंने भी मुनियोंके साथ उस और भूमि मार्गसे प्रयाण किया । मार्गमें वे विद्याधर मुनिके उपदेशमें उन सब तपस्वियोंने मिथ्यात्व क्रिया छोड लोच कर साधुधर्म अंगीकार किया । अनुक्रमसे दूरसे ही सिद्धाचलपर दृष्टि गोचर होने पर उन्हें अत्यन्त हर्ष हुआ । वहां जा, ऊपर चढ कर उन्होंने भक्ति पूर्वक श्री भरत चक्रीने बनाये चत्यमें युगादीश प्रभुको नमस्कार किया । तदनंतर मासक्षमणके अंतमें उन विद्याधर मुनियोंने उनसे कहा कि, " हे मुनियो ! तुम्हारे अनन्तकालसे संचित पाप कर्म इस तीर्थकी सेवासे क्षय हो जायगे, इसलिये तुम यहीं तप संयममें तत्पर रहो । " ऐसा कह वे दोनों मुनि वहांसे अन्यत्र विहार कर गये।

फिर वे द्राविड, वालिखिल्ल आदि दस करोड साधु वहीं रहकर तप करने लगे । अनुक्रमसे एक महिनकी संलेखना करते सब केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष सिधाये । उनके पुत्रोंने वहां आ उनके निर्वाण स्थान पर प्रासाद बनवाये । श्री ऋषभेशके निर्वाणसे पूर्व कोटी वर्ष व्यतीत होने पर द्राविड आदि मुनियोंका निर्वाण हुआ । काल क्रमसे वृतान्त नहीं जाननेवाले मिथ्यात्वी कार्तिक पूर्णिमाके दिन मिथ्या मोहसे शत्रुंजयको छोडकर अन्य सेंकडो क्षुद्र तीर्थोंमें भटकते रहते है ।

कि, "हम पुंडरीक गिरिकी यात्रा करनेको जा रहे हैं।" तपस्वियोंने पूछा कि इसगिरिका कैसा माहात्म्य है?" मुनियोंने कहा कि —

अनंता मुक्तिमासेदुरत्र तीर्थप्रभावतः ।
सेत्स्यन्ति बहवोऽप्यत्र शुद्धचारित्रभूषिताः ॥१॥

भावार्थ —" यहां (सिद्धाचल पर) तीर्थके प्रभावसे शुद्ध चारित्रसे सुशोभित अनन्त जीव मुक्ति गये हैं, और अब भी अनेका जीव यहां सिद्धि पद प्राप्त करेंगे।"

इस प्रकार लाख वर्षतक कहेतो भी उस तीर्थकी महिमाका पार नहीं पा सकते। उस तीर्थमें नमि विनमि नामक मुनीन्द्र दो करोड मुनियों सहित पुंडरिक गणधरके समान फाल्गुन शुक्ला दसवीके दिन मोक्ष गये हैं। पूर्वमे श्रीमान् अनन्त ज्ञान गुण भंडार श्रीऋषभदेवके गणधर आदि केवलीके वचनसे जैसा कि हमने सुना है कि "भविष्यमे इस तीर्थमें अनेकों उत्तम पुरुष सिद्ध पदवीको प्राप्त करेंगे श्रीरामचन्द्र राजर्षि तीन करोड मुनियोंके साथ सिद्धि प्राप्त करेंगे, इकानवे लाख मुनियोंके सहित तो नारदजी मुक्ति पावेंगे, साढे आठ करोड मुनिया सहित सांब और प्रद्युम्न सिद्धि पावेंगे, वीस करोड़ मुनियों सहित पांडव सिद्धि पायेंगे, थावच्चा पुत्र तथा शुक आचार्य आदि हजार हजार साधुओं सहित मुक्ति पावेंगे, पांच सो साधुः सहित सेलक राजर्षि सिद्धि पायेंगे, तथा श्री ऋषभदेव स्वामीके शासनमें भी

नियें अति क्लुद्ध हो उसकी सेनाको भी पीछे छोड़ अस्लाही त्वरित गतिसे नगरमें चला आया। उस समय वह नगरके नगरको ध्वज, तोरण आदिसे शोभित देख आश्चर्य चकित हो राजमहलके पास पहुंचा। वहा भी उसने उसकी प्रियाको सर्व अलकारोसे विभूषित और सत्कार करने तैयार खड़ी देखा। राजाने उससे पूछा कि, "हे प्रिया मेरे आनेके समाचार तुझे किसने कहे?" उसने कहा कि, "कीर्तिधर मुनिराजने आपके आने आने की सूचना दी थी। इसलिये मैं आपका स्वागत करनेको तैयार खड़ी हूं।" फिर अरिदमन राजाने उन मुनिराजको बुलाकर पूछा कि, 'यदि आप ज्ञानी हैं तो मेरे मनका विचार बतलाइये।' इस पर मुनिने कहा कि, "हे राजन्! आपने अपनी मृत्युके विषयमें विचार किया है।" राजाने पूछा कि "हे साधु मेरी मृत्यु कब होगी?" मुनिने कहा कि आजसे सातवें दिन विजलीके गीरने से तेरी मृत्यु होगी, और मर कर अशुचिमें वेइन्द्रिय कीडे के रूपमें उत्पन्न होगा।" ऐसा कह मुनिराज अपने उपाश्रयमें गये। राजा यह वृत्तान्त सुन आकुल व्याकुल हुआ और उसके पुत्र प्रियकरको बुलाकर कहा कि, "हे वत्स! यदि मैं अशुचिमें कीड़ा बनु तो तू मुझे मार डालना" प्रियकरने उसकी बात स्वीकार की। राजा सातवे दिन पुत्र, स्त्री और राज्यादिकी तीव्र मूर्छासे सहित मरकर अशुचिमें कीडेके रूपमें उत्पन्न हुआ। उस समय प्रियकर उसे मारनेको उद्यत हुआ परन्तु वह मरनेसे खुश नहीं हुआ। इसलिये प्रियकरने मुनिसे

"जो सघ सहित श्री सिद्धाचल पर जाकर कार्तिक तथा चैत्र मासकी पूर्णिमाके दिन आकर पूर्वक दान तथा तप आदि करते है, वे मोक्ष सुखके भोगने वाले होते हैं।"

[इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशप्रासादवृत्तौ पचदशमस्तभस्य पचविशत्यधिकद्विशततम प्रबध ॥ २२५ ॥]

श्री उपदेश प्रासाद

स्थभ १६

व्याख्यान २२६

छ लेश्याका स्वरुप

कीर्तिधरमुनीन्द्रेण, प्रियकर नृप प्रति ।
लेश्यास्वरूपमाख्यात तच्छ्रुत्वासौ शुभा दधौ ॥१॥

भावार्थ —"कीर्तिधर मुनीन्द्रने प्रियकर राजाको लेश्याका स्वरूप बतलाया था, जिसे सुन उसने उसकी शुभ लेश्या धारण की थी।"

प्रियकर राजाकी कथा

अश्वपुर नगरमे अरिदमन राजा राज्य करता था, जिसके प्रियकर नामक पुत्र था। एक दिन दिग्यात्रा कर विजयी राजा बहुत समय व्यतीत हो जानेसे प्रियाके दर्शनके

लिये अति उत्सुक हो उसकी सेनाको भी पीछे छोड अकेलाही त्वरित गतिसे नगरमें चला आया। उस समय वह उनके नगरको ध्वज, तोरण आदिसे शोभित देख आश्चर्य चकित हो राजमहलके पास पहुंचा। वहां भी उसने उसकी प्रियाको सर्व अलंकारोंसे विभूषित और सत्कार करने तैयार खडी देखा। राजाने उससे पूछा कि, "हे प्रिया मेरे आनेके समाचार तुम्हें किसने कहे?" उसने कहा कि, "कीर्तिधर मुनिराजने आपके आनेकी आज सूचना दी थी। इसलिये मैं आपका स्वागत करनेको तैयार खडी हूं।" फिर अरिदमन राजने उन मुनिराजको बुलाकर पूछा कि, 'यदि आप ज्ञानी हैं तो मेरे मनका विचार बतलाइये।' इस पर मुनिने कहा कि, "हे राजन्! आपने अपनी मृत्युके विषयमें विचार किया है।" राजाने पूछा कि 'हे साधु मेरी मृत्यु कब होगी?" मुनिने कहा कि आजसे सातवें दिन बिजलीके गिरने से तेरी मृत्यु होगी, और मर कर अशुचिमें पंचेन्द्रिय कीडे के रूपमें उत्पन्न होगा।" ऐसा कह मुनिराज उनके उपाश्रयमें गये। राजा यह वृत्तान्त सुन आकुल व्याकुल हुआ और उसके पुत्र प्रियंकरको बुलाकर कहा कि, "हे वत्स! यदि मैं अशुचिमें कीडा बनु तो तू मुझे मार डालना" प्रियंकरने उसकी बात स्वीकार की। राजा सातवें दिन पुत्र, स्त्री और राज्यादिककी तीव्र मूर्छासे सहित मरकर अशुचिमें कीडके रुपमें उत्पन्न हुआ। उस समय प्रियंकर उसे मारनेको उद्यत हुआ परन्तु वह मरनेसे खुश नही हुआ। इसलिये प्रियंकरने मुनिसे

, "जो संघ सहित श्री सिद्धाचल पर आकर कार्तिक तथा चैत्र मासकी पूर्णिमाके दिन आदर पूर्वक दान तथा तप आदि करते हैं, वे मोक्ष सुखके भोगने वाले होते हैं।"

[इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशप्रासादवृत्तौ पंचदशमस्तंभस्य पंचत्रिंशत्यधिकद्विशततमः प्रबंधः ॥ २२५ ॥]

श्री उपदेश प्रासाद

स्थंभ १६

व्याख्यान २२६

छ लेश्याका स्वरूप

कीर्तिधरमुनीन्द्रेण, प्रियंकर नृपं प्रति ।
लेश्यास्वरूपमाख्यातं तच्छ्रुत्वासौ शुभां दधौ ॥१॥

भावार्थ —"कीर्तिधर मुनीन्द्रने प्रियंकर राजाको लेश्याका स्वरूप बतलाया था, जिसे सुन उसने उसकी शुभ लेश्या धारण की थी।"

प्रियंकर राजाकी कथा

अक्षपुर नगरमें अरिदमन राजा राज्य करता था, जिसके प्रियंकर नामक पुत्र था। एक दिन दिग्यात्रा कर राजा बहुत समय व्यतीत हो जानेसे प्रियाके दर्शनके

लिये अति उत्सुक हो उसकी सेनाको भी पीछे छोड अरस्लाही त्वरित गतिसे नगरमें चला आया । उस समय वह उनके नगरको ध्वज, तोरण आदिसे शोभित देख आश्चर्य चकित हो राजमहलके पास पहुंचा । वहां भी उसने उसकी प्रियाको सर्व अलंकारोंसे विभूषित और सत्कार करने तैयार खड़ी देखा । राजाने उससे पूछा कि, "हे प्रिय मेरे आनेके समाचार तुझे किसने कहे ?" उसने कहा कि, "कीर्तिधर मुनिराजने आपके अकेले आने की सूचना दी थी । इसलिये मैं आपका स्वागत करनेको तैयार खड़ी हूं ।" फिर अरिदमन राजाने उन मुनिराजको बुलाकर पूछा कि, ' यदि आप ज्ञानी है तो मेरे मनका विचार बतलाइये । ' इस पर मुनिने कहा कि, "हे राजन् ! आपने अपना मृत्युके विषयमें विचार किया है ।" राजाने पूछा कि "हे साधु मेरी मृत्यु कब होगी ?" मुनिने कहा कि आजसे सातवें दिन बिजलीके गीरने से तेरी मृत्यु होगी, और मर कर अशुचिमें बेइन्द्रिय कीडे के रूपमें उत्पन्न होगा ।" ऐसा कह मुनिराज उनके उपाश्रयमें गये । राजा यह वृत्तान्त सुन आकुल व्याकुल हुआ और उसके पुत्र प्रियंकरको बुलाकर कहा कि, "हे वत्स ! यदि मैं अशुचिमें कीड़ा बनु तो तू मुझे मार डालना" प्रियंकरने उसकी बात स्वीकार की । राजा सातवें दिन पुत्र, स्त्री और राज्यादिककी तीव्र मूर्छासे सहित मरकर अशुचिमें कीडेके रूपमें उत्पन्न हुआ । उस समय प्रियंकर उसे मारनेको उद्यत हुआ परन्तु वह मरनेसे खुश नहीं हुआ । इसलिये प्रियंकरने मुनिसे

पूछा कि, "हे मुनिराज ! क्या यह मेरा पिता है कि जो दुखित होने पर भी मरनेकी इच्छा नही करता ? तब साधुने कहा कि —

अमेध्यमध्ये कीटस्य सुरेन्द्रस्य सुरालये ।
समाना जीविताकांक्षा तुल्य मृत्युभय द्वयो ॥१॥

भावार्थ — विष्टामें कीड तथा स्वर्गमें इन्द्रको जीवनकी आकांक्षा एक सदृश ही होती है, और उन दोनोंको मृत्युका भय समान ही होता है ।"

इस प्रकार सुन प्रियकर राजाने गुरुसे कहा कि, "हे स्वामी ! किसी समय न दखे, न सुने और न इच्छा किये हुए परभवमे भी सर्व जीव गमन करते हैं, जैसे कि मेरे पिताने कीडेका भव प्राप्त किया है तो फिर ऐसी गतिमें आत्मा किस हेतुसे जाता है ?" गुरुने उत्तर दिया कि, "जीवोंको जैसी लेश्याका परिणाम होता है वैसी ही गति उन्हें प्राप्त होती है ।" राजाने पूछा कि, "हे स्वामी ! लेश्या कितने प्रकारकी है ?" तब गुरुने छ लेश्याका स्वरुप बतलाया कि, "हे राजा ! आत्माके परिणामविशेषसे लेश्या छ प्रकारकी होती है ।"

अतिरौद्र. सदाक्रोधी, मत्सरी धर्मवर्जित ।
निर्दयो वैरसयुक्त. कृष्णालेश्याधिको नर ॥१॥

भावार्थ —"जो पुरुष महान् रौद्रध्यानी हो, सदा क्रोधी हो, सर्व द्वेषी हो, धर्मसे वर्जित हो, निर्दई हो, और निरंतर

वैर रखने वाला हो ऐसे विशेषरूपसे कृष्ण लेश्या वाला समझना चाहिये ।"

अलसो मदबुद्धिश्च, स्त्रीलुब्ध परवंचकः ।
कातरश्च सदा मानी, नीललेश्याधिको भवेत् ॥२॥

भावार्थ –"नील लेश्या वाला जीव, आलसी, मदबुद्धिवाला, स्त्रीमें लुब्ध परपीड़ा पहुंचाने वाला, डरपोक और निरन्तर अभीमानी होता है ।"

शोकाकुल सदा रुष्ट, परनिन्दात्मशंसकः ।
संग्रामे दारुणो दुस्थ, कापोतक उदाहृत ॥३॥

भावार्थ –" निरन्तर शोकमें मग्न रहनेवाले, सदा क्रोधि, परनिन्दक, आत्म प्रशंसक, रणसंग्राममें भयंकर और खिन्नमन पुरुषको कापोतलेश्या कही जाती है।"

विद्वान् करुणायुक्त कार्याकार्य विचारकः ।
लाभालाभे सदा प्रीत पीतलेश्याधिको नरः ॥४॥

भावार्थ –"विद्वान, करूणावान, कार्याकार्यका विचार करनेवाला, और लाभ अलाभमें सदैव आनन्दित रहनेवाला हो, ऐसे पुरूषको पीतलेश्या अधिक होती है।'

क्षमावान् निरतत्यागी, देवार्चनरतो यमी ।
शुचीभूत सदानन्द, पद्मलेश्याधिको भवेत् ॥ ५ ॥

भावार्थ —"क्षमायुक्त, निरन्तर त्याग वृत्तिवाला देव-पूजामें तत्पर, संयमको धारण करनेवाला, पवित्र और सदा आनन्दमग्न ऐसा पुरुष पद्मलेश्यावाला होता है।"

रागद्वेषविनिर्मुक्त, शोकनिन्दाविवर्जितः।
परात्मभावनमपन्न शुक्ललेश्यो भवेन्नर ॥ ६ ॥

भावार्थ —"राग द्वेषसे मुक्त, शोक और निन्दासे रहित, तथा परमात्मभावको प्राप्त मनुष्य शुक्ल लेश्यावाला कहलाता है।"

इन छ लेश्याओंमेंसे प्रथम तीन लेश्या अशुभ है, और शेष तीन शुभ है। इस छओंका विस्तृत स्वरूप जाननेके लिए जाम्बु खानेवाले, तथा ग्रामका विनाश करनेवाले छ छ पुरुषोंके इस प्रकार दृष्टान्त है कि —

किसी अरण्यमें क्षुधाकुल छ पुरुषोंने पके एवं रसवाले जाम्बूके भारसे झुके हुए कल्पवृक्ष सदृश एक जाम्बूके वृक्षको देखा। उसे देख सब हर्षित होकर कहने लगे कि—"अहो! क्या ही उत्तम अवसर पर यह वृक्ष हम दिखाई पड़ा है? अत एव उसके फल खाकर हमारी क्षुधाका नाश करना चाहिये।" उनमेंसे एक क्लिष्ट परिणामवालेने कहा कि, "इस दुरारोह[2] वृक्ष पर चढनेसे जीवनका खतरा है, इस लिये तीक्ष्ण कुल्हाडेकी धारसे इसे मूलसे काट, निचे डाल फिर निश्चिन्त होकर इसके सब फल खाने चाहिये।" ऐसे

१ अहिंसा सत्य अचौर्य, ब्रह्मचर्य, परिग्रहप्रमाण ये पांच यम है
२. मुश्किलसे चढने योग्य

परिणाम पुरुषको कृष्ण लेश्यासे ही होते हैं (१) फिर दूसर -उससे कुछ कोमल हृदयवाला कहने लगा कि—" ऐसे बडे वृक्षको काटनेसे हमें क्या विशेष लाभ होगा? मात्र इसकी एक बडी शाखा तोडकर निचे गिरा दना चाहिये और उसमें लगे फलोंको खालेना चाहिय।" ऐसे पुरुषको नील लेश्याके परिणामवाला जानना चाहिये (२)। फिर तीसरेने कहा कि, " इतनी बडे शाखाके तोडनसे क्या लाभ? मात्र इसकी एक प्रशाखाकोही काटडालना चाहिय।" ऐसे पुरुषको कापोत लेश्यावाला समझना चाहिय (३)। फिर चौथेने कहा कि, "उस बिचारी छोटीसी शाखाको काटनेसे क्या विशेष लाभ होगा? मात्र उसके गुच्छे तोड लेनसे ही अपना काय सिद्ध हो सकता है।' एसे पुरुषको तेजोलेश्यावाला समझना चाहिये। (४) फिर पाचवेने कहा कि,—" गुच्छे तोडनेसे भी क्या लाभ है। मात्र पकेहुए और भक्षण करने लायक जरूरत माफिक फलोको ही तोडना चाहिये।" ऐसा पुरुष पद्म लेश्य वाला कहलाता है (५) अब छट्टेने कहा कि " फल तोडनेकी भी क्या आवश्यकता है? हमें जितने फलोकी आवश्यकता है, उतने तो इस वृक्षके नीचे पडे ही मिल सकता हैं, तो फिर उसीसे प्राणोंका निर्वाह करना श्रेष्ट है। इसलिये इस वृक्षको काटने आदिका विचार ही क्यों करना चाहिये? इस अतिमको शुक्ल लेश्याका परिणामवाला समझना चाहिय (६)

धाडा डालने वाले छ पुरुषोंका दृष्टान्त।

धनधान्यादिकमें लुब्ध चोरोंके छ अधिपतियोंने एकत्र होकर एक गाममें धाडा (डकैती) डाला। उस समय उनमें से एकने कहा कि-"इस गाममें मनुष्य, पशु पुरुष, स्त्री, बालक, वृद्ध आदि जो कोइ भी नजरमें आ जाये उन सबको मार डालना चाहिये" इसप्रकार कृष्णलेश्याके स्वभाव वाले का वाक्य सुन कर दूसरा नील लेश्यावाला बोला कि, "मात्र मनुष्योंको ही मारना चाहिये, पशुओंको मारनेसे हमे क्या प्रयोजन?" उस समय तीसरे कापोत लेश्यावालेने कहा कि-"स्त्रीयोंको क्यों मारा जाय? मात्र पुरुषोंको ही मारना चाहिये।" तब चौथा तेजो लेश्यावाला बोला कि- पुरुषोंमे भी शस्त्र रहितकों मारनेसे क्या प्रयोजन? मात्र शस्त्रधारीको ही मारना चाहिये।" यह सुन पांचवा पद्म लेश्या वाला बोला कि—"शस्त्रधारीमें भी मात्र उसीको मारना चाहिये कि जो हमारा मुकाबला कर हमारे सामने युद्ध करने आये, शेष निरपराधीको क्यों मारा जाये?" अन्तमे छट्ठा शुक्ल लेश्या वाला बोला कि,-"अहो! तुम्हारा कैसा बुरा विचार है? एक तो द्रव्यका हरण करने आया हो, और फिर बिचारे प्राणियोंको मारना चाहते हो, इसलिए यदि तुम द्रव्य लेने आये हो तो चाहे द्रव्य लेलो किन्तु उनके प्राणोंकी तो रक्षा करो।"

इसप्रकार लेश्या वाले मर कर भिन्न भिन्न गतिको प्राप्त होते है। कहा है कि —

सिद्धाण आइ तण नीगण धावरो नो होइ ।
वायेगाण निमित्त, पीराण माणुसो होइ ॥१॥

पच्छाण देवलोय, गुरराण आइ गामप लाग ।
इय लेमाल गिरागो, णागओ मज्झीविहि ॥२॥

भावार्थ – कृष्ण ल्या व लेश्या वाकले निम्नि है तीव लेश्या वाला मन, वायर, पन्न होता है कापोत द्वारा वन निम्न होता है देव लेश्या वाला मनुष्यादि पाता है पद्म लेश्या वाला देवलोक पाता है और शुक्ल लेश्या वाला आय शाश्वत स्थानको प्राप्त करता है । इसप्रकार अन्य जीवों को लेश्या विचार जानना चाहिये ।'

गुरु मुख से लेश्या का स्वरूप जानकर प्रियंकर राजा प्रतिबोधित हुआ और निरंतर शुभ लेश्यामें रत, श्रावक धर्म आराधना कर अन्तमें सद्गतिको प्राप्त हुआ ।

"कापोत लेश्या के परिणाम वाले अतिदुष्ट राजाकी कथा सुनकर तथा उसकी कीर्ति श्रवण करके आप पुरुषों सुहृद से सुनकर प्रियंकर राजा उत्तम धर्म प्राप्त करके शुभ लेश्यावाला हुआ ।'

[इत्यब्दग्निपरिमितोपदेशमालावृत्तौ षोडश
स्तम्भस्य षड्विंशत्यधिकद्विशततम प्रबंध. ॥२२६॥]

अविमृश्य कारिका

अनिमृश्य कृत कार्य, पश्चातापाय जायते।
अत्राम्रतरुच्छेदाद्या, दृष्टान्ता रचिता बुधैः॥ १॥

भावार्थ —"किसी भी कार्यको विना विचार किये करनेसे पश्चाताप ही होता है। इस पर आम वृक्षके काटने वाले आदिके दृष्टान्त पण्डितलोगोंने बतलाये हैं।" वे इस प्रकार हैं कि —

पाटलीपुर नगरका निवासी धनदत्त नामक श्रेष्ठी व्योपार करनेको वाहणमें सवार हो समुद्रके मार्गसे चला। पवनके अनुकुल होनेसे वाहण त्वरित गतिसे चला और मध्य समुद्रमें आ पहुचा, उस समय श्रेष्ठीने आकाश मार्गसे चले आते एक उत्तम तोतेको देखा। उस तोतेके मुखमें एक आम्र फल था। परीश्रमसे थक जानेसे उसे समुद्रमें गिरता देख श्रेष्ठीने उसके निचे एक वस्त्र फैलाकर खल्लासियों द्वारा उसे झेल लिया और अपने पास मगवा उस पर पानी छिटक कर तथ पवन कर उसे स्वस्थ किया। फिर श्रेष्ठिने उससे पूछ इसलिये उसने अपने मुहसे आम्र फलको नीचे रखकर मनुष्यवाणीमें कहा कि, "हे सार्थके अधिपति श्रेष्ठी आपने सर्व प्रकारके उपकारोंमें श्रेष्ठ जीवदान उपकार मे

पर वर मुझको ही मात्र प्राणदान नहीं दिया है परन्तु आपने मेरे अन्ध और वृद्ध माता-पिताको भी जीवन दान दिया है, फिर प्रभु मैं किस प्रकार उपकारोंका मैं इसमें प्रतिउपकार करूं? फिर भी मेरा लाया हुआ यह अमृतफल आप स्वीकार करें। उसने कहा कि, 'यह फल मेरा भक्ष्य है और तुम्हारे लायक है, इसलिये तू ही खा। और दूसरा भी मिली, दूध आदि मैं तुझे खानेको देता हूं।" तब तोतेने कहा कि "हे देवी! इस फलका वृत्तान्त सुनिये। विन्ध्या-टवीमें एक वृक्ष पर तोतेका मिथुन (जोड़ा) रहता है। मैं उनका पुत्र हूं। मेरे उन मातापिताको वृद्धपनमें ज्यादा न हो जानेसे आंखोंसे कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता, इसलिये मैं ही उनको नित्य खानेको लाकर देता हूं। एक समयमें एक दिन दो मुनिराज पधारे। उन्होंने चारों ओर देख एकान्त जान परस्पर इसप्रकार बात की कि, 'समुद्रके मध्यमें कपि नामक पर्वतके शिखर पर निरन्तर फल देनेवाला एक आम्र वृक्ष है, उसका एक भी फल यदि कोई एक बार भी खा ले तो उसके अंगमें सर्वव्याधियें नष्ट हो जाती हैं तथा उसे अकाल मृत्यु व जरा जीर्णपना प्राप्त नहीं होता है।" इसप्रकार उनका वचन सुन मैंने विचार किया कि, "मुनिके वाक्य सदैव सत्य एवं हितकर ही होते हैं" इसलिये उस वृक्षका फल लाकर यदि मेरे माता-पिताको दूं तो वे युवा-वस्थाको प्राप्त हो जावेंगे।" ऐसा विचार कर मैं वहां गया और यह फल लाया हूं अतः हे देवी! यह फल आप मदन-

कीजिये । मैं दूसरा फल लाकर मेरे मातापिताको दे दूंगा।" फिर श्रेष्ठीने तोतेके आग्रहसे वह फल ले लिया, और तोता आकाशमें उड़ गया।

फिर श्रेष्ठीने विचार किया कि, "यदि यह फल मैं किसी राजाको देदूं तो इससे अनेकों जीवोंका उपकार होगा। मैं खाउं तो क्या? और न खाउं तो भी क्या।" ऐसा विचार कर उसने उस आम्रफलको सुरक्षित रख दिया। फिर कई दिनपश्चात वह वाहन किसी किनारे जा लगा। श्रेष्ठी वहांसे उतर भेट ले राजाके पास गया। राजाके समक्ष भेट रखकर फिर उसने आम्रफल भी भेट किया। जिसे देख राजाने विस्मयपूर्वक पूछा कि—"हे श्रेष्ठी! यह किसका फल है?" तब श्रेष्ठीने राजासे समग्र महीमा कही। राजा अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ, और उसने श्रेष्ठीका सब दान माफ किया, जिससे वह हर्षित हो अपने स्थानको लौट गया।

फिर राजाने उस फलको हाथमें लेकर विचार किया कि, "यदि मैं इस फलको अकेला खा जाउंगा तो इससे विशेष क्या लाभ होगा? इसलिये यदि इसे किसी अच्छे क्षेत्रमें बोदिया जाये तो इसके कई फल लगेंगे, जिससे सभी पुत्रादिक सबको वृद्धावस्था रहित कर सकूंगा।" ऐसा विचार कर राजाने उस बीजको किसी अच्छे क्षेत्रमें बो दिया। अनुक्रमसे वह आम्र बढा और उसके पुष्प फल आदि लगे। उस समय राजाने उसके रक्षकोंको बहुतसा धन देकर कहा कि "इस वृक्षकी यत्न पूर्वक रक्षा करना।" राजाकी इस प्रकार आज्ञा पाके

रक्षक रात्रिदिन वहा रहने लगे। एक दिन दैवयोगसे रात्रि में एक फल अपने आप टूटकर पृथ्वी पर गिरा। प्रात काल उस व फलको वहा देख रक्षकोंने हर्षित हो ऐसे उठा तत्काल राजाको जाकर अर्पित किया। उस समय राजाने विचार किया कि, "यह नवीन फल यदि प्रथम किसी सुपात्रको दिया जायेतो अधिक अच्छा होगा।" ऐसा विचार कर राजाने भक्ति पूर्वक वह एक फल चार वेदोंके ज्ञाता ब्राह्मणको दिया। ब्राह्मणने जब उस फलको खाया, तो वह तत्काल मरगया। यह सुन राजा अत्यन्त व्यथित हो कहने लगा कि, "अहो मैंने धर्म बुद्धिसे ब्रह्म-हत्यारूप महान् पाप किया है, वास्तवमें मुझे मारनेके लिए ही किसी शत्रुने प्रपच कर यह फल मुझे भिजवानेको भेजा होगा, इसलिये इस विष वृक्षको यद्यपि मैंने स्वयं बोया तथा प्रयत्नसे रक्षण किया है, फिर भी इसे शीघ्रतासे कटवा डालना चाहिये।" तदनन्तर उसकी आज्ञा होते ही राजपुरुषोंने तीक्ष्ण कुल्हाड द्वारा उस उत्तम वृक्षको मूल सहित काट कर भूमि पर गिरा दिया, और उस समय वृक्षको जमीनमें गाड़ दिया। फिर मृगी, कोढ़ रक्तपित्तादिक असाध्य व्याधिसे पीड़ित कई लोग जीवनसे घबराकर इस वृक्षका काटा जाना सुन कर वहा आये, और सुखपूर्वक मरनकी इच्छासे उस वृक्षके अवशेष सूखे काष्ठ और कुत्सित पत्रादिकका उन्होंने भक्षण किया, जिससे वे सब निरोगी एव कामदेव सदृश रूपवाले हो गये। उनको देख विस्मित हो राजाने रक्षकोंको बुलाकर

व्याख्यान २२८

सहसा कार्य नहीं करनेके विषयमें

सहसा विहित कर्म, न स्यादायति सौख्यदम्।
पतत्त्रिहिंसकस्यात्र, महीभर्तुर्निदर्शनम् ॥ १ ॥

भावार्थ —" सहसा कार्य करनेसे परिणाममें सुख नही मिलता। इसपर पक्षीके हिंसक राजाका दृष्टान्त इस प्रकार है कि —"

इस भरतक्षेत्रमें शत्रुंजय नामक एक राजा था, जिसे किसी पुरुषने एक उत्तम लक्षणवाला घोडा लाकर भेट किया। उसे देख राजाने विचार किया कि—"इस अश्वके शरीरकी शोभा तो प्रशंसनीय है, परन्तु इसकी गति देखना चाहिये।" कहा भी है कि —

जवो हि सप्ते परमं विभूषणं
नृपाङ्गनायाः कृशता तपस्विनः।
द्विजस्य विद्यैव मुनेरपि क्षमा
पराक्रमः शस्त्रबलोपजीविनः ॥ २ ॥

भावार्थ —" अश्वका भूषण गति है, राजपत्नी तथा तपस्वी पुरुषका भूषण कृशपन है, ब्राह्मणका भूषण विद्या ही है, मुनिका भूषण क्षमा है, और शस्त्रविद्याके बलसे आजीविका करनेवाले पुरुषका भूषण पराक्रम है।"

फिर वह राजा घोडे पर सवार हो अरण्यमें उसे दौड़ाने लगा। इतनेमें वह पवनवेगी घोड़ा ऐसा दौड़ा कि उसका सर्व सैन्य पीछे रह गया। राजा जैसे जैसे उसके वेगको रोकनेके लिए उसकी लगाम खिंचने लगा, वैसे वैसे वह अश्व अधिक अधिक तेज दौडने लगा फिर राजाने थक कर लगाम ढीली छोडी कि अश्व तुरन्त ही खडा रह गया। इससे राजाको भान हुआ कि इस अश्वको विपरीत शिक्षा दी गई है। फिर राजाने घोडसे उतर उसका जीन उतारा कि उसकी सन्धिय टूटजानेसे वह पृथ्वी पर गिर कर मर गया। राजा क्षुधा और तृषासे पीड़ित होकर अकेला उस भयंकर अरण्यमें भटकने लगा। भटकते एक बड़े वड़ वृक्षकी देखकर राजा थका हुआ होनेसे उस वृक्षकी छायामें जाकर बैठ गया। फिर वह इधर उधर देखने लगा कि इतने उसी वृक्षकी शाखासे पानीकी बूंदे गिरती दिखाई दीं। राजाने सोचा कि —"वर्षाकालमें पड़ा जल अबतक शाखाके छिद्रमें भरा रहा होगा, जो अब गिर रहा है।" ऐसा विचार कर उसके प्यासे होनेसे उसने खाखरेके पत्तोंका एक दोना बनाकर उसके नीचे रक्खा। थोडीसी देरमें वह दोना काले और मैले पानीसे भर गया। उसे उठाकर राजा ज्योंहि उसको पीना चाहता है, कि उसी समय कोई पक्षी उस वृक्षकी शाखासे उतर जलपात्र राजाके हाथसे निचे गिरा, वापस उसी वृक्षकी शाखा पर जाकर बैठ जाता है। राजाने निराश होकर फिरसे दोना रक्खा जो भर गया। उसे पीने लगा

कि फिरसे उस पक्षीने उसे निचे गिरा दिया। उस समय राजाने क्रोध कर विचार किया कि—"यदि यह दुष्ट पक्षी अब तीसरी बार आयेगा तो मैं इसे मार डालूंगा।" ऐसा विचार कर एक हाथमें चाबूक ले, दूसरे हाथमें जल भरनेको दोना रक्खा। उस समय पक्षीने विचार किया कि, "यह राजा कोपायमान हो गया है, इसलिये अब यदि मैं इसका दोना गिराउगा, तो यह अवश्य मुझे मार डालेगा और यदि नहीं गिराता हूं तो इस जहरी पानीके पीनेसे यह अवश्य मर जायगा इससे मेरा मर जाना तो श्रेष्ठ है, परन्तु इस राजा को जीवित रखना अधिक उत्तम है।" ऐसा विचार कर उसने तीसरी बार भी राजाके हाथसे दोना निचे गिरा दिया, जिससे कुपित राजाने चाबुकके प्रहारसे तुरन्त ही उस पक्षी को मार डाला। फिर राजान फिरसे दोना रक्खा। उस समय उपरसे गिरने वाला जल इधर उधर गिरने लगा, इससे राजा आश्चर्य सहित उठ कर वृक्षकी शाखा पर चढकर देखने लगा, तो वहां उस वृक्षकी कोटरमें एक अजगरको पड़ा हुआ देखा। उसे देखकर राजाने सोचा कि "यह जल नहीं है परन्तु इस मोते अजगरके मुहसे गिरता हुआ गरल है। यदि मैंने इसे पिया होता तो मेरा मरण अवश्य था। अहो! उस पक्षीने मुझे वारवार विषपानसे रोका, परन्तु मुझ मूर्खने यह नहीं जाना। अरेरे! परोपकारी पक्षीको मैंने व्यर्थ ही मार डाला।"

इसप्रकार राजा पश्चाताप कर रहा था, कि उस समय उसकी सेना भी आ पहुची। फिर राजाने उस पक्षीको

उसके मनुष्यों द्वारा उठवा, अपने नगरमें ला, चन्दनके काष्ठसे उसका अग्निसंस्कार कराया, और उसे जलांजलि देकर राजाने उसके महलमें प्रवेश किया। वहां शोकातुर होकर बैठा था, तब मंत्री सामन्त आदिने उससे पूछा कि—"हे नाथ! आपने इस पक्षीका प्रेतकार्य किया, जिसका क्या कारण है?" इसपर राजाने उसके किये महा उपकारका वर्णन किया, और कहा कि,–"इस पक्षीको मैं जीवन पर्यन्त नहीं भूल सकता।" बिना विचारे कार्य करनेसे जैसे उस राजाको पश्चाताप हुआ उसी प्रकार यदि कोई प्राणी बिना विचारे सहसा कार्य करे तो उसे भी वैसा ही पश्चाताप होता है।

इस दृष्टान्तका उपनय इस प्रकार है कि। चारगतिमें भ्रमण करने वाले जीव राजाके समान हैं। उस अजरामर (मोक्ष) स्थान देने वाले पक्षी समान मनुष्य भवको प्राप्त कर अविरति आदिसे जो मनुष्यभवको वृथा खो देता है, वह अत्यन्त शोकका भाजन होता है, अथवा पक्षी समान सगप्र जीवका उपकार करने वाली जिनवाणीको प्राप्त कर जो प्राणी मिथ्यात्वरूपी चाबुकसे उसका विनाश करते हैं, उसे महा मूर्ख समझना चाहिये। कहा भी है कि —

शिलातलाभे हृदि ते वहति
विशन्ति सिद्धातरसा न चात।
यदत्र नो जीवदयार्द्रता ते
न भावनाङ्कुरततिश्च लभ्या॥ १॥

भावार्थ —" हे आत्मा ! तेरे पत्थर तक सदृश कठोर हृदय पर सिद्धान्त रूपी रस बहता है, तथा भी उसका अन्दर प्रवेश नही होता, क्यों कि तेरे हृदयमे जीवदया रूपी आर्द्रता नही है, जिससे शुभ भावना रूपी अंकुरकी श्रेणी उसमे उगही नही सकती है।"

जिसके हृदयमे जीव दयारूप कोमलता होती है उसी के हृदयमें शुभ भावना रुप अंकुरकी श्रेणी उत्पन्न होती है। ऐसी भावना आसन्नसिद्धि जीवोंको ही होती है, अन्यको नही होती। अपितु सिद्धान्तका अध्ययन करके भी जो प्रमादका त्याग नही करते, उनका सब अभ्यास व्यर्थ ही है। कहा भी है कि —

अधीतिनोऽर्चादिकृते जिनागमं
प्रमादिनो दुर्गतिपातिनो मुधा।
ज्योतिर्विमूढस्य हि दीपपातिनो,
गुणाय कस्मै शलभस्य चक्षुषी ॥ १ ॥

भावार्थ —" लोकमे पूजानेके लिए जिनागमको जानने वाले और दुर्गतिमे पड़नेवाले प्रमादी पुरुषको जिनागम व्यर्थ है, क्योंकि दिपककी ज्योतिके मोहक और दिपकमें गिरनेवाले पतंगियेके चक्षु किस लिये होते है?"

---

१ अल्प समयमें मोक्ष जाने वाले।

सिद्धान्तरूप वस्तु विरतियत पुरुषके लिये परम उपकारक होते है, इसलिये इच्छासे शास्त्राभ्यास करना चाहिये । कहा है कि —

कि मोदसे पडितनाममात्रा-
च्छास्त्रेष्वधीती जनरजकेषु ।
तत्किञ्चनाधीष्व कुरुष्व चाशु
न ते भवेयेन भवाब्धिपात ॥१॥

भावार्थ —"लोक रजनके लिये शास्त्र पढकर पडितका नाम मात्र धर तू हर्षित होता है ? परन्तु तू कोई ऐसा अभ्यासकर कि जिससे तुझे ससार समुद्रम पडना न होवे ।"

अब चार गतिरूप ससारक दुखका वर्णन किया जाता है —

दुर्गन्धतोऽपि यदणोर्हि पुरस्य मृत्यु-
रायू षि सागरमितान्यनुपक्रमाणि ।
स्पर्श खर क्रकचतोऽतितमामितश्च ।
दु खाननतगुणितौ भृशशैत्यतापौ ॥१॥

तीव्रा व्यथा सुरकृता विविधाश्च यत्रा-
क्रदारवै सततमभ्रभृतोऽप्यमुष्मात् ।
किं भाविनो न नरकात् कुमते बिभेषि
यन्मोदसे क्षणसुखैर्विषयैः कषायै. ॥२॥

भावार्थ —" हे आत्मा! तेरे पत्थर तक सदृश कठोर हृदय पर सिद्धान्त रूपी रस बहता है, तथा भी उसका अन्दर प्रवेश नहीं होता, क्योंकि तरे हृदयमें जीवदया रूपी आर्द्रता नहीं है, जिससे शुभ भावना रूपी अंकुरकी श्रेणी उसमें उगही नही सक्ती है।"

जिसके हृदयमें जीव दयारूप कोमलता होती है उसी के हृदयमें शुभ भावना रूप अंकुरकी श्रेणी उत्पन्न होती है। ऐसी भावना आसन्नसिद्धि[1] जीवोंको ही होती है, अन्यको नहीं होती। अपितु सिद्धान्तका अध्ययन करके भी जो प्रमादका त्याग नहीं करते, उनका सब अभ्यास व्यर्थ ही है। कहा भी है कि —

अधीतिनोऽर्चादिकृते जिनागमः
प्रमादिनो दुर्गतिपातिनो मुधा।
ज्योतिर्विमूढस्य हि दीपपातिनो
गुणाय कस्मै शलभस्य चक्षुषी ॥ १ ॥

भावार्थ —" लोकमें पूजानेके लिए जिनागमको जानने वाले और दुर्गतिमें पड़नेवाले प्रमादी पुरुषको जिनागम व्यर्थ है, क्योंकि दिपककी ज्योतिके मोहक और दिपकमें गिरनेवाले पतंगियेके चक्षु किस लिये होते है?"

---

१ अल्प समयमें मोक्ष जाने वाले।

सिद्धान्तरूप चक्षु निरतिचत पुरुषके लिये परम उपकारक होते हैं, इसलिये इच्छासे शास्त्राभ्यास करना चाहिये। कहा है कि —

किं मोदसे पंडितनाममात्रा-
च्छास्त्रेष्वधीती जनरंजकेषु।
तत्किंचनाधीष्व कुरुष्व चाशु
न ते भवेद्येन भवाब्धिपातः ॥१॥

भावार्थ —"लोक रंजनके लिये शास्त्र पढ़कर पंडितका नाम मात्र धर तू हर्षित होता है? परंतु तू कोई ऐसा अभ्यासकर कि जिससे तुझे संसार समुद्रमें पड़ना न होवे।"

अब चार गतिरूप संसारके दुःखका वर्णन किया जाता है —

दुर्गन्धतोऽपि यदणोर्हि पुरस्य मृत्यु-
रायूंषि सागरमितान्यनुपक्रमाणि।
स्पर्शः खरः क्रकचतोऽतितमामितश्च।
दुःखावनन्तगुणितौ भृशशैत्यतापौ ॥१॥

तीव्रा व्यथा सुरकृता विविधाश्च यत्रा-
क्रन्दारवैः सततमभ्रभृतोऽप्यमुष्मात्।
किं भाविनो न नरकात् कुमते बिभेषि
यन्मोदसे क्षणसुखैर्विषयैः कषायैः ॥२॥

भावार्थ –"जिस नरकके एक परमाणुकी दुर्गंधसे भी समग्र नगरनिवासियोंकी मृत्यु हो जाती है, जिस नरकमे सागरोपम प्रमाण निरपक्रमी[1] आयुष्य है, जिस नरक भूमिका स्पर्श करवतसे भी अधिक कठोर हैं, जिसमे सर्दी व गर्मी सम्बन्धी अनन्तगुना दुःख है, अपितु जिस नरकमे परमाधामि देवताओं कृत विविध प्रकारकी तीव्र वेदनाये हैं, और जिसमें नारकी जीवोंके आक्रन्दके शब्दोंसे आकाश गूजता रहता है, ऐसे भविष्यमे प्राप्त होने वाले नरकसे हे मूर्ख! तू भयभीत क्यों नही होता? कि जिससे तू क्षणमात्र सुख देने वाले विषय और कषायोंमे मग्न रहता है?"

बधाभिशवाहनताडनानि
क्षुत्तृड्दुरापातपशीतवाताः।
निजान्यजातीयभयापमृत्यु–
दःखानि तिर्यक्ष्विति दारुणानि ॥३॥

भावार्थ –"बधनपाना, अहर्निश भार वहन करना, मार सहन करना, क्षुधा, तृषा, दुष्टव्याधिये, ताप, सर्दी और पवन आदि सहन करना, तथा स्वजाति और परजाति द्वारा भय और अकाल मृत्यु प्राप्त करना आदि तिर्यंच गतिमे भी दारूण दुःख है।"

मुधान्यदास्याभिभवाभ्यसूया
भियोन्तगर्भस्थितिदुर्गतिना।

[1] किसी भी कारणसे जो आयुष्य न्यून न हो

एवं सुरेष्वप्यसुखानि नित्यं
किं तत्सुखैर्यां परिणामदुःखैः ॥४॥

भावार्थ —"किसी भी उदरपूर्ति या द्रव्य प्राप्तिके हेतु बिना ही व्यर्थ निरन्तर इन्द्रादिककी सेवा करना, अधिक शक्तिशाली देवताओंसे पराभवपाना, अन्यको अधिक ऋद्धिवान या सुखी देखकर इर्षा करना, आगामी भवकी गर्भस्थिति तथा दुर्गतिका विचार कर उससे भयभीत होना आदि देवगतिमें भी निरतर दुःख होता है अतः ऐसे सुखोंसे क्या लाभ ? कि जिनके परिणाममें दुःख भरे हो ?"

सप्तभीत्यभिभवेष्टविप्रिया-
निष्टयोगगददुःसुतादिभिः ।
स्याच्चिरं विरसता नृजन्मनः
पुण्यतः सरसता कदा भवेत् ॥५॥

भावार्थ — 'अपितु मनुष्य गतिमें भी सात प्रकारका भय, अन्यजनोंसे पराभव, इष्टका वियोग, अनिष्टका संयोग, अनेक प्रकारकी व्याधियें, कुपुत्रादि संतति आदिसे होनेवाला उपद्रव, आदि अनेक दुःख हैं इसलिये मनुष्य जन्म भी विरस[1] प्रतीत होता है, इसलिये इसे पुण्योपार्जनद्वारा सरस[2] बनाना।"

इस प्रकार चारों गतियें अनेक प्रकारके दुःखोंसे परिपूर्ण हैं

१ कडवा २ उत्तम रस युक्त

पश्चिमम त्वणा जन्म, गुणाकर प्रमादतः ।
लब्धा न हिंसनीय तत्, येन त्व सद्गति भजेः ॥

भावार्थ —"पक्षि मदृश गुणवान इस मनुष्यजन्मको पाकर प्रमादवश इसका विनाश नही करना चाहिये, अर्थात इसे व्यर्थ न खोना चाहिये या हार न जाना चाहिये" इस प्रकार न हारने तथा सफल बनानेसे तू सद्गतिका भाजन होगा।

[इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशमासादवृत्तौ षोडश स्तभस्य अष्टाविंशत्यधिकद्विशततम प्रबध' ॥२२८॥]

व्याख्यान २२९

पाच कारणोंसे कार्यसिद्धि होती है, उस विषयमें

कालादिपचभि कार्यमन्योऽन्य सव्यपेक्षकै ।
मपृक्ता याति सम्यक्त्वमिमे व्यस्ता. कुदर्शनम् ॥१॥

भावार्थ —"काल आदि पाच कारण परस्पर अपेक्षा-वाले होकर कार्य सिद्धि करते हैं। उन पांचोंको सम्बन्धवाले माननेसे सम्यक्त्व कहलाते हैं, और भिन्न माननेसे मिथ्यात्व कहलाते हैं।"

जैनमतानुसार सर्व दृष्ट अथवा अदृष्ट कार्य काल, स्वभाव, नियति, पूर्व कर्म, और पुरुषार्थ इन पांच कारणोंसे सिद्ध होता है। ये पांचो अनेकान्त स्वभाववाले होनेसे प्रत्येक कार्य सिद्ध करनेमें समर्थ हैं। श्री सिद्धसेन दिवाकर आचार्यने सम्मतिसूत्रके तीसरे काण्डमें कहा है कि—

कालो सहाव नियई, पुव्वकय पुरिसकारणे पंच।
समवाये सम्मत्तं, एगंते होइ मिच्छत्तं ॥१॥

भावार्थ—"काल, स्वभाव, नियति, पूर्वकर्म और पुरुषार्थ इन पांचों समवाय द्वारा कार्य सिद्धि माननेमें एकान्त द्वारा मिथ्यात्व कहलाता है।"

एकान्त पक्षके माननेवाले प्रथम कालवादी कहते हैं

कालः सृजति भूतानि, कालः संहरते प्रजाः।
कालः सुप्तेषु जागर्ति, कालो हि दुरतिक्रमः ॥२॥

भावार्थ—'काल सब प्राणियोंका सर्जन करता है, काल प्रजाका संहार (नाश) करता है, और काल जब सब सोते हों तब भी जागृत रहता है, इसलिये कालका उल्लंघन करना बड़ा कठिन है।"

प्रथमतो कालसे ही गर्भ उत्पन्न होता है, कालसे ही वृद्धि होती है, और कालसे ही जन्म होता है। कालसे ही तीर्थंकर होते हैं। जीव काल लब्धि पाकर ही सिद्धि होते हैं, योग्य कालसे ही आत्माको अनन्त आनन्दरूप क्षायिक

आदि तीन रत्नों आदिकी प्राप्ति होती हैं, और काल ही भाव धर्मको उत्पन्न करता है। यदि ऐसा न हो तो इस वर्तमान कालमें मनुष्यभव और जैन शासन आदि सामग्रीके मिलने पर भी क्यों कोई सिद्ध नहीं होता ? इसलिये काल ही सबकुछ देता है, और नाश करता है। कालके कारणसे ही दाताका निकलना, पैरों चलना, बोलना आदि मनुष्यके सब भाव होते हैं। इसी प्रकार कालसे ही शर्दी, गर्मी, वृष्टि आदि होती है। अतः इन सबका कारण काल ही है।

अब स्वभाव वादी कहते हैं कि — बेचारा काल क्या कर सकता है ? स्वभावसे ही स्त्री पुरुषके संयोगसे गर्भकी उत्पत्ति, वृद्धि, जन्म आदि भाव होते हैं। मोरके पङ्खोंमें चित्रविचित्रपन और कांटोंमें तीक्ष्णपन कौन करता है ? इसीप्रकार यदि काल द्वारा ही समग्र सृष्टि होती हो तो मनुष्यके बालक कुछ मास बाद ही चलना सीखते हैं, और अश्व आदिके बच्चे जन्मते ही चलना सीखते हैं इसका क्या कारण है ? अतः सबका कारण स्वभाव ही है।

अब नियतिवादी कहते हैं कि—काल और स्वभाव क्या कर सकते हैं ? नियति अर्थात् भवितव्यता ही सबका कारण है, क्योंकि काल और स्वभावके होते हुए भी जिनके पुत्रादि होने वाला हो उन्हींके होते हैं, दूसरोंके नहीं होते। अपितु यदि कोडियोंको हाथ द्वारा ऊपर फेंका जाये तो उनमेंसे कुछ चित्त (सिधि) पड़ती हैं, कुछ पट्ट (उलटी) पड़ती है

और कुछ आडी (टेढ़ी) पड़ती हैं, यह काल और स्वभावमें से किसके कारणसे हैं ? परन्तु जो जिस तरह पड़ने वाली होती हैं वे उसी ही प्रकार गिरती है, इसलिये भवितव्यता ही प्रमाण है। जैसे कोई शिकारी धनुष पर बाण चढ़ाकर वृक्ष पर बैठे एक पक्षीको मारनको तैयार हुआ, उसी पक्षीको मारनेके लिए एक बाज उस वृक्ष पर चक्कर लगा रहा था, कि उसी समय उस शिकारीने बाण छोड़ा जो उस बाजको लगा, जिससे वह मर गया, और शिकारी भी सर्पदंशसे मर गया। वह पक्षी वृक्षसे सुखपूर्वक उड गया। यह सब बिना नियतिके नहीं हो सकता इसलिये नियति ही सबका कारण है।

अब कर्मवादी कहता है कि-काल, स्वभाव और नियति की क्या शक्ति है ? पूर्वकृत कर्म ही सुख एवं दुःखके कारणभूत हैं। कर्मद्वारा ही श्रोत्रिय भी चाण्डाल बन जाता है, स्वामी सेवक बन जाता है और इन्द्र होता है वह रंक हो जाता है इसीप्रकार चाण्डाल श्रोत्रिय हो जाता है, सेवक राजा बन जाता है, और रंक इन्द्र पद प्राप्त करता है। कहा भी है कि —

यथा यथा पूर्वकृतस्य कर्मणः
फलं निधानस्थमिवोपतिष्ठते ।
तथा तथापूर्वकृतानुसारिणी
प्रदीपहस्तेव मतिः प्रवर्तते ॥१॥

भावार्थ –"जो जो पूर्वकृत् कर्मका फल द्रव्यकी तरह प्राप्त होता है, वैसे पूर्व कर्मानुसार बुद्धि दीवानी सदृश हाथमें प्रवृत्त होती है।"

पूर्व कर्मके फलसे ही प्राणीको नहीं दखे हुए, नहीं चाहे और नहीं अनुभव किये स्थानके प्रति भी आकर्षित कर ले जाया जाता है। जैसे किसी चूहेने एक कडिया देखा। उसमें खाने योग्य अच्छी अच्छी वस्तुए होंगी, ऐसा विचार उसने अपने दांतोंसे उसमें छेद कर उसमें प्रवेश किया जिससे उसमें बैठा भूखा सर्प उस चूहेको भक्षण कर गया, और उसी छेदसे बाहर निकल वह वनमें चला गया, इसलिये कर्म ही सच्चा कारण है।

अब पुरुषार्थवादी कहते हैं कि—मूर्ख समान कर्मसे क्या होता है? पुरुषार्थ ही सब कार्यों (फलों) का कारण है। यदि मात्र कर्मसे ही सबकी सिद्धि होती हो तो सब प्राणियोंको चाहिये कि वे बैठे रहें। कर्मद्वारा अपने आप ही सर्व वांछित वस्तुओंकी सिद्धि हो जायगी। कहा है कि–

न दैवमिति संचिन्त्य, त्यजेदुद्यममात्मनः।
अनुद्यमेन कस्तैलं, तिलेभ्यः प्राप्तुमिच्छति ॥१॥

भावार्थ –"मात्र दैव (प्रारब्ध) पर ही आधार रख कर मनुष्योंको अपना उद्यम नहीं छोड़ देना चाहिये, क्योंकि बिना उद्यमके तिलसे तैल निकाल लेनेकी कौन इच्छा कर सकता है?"

यहां यदि किसीको यह शंका हो कि,–"राजा आदि तो बैठे ही रहते हैं, फिर भी उनके कर्मोके फलमे उनके सेवक सर्व वांछित वस्तुए उनको लाकर भेट करते हैं।" इसके उत्तरमे इतना ही कहना काफी होगा कि, "यदि ऐसा हो तो सेवका द्वारा लाया हुआ अन्नादि बिना हाथका उपयोग किये मुहम किस प्रकार चला जायगा? कदाच उनके सेवक उसे उनके मुहम भी डाल दे, फिर भी बिना दांतोंके चबाये वह उनके गलेसे निचे क्योंकर उतरेगा? इसलिये कर्म तो उद्यमसे ही उत्पन्न होता है, इसलिये कर्मपुत्र तुल्य है, और उद्योगपिता समान है। अपितु मोक्ष प्राप्तिके समय क्षपकश्रेणि पर आरूढ होकर शुभ ध्यान द्वारा सर्व कर्मोका क्षय करनेसे ही जीवको सिद्धि पद प्राप्त होता हैं, इसलिये उद्योग ही बलवान् है।"

अब सब एकान्तवादीको जवाब दिया जाता है कि – प्रथम कालवादी है जो सब कुछ कालद्वारा किया मनाता है यह अयोग्य है, क्योंकि समयादिक द्वारा होता हुआ काल समान होते हुए भी फलका विचित्रपन पाया जाता है। जैसे एक ही समयमें बोये बीजमेसे कोई छोटा मोटा और नन्हा होता है, उसी प्रकार उसको अंकुर भी छोटे मोटे होते हैं और कोई उगता है, तथा कोई उगता भी नही है। अपितु किन्हीं दो पुरुषोंने एक ही समय राजाकी सेवा करना आरंभ किया फिर भी एक सेवकको उसका फल अल्पकालमे ही मिल जाता है, और दूसरेको बहुत समय व्यतीत हो जाने पर भी

भावार्थ –"जो जो पूर्वकृत् कर्मका फल द्रव्यकी तरह प्राप्त होता है, वैसे पूर्व कर्मानुसार बुद्धि दीवानी सदृश हाथमे प्रवृत्त होती है।"

पूर्व कर्मके फलसे ही प्राणीको नहीं देखे हुए, नही चाह और नहीं अनुभव किये स्थानके प्रति भी आकर्षित कर ले जाया जाता है। जैसे किसी चूहेंने एक कडिया देखा। उसमें खाने योग्य अच्छी अच्छी वस्तुए होंगी, ऐसा विचार उसने अपने दांतोसे उसमें छेद कर उसमे प्रवेश किया जिससे उसम बैठा भूखा सर्प उस चूहेको भक्षण कर गया और उसी छेदसे बाहर निकल वह वनमे चला गया, इसलिये कम ही सच्चा कारण है।

अब पुरुषार्थवादी कहते हैं कि—मूख समान कर्मसे क्या होता है? पुरुषार्थ ही सब कार्यो (फलो) का कारण है। यदि मात्र कर्मसे ही सबकी सिद्धि होता हो तो सब प्राणियोंको चाहिये कि वे बैठे रहे। कर्मद्वारा अपने आप ही सब वांछित वस्तुओंकी सिद्धि हो जायगी। कहा है कि–

न दैवमिति सचिन्त्य, त्यजेदुद्यममात्मन ।
अनुद्यमेन कस्तैल, तिलेभ्यः प्राप्तुमिच्छति ॥१॥

भावार्थ –"मात्र दैव (प्रारब्ध) पर ही आधार रख कर मनुष्याको अपना उद्यम नहीं छोड़ देना चाहिये, क्योंकि विना उद्यमके तिलसे तैल निकाल लेनेकी कौन इच्छा कर सकता है?"

यहां यदि किसीको यह शंका हो कि,—"राजा आदि तो बैठे ही रहते हैं, फिर भी उनके कर्मोंके फलसे उनके सेवक सर्व वांछित वस्तुएं उनको लाकर भेट करते हैं।" इसके उत्तरमें इतना ही कहना काफी होगा कि, "यदि ऐसा हो तो सेवक द्वारा लाया हुआ अन्नादि बिना उद्यमके उपयोग किये मुहमें किस प्रकार चला जायगा ? कदाच उनके सेवक उसे उनके मुहमें भी डाल दें, फिर भी बिना दांतोंके चबाये वह उनके गलेमें निगले क्योंकर उतरेगा ? इसलिये कर्म तो उद्यमसे ही उत्पन्न होता है इसलिये पर्वतपुत्र तुल्य है, और उद्योगपिता समान है। अपितु भव्य प्राणिक समय क्षपकश्रेणि पर आरूढ होकर शुभ ध्यान द्वारा सर्व कर्मोंका क्षय करनेसे ही जीवको सिद्धि पद प्राप्त होता है, इसलिये उद्योग ही बलवान् है।"

अब सब एकान्तवादीको जवाब दिया जाता है कि — प्रथम कालवादी है जो सब कुछ कालद्वारा किया मानता है वह अयोग्य है, क्योंकि समयादिक द्वारा होता हुआ काल समान होते हुए भी फलका विचित्रपन पाया जाता है। जैसे एक ही समयमें बोये बीजमेंसे कोई छोटा मोटा और नन्हा होता है, वसी प्रकार उनको अंकुर भी छोटे मोटे होते हैं और कोई उगता है, तथा कोई उगता भी नहीं है। अपितु किन्हीं दो पुरुषोंने एक ही समय राजाकी सेवा करना आरंभ किया फिर भी एक सेवकको उसका फल अल्पकालमें ही मिल जाता है, और दूसरेको बहुत समय व्यतीत हो जाने पर भी

नहीं मिलता। तथा एक ही वक्त खेती आदि कार्य करने वालेमेंसे एकके सम्पूर्ण धान्य पक जाता है, और दूसरेको कुछ भी पैदा नही होता, इसलिये यदि मात्र काल ही सबका कारण हो तो पूर्वोक्त सबको समान ही फल मिलना चाहिये। परन्तु ऐसा नही होता है, इसलिये इस विश्वकी विचित्रतामें मात्र काल ही कारण नही है परन्तु काल आदि पांचों कारणोंका सापेक्षपन है। कालादि पांचोंमेंसे एक एकको ही कारणरूप माननेवालेको मिथ्यात्वदृष्टि जानना चाहिये। क्योंकि उनके पांचो कारणोंको परस्पर निरपेक्ष माननेसे उसमें सब कार्यकी सिद्धिका अभाव है। पांचों कारण परस्पर मिल कर अपने अपने स्वरूपका त्याग किये बिना कार्य सिद्धि करते हैं, ऐसा माननेसे प्राणी सम्यक्त्वस्वरूपको प्राप्त करता है। इनमेंसे एकसे कोई कार्य नही होता, परन्तु उनकी गौणता मुख्यता करनेसे कार्य उत्पन्न होता है। इस विषय पर भगवतीसूत्रकी वृत्तिके प्रथम शतकके प्रथम उद्देश्यमें कहा है कि –"भविष्यकालमें वेदने लायक कर्म क्षयके लिए करण विशेष कर उसे खींच कर उदयावलीमें प्रवेश करे, उसे उदीरणा कहते हैं। उस उदीरणादिकमें काल, स्वभाव आदि पांचों कारणभूत हैं, फिर भी मुख्य तथा पुरुषार्थका ही कारणपन बताते हुए कहते हैं कि —

"जं तं भंते अप्पणा चेव उदीरेति"

हे भगवान्! उस कर्मकी उदीरणा आत्मा स्वयं करता है? आदि।

ये कालादिक एक एक किसी समय कार्यकी अपेक्षासे कारणभूत होते हैं। इस विषयमें द्वितीय श्रुतस्कंधमें कहा है कि-"नत्थि धम्मे अधम्मे अ" आदि अर्थात् श्रुत चारित्रात्मक नामक जो आत्माका परिणाम है, वह कर्मक्षयका कारण होनेसे धर्म और मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय, और योगरूप जो आत्माके परिणाम हैं, वे कर्मबन्धके कारण होनेसे अधर्म कहलाते हैं। इसप्रकारके धर्म और अधर्म कालवादी, ईश्वर वादी आदिके मतमें नहीं है। परन्तु धर्म अधर्म बिना मात्र काल आदि ही सर्व जगतकी विचित्रताका कारण है, ऐसा कभी नहीं मानना चाहिये, क्योंकि धर्म अधर्म बिना संसार की विचित्रता नहीं हो सकती। धर्म ही सम्यक् दर्शन है, और अधर्म मिथ्या दर्शन है। सम्यक्‌दृष्टि इन पांचों कारण रूपसे मानते हैं, क्योंकि इन्होंने द्वारा उन्होंने सृष्टिकी सिद्धि देखी है, जैसे माता-पिताके संयोगसे रुधिर और वीर्यका सम्बन्ध होता है, कर्मद्वारा उसमें जीव अवतरित होता है, उस जीवका सत् असत् कर्मके अनुसार सुख दुखके हेतुरूप वस्तुओंका सम्बन्ध प्रतिक्षण नियतिवश होता है, स्वभाव द्वारा जीवमें पशु, पक्षी, स्त्री, मनुष्य पुरुष आदिके स्वभाव उत्पन्न होते हैं, और फिर काल द्वारा जन्म और वयावस्था, युवावस्था आदि भाव प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार सब पदार्थोंमें यथायोग्य समझ लेना चाहिये।

जैसे पांच पुरुषोंसे उठाया जानेवाला भार यदि उनमेंसे एक पुरुषकी कमी कर दी जाये तो वह नहीं उठाया जा

सकता, वह तो पाचोके एकत्रित होने पर ही उठ सकेगा उसी प्रकार यहा भी कालादिकमेसे यदि किसी एकको भी न माने तो ससारकी कार्यसिद्धि नही हो सकेगी ।

यहा पर यदि कोई प्रश्न करे कि—"परस्पर अपेक्षा रहित कालादिकमेसे प्रत्येकको मानने वाले मिथ्यात्वी हैं, और समुदायको माननेवाले समकिती हैं, यह बात भी घटीत नही होगी, क्योंकि जैसे यदि सिकता (रेती) के प्रत्येक अवयवमें तेल नही है तो फिर उसके समुदायमे भी कैसे हो सकता है ? ईसीप्रकार कालादिक प्रत्येकको मानने वालेमे जब समकित नही है, तो फिर उनके समुदायको माननेवालेमे भी वो नहीं आ सकता ।" इस प्रश्नका यह उत्तर है कि—"पद्म रागादिक मणिये यदि भिन्न भिन्न हों तो उन्हे हार नही कहा जा सकता, परन्तु उन्ही मणियोंको यदि एकत्रित कर ली जावे तो वह हार बन जाता है । इसलिये इसमे वादीकी शकाका कोई अवकाश नही रहता । इस विषयमे कहा है कि —

णहि कालादिहि तो केवलएहि तु जायए किंचि ।
इय मुग्गरधणादिव ता सव्वे समुदिता हेउ ॥१॥

जहणगडालक्खणगुणा वेरुलियादी मणी सजुत्ता ।
रयणावलिववएस न लहति महग्घमुलावि ॥२॥

भावार्थ -" कालादिकमेंसे मात्र कोई एक हेतु कोई भी कार्य सिद्ध नहीं कर सकता है, जैसे भोजन पकनेके समय किसी एक काष्ठसे भोजन नहीं पकता, परन्तु काष्ठ समुदायका एकसा ताप लगनेसे भोजन पक जाता है, इसी-प्रकार इन पांचो कारणोंका समुदाय ही कार्य साधनका हेतु है । जैसे अनेक गुण लक्षणवाली अमूल्य वैडूर्यमणिये भी भिन्न भिन्न होनेपर रत्नावली (हार) के रूपको ग्रहण नहीं कर सकती, वैसे ही कालादिक एक एकको माननेवाले सम कीतिकी श्रेणिमें नहीं आ सकते ।"

अपितु विना काललब्धि प्राप्त किये मोक्ष प्राप्ति नहीं हो सकती, इसलिये जिस कालमें जो कार्य होनेका होता है, उस कालमें वह ही कार्य होता है । यहां पर यदि शिष्य प्रश्न करे कि, " अभव्य प्राणियोंने अनेक सिद्धि गये हुए प्राणियों के कालको प्राप्त किया है, फिर उनकी सिद्धि क्यों नहि होती ?"

गुरु कहते हैं कि-" अभव्य प्राणियोंका स्वभाव सिद्धि जाने योग्य कभी भी नहीं होता है, क्योंकि उनमें प्रथम मिथ्यात्वगुणस्थानक अनादि अनन्त भांगेमें स्थित है ।"

शिष्य—फिर मुक्तिपानेके स्वभाववाले सब भव्य जीव एक ही समयमें सिद्धिको नहीं प्राप्त कर लेते ?

गुरु—निश्चयरूपसे सम्यक्त्वादि गुणोंके जागृत होनेपर ही मोक्षकी प्राप्ति होती है, इसलिये नियति होना चाहिये ।

शिष्य—हे पूज्य ! सम्यक्त्वादि गुणश्रेणिके उत्पन्न हो जानेपर भी श्रेणिक राजाको मुक्ति क्यों नहीं हुई ?

गुरु—कर्मोंका क्षय नहीं हुआ था, तथा पुरुषार्थ और पंडितवीर्यका उल्लास नहीं हुआ था, इसलिये सम्यक्त्व प्राप्त हो जानेपर भी मुक्ति न हो सकी ।

शिष्य—हे गुरु ! शालिभद्रने मोक्षके लिए अनेको उद्यम किये थे, फिर भी वे मोक्षमें नहीं गये ?

गुरु—पूर्वकृत् शुभ कर्म अवशेष थे, इसलिये जब तक उन्हें मुक्ति कैसे मिल सकती थी ?

शिष्य—हे भगवान् ! मरुदेवा माताको चार कारण मिल गये थे, फिर भी उन्होंने मोक्षके लिये कोई प्रयास नहीं किया था, फिर वे मोक्षमें कैसे चले गये ?

गुरु—मरुदेवा माताने शुक्ल ध्यानद्वारा क्षपकश्रेणी पर आरूढ़ हो कर अनन्तवीर्य (पुरुषार्थ)का उल्लास किया था, इसलिये उन्हें सिद्धि मिली थी ।

इसप्रकार होनेसे स्याद्वादके मतानुसार काल, स्वभाव आदि पांचो हेतु मिलने पर ही सर्व कार्य सिद्धि हो सकता है । जो इन पांचोंके समुदायको नहीं मानते, वह जैन धर्मको नहीं मानने वाला समझना चाहिये ।

[इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशप्रासादवृत्तौ षोडशस्तम्भस्य एकोनविंशत्याधिकद्विशततमः प्रबन्धः ॥ २२९ ॥]

व्याख्यान २३०

भावी भाव

भवितव्यविपर्यास, मत्तो नो दशकंधर ।
कर्तुं समर्थो नैवाभूत्, स श्रीपूज्यैः प्रबोधितः ॥१॥

भावार्थ —"मदोन्मत्त रावण भी भवितव्यताको अन्यथा करनेमें समर्थ न हो सका । ऐसे पूज्य मुनि महाराजने प्रबोधित किया ।"

त्रिकुटाचल पर बसी हुई लङ्कानगरीमें रावण नामक राजा राज्य करता था । शास्त्रोंमें कहा है कि उसके दस शिर और बीस हाथ थे । उसने इन्द्रको जीता था, इस लोकपालोंको उसने अपने कोतवाल बना रक्खे थे । उसके यहां वायु झाड़ू लगाती थी, मेघ उसके घर पर पानी भरता था, चंडिका देवी उसकी आरती उतारती थी, तुम्बरु नामक दैत्य घंटा बजाता था, नव ग्रह सीमाका रक्षण करते थे, कुबेर धान्यके बीज बोता था, वरुण उद्यानमें पानी सींचता था, मकरध्वज खेती करता था, उस समय नव प्रतिवासुदेव रावणका वक्षस्थल दशमस्तक के प्रतिबिम्ब जिसमें प्रतिभासित होते थे, ऐसे हारसे सुशोभित था, वह राक्षसी विद्यामें बड़ा बलवान था, जगतको तृण तुल्य मानता था, और "मैं अजर अमर हूं" ऐसे गर्वसे गर्विष्ठ था ।"

एकवार एक नैमित्तिक (ज्योतिषि) यहां आ पहुंचा, उसने विद्वद् गोष्ठी करते हुए प्रसंगोपात कहाकि, "सर्व प्राणियोंको मृत्यु अवश्य होती है, क्योंकि मरना तो उसकी प्रकृति ही है, और जीना विकृति है।" इस पर रावणने कहा कि, "यम तो मेरा सेवक है, इसलिये मेरा मरण नहि हो सकता।" नैमित्तिकने कहाकि "दशरथ राजाके पुत्र लक्ष्मणके हाथसे तुम्हारी मृत्यु होगी।" इसे सुन रावणने जब मंत्रियोंकी ओर देखा तो मंत्रियोंने कहा कि, "ऐसी लौकिक गाथा है कि भावी कदापि मिथ्या नहीं हो सकता, इस पर रावणने गर्वके साथ कहा कि, "अरे! बिचारी कागडी सदृश रांकडी भवितव्यता किस गिनतीमें है? उत्तम पुरुषोंके लिये तो पुरुषार्थ ही प्रमाण है।" यह सुनकर नैमित्तिकने कहाकि, "हे राजन्! ऐसा न कहो। सुनो! चन्द्रस्थलराजा की पुत्री रत्नस्थलके राजाके साथ आजसे सातवे रोज विवाह करेगी। यदि इस भावी भावको मिथ्या करनेकी तुममें शक्ति हो तो तुम्हारे मरण विषयकी भवितव्यता भी मिथ्या हो सकती है।" रावणने कहाकि, "इसका विशेष स्वरूप बताओ।" तब नैमित्तिक ने कहाकि, "रत्नस्थल नामक नगरमें रत्नसेन नामक राजा है। उसके बहत्तर (७२) कलाकुशल, सर्वोत्तम, रुप और लावण्यमें इन्द्र सदृश रत्नदत्त नामक पुत्र है। एक बार राजाने पुत्रके लिये योग्य कन्याकी खोजके लिये कुमारकी छवी वस्त्र पर चित्रित करा, उस छवि

तथा कुमारकी लग्न-पत्रिकाको देकर चार चार मन्त्रियोंको चारो दिशाओंमें भेजा। उनमेंसे पूर्व, पश्चिम तथा दक्षिण दिशामें गये, बारह मन्त्रि तो निराश हो कर वापस लौट आये, और जो मन्त्रि उत्तर दिशामें गये थे, वे फिरते फिरते गंगा किनारे स्थित चन्द्रस्थल नामक नगरमें पहुचे। वहा चन्द्रसेन नामक राजा है, उसके चोसठ कला प्रवीण और दिव्य स्वरूपवती चन्द्रावती नामक कन्या है। उस कन्याको देख मन्त्रियोंने राजाको कुमारका स्वरुप बतलाया, और जन्म पत्रिका भेट की। उसकी कन्याकी लग्न पत्रिकाके साथ मिलान करने पर आठ विसा प्रीति मिल गई, इसलिये राजाने उसकी पुत्रिको बुला और दोनोकी योग्यता देख विवाह करना निश्चय किया। फिर जोशीलोगोंको बुलवाकर लग्नका मुहुर्त निकलवाया। उन्होंने विचार कर कहा कि--'हे स्वामी! हमने बारह वर्ष तकके मुहूर्त देखे, परन्तु आजसे बारहवे दिन जैसा शुभ मुहूर्त आता है, वैसा अन्य एक भी दिखाई नही देता।" यह सुन राजाने कहा कि,-"वर बहुत दूर है, मुहूर्त समीप आ गया है, इसका क्या उपाय करे?" इस पर आगन्तुक मन्त्रियोने कहा कि 'यदि वायु वेगी साते वर्णकी साढ दी जाये तो उस साधनसे कुमारको शीघ्रतासे यहा लाया जा सक्ता है।" राजाने यह शर्त स्वीकार की और वायुवेगवाली साढे देकर उन मन्त्रियोंको भेजा। वे पाच दिनमें उनके नगर पहुचे। रत्नसेन राजा भी कन्याका चित्र देख अत्यन्त हर्षित हुआ, और उसने

कुमारको मन्त्रियोंके साथ भेजनकी तैयारी की। वे इस समय माढ पर चेढकर प्रयाणकी तैयारीमें हैं, अत हे रावण राजा! यदि भावीभाव मिथ्या करनेकी तुझमें शक्ति हो तो इसे अजमा कर देख लो।"

रावणने तत्काल तक्षक नागको बुलाकर आज्ञा दि कि, "हे नाग! यहासे एकदम जाकर रत्नकुमारको ऐसा दश की वो तुरन्त मर जाये।" इस आज्ञाके होने ही तक्षक नाग तुरन्त वहा पहुचा, और जब कुमारका एक पग माढके पागडमें व दूसरा भूमि पर था, कि उसी अवसर पर उसने उसे काट डाला, जिससे कुमार पृथ्वी पर गिर पड़ा। राज कन्याको भी अपने दो राक्षस सेवको द्वारा मगवा रावणने नैमित्तिकको बतलाया। नैमित्तिकने भी उस कन्याको पहचाना। फिर रावणने तिमगलाके स्वरुपवाली एक राक्षसीको बुलवाया, और उसने एक पेटीमें सात दिन तकके लिये पर्याप्त अन्न जलकी व्यवस्था करा राजकुमारीको उसमे बिठा दिया। फिर उस पेटिको पधकर तिमगला राक्षसीके मुहमें रख दी, और उसे विसर्जन करते समय चेतवनी दी कि, "तू सात दिन तक अपार समुद्रमे जा इस पेटी सहित ऊँचा मुह रख कर रहना, और जब मैं बुलाऊ, उस समय ही यहा आना।" ऐसा कह उसे विदा किया। फिर रावणने नैमितिकसे कहा कि, 'मैं भवितव्यताको कैसी मिथ्या करता हू, उसे तुम देखते रहना।" नैमित्तिया मौन रहा।

इस ओर जब रत्नदत्त कुमार मूर्छित हो गया, तो रत्नसेन राजाने अनेक मंत्रवादियोंको बुलवाया, जो गारुडी मंत्र आदिसे विष उतारने लगे, परन्तु कुमार किसी भी प्रकारसे जागृत न हो सका इसलिये राजाने सब नगरमें घोषणा करा दि तो एक वृद्ध पुरुषने आकर कहा कि, "हे राजन् ! विषकी मूर्छा छ महिने तक रहती है, इसलिये इसे जलमें बहा दो, किन्तु अग्नि संस्कार मत करना" इसप्रकार सुन राजाने उस कुमारके शरीर प्रमाण पेटी बनवा उसमें कुमारको सुलाया, और उस पेटीको गंगाके प्रवाहमें बहत छोड़ दिया, जल प्रवाहमें भटकती भटकती वह पेटी समुद्रके समीप पहुची, वहां खार पानीके प्रभावसे कुमारकी विषजन्य मूर्छा कुछ कम पडी। सातवे दिन पेटी लेकर निमगला राक्षसी गंगा और समुद्रके संगम पर आई, वहां पेटीको किनारे पर रख वह जलक्रीड़ा करने लगा। फिर रत्नवती भी पेटीका ढक्कन खोल क्षणभर के लिये क्रिडा करनेको बाहर निकली कि उसी समय उसने पवनसे हिलोरे लेती एक पेटीको उसके समीप आते देखा इसलिये उसने उसे नजदीक खींच उसके हाथसे ही उसे खोला, तो उसमें किसी राजकुमारको विष मूर्छित स्थितमें देख अपने पासकी विष हरण मुद्रिकाका पानी उस पर छिडका, जिससे कुमार सचेत हो गया। उसे देख जिस कुमारका स्वरूप उसने चित्रमें देखा था, उसकी समानतासे उसने उस कुमारको पहिचान लिया कि, "मुझ पिताने जिसको दिया था, यह वह ही रत्नदत्त कुमार है।" ऐसा

जान उसने हर्षित हो कुमारसे उसका वृतान्त पूछा । कुमारने भी उसका चित्र देखा था, इससे कुमारीको पहचान लीया । फिर आज और इसी समय ही हमारे लग्न कर मुहूर्त निर्धारित कीया गया था" ऐसा जान कर उन्होने वहा गान्धर्व विवाह किया । वनमें वृक्षासे फल लेकर खाये । उस समय किनारे पर रहने वाले पक्षी गीत गान कर रहे थे । कुमारने आभरण के लिये वहासे विविध प्रकार के रत्न ग्रहण किये । फिर दोनों अपने वस्त्रोंके छोर (छेडा छेडी) बाधकर वे दोनो कुमारीवाली पेटीमें घुस गये, और पेटीका ढक्कन बन्द कर लिया । क्षणान्तमें तिमगला राक्षसी क्रीडा करके लौटी, और पहले अनुसार ही मुहमें रख अगाध जलमें गई । फिर आठवा दिन होने पर रावणने नैमित्तिकसे कहा कि, "मैने अवश्य होनेवाला पाणिग्रहण मिथ्या कर दिया है ।" तब नैमित्तिकने कहा कि, 'हे राजा ! उन दोनोंके लग्न हो गये हैं ।" यह सुन राजाने उस राक्षसीको बुलाकर पूछा कि, "तेरे मुहमें रक्खी पेटी है या नही ?" राक्षसीने कहा कि, "वह तो उसी स्थितिमें है ।" फिर रावणने पेटी मगवा कर खुलवाई तो उसमेंसे नवविवाहित कन्या अपने पति के आगे कर छेडा छेडी सहित बाहर निकल आई । जिसे देख सब लोक आश्चर्य चकित हो गये, फिर "उनका विवाह कैसे हुआ ?" ऐसा राजाने नैमित्तिकसे पूछा, जिस पर उसने सब वृतान्त कह सुनाया । यह सुन रावणने यह निश्चय कर कि "भावी का नाश कदापि नही

होता हूँ।" अपना मरण भी स्वीकार किया। फिर कुमार तथा कुमारीका सत्कार कर रावणने उन्हें जानेकी आज्ञा दी और वे अपने स्थान को चले गये।

एक दिन रावणने मुनिचन्द्र नामके आचार्यको वन्दना कर उससे पूछाकि, "हे भगवन! क्या किसीको नियति को व्यर्थ करते सुनाया देखा है?" गुरुने कहाकि, "हे राजा! यह एकान्तीका मत है। वे कहते हैं कि—

प्राप्तव्यो नियतिबलाश्रयेण योऽर्थ
सोऽवश्य भवति नृणा शुभोऽशुभो वा।
भूतानां महति कृतेऽपि हि प्रयत्ने
नाभाव्य भवति न भाविनोऽस्ति नाश ॥ १ ॥

भावार्थ –' नियतीके सामर्थ्यसे मनुष्यको जो शुभ अथवा अशुभ होनेवाला होता है, वह अवश्य होना है। प्राणी चाहे जितना प्रयत्न करे तो भी जो कार्य नही होनेका है वह कभी नहीं होता है, और जो होनेवाला है, उसका नाश कदापि नही होता।"

इसप्रकार नियतिका आश्रय ले वे कालादिक कारणको छोड़कर कहते हैं। परन्तु यह प्रमाणभूत नही है, क्योंकि कर्म आदि भी अपने अपने कार्य करनेमें मुख्य है। कहा है कि —

कर्मणो ही प्रधानत्व, किं कुर्वन्ति शुभा ग्रहा॰।
वसिष्ठदत्तलग्नोऽपि, राम॰ प्रव्रजितो वने ॥१॥

भावार्थ —"कर्मकी ही प्रधानता है, उसमे शुभ ग्रह भी क्या कर सकते हैं ? क्योंकि वसिष्ठ द्वारा निश्चय किये राज्याभिषेकके मुहूर्त पर भी रामको वनवास जाना पड़ा" अपितु

नैवाकृतिः फलति नैव कुलं न शील
न्विद्यापि नैव न च जन्मकृतापि सेवा ।

कर्माणि पूर्वतपसा किल सञ्चितानि
काले फलन्ति पुरुषस्य यथेह वृक्षा. ॥२॥

भावार्थ —"पुरुषको उसकी आकृति कोइ फल नहीं देती, शील कोइ फल नहीं देता, विद्या कोइ फल नहीं देती, इसीप्रकार जन्म पर्यन्तकी सेवा भी कोइ फल नहीं देती परन्तु पूर्व जन्ममें की हुइ तपस्या द्वारा संचित कर्म ही समय आने पर वृक्षके समान फल देते हैं ।.'

वैद्या वदन्ति कफपित्तमरुद्विकार
नैमित्तिका ग्रहकृत प्रवदन्ति दोषम् ।

भूतोपसर्गमथ मन्त्रविदो वदन्ति
कर्मैव शुध्धमतयो यतयो गृणन्ति ॥ ३ ॥'

भावार्थ —' वैद्यलोक वात, पित्त, और कफका विकार बतलाते हैं, जोशीलोक ग्रह-दोष कहते हैं । और मन्त्र

जाननेवाले भूत-प्रेत आदिका उपद्रव बताते है, परन्तु शुद्ध मनवाले यति तो मात्र कर्मका ही दोष होना कहते हैं।"

कई तो निम्न लिखित नाम कर्मके पर्याय ही बतलाते हैं —

निधिर्विधाता नियतिः स्वभावः
कालो ग्रहाश्चेश्वर कर्मदैवाः
भाग्यानि पुण्यानि यम कृतान्तः
पर्यायनामानि पुराकृतस्य ॥ ४ ॥

भावार्थ —"विधि, विधाता, नियति, स्वभाव, काल, ग्रह, ईश्वर, कर्म, दैव, भाग्य, पुण्य, यम और कृतान्त, ये सब पूर्वकृत कर्मके पर्यायवाची नाम हैं।"

यथा धेनुसहस्रेषु, वत्सो विन्दति मातरम् ।
एवं पूर्वकृतं कर्म, कर्तारमनुगच्छति ॥ ५ ॥

भावार्थ —"जैसे बछड़ा हजारों गायोंमें अपनी माता को पहिचान कर उसके पीछे जाता है, उसी प्रकार पूर्वकृत कर्म उसके कर्ताके पीछे पीछे जाता है।"

यथा छायातपौ नित्यं, सुसंबद्धौ परस्परम् ।
एवं कर्म च कर्ता च, संश्लिष्टावितरेतरम् ॥६॥

भावार्थ —"जैसे धूप और छाया परस्पर संबन्धित हैं, वैसे ही कर्म और उसका कर्ता भी परस्पर मिला हुआ है।"

अब उद्यमके विषयमें कहा जाता है

न यथैकेन हस्तेन, तालिका सम्प्रपद्यते ।
तथोद्यमपरित्यक्तं न फलं कर्मणः स्मृतम् ॥७॥

भावार्थ —"जैसे एक हाथसे ताली नही बजती, इसी प्रकार बिना उद्यमके अकेले कर्मसे फल नही होता ।"

पश्य कर्मवशात्प्राप्तं भोज्यकाले च भोजनम् ।
हस्तोद्यमं विना वक्त्रे, प्रविशेन्न कथञ्चन ॥८॥

भावार्थ —"देखो भोजन समय कर्मवशसे खानेको तो मिला, परन्तु वह विना हाथके उद्यम किये किसी भी प्रकारसे मुहमें प्रवेश नहीं करता ।"

इसप्रकार गुरु महाराजके वचन सुनकर रावणने फिरसे पूछा कि—"हे स्वामी ! क्या मृत्युको जीतनेका भी कोई उपाय है ?" तब गुरूने कहा कि,—हे तीन खण्डके राजा रावण !

परिहरति न मृत्युः पंडितं श्रोत्रियं वा
धनकनकसमृद्धं बाहुवीर्यं नृपं वा ।
तपसि नियमयुक्तं सुस्थितं वा
वनगत इव वह्निः सर्वभक्षी कृतान्तः ॥९॥

भावार्थ —"पंडितको, वेदज्ञ ब्राह्मणको, धन तथा सुवर्णकी समृद्धिवालेको, बाहुके पराक्रमवाले राजाको, निरन्तर

तपस्या करने वालेको, उत्तम स्थितिवालेको, अथवा कमजोर स्थितिवालेको, किसीको भी मृत्यु नहीं छोड़ती, क्योंकि धनके दावानल सदृश कृतान्त (यम) सर्व भक्षी है।"

ये पातालनिवासिनोऽसुरगणा ये स्वैरिणो व्यंतरा
ये ज्योतिष्कविमानवासिविबुधास्ताराश्च चन्द्रादय ।
सौधर्मादिसुरालयेषु सुखिनो ये चापि वैमानिका-
स्ते सर्वेऽपि कृतांतवासमवशा गच्छन्ति किं शोच्यते ॥२॥

भावार्थ –'जो असुर कुमार पातालमें रहते हैं, जो व्यंतर स्वेच्छाचारी हैं जो ज्योतिष विमानवासी तारा और चन्द्र आदि हैं, और जो सुधर्मादिक विमानमें सुखसे वैमानिक देव हैं, वे सब भी पराधीनपनसे यमराजके वशमें हो जाते हैं, अर्थात् मृत्युको प्राप्त होते हैं, तो फिर हे रावण! तू शोक क्यों करता है?"

इसप्रकारके गुरू महराजके उपदेशसे रावण प्रतिबोधित हो गया, और सदैव शान्तिनाथ भगवानकी भक्ति करने लगा।

एकबार रावण पुष्पक विमानमें बैठ उसकी पत्नी मन्दोदरी सहित अष्टापद तीर्थको गया। वहां भरतचक्री द्वारा निर्मित चौमुख जिन लयमें द्रव्य पूजा करने बाद हाथमें वीणा लेकर भावपूजा करने लगा, कि इसी समय नागपति धरणेन्द्र वहां आ चोवीस तीर्थंकरोंको नमस्कार कर रावणके पास बैठ गया। रावणने उससे अष्टापद तीर्थका स्वरूप पूछा।

जिस पर नागपतिने अष्टापद तीर्थका महात्म्य कह सुनाया। जिसे सुन रावण अत्यन्त हर्षसे भक्ति करने लगा। उस समय उसकी प्रिया मन्दोदरी नृत्य कर रही थी, वह स्वयं वीणा बजा रहा था। थोड़ी सी देरमे दैवयोगसे वीणाकी एक तन्त्री टूट गई, उस समय "अहो! इस नृत्य समय मेरी प्रियाके भावका भग न हो।" ऐसा विचार कर तत्काल रावणने मानो तात टूटी ही न हो, उसी प्रकार अपने हाथमे से एक नस निकाल कर वीणाको जोड़ दी, जिससे उसकी आवाज अत्यन्त सुन्दर हो गई, और नृत्यकी शोभामे भी वृद्धि हो गई। उसे देख देवोंने पुष्प वृष्टि कर बारवार उसकी प्रशसा की। उस समय भावमे निमग्न रावणने तीर्थंकर नाम कर्म उपार्जित किये। फिर वह अपने स्थानको लौट राज्यसुख भोगने लगा।

" इसप्रकार अनेक प्रकारसे परीक्षा कर नित्यानि सर्व एकान्तवादको छोड़ कर आत्मसिद्धि के लिये उद्यम करने वाले रावणने अष्टापद तीर्थमे तीर्थंकर नाम कर्म उपार्जन कर लिया।'

[इत्यन्ददिनपरिमितोपदेशप्रासादवृत्तौ षोडशस्तमस्य त्रिंशदधिकद्विशततम प्रबन्ध ॥२३०॥]

व्याख्यान २३१

कालादिकी अपेक्षासे कर्मकी बलवत्ताके विषयमे

देवेन्द्रा दानवेन्द्राश्च नरेन्द्राश्च महाबला ।
नैव कर्मपरिणाममन्यथा कर्तुमीश्वरा ॥१॥

भावार्थ –" देवेन्द्र दानवेन्द्र, और बलवान् राजा कोइ भी कर्मके परिणामको मिथ्या करनमे समर्थ न हो।" इसपर एक दृष्टात प्रसिद्ध है कि —

मनोरमा नामक नगरमे रिपुमर्दन नामक राजा था। उसके कोई पुत्र नही था। भाविनी नामक एक पुत्री ही थी। वह राजाको प्राणसे भी अधिक प्रिय थी, इसलिये उस पुत्रिके स्नान, भोजन, श्रृगार आदि करने बाद राजा स्वय स्नान, भोजनादिक करता था। वह कुमारी कलाचार्यके पास कलाका अभ्यास करती थी।

उसी नगरमे बिलकुल निर्धन धनदत्त नामक श्रेष्ठी रहता था। उसके सात पुत्रोंके बाद कर्मरेख नामक आठवा पुत्र हुआ, वह सबसे छोटा होनेसे उसके पिताको अधिक प्रिय था। वह पुत्र भी उ ही कलाचार्यके पास कलाका अभ्यास करता था, एक दिन समग्र कला सिख लेने पर भाविनीने कर्मरेखके सुनते हुए गुरुसे पूछा कि—"हे पिता! मेरा

वर कौन होगा ?" "गुरुने कहा कि—यह कर्मरेख तेरा पति होगा" इसप्रकार गुरुके वचन सुन मानो वज्राघात हुआ हो इस तरह वह मूर्छित हो गई। फिर शुद्धि आने पर विचारने लगी कि, "अरेरे! यह निर्धनका लड़का मेरा पति होगा, इससे तो मेरा मर जाना ही श्रेष्ठ है, परन्तु यदि इस कर्मरेखको ही मरवा डालू, तो फिर यह मेरा स्वामी कैसे होगा ?" ऐसा विचार वह क्रोध सहित अपने घर गई। अश्रुओंसे उसकी कांचली भीज गई, और वह मुह ढक कर सो रही। फिर जब भोजन समय राजाने उसकी खोज कराई कि "भाविनी कहा गई।" तो पता चला कि-वह तो कोपगृहमे सोती है। यह जानकर राजा उसके पास गया और उस उसके उत्सगमे बिठा कर दुःखका कारण पूछा। जिसपर उसने गुरुके कहे वचन और अपना विचार कह सुनाया। यह सुनकर राजाने उसके मंत्रियोंसे पूछा कि—"इस विषयमें क्या करना चाहिये ?" मंत्रियोंने कहा कि—"हे महाराज! किसी कारणके बिना पर पुरुषको मारना राजाको योग्य नहीं है, इसलिये उस कर्मरेखके पिताको बुलवा उसे कुछ द्रव्य देकर उस पुत्रको ईससे ले लेना चाहिये। फिर जैसी आपकी इच्छा होगी, वैसा किया जा सकेगा, और ऐसा करने पर हमारा अन्याय भी नहीं कहलायेगा।" फिर राजाने उस धनदत्त श्रेष्ठीको बुलवा कर अपना विचार प्रगट किया। वज्रके घातसे भी अधिक कठोर वचन सुन नेत्रोंमें अश्रुभर वह धनदत्त बोला कि, "हे देव। पुत्र कौन? और

मैं भी कौन ? मेरा समग्र परिवार ही आपका है, आपकी जैसी इच्छा हो, ऐसा कीजीये।" राजा भी एक ओर बाप और एक ओर भरपूर नदीके सदृश कठिन परिस्थितिमें पड़ गया अन्तमें कोई उपाय न देख उसने कमरेरखको बुला उसका वध करानेके लिए उसे एक चाण्डालको सुप्रत कर दिया। चाण्डाल उसे लेकर गावके बाहर शुलीके पास गया। वहा उसने यह विचार करा कि,–' बालहत्या करना हमें योग्य नहीं है। " कमरेखके बदले एक मुर्देको शुली पर चढा उसे छोड़ दिया, राजाका अभिप्राय जान कमरख भी शीयाल सदृश वहासे तत्काल भग गया।

श्रीपुर नगरमें श्रीदत्त नामक एक श्रेष्ठी रहता था, जिसके श्रीमती नामक एक पुत्रि थी। उस शेठको रात्रिमें कुलदेवीने आकर स्वप्नमें कहा कि—" हे श्रेष्ठी ! इस गावके बाहर कल प्रात काल उत्तर दिशाके मार्गमें सोते हुए जिस बालकके पास तेरी काली गाय खडी हो, उस बालकके साथ तेरी पुत्री श्रीमतीका विवाह कर देना।" अब कमरेख कुमार भी जब सम्पूर्ण रात्रिभर मार्गमें चलते चलते अत्यन्त थक गया, तो वह श्रीपुर गावके समीप आ सो रहा। श्रीदत्त श्रेष्ठी प्रात काल गोत्रदेवीके वचनानुसार वहा आया, और उसीप्रकार देख उसे उसके घर ले गया, और उसका लग्न अपनी पुत्रीके साथ कर दिया। हस्तमेलाप समय श्रेष्ठीने उसके घरका सब लक्ष्मी उसे अर्पण कर दी।

घर कौन होगा ?" "गुरुने कहा कि—यह कर्मरेख तेरा पति होगा" इसप्रकार गुरुके वचन सुन मानो वज्राघात हुआ हो इस तरह वह मूर्छित हो गई । फिर शुद्धि आने पर विचारने लगी कि, "अरेरे ! यह निर्धनका लड़का मेरा पति होगा, इससे तो मेरा मर जाना ही श्रेष्ठ है, परन्तु यदि इस कर्मरेखको ही मरवा डालूं, तो फिर यह मेरा स्वामी कैसे होगा ?" ऐसा विचार वह क्रोध सहित अपने घर गई । अश्रुओंसे उसकी कांचली भीज गई, और वह मुंह ढक कर सो रही । फिर नय भोजन समय राजाने उसकी खोज कराई कि "भाविनी कहा गई ।" सो पता चला कि-वह तो कोपगृहमे सोती है । यह जानकर राजा उसके पास गया और उसे उसके उत्सगम बिठा कर दुःखका कारण पूछा । जिसपर उसने गुरुके कहे वचन और अपना विचार कह सुनाया । यह सुनकर राजाने उसके मंत्रियोंसे पूछा कि—"इस विषयमें क्या करना चाहिये ?" मंत्रियोंने कहा कि—"हे महाराज ! किसी कारणके बिना पर पुरुषको मारना राजाको योग्य नही है, इसलिये उस कर्मरेखके पिताको बुलवा उसे कुछ द्रव्य देकर उस पुत्रको ईससे ले लेना चाहिये । फिर जैसी आपकी इच्छा होगी, वैसा किया जा सकेगा, और ऐसा करने पर हमारा अन्याय भी नहीं कहलायेगा ।" फिर राजाने उस धनदत्त श्रेष्ठीको बुलवा कर अपना विचार प्रगट किया । वज्रके घातसे भी अधिक कठोर वचन सुन नेत्रोंमें अश्रुभर वह धनदत्त बोला कि, "हे देव । पुत्र कौन ? और

मैं भी कौन ? मेरा समग्र परिवार ही आपका है, आपकी जैसी इच्छा हो, ऐसा कीजिये।"राजा भी एक ओर बाप और एक ओर भरपूर नदीके सदृश कठिन परिस्थितिमें पड़ गया अन्तमें कोई उपाय न देख उसने कमरत्नको बुला उसका वध करानेके लिए उसे एक चाण्डालको सुपुर्द कर दिया चाण्डाल उसे लेकर गावके बाहर शूलीके पास गया। वहा उसने यह विचार करा कि,–' बालहत्या करना हमें योग्य नहीं है।" कमरेत्नके बदले एक मुर्देको शूली पर चढा उसे छोड़ दिया, राजाका अभिप्राय जान कमरत्न भी शीघ्राल सदृश वहांसे तत्काल भग गया।

श्रीपुर नगरमें श्रीदत्त नामक एक श्रेष्ठी रहता था, जिसके श्रीमती नामक एक पुत्रि थी। उस शेठको रात्रिमें कुलदेवीने आकर स्वप्नमें कहा कि—" हे श्रेष्ठी ! इस गावके बाहर कल प्रात काल उत्तर दिशाके मार्गमें सोते हुए जिस बालकके पास तेरी काली गाय खडी हो, उस बालकके साथ तेरी पुत्री श्रीमतीका विवाह कर देना।" अब कमरत्न कुमार भी जब सम्पूर्ण रात्रिभर मार्गमें चलते चलते अत्यन्त थक गया, तो वह श्रीपुर गावके समीप आ सो रहा। श्रीदत्त श्रेष्ठी प्रात काल गोत्रदेवीके वचनानुसार वहा आया, और उसीप्रकार देख उसे उसके घर ले गया, और उसका लग्न अपनी पुत्रीके साथ कर दिया। हस्तमेलाप समय श्रेष्ठीने उसके घरकी सब लक्ष्मी उसे अर्पण कर दी।

उस गावमें कर्मरेखाने अपना असल नाम गुप्त रखकर रत्नचन्द्र नामक प्रसिद्ध किया। एक दिन वह रत्नचन्द्र उसके ससुर श्रीदत्तकी आज्ञा ले वाहणमें बैठ समुद्रमार्गसे व्यौपार करने गया। वहासे बहुतसा द्रव्य उपार्जन कर वापस लौटते समय मार्गमें वाहनके टूट जानेसे समुद्रमें गिर गया। उसे एक बड़ा मच्छ गल गया। वो मच्छ न चल सकनेसे समुद्रके किनारे आकर पड़ रहा। एक मच्छुएने उसे पकड़ लिया और उसका पेट चीरा पर उसमेंसे निकले उस कुमारको भृगुपुर (भरुच) नगरके राजाको भेट किया। उस राजाको कोई पुत्र नही था, इसलिये उसने उसे अपने पुत्रतुल्य मान कर रख लिया। फिर उसका विवाह कुण्डिनपुरके राजाकी पुत्रिके साथ कर दिया।

इधर रिपुमर्दन राजाने उसकी पुत्री भाविनीके योग्य वय आ जानेसे उसका स्वयंवर रचा। जिसमें उसने सब राजा, राजकुमार, मन्त्री, मन्त्रीपुत्र, श्रेष्ठी श्रेष्ठीपुत्र और सार्थवाह आदिको आमन्त्रित कर बुलवाया। उस समय भृगुपुर राजाके कुंवर रत्नचन्द्र भी चतुरंगीणी सेना सहित वहा जा उस समय स्वयंवर मंडपको सुशोभित किया। राजपुत्री भाविनीने सर्व राजमंडलका अतिक्रमण कर जैसे रोहिणी चन्द्रको वरती है, वैसे ही उसने रत्नचन्द्रको ही वर लिया। रिपुमर्दन राजाने विधिपूर्वक उनके लग्न कर हाथी, अश्व आदि बहुतसा दहेजा देकर उनको विदाय किया। रत्नचन्द्र कुमार भाविनीको लेकर उसके नगर तरफ गया।

एक दिन जब कुमार सुवर्णके थालमें स्वर्गके भोजन (अमृत) सदृश मिष्ट भोजन कर रहा था, उस समय अकस्मात् पवनके तेज चलनेसे धूल उड़न लगी, उसे थालीमें पड़ती देख हाथमें पखा लेकर पासमे खड़ी हुई भाविनीने उसके वस्त्र छोरसे उस भोजनको ढक दिया। उसे देख रत्नचद्र विचार करने लगा कि,—"अहो! एक ऐसा भी समय था, कि जब इस स्त्रीने मुझे शुली पर चढ़ाया था, और आज ऐसा भी समय आ गया है, कि वह ही स्त्री मुझको उसका प्राणपति मानकर मेरे शरीर पर रजका स्पर्श भी नहीं होने देती है।" ऐसा विचार कर उसने विस्मयसे कुछ हास्य किया। उसका हास्य देख उस चतुर भाविनीने आश्चर्यपूर्वक विचार किया कि,-'ऐसा स्मित हास्य तो मेरे जैसी स्त्रियोंको योग्य है, परन्तु ऐसे पुरुषोंको विना किसी कारणके हास्य उचित प्रतीत नहीं होता।" ऐसा विचार कर उसने उसके पतिसे आग्रहपूर्वक हास्यका कारण पूछा। प्रियाके अत्यन्त दुराग्रहसे वो बोला कि, "हे सुन्दर अगवाली! क्या तू मुझे पहिचानती है?" उसने उत्तर दिया कि, "हा आप मेरे प्राणपति हो और मे आपकी प्रिया हू।" कुमारने कहा कि, "हे सुन्दर भृकुटीवाली प्रिया? तूने जो यह सम्बन्ध बतलाया है, वह तो जगत प्रसिद्ध है, परन्तु हमारा दुसरा भी सम्बन्ध है, और वह यह कि हे मृगाक्षी! मैं कर्मरेख नामक धनदत्त श्रेष्ठीका पुत्र हू, और तू कलाचार्यके पास मेरे साथ अभ्यास करने वाली भाविनी है।" ऐसा कह उसने पूर्वकी बहुतसी

रहस्यभरी बात कही जिसे सुन भामिनीने लज्जित हो मुह निचा कर लिया, इस पर उसने उसे आश्वासन दे प्रिति पूर्वक कहा कि —

त्रपाया पद्मपत्राक्षि, तन्नास्त्यवसरोऽधुना ।
लोकोक्तिरिति यद्विप्रेणातीता नोच्यते तिथिः ॥१॥

भावार्थ — "हे कमलाक्षि ! लोकमे भी ऐसा कहा जाता है, कि गइ तिथिको ब्राह्मण भी नही पढता तो फिर अब तुझे लज्जित होने का समय नही है।"

उसीप्रकार हे कृशोदरी ! कर्म की गति गहन है, इस लिये पूर्व के प्रौढ पडितोने ब्रह्म, निधि आदि को छोड कर कर्मको ही नमस्कार किया है। कहा भी है कि —

ब्रह्मा येन कुलालवन्नियमितो ब्रह्माडभाडोदरे ।
विष्णुर्येन दशावतारगहने क्षिप्तो महासकटे।
रुद्रो येन कपालपाणिपुटके भिक्षाटन कारित
सूर्यो भ्राम्यति नित्यमेव गगने तस्मै नमः कर्मणे ॥१॥

भावार्थ -" जिसने ब्रह्माको कुम्भारके समान ब्रह्माण्ड रूपीपात्रको रचनेके लिये नियमित किया है, जिसने विष्णुको दश अवतार द्वारा गहन सकटमे डाला है, जिसने महादेवको हाथमे सराव सपुट देकर भिक्षाटन कराया है, और जिसके कारण सूर्य सदैव गगनमें भटकता रहता है ऐसे कर्मको नमस्कार हो ।"

आदि पतिके वचन सुनकर भाविनीने लज्जाका त्याग किया, फिर उसने यह वृत्तान्त अपने पिता रिपुमर्दनको कहा, और वह पतिभक्तिमें तत्पर हुई ।

तदन्तर कर्मरेखा राजाने गुरुसे देशना सुनकर विचार किया कि—"कर्मका फल मैंने इस भवमें प्रत्यक्ष देखा है इसलिये गुरु वचन प्रमाणित है ।" फिर उसने कर्म पर विजय प्राप्त करनेके लिये वृद्धावस्थामें चारित्र ग्रहण किया और दुस्सह तपस्या कर सद्गतिका भाजन बना ।

"भावि भावको मिथ्या करनेमें कोई समर्थ नहीं है, यह इस दृष्टान्तका तात्पर्य है । यहां कर्मके बलसे ही भाविनी और कर्मरेखाका संयोग हुआ है ।"

[इत्यब्दिनपरिमितोपदेशप्रासादवृत्तौ षोडशस्तम्भस्य एकत्रिंशदधिकद्विशततम प्रबंधः ॥२३१॥]

व्याख्यान २३२

"पांच कारण मिल कर ही कार्य होता है, इस विषय पर"

कालादिपञ्चहेतूना समवायो यदाभवेत्।
तदा कार्यस्य निष्पत्तिः, स्यात् क्षुल्लककुमारवत् ॥१॥

भावार्थ – "जब कालादिक पांचों कारण मिलते हैं तब ही क्षुल्लक कुमारके समान कार्य सिद्धी होती है।" क्षुल्लक कुमारका दृष्टान्त इस प्रकार है कि –

साकेत नामक नगरमें पुण्डरीक नामक राजा रहता था। उसका लघु भ्राता कंडरीक युवराजके पद पर नियुक्त था। कंडरीकके यशोभद्रा नामक अतिरूपवती स्त्री थी। जिसे देख पुंडरीक राजा कामातुर हो गया, और उसकी इच्छा यशोभद्राको प्रगट की। यशोभद्राने उत्तर में कहलाया कि, "हे पूज्य! आप समग्र प्रजाके स्वामी हैं, अत नीति पथका त्याग करना आपको उचित नहीं है।" इस प्रकार यशोभद्राका उत्तर दासीने राजासे कहा। जिस पर राजाने फिरसे कहलाया कि— "हे स्त्री! स्त्रियोंका 'ना' कहनेका तो स्वभाव ही है, परन्तु हे कृशांगी मश्करी करना छोडकर मुझे पति रूपसे अंगीकार कर" यशोभद्राने कहा कि, "कुल तथा धर्मकी मर्यादाका मैं कदापि उल्लंघन नहीं कर सकती।

तू ऐसे दुष्ट वचन कहते लज्जित क्यों नहीं होता ?" यह सुन राजाने सोचा कि, "जबतक मेरा भाई जीवित है, तब तक यह मेरी चाह नहीं करेगी, इसलिये उसे मरवा देना चाहिये।" ऐसा निश्चय कर उसने कपटसे उसके छोटे भाईको मरवा डाला। कहा भी है कि--

त्रपावरत्रया वद्धास्तावत्तिष्ठ ति जतव ।
अविवेकनल यावन्न कामरसनिर्मितम् ॥१॥

भावार्थ -"जब तक कामरससे उत्पन्न हुआ अविवेक रूपी बल नहीं होता, तब तक ही लज्जारूपी डोरीसे बंधे हुए जन्तु मर्यादामें रहते हैं।"

फिर यशोभद्राने विचार किया कि -"जिस दुष्टने अपने भाई तककी हत्या कर डाली है, वह अवश्य मेरे शीलका भी भंग करेगा, इसलिये अब मुझे परदेश चला जाना ही योग्य है।" ऐसा निश्चय कर वह गर्भवती यशोभद्रा गुप्तरूपसे वहांसे भग निकली और यह मानकर कि-"शीलकी रक्षा करनेमें दीक्षा जैसा अन्य कोई साधन नहीं है" उसने दीक्षा ग्रहण की। अनुक्रमसे गर्भ बढा, तब सब साध्वियों आदिने उसे उसका कारण पूछा तो उसने सब सत्य वृत्तान्त कह सुनाया। फिर श्रावकोंने शासनकी बदनामी न हो उस प्रकार उसे रक्खा। समय पूर्ण होनेपर उसने पुत्रको जन्म हुआ। वह श्रावकोंके घर बडा होने लगा। श्रावकोंने उसका लालन पालन किया, और उसका नाम क्षुल्लक कुमार रक्खा। जब

वह कुमार आठ वर्षका हुआ तब उसे दीक्षा दी, परन्तु चारित्रावरणका उदय होनेसे उसके चित्तमें विषयवासना उत्पन्न हो गई, इसलिये उसने उसकी मातासे कहा कि-" हे माता! विषय सुखका अनुभव कर फिर मैं फिरसे व्रत ग्रहण करूंगा।" उसकी माताने कहा कि,-" हे पुत्र! ऐसे संयम सुखका त्याग कर तुच्छ विषयोंमें क्यों आशक्त होता है? फिर भी यदि तेरी संयमकी इच्छा न हो तो मेरे कहनेसे बारह वर्ष मेरे पास रहकर जिनेश्वरकी वाणी सुन" ऐसे अपनी माताके वचन सुन वह उस अवधि तक उसके पास रहा, और उसकी माता (साध्वी) के पास सदैव वैराग्यमय, वाणी सुनने लगा, परन्तु उसके मनमें लेश मात्र भी वैराग्य उत्पन्न नहीं हुआ।

बारह वर्षके समाप्त होनेपर जब उसने उसकी मातासे आज्ञा मागी, तो उसने कहा कि,-" हे पुत्र! तू मेरी गुरूणीजी से जाकर आज्ञा माग।" तिस पर उसने बडी साध्वीके पास जा आज्ञा मागी। साध्वीने कहा कि,- " हमारे पास रह बारह वर्ष देशना सुन।" उसने स्वीकार किया और उनके पास रह अनेक सूत्रोंके अर्थ सुने, परन्तु उसे कुछ भी प्रतिबोध नहीं हुआ। अवधिके पूर्ण होनेपर उसने भी आज्ञा मागी कि-"आपके आग्रहसे यहां कष्ट सहन कर भी मैं अब तक रहा हूं, इसलिये अब जानेकी आज्ञा दीजिये।" यह सुन उन्होंने कहा कि-"हमारे गुरू उपाध्यायजी है, इसलिये उनकी आज्ञा लेकर फिर जाओ।" इसपर उसने

उपाध्यायजीके पास जा आज्ञा मांगी । उपाध्यायजीने कहा कि,-' बारह वर्ष हमारे पास रह देशना सुन । " उसने वो बात भी स्वीकार की, परन्तु कुछ भी बोध प्राप्त नहीं हुआ । अवधि पूरी होनेपर उपाध्यायजीकी आज्ञा मांगी उस समय इन्होंने कहा कि-" गच्छके अधिपति सूरिके पास जा उनसे तेरी इच्छा पूर्तीके लिये निवेदन कर" उसने वैसा ही किया, आचार्यने भी उसे बारह वर्ष उनके पास रहनेको कहा। इसलिये वह उस अवधि तक उनके पास रह देशना सुनने लगा । इसप्रकार माता आदिके आग्रहसे उसने अडतालीस वर्ष पर्यन्त दीक्षाका पालन किया, फिर भी उसका चित्त विषयसे पराङ्मुख नहीं हुआ । फिर अवधि पूर्ण होनेपर उसने सूरिसे कहा कि -" हे स्वामी ! मैं जाता हूं ।" यह सुन सावद्य कर्महोनेसे सूरि तो इस बात पर मौन ही रहे, लेकिन वह अपने आप ही वहांसे चल दिया । जाते समय उसकी माताने पूर्व अवस्था (गृहस्थपन) में लाया हुआ रत्नकंबल तथा मुद्रा (अंगुठी) उसे दी । उन्हें ले और सबमें सब चिन्होंका त्यागकर वह अनुक्रमसे साकेतपुरकी राजसभामें पहुंचा । वहां कोई नर्तकी नृत्य कर रही थी। उस नृत्यमें सर्व सभासद उस नृत्यको देख देख कर बारबार उसे धन्यवाद दे रहे थे और उस नर्तकीकी प्रशंसा कर रहे थे । क्षुल्लकने भी उसे देख उसमें तल्लिन हो गया । उस समय बहुत देर नृत्य करनेसे नर्तकीके थक जानेसे उसके नेत्र निद्रासे घुर्णाने लगी जिसे देख उसकी अक्काने संगीतके आलापमें उससे कहा कि -

सुट्ठु गाइअ सुठु वाइय, सुट्ठु नचिय सामसुदरि।
अणुपालिय दीहराइय, उसुमिण ते मा पमायए ॥१॥

भावार्थ –"हे सुन्दरी ! तूने बहुत अच्छा गाना कर बहुत अच्छा बजा कर और उत्तम प्रकारसे नृत्य कर बहुत सारी रात्रि तो व्यतीत कर दी, फिर अब थोडेसे समयके लिए प्रमाद क्यों करती है।"

इस प्रकार अक्काका गायन सुन नर्तकी फिरसे सचेत हो गई

इस ओर क्षुल्लक कुमारको भी वह गाथा सुन बोध हो आया, इसलिये उसने उसके रत्न कम्बलको उस नर्तकीको पारितोषीकमें दे दिया। राजपुत्रने जो उसे मणि जडित कुन्डल दिये, मत्रीने मुन्द्रा रत्न दिया, कीतनेक कालसे पति वियोगीनी एक सार्थवाह की स्त्रीने उस उसका हार दिया, और राजाके महावतने अकुश रत्न इनाम दिया। ये प्रत्येक इनाम लाख लाख मूल्यके थे जिन्हें देख राजाने पूछा कि, "तुमने जो इस प्रकार तुष्टिदान दिया है, उसका क्या कारण है?" तब सबसे पहले क्षुल्लकने जवाब दिया कि, "हे राजा! मैं तुम्हारे छोटे भाईका पुत्र हूं। साठ वर्ष तक सयमका पालन कर विषय वासनाकी पूर्तीके लिए राज्य लेनेकी इच्छासे मैं तुम्हारे पास आया था, परन्तु यह गाथा सुन मैंने विचार किया कि, "अब थोडेसे समयके लिए मुझे प्रमाद करना अनुचित है।" इस प्रकार यह

वैराग्यकी बाधक गाथा भी मेरे लिए साधक सिद्ध हुई। पहलेतो गुरुके साधक वचन भी बाधक रूप प्रतीत होते थे, परन्तु अबतो मैं चारित्र पालन करने मे निश्चल हो गया हूं इसलिये मैने इस मेरे महान् उपकारी नर्तकीको सबसे पहले प्रीतिदान दिया है। अपितु हे राजा! यदि तुम्हें मुझे तुम्हारे छोटे भाइका पुत्र माननेमे कोइ संदेह हो तो उस संदेहको दूर करनेवाली यह उसकी नाम मुद्रा ग्रहण कीजिये" उस वक्त राजाने क्षुल्लक कुमारसे कहा कि "यह राज्य ग्रहण करो।' उसने उत्तर दिया कि, "राज्य विक्रम आशक्ति उत्पन्न करनेवाला मोहरूपी चोर तो अब मेरे आत्मप्रदेशसे दूर भग गया है, इसलिये अब मैं राज्यादिकसे क्या करुं ?"

फिर राजाने उसके पुत्रसे प्रीतिदानका कारण पूछा। उसने कहा कि "हे पिता! राज्य लोभसे मैं तुमको आज-कालमे विषयादिकके प्रयोगसे मार डालनेका विचार कर रहा था, परन्तु यह गाथा सुनकर मैंने विचार किया कि-"पिताश्री वृद्ध हो गये हैं इसलिये अब उनका बहुत कम आयुष्य अब शेष होगा, उनसे मारना बेकार होगा, यह निश्चय कर मैं खुश हुआ, इसलिये उसे प्रतिदान दिया है।' फिर मंत्रीको पूछने पर उसने कहा कि, "हे स्वामी! आपके शत्रुओंने मुझे उनके पक्षमें करलिया था, परन्तु यह गाथा सुनकर मैं उस पापकर्मसे निवृत्त हो गया हूं।" फिर पति-विरहिणी स्त्रीसे पूछने पर उत्तर दिया कि "हे प्रभु! आजकाल करते हुए मैंने पति विरहमें बारह वर्ष निर्गमन किये, परन्तु फिर भी

यह नहीं लौटा, इससे पुरुषका विरह असत्य लगनेसे मैं आज परपुरुषका सेवन कर शील भंग करनेकी इच्छा कर रही थी, किन्तु इस गाथाके सुननेसे मैं वापस अपने शीलमें दृढ होगई, कि इतने लम्बे समयके पाले हुए शीलको अब थोडेसे समयके लिये तिलाञ्जली नहीं देना चाहिये। इस कारणसे प्रसन्न होकर मैंने नर्तकीको प्रीतिदान दिया है, फिर महावतको भी पूछे जाने पर उसने कहा कि, "मैं आपकी रानीसे लुब्ध हू, आज आपके विनाश करनेकी इच्छा थी परन्तु इस गाथाको सुनकर उस पाप विचारसे निवृत्त होगया हू, इससे मैंने यह तुष्टिदान दिया है।"

इस प्रकार सबके कारण सुन राजा आदि सब हर्षित हुए, और उन सबने उस क्षुल्लक कुमारके साथ आ दीक्षा ग्रहण की। अन्तमें उन्होंने स्वर्गादिक गति प्राप्त की।

इस दृष्टान्तका सार इस प्रकार है कि "सविज्ञ साधु आदिके मुहसे शुभकारी जिनेन्द्रकी वाणी चिरकाल तक सुनने पर भी क्षुल्लक कुमारको बोध नहीं हुआ, परन्तु कालादिक सामग्रीके मिलजाने पर मात्र एक नर्तकीकी गाथा सुननेसेही उसे तत्काल वैराग्य हुआ उससे कार्य सिद्धि हो गई।'

[इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशप्रासादवृत्तौ षोडशस्तम्भस्य द्वात्रिंशदधिकद्विशततम प्रबन्ध ॥ २३२ ॥]

व्याख्यान २३३

सद्गुणके विचारकी भी दुर्लभता

य प्राप्य मानुष ज म, दुर्लभ भवकोटिभि ।
धर्म शर्मकर कुर्यात्, सफल तस्य जीवितम् ॥१॥

भावार्थ – 'जो प्राणी करोड़ों भवमें भी दुलभ मनुष्य भवको पाकर कल्याणकारक धमका आचरण करते हैं, उन्हींका जीवित सफल है।"

दु प्राप्य प्राप्य मानुष्य, कार्य तत् किचिदुत्तम ।
मुहूर्तमेकमप्यस्य, नैव याति यथा वृथा ॥२॥

भावाथ – 'दु खदायक मनुष्य ज म पाकर उत्तम पुरुष को कोई ऐसा काय करना चाहिये, कि जिससे उसका एक मुहूर्त भी वृथा न जाये।"

इसकी पुष्टिमे निच लिखे दृष्टान्त प्रसिद्ध है कि –

पहले प्रतिष्ठान नगरमें कोइ धनवान श्रष्ठी रहता था। वह मुहूर्त, घडी, प्रहर, दिन आदि सब समय धम, क्रिया दान आदि धर्मकाय किये बिना ही काल निर्गमन करता था। अन्तमें वह आर्तध्यानसे मर कर उसी पुरके समीप एक सरोवरमें माछली हुआ।

उसी नगरमें शालिवाहन राजाके पूर्वभवका जीव एक श्रेष्टी रहता था। कहा है कि –

धर्मकीर्तिविहीनस्य, जीवितेन नरस्य किम्।
यो धर्मकीर्तिवान् दानी, तस्य जीवितमुच्यते ॥२॥

भावार्थ –"धर्म एव कीर्तिहीन मनुष्यका जीवनसे क्या लाभ? परन्तु जो धर्म और कीर्तिवाला होनेके साथ साथ दातार हैं, उसका जीवन सफल है।"

बादमें उस सरोवरकी पाल पर मुनिको दान देते हुए उस श्रेष्ठीने उस माछलेको देखा, जिससे उसे जातिस्मरण ज्ञान हो आया, अन्तमें श्रेष्ठीका जीव मरकर प्रतिष्टान नगरमें शालिवाहन नामक राजा हुआ।

एकबार शालिवाहन राजा उद्यानमें फिरता फिरता उसी सरोवरके किनारे एक वृक्षकी छायामें आकर बैठा। उसे बड़ा समृद्धिशाली देखकर उस माछलेने जाना कि–"पूर्वभवके दानका यह फल हैं।" फिर लोगोंका बोध करनेके लिए उस माछलेने मनुष्य भाषामें कहा कि –

को जीवति, को जीवति, को जीवति वदति वारिमध्यस्थः
मत्स्य. मत्सधविषये, लोकाना ललितविज्ञानम् ॥१॥

भावार्थ –"कौन जीवित है? कौन जीवित है? कौन जीवित है? इसप्रकार जलमें रहनेवाला मत्स्य लोगोंको बोध करनेके लिये तीन बार सुन्दर शब्दोंमें बोला।"

इस प्रकार मत्स्यके वचन सुनकर राजा आदि सब लोगोंको बडा आश्चर्य हुआ। फिर सभामें आ राजाने अपने पंडितोंसे उस मत्स्यके वचनोंका स्वरूप पूछा, परन्तु चित्तके चमत्कारिक उन वचनोंका तात्पर्य कोई नहीं कह सका। तदन्तर श्री कालिकाचार्यने उस मत्स्यके मनका भाव जानकर उसके ही समक्ष राजासे कहा कि:—

को जीवति गुणा यस्य, यस्य धर्मः स जीवति ।
गुणधर्मविहीनस्य, निष्फलं तस्य जीवितम् ॥१॥

भावार्थ —"कौन जीवित है? जिसमें गुण और धर्म विद्यमान हैं वह ही जीवित है। जो गुण और धर्मसे रहित हैं, उनका जीवित निष्फल है।" अपितु

यस्मिञ्जीवति, जीवति सज्जना मुनयस्तथा ।
सदा परोपकारी च, स जातः स च जीवति ॥२॥

भावार्थ —"जिनके जीवित रहनेसे सज्जन पुरुष तथा मुनि जीवित रहते हैं, और जो सदा परोपकारी हैं, उन्हींका जन्म सफल है और वह ही जीवित है।"

पञ्चमेऽह्नि षष्ठे वा, भुङ्क्ते अनवद्यमेव यः ।
धर्मार्थी चाप्रमादी च, स वारिचर जीवति ॥३॥

भावार्थ —"हे जलचर प्राणी! जो पांचवें या छट्ठे दिन निर्दोष भोजन करते हैं, जो धर्मके अभिलाषी हैं, और अप्रमादी हैं वे ही पुरुष जीवित हैं।"

आचार्यने जब इसमेका प्रथम श्लोक कहा, उस समय मत्स्यने दो बार "कौन जीवित है" इस पदका उच्चारण किया। जब आचार्यने दूसरा श्लोक कहा, तब उसने उपरोक्त पदका एक बार उच्चारण किया, और तीसरे श्लोकके बोलने पर वह मौन धारण कर बैठ रहा। फिर राजाने सूरिमहाराजसे कहा कि-"हे स्वामी! जलचर प्राणी भी धर्मक्रिया की इच्छा रखते हैं, यह बडे आश्चर्यकी बात है।" गुरुने कहा कि,-"हे राजा! धर्म और गुणहीन मनुष्यका भव सब जीवोंसे भी अति नीच है। इस विषयमें विद्वानकी वाणीके विलासी कवियोंका कथन है कि —

येषां न विद्या न तपो न दानं
न चापि शीलं न गुणो न धर्मः।
ते मर्त्यलोके भुवि भारभूता
मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति ॥ १ ॥

भावार्थ — 'जिन मनुष्योंमें विद्या, तप, दान, शील, गुण और धर्म नहीं है वे इस मृत्युलोकमें पृथ्वीके भाररूप होकर मनुष्यके रूपमें मृग ही है, ऐसा समझना चाहिये।"

इस प्रकार विद्वानोंके मुखसे निकले वचन सुनकर एक मृगने गर्वित होकर कहा कि- "निंदित मनुष्योंको हमारी उपमा क्योंकर दी जाती हैं? क्योंकि हम तो अनेक गुण वाले है।

गीते शीर्ष जने मांसं, त्वचं च ब्रह्मचारिणे।
श्रृंगं योगीश्वरे दद्मो, मृगस्त्रीषु सुलोचने ॥ १ ॥

भावार्थ —"गीतके लिये सिर, मनुष्यके लिए मांस, ब्रह्मचारीके लिये चर्म योगीके लिये सींग और स्त्रियोंके लिए हम नेत्र देते हैं।" अपितु —

दूर्वाङ्कुरतृणाहारा, धन्यास्ते च वने मृगा।
विभवोन्मत्तमूर्खाणां, न पश्यन्ति मुखानि यत् ॥ २ ॥

भावार्थ —"दूर्वाके अंकुर और तृण भक्षक मृग वनमें रहते हुए भी वैभवसे उन्मत्त मूर्खोंका मुंह नहीं ताकते, अतः उनको धन्य है।"

अयि कुरङ्गमकुरङ्गमविक्रमे
त्यज वनं जनन गमनं कुरु।
इह वने हि वनेचरनायका
सुरभिलोहितलोहितमायका ॥३॥

भावार्थ –'हे मृग तू इस वनको छोड़ दे, और शीघ्रतासे अन्यत्र गमन कर, क्योंकि इस वनमें गायोंके खूनसे रक्त बाणवाले बड़े पारधी आये हुए हैं।"

वसत्यरण्येषु चरति दूर्वां
पिबति तोयान्यपरिग्रहाणि।
तथापि वध्या हरिणा नराणां
को मूर्खमाराधयितुं समर्थ ॥४॥

भावार्थ –'हरन वनमें रहते हैं, दुर्बा खाते हैं और जिसपर किसीका स्वामीत्व नहीं है, ऐसे पानीको पीते हैं, तिस पर भी जो मनुष्य ऐसे प्राणीको मार डालते हैं, उन मूर्खोंको समझनेमें कौन समर्थ है ?'

अत निर्गुण मनुष्योंको हमारी उपमा देना अयोग्य है। ईसपर सुरिने फिरसे कहा कि —

येषां न विद्या न तपो न दानं
न चापि शील न गुणो न धर्मः।
ते मर्त्यलोके भुवि भारभूता
मनुष्यरूपा पशवश्चरंति ॥१॥

भावार्थ –" जिन मनुष्योंमें विद्या, तप, दान, शील, गुण और धर्म नहीं है, वे मृत्युलोकमें पृथ्वीके भाररूप होकर मनुष्योंका रूप धारण करनेवाले पशु हैं।'

यह सुन किसी गायने कहा कि —

तृणमद्मि दुग्ध धवल, छगण गेहस्य मंडन भवति।
रोगापहारि मुत्र पुच्छ सुरकोटिसस्थानम् ॥१॥

भावार्थ –"मैं घास खाती हूं, परन्तु श्वेत दूध देती हूं, मेरा गोबर घरका भूषण है, मेरा मूत्र रोग नाशक है, और मेरी पूछमें क्रोड़ी देवताओंका स्थान है।"

इसलिये निर्गुण मनुष्यको उत्तगुणीकी उपमा देना योग्य नहीं है। फिर किसी बैलने कहा कि —

नास्य भारग्रहे शक्तिर्न च वाहगुणक्रिया।
देवागारबलीवर्दस्तथाप्यश्नाति भोजनम् ॥१॥

भावार्थ —"आपके बतलाये निर्गुण मनुष्यमें मेरे समान भारकी शक्ति नहीं है, वहन गुण भी नहीं है, फिर भी महादेवके पोठियेके समान वह बैठा बैठा भोजन करता है।' और मैं तो

गुरुतरधुरधरस्तृणाशी
समविषमेषु च लांगलापकर्षी।
जगदुपकरण पवित्रयोनि
र्नरपशुना कथमुपमीयते गवेन्द्र ॥२॥

भावार्थ —बड़े गाड़की धूसरीको धारण करता हूँ, घास खाकर जीवता हूँ, समविषम स्थानमें हल खींचता हूँ, इस प्रकार जगतका उपकार करता हूँ। अपितु मेरी उत्पत्ति स्थान पवित्र गाय रूप है अतः नरपशुके साथ मुझे बैलकी उपमा क्या कर दते हो?"

इस प्रकार होनेसे ऐसे मनुष्योंको पशुकी उपमा देना भी योग्य नहीं है।

फिर आचार्यने 'येषा न विद्या" इस श्लोकका उच्चारण करते हुए चौथे पदमें 'मनुष्यरूपेण तृणोपमाना" अर्थात् "तृण जैसे हैं"। ऐसा कहा, जिसे सुन तृण बोला कि —

गवि दुग्धकर ग्रीष्मे वर्षाहिमतयोरपि ।
नृणा त्राणमह कुर्वे, तत्सम च कथ मम ॥१॥

भावार्थ —" मैं गायोंमें दूध उत्पन्न करता हूँ, और शर्दी गर्मी तथा वर्षाऋतुमें सब ऋतुओंमे मनुष्यका रक्षण करता हूँ, फिर भी मुझे निर्गुण मनुष्य सदृश क्यों बतलाया जाता है ?" अपितु

रूढस्य सिंधुतटमनुगतस्य तृणस्यापि जन्म कल्याणम् ।
यत्सलिलमज्जदाकुलजनहस्तावलंबन भवति ॥२॥

भावार्थ —" समुद्रके किनारे उगे और नीचे झुके हुए तृणका जन्म भी कल्याणकारी है, क्योंकि वह भी जलमें डूबनसे व्याकुल मनुष्योंका हस्तका आलम्बनरूप होता है।"

तथा समरांगणमे मुखमे तृण लेनेसे उस मनुष्यको कोई भी नही मारता । अपितु —

यस्यैवाहारयोगाज्जगति सुरभयोऽजाविका वा महिष्यः
सर्वा सम्प्राप्तभूयो वपुरुपचितिका आज्यदध्योनिदान ।
क्षीर लोकाय दद्यु सकलरसमहायोनिभूत तृण त
ज्ञानेऽजानत एते धिगखिलकवयो नीरस वर्णयन्ति ॥३॥

भावार्थ —"जिस तृणके भक्षण करनेसे जगत् मे गायें, बकरियें, घेटीं, भैंसे आदि सब शरीरमें पुष्टि प्राप्त करते हैं, और दही आदिको उत्पन्न करनेवाला दूध सब मनुष्योंको

देते है, हम समस्त रसके महान् कारणरूप घास को जैसे स्वय उसके गुणोंसे अनभिज्ञ हो वसे जो कवि लोग नीरस होना कहते है, उन्हें धिक्कार है।'

तत्पश्चात् सूरिने फिरसे उसी श्लोकका उच्चार किया और अन्तमें—मनुष्यरूपेण वृक्षा भवन्ति 'मनुष्यरूपमें वृक्ष है" ऐसा कहा। तब किसी वृक्षने मनुष्य भाषामें कहा कि —

छाया कुर्मो वय लोके, फलपुष्पाणि दद्महे।
पक्षिणा च सदाधार गृहादीना च हेतवे ॥१॥

भावार्थ — हम सबको छाया देते हैं, फल, फूल आदि देते हैं, और पक्षियोंको घर बनानेके लिये निरन्तर आधार देते हैं।' अपितु फिरसे युक्तिपूर्वक कहते है कि —

छायामन्यस्य कुर्वन्ति, स्वय तिष्ठन्ति चातपे।
फलन्ति च परार्थे च, नात्महेतोर्महाद्रुमा ॥२॥

भावार्थ — महावृक्ष दूसरोंको छाया करते है, और खुद धूपमें तपते हैं, तथा परोपकारके लिये फलते है, खुदके लिये नहीं।"

ग्रीष्मग्रीष्मखराशुतापमसम वर्षासुतापव्रज
भेदच्छेदमुख कदर्थनमल मर्त्यादिभिर्निर्मित।
सर्वग्रासिदवानलप्रसृमरज्वालोत्कराालिगन
इहो वृक्ष सहस्व जैनमुनिवद्यच्च धर्मस्याश्रय' ॥३॥

भावार्थ —"हे वृक्ष ! तू जैन साधु सदृश क्षमाका अद्वितीय आश्रय है, इसलिये ग्रीष्म ऋतुके अत्यन्त तीक्ष्ण सूर्यकी किरणोंको सहन कर वर्षाऋतुके जलसे उत्पन्न होनेवाले कष्टोंको सहन कर, मनुष्यादिकके भेदन, छेदन आदि विविध प्रकारकी कदर्थनाको सहन कर, तथा सबके भक्षक दावानलके प्रज्वलित ज्वाला समूहके आलिंगन करनेका दु ख भी सहन कर,"

वृक्षका ऐसा उत्तर सुन कर सूरिने कहा कि—मनुष्य रूपेण ही धूलिपुञ्ज -गुणरहित मनुष्य "मनुष्यके साधर्म धूल (मिट्टी) के ढेर हैं" इसे सुन भूमिने कहा कि —

कारयामि शिशुक्रीडा, पङ्कनाश करोमि न ।
मत्तोऽजनि रजःपर्वं, वर्षे क्षिप्त फलप्रदम् ॥ १ ॥

भावार्थ —"मैं बालकको क्रीड़ा कराता हूँ, पङ्क नाशक हू, मेरेसे ही होली पर्व हुआ है और मुझे खेतमें डालने पर ही सर्व प्रकारके पाक उत्पन्न होते हैं।"

धूलिर्मूलपदार्थसार्थजननी स्तम्भाद्यवष्टम्भदा ।
लेखाऽलेपकरी करीश्वरकरामगिन्यस्य प्रिया ।
दुर्गंध दूरकरी, शिशो' सुखकरी कालत्रयेपि स्थिरा ।
तस्माद्धुलिसम न चास्ति किमपि क्षेप्या मुखे पापिनाम् ॥२॥

भावार्थ —"धूल सब मूल पदार्थोंको उत्पन्न करने वाली है, स्तंभ आदिको आधार देनेवाली है, लिखित लेखको

मुकवानेके लिये घसका आम्लेप करने वाली है, हाथीकी सूण्डी सगति होनेसे उसे अत्यन्त प्रिय है, दुर्गन्ध-नाशक है, बालकको सुख देन वाली है, तीना कालोंमें स्थिर रहनेवाली है, इसलिये धूलिके समान अन्य कोई वस्तु नहीं है। वह पापियोंके मुह पर डालने योग्य है।"

सूरिन फिरसे उसी 'श्लोकके' चौथे पदमें कहा कि—"मनुष्यरूपा श्वपणस्वरूपा।" वे मनुष्यरूपम कुत्तेके समान है।" यह सुन कुत्ता बोला कि –

स्वामिभक्त सुचैतन्य स्वल्पनिद्रः सदोद्यमी।
अल्पसंतोषवानस्मि, तस्मात्तत्तुल्यता कथम् ॥ ? ॥

भावार्थ —"मैं स्वामी भक्त, शीघ्र चैतन्य, स्वल्प निन्द्रा लेनेवाला, निरन्तर उद्यमी और अल्प सन्तोषी हू, फिर ऐसे निर्गुण मनुष्यके समान मुझे क्यों बतलाया गया है?" उस पर एक दृष्टान्त भी है कि –

अयोध्या नगरीमें गोविन्दचद्र नामक राजा था। उसके आनन्द नामक मत्री था, जो बड़ा पापीष्ठ था, और लोगोंको बड़ा कष्ट देता था, इसलिये राजाने उसे मरवा कर जमीनमे गड़वा दिया। उसे दो कुत्तोंने खोद कर खानेके लिये बाहर निकाला बड़े कुत्तने छोटे कुत्तसे कहा कि-"इसको भक्षण मत करो।" क्योंकि —

हस्तौ दानविवर्जितौ श्रुतिपुटौ सत्यवचोद्रोहिणौ।
चक्षु साधुविलोकनेन रहित पादौ न तीर्थाध्वगौ।

लचालु चितपूर्णमुदरं गर्वेण तुगशिरो।
भ्रातः कुर्कुर मुच मुच सहसा निंद्य वपु सर्वदा॥१॥

भावार्थ —"इसके हाथ दानरहित हैं, इसके कान सत्य वचन श्रवण द्रपी है, इसके नेत्र साधुपुरुषका दर्शनसे रहित हैं, इसके चरण कभी तीर्थ मार्गमें नहीं गये हैं, इसका पेट रिश्वतसे लूटे द्रव्यसे परीपूर्ण है और इसका मस्तक गर्वसे उन्नत है, इसलिये हे भाई कुर्कुर! सर्वदा निंदित इस शरीरको तू बर्शाज छोड़ दे।"

इस प्रकार परीक्षा करनेमें जो चतुर कुत्ता है, वह निर्गुण पुरूषकी तुल्य कैसे हो सकता है?

फिर प्रवीण मूरिने उस श्लोकके चोथे पदमें कहा कि— मनुष्य रूपेण खराश्चरति।" वह मनुष्य रूपमें गधा है।" उसे सुन गर्दभने कहा कि—

शीतोष्णं नैव जानामि, भार सर्व वहामि च।
तृणभक्षणसतुष्ट' प्रत्यह भद्रकाकृतिः॥१॥

भावार्थ —"मैं शीत और घामका कोई विचार नहीं करता, सब प्रकारका भार वहन करता हू, तृण भक्षण कर सतोष रखता हू, और निरन्तर भोली आकृतिवाला हू।"

प्रिय-दूरे गत गेहे, भ्रास, जानामि तत्क्षणात्।
न विश्वसामि कस्यापि, काले चालयकारक' ॥१॥

भावार्थ :—" दूरदूर गये पतिको पर लौटते देख कर मैं शीघ्र उसकी सूचना देता हू, किसीका विश्वास नहीं करता, और यथोकालम घोसला बना कर रहता हूँ।"

किसी स्त्रीने कौएका मालक पीजरेमें रखा देखकर उसकी सखीने पूछा कि तोतको तो सब कोई पींजरेमें रखते हैं परन्तु तूने ऐस कौएको क्यों रक्खा है? इस पर उसने कहा कि –

अनम्य गरित रुपयोननगतस्यापि प्रियस्यागम।
वेत्याख्याति च धिर् शुकाग्य इमे सर्वे परन्त शठा।
मत्स्तस्य वियोगतापदहनज्वालावलीमदन।
वारस्नेन गुणेन काननमये व्यापारित पञ्जर ॥२॥

भावार्थ –" ह सखी! कौआ लाख योजन दूर बैठे पतिका आगमन यहीं बैठा जान जाता है, और बतला देता है, य तोत आदि सब पढ़े हुए हैं, किन्तु मूर्ख हैं और यह कौआ तो पतिक वियोग तापरूपी अग्नि ज्वालकी समुद्रमें, चन्दनके समान है, इसलिए इस गुणके कारण मैने इसे सोनेके पींजरेमें रखा है।"

फिरसे कविने कहा कि-मनुष्य कवेन हि काकचूहा। "वे मनुष्य रूपमें मुर्गा है" इसे सुन मुर्गेने कहा कि-मेरे गुण सुनिये–एक कवि मेरे विषयमें कहता है कि –

भो लोका. सुकृतोद्यता भवत त लब्ध्वा भव मानुष्य
मोहान्धाः प्रसरत्प्रमादवशगो माहार्यमाहार्यथा ।
इत्थ सर्वजनप्रबोधमधुरो यामेऽर्धयामे सदा
कृत्वोध्व निजकधर प्रतिदिन कोरुयते कुर्कुट. ॥१॥

भावार्थ –' हे लोगो ! मनुष्य भव पाकर तुम सत्यकर्ममें उद्यमी हो, प्रसारित प्रमादवश मोहान्ध होकर मनुष्यका भव मत हारो, मत खोओ । इस प्रकार सर्व लोगोंको प्रबोध करनेमें निपुण मुर्गा सदैव प्रहर और अर्ध प्रहरमें अपना मस्तक उठाकर बोलता है । "

मैंने पू अर्थात् पृथ्वीमें कु अर्थात् खराब (कुत्सित), कु अर्थात् क्रिया इससे मैं पक्षी हो गया हूँ, जिसके निवारणार्थ मैं प्रात काल " कु कू कू " ऐसा शब्द बोलकर सबको सुकृत्य करनेके लिए जागृत करता हूँ, फिर मेरे, निर्गुण पुरुष किस प्रकार हो सकता है ?

फिर पडितने कहा कि–मनुष्यरूपेण चोष्ट्राश्चरति । ' वे मनुष्य रूपमें ऊँट हैं । " इसपर ऊँट बोला कि–मेरे लिये भी एक कविने कहा है कि –

वपुर्विषमसस्थान कर्णज्वरकरो रव ।
करभस्याशु गत्यैव, छादिता दोषसतति. ॥१॥

भावार्थ –" शरीर विषम सस्थानवाला है । शब्द कर्ण–कठोर है, फिर भी ऊँटके शीघ्रगामी होनेसे उसका दोष समूह ढक जाता है । "

इसलिये मैं चन्दनके समान मात्र एक शीतगति गुणसे ही राजाको भी मान्य हूँ।

यह सुन पंडितने फिरसे कहा कि –मनुष्यरूपेण च अश्मतुल्या "वे मनुष्य रूपमें राखके समान है" तब राख बोली कि –

मूढकमध्येक्षिप्ता, करोम्यहं सकलधान्यरक्षां द्राक्।
मानं दधते मनुजा, मुखशुद्धिकरी सुगंधा च ॥१॥

भावार्थ –"मुझे यदि धान्यके बड़े ढेरमें डाला जाये तो मैं सब धान्यकी रक्षा करती हूँ, अपितु मैं मुखको शुद्ध करती हूँ तथा सुगंधी हूँ, अतः मनुष्य मेरा मान करते हैं।"

पंडित फिरसे कहते हैं कि–मनुष्यरूपा खलु मक्षिका स्यु "वे मनुष्य रूपमें मक्खी जैसे है।" यह सुन मक्खी कहती है कि –

सर्वेषां हस्तयुक्त्याहं, बोधयामि निरन्तरम् ।
ये धर्मं नो करिष्यन्ति, ते हस्तौ घर्षयंति वै ॥२॥

भावार्थ –"मैं मेरे अगले हाथ घिसकर युक्ति (निशानी) द्वारा मनुष्योंको सदैव शिक्षा देती हूँ, कि जो मेरे समान हाथ मिलने पर भी धर्म नहीं करेंगे, वे मेरी तरह हाथ घिसते ही रहेंगे।"

एकबार भोजराजाने सभामें विद्वानोंसे पूछा कि–"मक्खी

उसके अगले दो हाथ क्यों घिसती है?" तो पंडितोंने उत्तर दिया कि –

देयं भोज धनं सुविधिना नो सञ्चितव्यं कदा
श्रीकर्णस्य बलस्य विक्रमनृपस्याद्यापि कीर्तिर्यशः।
येनेदं बहु पाणिपादयुगलं घृष्यति भो मक्षिका
अस्माकं मधु दानभोगरहितं नष्टं चिरात् सञ्चितम्॥१॥

भावार्थ –'हे भोज राज! मिला हुआ द्रव्यका विधिपूर्वक निरन्तर दान देना चाहिये, परन्तु द्रव्यका कदापि संग्रह नहीं करना चाहिये। दानके प्रभावसे कर्ण, बली और विक्रम राजाकी कीर्ति अभीतक जगतमें जागृत है। इस प्रकार कहती मक्खियें उनके हाथपैर घिसती हुई बतलाती है कि– "अहो! हमने बहुत समयसे एकत्रित किये मधुका दान भोग नहीं किया, जिस पर भी यह तो परिणाममें नष्ट ही हुआ।"

आदि युक्तियोंसे श्री कालिकाचार्य द्वारा प्रबोधित करनेसे शालिवाहन राजा आदि लोक दान शीलादिक धर्ममें तत्पर हुआ।

"सब भवोंमें मनुष्य भव दुर्लभ है, इसमें भी धर्म तथा गुणकी प्राप्ति अति दुर्लभ है। इस प्रकारसे श्री कालिकाचार्यके उपदेशसे प्रतिबोधित होकर शालिवाहन राजा, दानादिक गुणोंको जान, उनको धारन कर सुशोभित था।"

इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशप्रासादवृत्तौ षोडशस्तम्भस्य त्रयस्त्रिंशदधिकद्विशततमः प्रबन्धः॥ २३३ ॥]

व्याख्यान २३४

बाह्य मात्रसे वन्दन करनेकी निष्फलताके विषयमें।

बाह्याचारेण मयुक्त करोति द्रव्यवन्दनम्।
तन्न प्रमाणमायाति, साफल्यं भाववन्दनम् ॥१॥

भावार्थ —"बाह्य आचारसे जो द्रव्य वन्दन करते है, वह प्रमाद है, उसका कोई फल नही मिलता, परन्तु भाव वन्दन ही सफल है।"

किसी राजाके एक शीतल नामक पुत्र था। वह बाल्यावस्थासे ही वैराग्यवान था। एक बार गुरुको वन्दना कर वह देशना सुनने बैठा। उस प्रसंग पर गुरुने कहा कि—"कोई वनवासी तपस्वी लोगोंके आमंत्रणसे गाममें आ कर मासक्षमणका पारणा करता था परन्तु गाममें किसी स्त्रीका मुह नही देखता था। इसलिये उसके सन्मुख आती हुई स्त्रियोंको उसके आगे आगे चलनेवाले छड़िदार दूर भगा देते थे। इस प्रकार स्त्रियोंका अनादर होते देख किसी वेश्याने विचार किया कि—"अहो! कैसी कपट जाल! लोकरंजनके लिये कैसा दंभ कर रक्खा है! ऐसा निश्चय कर उसने तपस्वीको शिक्षा देनेकी सोची! फिर एक दिन जब वह तपस्वी राजाके घर पारणा करने जा रहा था, उस समय उसे पालखीमें बैठ कर मार्गमें

आते देख वह वेश्या उसके सन्मुख गई। उसे सिपाहियोंने रोका, परन्तु वह नहीं हटी, और तपस्वीके पास आ उसके सिरमें उसकी अंगुलियोंसे टकोरे दिये, जिससे वह कुपित हो, उस वेश्याको क्रोधदृष्टिसे देखता हुआ, मनमें कुछ बड़बड़ाता और मुंहमे "हरि! हरि! विष्णु विष्णु! कहता हुआ स्नान करनेको वापस लौटा, क्योंकि "वेश्याका दर्शन हो गया, इसलिये स्नान करना चाहिए" ऐसा उसका आचार था। यह सब वृतान्त सुन राजाने उस वेश्याको बुलाकर उससे वैसा करनेका कारण पूछा। तब वेश्याने कहा कि, "तपस्वीके आने पर बतलाऊँगी" तदन्तर वह तपस्वी फिरसे स्नान कर जब राजाके घर आया, और वेश्याकी ओर न देख आंखे बन्द कर जीमने लगा तब वेश्याने कहा कि —

"आंखे बन्द कर मत जिम, आंख खोलकर देख। तेरी आत्माको भी यह बतला दे, कि मैं भी आत्मा ही हूँ, अन्य कोई नहीं हूं। व्यर्थ दम्भ न कर।"

यह सुन उस तपस्वीको बोध हो गया, तथा अन्य राजा आदि सब लोगोंको भी बोध हो गया। इसलिये हे शीतलकुमार आत्माका दमन करना ही श्रेष्ठ धर्म है।" आदि दृष्टान्त सुन शीतलकुमारने बोधित हो दीक्षा ग्रहण की, और दो प्रकारकी शिक्षा प्राप्त की।

शीतलकुमारके गुणवती नामक एक बहिन थी। उसे पृथ्वीपुरके प्रियकर नामक राजाकी व्याही गई थी, जिसके

चार पुत्र थे । सोते, उठते, बैठते भोजन करते आदि हर समय गुणवती उनके सामने उसके भाई शीतल मुनिकी बारबार प्रशंसा करती रहती थी, और कहा करती थी कि "दुनियामें तुम्हारा मामा ही धन्य है, कि जिसने मुनिपन अंगीकार किया है।" जिसे सुन उन चारोंने कामभोगसे विरक्त हो किसी स्थवीर मुनिके पास जा दीक्षा ग्रहण की और चारों बहुश्रुत हुए। फिर वे उनके गुरुकी आज्ञा ले उनके मामा शीतलाचार्यको वन्दन करनेको रवाना हुए। चलते चलते मामाके चरण कमलसे पवित्र हुए नगर के समीप पहुंचे कि रात्रिका समय हो गया, इसलिए ग्रामके बाहर किसी देवकुलमें रात्रि विराम किया, और गांवमें जाते हुए एक श्रावक द्वारा उन्होंने उनके मामासे कहलाया कि-" तुम्हारी बहिनके पुत्र दीक्षित हो कर तुमको वन्दन करनेके लिये आये हुए हैं, परंतु दिनके व्यतित हो जाने से उन्होंने गांवमें प्रवेश नहीं किया है।" यह सुन शितलाचार्य अत्यन्त हर्षित हुए, उन चारों मुनियोंको रात्रिमें शुभ अध्यवसायसे केवलज्ञान उत्पन्न हो आया। इधर प्रातःकाल आचार्य उनकी राह देख बैठे रहे, और चारों तरफ देखने लगे, परंतु वे नहीं आये, इसलिये कुछ देर इन्तजार कर बादमें शीतलाचार्य स्वयं ही उठ गांवके बाहर आये। उनको देख केवलीमुनि वीतराग हो जाने से न तो खडे ही हुए न उनका सत्कार ही किया। इसलिये आचार्य गमनागमन आलोवी अर्थात् इरियावहि पडिक्कमी बोले कि-' 'प्रथम किसको नमस्कार और वन्दना करूं ?" उन्होंने कहा कि,

"जैसी आपकी इच्छा हो।" यह सुन सूरिने विचार किया कि, "अहो! ये शिष्य कैसे धृष्ट हैं? बिलकुल भी लज्जित नहीं होते।" ऐसा विचार कर क्रोधसे चारों मुनियोंको वन्दना कर वादणा दीये, परन्तु केवली तो यह जानते थे कि यह पट्स्थानमें रहे कषाय कंडक द्वारा वन्दना करता है। उनके वन्दना करने पर ज्ञानियोंने आचार्यसे कहा कि "तुमने कषाय कंडक[1] की वृद्धि द्वारा द्रव्यसे वन्दना की है, अब भावसे वन्दना करो," यह सुन सूरिने कहा कि,— द्रव्य वन्दन और भाव वन्दन कैसे जाना? और कषाय कंडककी वृद्धि कैसे जानी। क्या आपने कोई अतिशय ज्ञान प्राप्त कर लिया है? केवलीने "हां" कहा। इस पर सूरिने फिर पूछा कि,—"छाद्मस्थिक ज्ञान या केवल ज्ञान?" तब उन्होंने जवाब दिया कि—'सादि अनंत भावसे केवल ज्ञान।" यह सुन आचार्य हर्षसे रोमांचित हो विचार करने लगे कि—"अहो! मुझ मंदभागीने सर्वदर्शी सर्वज्ञ की आशातना की" ऐसा विचार कर संवेग प्राप्त किया और भाव पूर्वक वन्दना करते हुए उसी कषाय कंडक स्थान से वापस हुए, उन्होंने अपूर्वकरण नामक गुणस्थानक में प्रवेश कीया, और क्षपक श्रेणी मांड केवलज्ञान के भाजन हुए। गुरुको वन्दना करनेकि विधि श्री गुरुवन्दन भाष्यमें बताई है, जो इस प्रकार है कि —

[1] इन पट्स्थान कण्डकादिका विस्तार श्री कम्मपयडी का टीकासे जान लेना क्युंकि यहां ग्रंथके विस्तार का अधिकार है।

पणनाम पणाहरणा, अजुग्ग पण जुग्ग पण चउ अदाया ।
चउ दाय पण निसेहा, चउ अणिसेहट्ठ कारणया ॥१॥

भावार्थ —"१ वन्दन के पाच नाम हैं, २ उस पर पाच उदाहरण हैं, ३ पाच वन्दन करने के अयोग्य हैं, ४ पाच वन्दन करने योग्य हैं, ५ चार वान्दणा नही देते, ६ चार वादणा देते हैं, ७ पाच वख्त वादनेका निषेध है, ८ चार वख्त अनिषेध है, ९ वादनेमें आठ कारण हैं"

आवस्सय मुहणतय, तणु पेह पणिस दोस वत्तीसा ।
छ गुण गुरु ठवण दुग्गह, दुठनिसक्खर गुरु पणीसा॥२॥

भावार्थ —"१० वादणेमे पच्चीस आवश्यक ध्यानमें रखने योग्य हैं, पच्चीस मुहपत्ती की पडिलेहण है, १२ पच्चीस शरीरकी पडिलेहण है, १३ बत्तीस दोष, १४ छ गुण, १५ आचार्यकी स्थापना, १६ दो प्रकार के अवग्रह १७ वांदनेमें दोसो छ (२०६) अक्षर हैं जिन मे पच्चीस गुरु अक्षरहैं ।"

पय अडवन्न छठाणा, छ गुरुवयणासायण तित्तीस ।
दुविही दुवीसदारेहिं, चउसया णाणउइ ठाणा ॥३॥

भावार्थ —"१८ अठावन पद १९ छ स्थान, २० छ गुरु वचन २१ तेतीस आशातना २२ और दो विधि, इस प्रकार बावीस द्वार बतलाये गये हैं, जिन के उत्तर स्थान चारसो बाणवे (४९२) होते हैं ।

"जैसी आपकी इच्छा हो।" यह सुन सूरिने विचार किया कि, "अहो! ये शिष्य कैसे धृष्ट हैं! बिलकुल भी लज्जित नहीं होते।" ऐसा विचार कर क्रोधसे चारों मुनियोंको वन्दना कर वादणा दीये, परन्तु केवली तो यह जानते थे कि यह षट्स्थानमें रहे कषाय कंडक द्वारा वन्दना करता है। उनके वन्दना करने पर ज्ञानियोंने आचार्यसे कहा कि "तुमने कषाय कंडक[१] की वृद्धि द्वारा द्रव्यसे वन्दना की है, अब भावसे वन्दना करो," यह सुन सूरिने कहा कि,– द्रव्य वन्दन और भाव वन्दन कैसे जाना? और कषाय कंडककी वृद्धि कैसे जानी। क्या आपने कोई अतिशय ज्ञान प्राप्त कर लिया है? केवलीने "हां" कहा। इस पर सूरिने फिर पूछा कि,–"छाद्मस्थिक ज्ञान या केवल ज्ञान?" तब उन्होंने जवाब दिया कि –"सादि अनंत भावसे केवल ज्ञान।" यह सुन आचार्य हर्षसे रोमांचित हो विचार करने लगे कि–"अहो! मुझ मंदभागीने सर्वदर्शी सर्वज्ञ की आशातना की" ऐसा विचार कर संवेग प्राप्त किया और भाव पूर्वक वन्दना करते हुए उसी कषाय कंडक स्थान से वापस हुए, उन्होंने अपूर्वकरण नामक गुणस्थानक में प्रवेश कीया, और क्षपक श्रेणी मांड केवलज्ञान के भाजन हुए। गुरुको वन्दना करनेकि विधि श्री गुरुवन्दन भाष्यमें बताई है, जो इस प्रकार है कि —

---

१ इन षट्स्थान कषायादिका विस्तार श्री कल्पसूत्रकी टीकासे जान लेना, अनुभाग बंधनके विवरणमें यह अधिकार है।

पणनाम पणाहरणा, अजुग्ग पण जुग्ग पण चउ अदाया।
चउ दाय पण निसेहा, चउ अणिसेहट्ठ कारणया ॥१॥

भावार्थ –"१ वन्दन के पाच नाम हैं, २ उस पर पाच उदाहरण हैं, ३ पाच वन्दन करने के अयोग्य हैं, ४ पाच वन्दन करने योग्य हैं, ५ चार वान्दणा नही देते, ६ चार वान्दणा देते हैं, ७ पाच वखत वान्दनेका निषेध है, ८ चार वखत अनिषेध है, ९ वान्दनेमें आठ कारण हैं"

आवस्सय मुहणंतय, तणु पेह पणिस दोस बत्तीसा।
छ गुण गुरु ठवण दुग्गह, दुछवीसक्खर गुरु पणीसा॥२॥

भावार्थ –"१० वान्दणेमे पच्चीस आवश्यक ध्यानमें रखने योग्य हैं, पच्चीस मुहपत्ती की पडिलेहण है, १२ पच्चीस शरीरकी पडिलेहण है, १३ बत्तीस दोष, १४ छ गुण, १५ आचार्यकी स्थापना, १६ दो प्रकार के अवग्रह १७ वांदनेमें दोसो छ (२०६) अक्षर हैं जिन में पच्चीस गुरु अक्षरहैं।"

पय अडवन्न छठाणा, छ गुरुवयणासायण तित्तीस।
दुविही दुवीसदारेहिं, चउसया बाणउ ठाणा ॥३॥

भावार्थ –"१८ अठावन पद १९ छ स्थान, २० छ गुरु वचन २१ तेतीस आशातना २२ और दो विधि, इस प्रकार बाइस द्वार बतलाये गये हैं, जिन के उत्तर स्थान चारसो बाणवे (४९२) होते हैं।

इसप्रकार चार सो बाणु स्थानकी शुद्धि द्वारा गुरुवदना करना चाहिये इस पर जो वांदणेके पाच नाम बतलाये गये है वे इसप्रकार हैं –

वदणय चिइकम्म, किइकम्म विणयकम्म, पूआकम्म ।
गुरुवदण पणनामा, दव्वे भावे दुहाहरणा ॥४॥

भावार्थ –" वदनकर्म, चितिकर्म, कृतिकर्म, विनयकर्म और पूजाकर्म ये गुरु वन्दन के पाच नाम हैं इन पाचों पर द्रव्य भाव दोनों प्रकार के उदाहरण हैं ।"

सीयलय खुड्डए वीर, कन्ह सेवग दु पालये सबे ।
पचे ए दिट्ठता, किइकम्मे दव्वभावेहि ॥५॥

भावार्थ –" शीतलाचार्य, क्षुल्लकसूरि, वीर शालवी, और कृष्ण वासुदेव, दो सेवक तथा पालक और साब ये पाच द्रव्यभावसे पाच प्रकार के कृतिकर्म के दृष्टान्त हैं ।"

इनमेसे शीतलाचार्य का उदाहरण ऊपर कहा जा चुका है, और क्षुल्लकसूरिका दृष्टान्त इस प्रकार है कि एक बार क्षुल्लकसूरि गच्छके व्यवहार से उद्वेग पाकर अलग होने की इच्छासे वनमे गये जहा चम्पा आदि उत्तम वृक्षोसे लगे खीजडीके वृक्षको पूजाते देखकर प्रतिबोधित हुए और वनसे वापस लौट आये । उन्होने विचार किया कि "चम्पादिक उत्तम वृक्षके समान तो बहुश्रुतमुनि हैं और मैं तो खिजडी के वृक्ष तुल्य हूँ वे पूज्य होने पर भी उलटे मुझे वांदते हैं क्यों कि गुरुने मुझे आचार्य पदवी दी है ।"

यह उदाहरण चितिकर्म के विषयमें है। शेष तीन उदाहरण आदि श्रुतरूपी मंजुषासे पढ़े। "कषाय कटक की वृद्धि पूर्वक शीतलाचार्य के समान जो द्रव्य वन्दना करते हैं वे निरर्थक हैं, जब कि भावपूर्वक की हुई वन्दना मोक्ष देती है। देखिये, बादमें उन शीतलाचार्यने भावपूर्वक वन्दना की तो उससे केवलज्ञान प्राप्त किया।"

[इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशप्रासादवृत्तौ षोडशस्तम्भस्य चतुस्त्रिंशदधिकद्विशततमः प्रबंधः ॥ २३४ ॥]

व्याख्यान २३५

ज्ञानविज्ञानयुक्तक्रियाके विषयमें

ज्ञानविज्ञानसंयुक्ता, या क्रियात्र विधीयते।
सावश्य फलदा पुंसा, द्वाभ्यामुक्तमतः शिवम् ॥१॥

भावार्थ :–"ज्ञान और विज्ञान सहित जो क्रिया की जाती है, वह मनुष्यको अवश्य फल देने वाली होती है।"

दृष्टान्त निम्नस्थ है।

श्री निमथ गच्छमे धर्मबुद्धि नामक एक छोटे साधु थे। वे शास्त्रके अभ्यासमे कुशल थे, परंतु १ हेय, २ ज्ञेय, ३ उपादेय, ४. उत्सर्ग और ५ अपवाद के स्वरूपको समझ कर उसका यथायोग्य स्थापन करना नहीं जानते थे। उन्होंने धर्मबुद्धि से चातुर्मास मे ऐसा अभिग्रह लिया कि – "इस चातुर्मासमे मैं ग्लान (रुग्ण) साधु की वैयावृत्य करुंगा।" परन्तु उस चातुर्मास मे कोई साधु बिमार नहीं पडे, इससे उन्हे किसी की सेवा करनेका अवसर प्राप्त नहीं हुआ। वह मुनि खेदके साथ विचार करने लगा कि, "अन्य सब साधुओंके अभिग्रह तो पूर्ण हो चुके हैं, परन्तु मेरा अभिग्रह पूर्ण नहीं हुआ।" इसप्रकार विचार करनेसे वे पापका भागी हुए, उन्होंने बादमें यह बात गुरुसे कही कि –"हे स्वामी! इस चातुर्मासमें कोई साधु बिमार

नहीं हुए, जिससे मेरा अभिग्रह पूर्ण न हो सका जिसका मुझे बड़ा शोक है।" यह सुन गुरूने कहा कि, 'प्रत्येक क्रिया ज्ञान विज्ञान द्वारा करने पर ही वह फलीभूत हो सकती है" इस पर एक व्यवहारिक दृष्टान्त ईस प्रकार है कि –

किसी श्रेष्ठीने एक बार कुछ क्षत्रियोंको उस के घरमें जीमने को निठाया। उस घर मे एक बड़ा कुँवा बाधा हुआ था। उस घडेम सर्व वस्तुओं को स मह करने वाले श्रेष्ठीने उसके घरमेंसे निकला हुआ एक सर्प डाल रक्खा था। "इस घडेमें सुवर्ण अलकार होंगे" ऐसा सोच उन क्षत्रियोंने रात्रिमें चौर वृत्ति से उस के घरमे प्रवेश कर उस घडेको ले गये। फिर घडेका ढकन उठा कर उसमे हाथ डाला कि सर्पके काटने से वे सब मर गये। इसलिये हे शिष्य! वे क्षत्रिय ज्ञानविज्ञान रहित थे, इससे यह न सोच सके कि क्या कभी इस प्रकार खुले घडे मे अलकार रक्खे जा सकते हैं या नहीं जिससे व दु खी हुए। इस दृष्टान्त का यह सार है कि-'पढम नाण तओ दया" अर्थात प्रथम ज्ञान और पश्चात् दया" आदि युक्तिपूर्वक दृष्टि पडिलेहणादि सब क्रिया ज्ञान विज्ञान द्वारा ही फलीभूत होती है" अपितु गुरूने कहा कि —

यादृश तादृश वापि, पठित न निरर्थकम्।
यदि विज्ञानमभ्येति, तदेव फलति ध्रुवम् ॥१॥

भावार्थ –"कोई भी अध्ययन निरर्थक नहीं होता परन्तु जब विज्ञान युक्त होता है तब ही फल मिलता है।"

एक राजा था वह जो कोई नई कविता कर ले जाता था उससे पांचसो दिनार देता था। एकवार एक सरोवर के किनारे किसी मूर्ख ब्राह्मणने दो बैल बांधे थे। वहां पानी पीने के लिये एक बड़ा मदोन्मत्त आखला आया। वह पानी पीते पीते पग से जमीन खोदने लगा। उसे देख ब्राह्मणने एक कविता की कि–

घिसे घिसे और अति घिसे, ऊपर डाले पानी।
जिस कारण ये घिसे घिसावे, वह बातमें जानी।

अर्थात् यह बात मैंने जान ली है कि तू मेरे बैलों को मारना चाहता है। फिर वह ब्राह्मण वह कविता लेकर राजा के पास गया। राजाने उसे पांचसो सोनामोहर दी। जिन्हें ले ब्राह्मण हर्षित हो अपने घर चला गया। फिर ऐसे राजा का खर्च सहन न होने से मन्त्रीने राजपुत्र की सम्मतिसे राजाको मारने के लिए एक हजाम (नाई) को भेजा। वह हजाम दाढी बनाने के बहाने राजाके पास गया, और राजा के कंठमें अस्तरा भोंकने के विचार से वह हजाम अस्तरे को तीक्ष्ण करने के लिए पत्थर पर पानी डाल कर खूब घिसने लगा। उस समय निर्गमन करने के लिए राजा अपने हाथसे भींत (दीवाल) पर लिखी उक्त ब्राह्मण वाली कविता पढने लगा। उसे सुन अर्थको जान उस हजामने विचार किया कि–"राजाने मेरा हेतु जान लिया है। इसलिये वह हजाम राजा के पैरों में गिरकर कहने लगा कि–

"हे स्वामी! इसमें मेरा कोई दोष नहीं है परन्तु तुम्हारे पुत्र तथा प्रधानने मुझे ऐसा करने का किया था।" यह सुन राजा आश्चर्यचकित हो इनामसे सब वृत्तान्त पूछ लिया, फिर से अभयदान दे स्वयं मौन ही रहा। अनुक्रमसे प्रधान तथा पुत्र को योग्य शिक्षा दे निर्भय हुआ।

इस प्रकार एक साधारण कवितासे भी राजाके प्राण बच गये। हे शिष्य! इस दृष्टान्त का सार यह है कि-साधुने चाहे जैसा वाक्य सुना हो परन्तु उसका उपयोग स्याद्वाद द्वारा करना चाहिये जिससे उनका सब पढ़ा हुआ गुणकारी हो सकता है।

अपितु हे शिष्य! विद्या तो अवश्य ग्रहण करनी चाहिये। बिना विद्या के समय आने पर पस्ताना पड़ता है। इस पर एक दृष्टान्त सुन —

कोई एक दिन दरिद्र पुरुष द्रव्य उपार्जन करने लिये विविध उपाय करता हुआ पृथ्वी पर भटकता था, परन्तु कुछ भी धन प्राप्त न कर सका। एकदिन कोई विद्यासिद्ध पुरुष हाथमें एक घड़ा उठा उसकी पूजा कर बोला कि,— "हे कुम्भ! शय्या, भोजन, स्त्री आदि सर्वसामग्री सहित एक महल बना।" यह सुन उस कामकुम्भने सब बना दिया। फिर प्रातःकाल उन सबका उपसंहार कर दिया। वह सब देख उस दरिद्र ब्राह्मणने सोचा कि-"मैं अत्यनिष्फल उद्यम क्यों करूँ? यदि इस विद्यासिद्धकी ही सेवा करूँ तो सब दरिद्रका नाश हो जायगा।" ऐसा विचार कर उस

विशासिद्धकी विविध प्रकारसे सेवा कर उसे प्रसन्न किया जिस पर एक दिन उसने कहा कि–" तेरी क्या इच्छा है ? " जिस पर ब्राह्मणने उसकी दरिद्र अवस्थाका वर्णन किया। जिसे सुन विशासिद्धने विचार किया कि —

व्रत सत्पुरुषाणा च, दीनदीनामुपक्रिया ।
तदस्योपकृति कृत्वा, करोमि सफल जनु. ॥१॥

भावार्थ –दीन पुरुषों का उपकार करना ही सत्पुरुषों का व्रत है, इसलिये इस ब्राह्मण का उपकार कर मैं मेरा जन्म सफल करू। "

ऐसा विचार कर उस सिद्धने ब्राह्मण से कहा कि– " विद्यासे सिद्ध किया हुआ कुभ दूँ या विद्या दूँ ? " उसे सुन विद्या साधनमें वे डरपोक और कामभोग प्राप्त करनेमें उत्सुक उस ब्राह्मणने कहा कि–" विद्यासे सिद्ध किया हुआ कुभ ही दीजीये। " इस पर सिद्धने उसे कामकुम्भ दे दीया। उसे ले दरिद्री शीघ्रता से उसके गाव गया। कुभके प्रभावसे घर आदि अपने मनकी इच्छानुसार सब वस्तुएं बना कर बाधवादि कुटुम्ब सहित स्वच्छदपनसे भोग भोगने लगा। उसके बाधव कोई खेतका काय करते थे, कोई पशु चराने का कार्य करते थे और कोई व्योपार करत थे। वे सब अपने अपने धधे छोड कर मदाध हो भोग भोगने लगे। एक बार सुरापान कर वह ब्राह्मण अपने स्कन्धे पर कुभ रख नृत्य करने लगा। उद्धताई के कारण उसके हाथ से वह घड़ा

गिर पड़ा, और पृथ्वीसे टकराने से कुम्भके सैंकड़ा टुकड़े हो गये। उसके साथ ही साथ उस निर्भागी के मनोरथ भी भग्न हो गये। अर्थात् कुम्भके प्रभावसे उत्पन्न हुए उसके घर आदि सब वैभव इन्द्रजालसे बने नगरके सदृश तत्काल अदृश्य हो गये। उसके पास विद्या न होने से उसमें नवीन कुम्भ बनाने की शक्ति भी न रही जिससे वह नया कुंभ न बना सका और सदैव दरिद्रपन से ही व्याकुल रहा।

हे शिष्य! इस दृष्टान्त का यह सार है कि—"ज्ञान रहित सब क्रियाये निष्फल हैं जैसे उस ब्राह्मणने प्रमादवश विद्याग्रहण नहीं की, जिससे वह मन्दबुद्धि इस लोकमें दुःखित हुआ, वैसे ही अन्य पुरुष भी यदि ज्ञान सहित अनेकों क्रियाये करे तो भी वे सब अशुद्ध ही हैं।"

[इत्यब्ददिनपरिमितोपदेश प्रासादवृत्तौ षोडशस्तम्भस्य पञ्चत्रिंशदधिकद्विशततमः प्रबन्धः ॥ २३५॥]

व्याख्यान २३६

नव नियाणाके विषयमें

> नति नव निदानानि, क्ष्माप श्रेष्ठी निनगिनी ।
> इत्यादीनि च हेयानि, मोक्षकाक्षैर्मुनीश्वरैं ॥१॥

भावार्थ –"राजा, श्रेष्ठी, स्त्री आदि जो नियाणा हैं उन्हें मोक्षके अभिलाषी मुनीश्वरोंको त्याग करना योग्य है।"

नवनियाणा पाक्षिक सूत्र की वृत्तिमें इस प्रकार कहे गये हैं —

> निव सिट्ठि इत्थि पुरिसे, परपवियारे सपवियारे ।
> अप्पुमरे दरिद्दे, सड्ढे हुज्जा नव नियाणा ॥१॥

भावार्थ –"राजा, श्रेष्ठी, स्त्री, पुरुष, पर प्रविचार, स्व प्रविचार, अल्प विकार, दरिद्र और श्रावक ये नो नियाणा हैं।"

यदि कोई साधु अथवा साध्वी ऐसा विचार करे कि "देव अथवा देवलोक तो हमने साक्षात् देखे नहीं हैं, राजा ही सचमुच देव होंगे, इसलिये मेरे किये तप अनुष्ठान आदि का यदि कोई फल मिले तो आगामी भव में मुझे राज्यपद प्राप्त हो।" फिर वे देवलोकमें जाकर राजाके रूपमें उत्पन्न हो जाते हैं, परन्तु उन्हें बोधिबीज दुर्लभ होता है। ऐसा नियाणा ब्रह्मदत्त ने पूर्वभव में किया था।

अपितु यदि कोई ऐसा नियाणा करे कि –

यद्दुचिंता महीनायो, सुहिया धणिणो इमो ।
उगाण च सुओ होइ, नीयाण वीइय इम ॥१॥

भावार्थ –"राजाको तो अत्यन्त चिन्ता होता है और धनिक लोग सुखी होते हैं इसलिये उस उच्च कुलमें मैं उत्पन्न होऊं ।" ऐसा जो विचार करे इसे दूसरा निदान जानना चाहिये ।

अपितु यदि कोई ऐसा विचार करे कि पुरुषपनमें तो व्यापार, सग्राम आदि अनेक प्रकारके कष्ट हैं, इसलिये स्त्रीका अवतार मिल सके तो अधिक उत्तम है । इसे तीसरा निदान कहते हैं ऐसा सुकुमालिका साध्वीने किया था । (३)

यदि कोई ऐसा विचार करे कि स्त्री का जन्म तो नीच गिना जाता है इसलिये सब कार्य करनेमें समर्थ पुरुष भव को ही मैं प्राप्त करूं क्यों कि –

ईत्थी सत्त पराभूया, पराहीणाइ दुक्खिया ।
कोति पच्छे नरो होइ, नियाण तु चउत्थय ॥१॥

भावार्थ –"सत्र स्त्रिये पराभव, पराधीनता आदि दुःख वाली होती हैं, अत पुरुषपन पाना उत्तम है । इसप्रकार जो विचार करता है । उसे चौथा निदान कहते हैं । (४)

मनुष्यके कामभोग अपवित्र हैं, मूत्र विष्टादिसे दुर्गंधयुक्त हैं अत देवपन ही उत्तम है क्यों कि वे देव अपनी तथा

दूसरोंकी देवियों का उपभोग करते हैं, अपितु खुद ही इच्छानुसार देव देवीके रूपविकुर्वी उनके साथ भोग भोगते हैं इसलिये मैं वैसा ही होउ। इसप्रकार जो नियाणा करे वह पांचवा परप्रविचार नियाणा कहलाता है। (५)

जो देव दूसरी देवीयो के साथ भोग करते हैं वो भी दुःख का ही कारण है परंतु जो अपने रूपको ही देव देवीरुप बनाकर भोग भोगते है वे ठीक है इसलिए मैं वैसा बनु। ऐसा जो विचार करता है उसे स्वप्रविचार नामक छट्ठा नियाणा समझना चाहिये, ॥६॥

देव और मनुष्यके काम भोगसे विरक्त होकर यदि कोई ऐसा विचार करे कि—"मैं विषय रहित अल्प विकार वाला देव बनु तो वह देश विरति प्राप्त नही कर शक्ता है (७)

काम भोगसे उद्वेगीत होकर यदि कोई ऐसा विचार करे कि "द्रव्यवान् पुरुषको तो राजा, चोर, अग्नि आदि से महाभय होता है, इसलिये मै अल्प आरंभ वाले दरिद्र के कुलमे उत्पन्न होउ, तो अधिक उत्तम है। इसे आठवा नियाणा कहते है (८)

अपितु यदि कोइ ऐसी धारणा करे कि, "मैं मुनि को प्रीति सहित दान देनेवाला और बारह व्रत धारी श्रावक बनु।" तो इसे नवमा नियाणा समझना। ऐसे विचार वाला देशविरति प्राप्त करस क्ता है परन्तु सर्व विरति प्राप्त नही कर सकता (९)

इस प्रकार नव नियाणा का स्वरूप जान कर कई नमि राजर्षि जैसे उत्तम पुरूष, इन्द्रादिक या देवादिकके अनेक प्रकारके सुखों से लुब्ध हुए भी नियाणा नही करते। श्री महावीर स्वामीने सगम देवता द्वारा किये अनुकूल उपसर्ग पर भी नियाणा नही किया, और नदिषेन मुनिने नियाणा किया जिससे उसने वसुदेवका जन्म लिया और अनेक स्त्रियोंके स्वामी बने। अपितु कोई जीव समकित रहित हो तिसपर भी तामलि तपस्वीके समान नियाणा नहीं करते। इस तामलि तपस्वीका वृत्तान्त इसप्रकार है कि – ताम्रलिप्ती नामक नगरीमे तामलि नामक एक श्रेष्ठी रहता था। उसे एक दिन रात्रि जागरण करते लौकिक वैराग्य उत्पन्न हो गया। उसने विचार किया कि–"मैं पूर्व जन्मके पुण्यसे इस भवमें पुत्र, स्त्री, धन, धान्य, राज्य सत्कार आदि अनेक सुख भोगता हूँ। जन्मसे आरभ कर आज पर्यन्त किसी भी समय एक श्वासोच्छ्वास भी मैंने दुखसे नही लिया, इसलिये अब प्रातःकाल स्वजनोको भोजन आदिसे सतुष्ट कर, ज्येष्ठ पुत्रको गृहकार्यका भार सौंप, सबकी आज्ञा ले, काष्ट पात्र हाथमे ले, तापसी दीक्षा ग्रहण करूंगा। फिर हाथ ऊँचे कर सूर्य की ओर दृष्टि रख खड़ा रहूँगा, और यावत् जीव छठका तप करूंगा। पारणे के दिन उस काष्टपात्रको ले ताम्रलिप्ती नगरीमे ऊँच नीच और मध्यम सर्व कुलसे भिक्षाके लिए भ्रमण करूंगा। जल तथा क्षार रहित मात्र भात उसे हविष्यान्नको ले उस

अन्न को इक्कीस बार जलसे धो उसे निरस कर फिर मैं अन्न को खाउगा ।" ऐसा विचार प्रात काल होते हुए उसने रात्रिमे सोचा हुआ सब कार्य किया, और उसकी उदर पूर्ति के अनुसार काष्टका एक पात्र बनवाया । उस मे चार खाने बनवाये । उसमे समाये अन्नमेसे तीन भाग दान में दे, चोथे भागसे पारणा करना निश्चय किया, और अव्यक्त लिंग तथा सब को प्रणाम करनेके व्रत को अंगीकार कर वह नदीके समीप आश्रम बना उसमे रहने लगा । वह इन्द्र, शंकर, राजा, कौआ, कुत्ता, चाण्डाल आदि जिस किसी को देखता उन सबको प्रणाम करने लगा । षष्ट तपके पारणे नगरीमें अटन कर उस पात्रको भर दीआ उसमे से एक भाग जलचर प्राणियो को, एक भाग स्थलचर प्राणियो को और एक भाग खेचर प्राणियो (पक्षी) को इसप्रकार तीन भाग दे चोथे भाग को इक्कीस बार जलसे धो उसके द्वारा सतोषसे उदरपूर्ति करने लगा । इस प्रकार उसने साठ हजार वर्ष तक तप किया जिस से उस बालतपस्वी (अज्ञान तपस्वी) का देह तद्दन शुष्क हो गया, और अस्थि भी नजर न आने लगी ऐसा हो गया । एकबार उसने रात्रि जागरण करते हुए सोचा कि, "मै मात्र जीवके बलसे गमनागमन करता हूँ, शरीर का बल बिलकुल नही है इसलिये इस शरीर का प्रभात मे त्याग दू तो अधिक उत्तम होगा ।" ऐसा विचार कर प्रात काल ईशान कोणमे अपने देह प्रमाण खड्डा खोद उसमें अनशन कर आत्मध्यान करने लगा ।

अज्ञान के दोष से वह मात्र इशानेन्द्र ही हुआ।" श्रीउपदेश माला में कहा है कि—

> सट्ठि वाससहस्सा, तिसत्तखुत्तोदयेण धोएण।
> अणुचिण्णं तामलिणा, अन्नाणतवत्ति अप्पफलो ॥ २ ॥

भावार्थ —"तामलि तपस्वी ने साठहजार वर्ष तक इक्कीस बार जल से धो धो कर अन्न खाया और महा तप किया, परन्तु वह अज्ञान तप होने से उसे अल्प फल मिला।"

पृथ्वीकाय आदि छ काय जीवोंके वध करने वाले और सम्यक् ज्ञान से पराङ्मुख बालतपस्वी बहुत तपक्लेश उठाने पर भी अल्प फल प्राप्त करते हैं।

मिथ्यादृष्टि होने परभी तामलिने तपस्या के फलका नियाणा नहीं किया। यह इस वृत्तान्त का तात्पर्य है अतः मुनियों को मुक्ति के अमूल्य सुख को देनेवाली तपस्या का नियाणा कर उसे अल्प मूल्य नहीं करना चाहिये।

[इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशप्रासादवृत्तौ षोडशस्तम्भस्य चतुस्त्रिंशदधिकद्विशततमः प्रबंधः ॥ २३४ ॥]

अन्न को इक्कीस बार जलसे धो उसे निरस कर फिर मैं अन्न को खाउगा।" ऐसा विचार प्रात काल होते हुए उसने रात्रिमे सोचा हुआ सब कार्य किया, और उसकी उदर पूर्ति के अनुसार काष्टका एक पात्र बनवाया। उस म चार खाने बनवाये। उसमे समाये अन्नमेंसे तीन भाग दान में दे, चोथे भागसे पारणा करना निश्चय किया, और अव्यक्त लिंग तथा सब को प्रणाम करनेके व्रत को अंगीकार कर वह नदीके समीप आश्रम बना उसमे रहने लगा। वह इन्द्र, शक्र, राजा, कौआ, कुत्ता, चाण्डाल आदि जिस किसी को देखता उन सबको प्रणाम करने लगा। षष्ट तपके पारणे नगरीमें अटन कर उस पात्रको भर दीआ उसमे से एक भाग जलचर प्राणियो को, एक भाग स्थलचर प्राणियों को और एक भाग खेचर प्राणियो (पक्षी) को इसप्रकार तीन भाग दे चोथे भाग को इक्कीस वार जलसे धो उसके द्वारा सतोषसे उदरपूर्ति करने लगा। इस प्रकार उसने साठ हजार वर्ष तक तप किया जिससे उस बालतपस्वी (अज्ञान तपस्वी) का देह तदन शुष्क हो गया, और अस्थि भी नजर न आने लगी ऐसा हो गया। एकबार उसने रात्रि जागरण करते हुए सोचा कि, "मैं मात्र जीवके बलसे गमनागमन करता हूँ, शरीर का बल बिलकुल नही है इसलिये इस शरीर का प्रभात मे त्याग दू तो अधिक उत्तम होगा।" ऐसा विचार कर प्रात काल ईशान कोणमे अपने देह प्रमाण खड्डा खोद उसमें अनशन कर आत्मध्यान करने लगा।

अज्ञान के दोष से वह मात्र इशानेन्द्र ही हुआ।" श्रीउपदेश माला में कहा है कि—

> मट्ठि वाससहस्सा, तिसत्तगुणोदयेण धोएण।
> अणुचिण्णं तामलिणा, अन्नाणतवत्ति अप्पफलो ॥ २ ॥

भावार्थ —"तामलि तपस्वी ने साठहजार वर्ष तक इक्कीस बार जल से धो धो कर अन्न खाया और महा तप किया, परन्तु वह अज्ञान तप होने से उसे अल्प फल मिला।"

पृथ्वीकाय आदि छ काय जीवोंके वध करने वाले और सर्वज्ञ के शासन से पराङ्मुख बालतपस्वी बहुत तपक्लेश उठाने पर भी अल्प फल प्राप्त करते हैं।

मिथ्यादृष्टि होने परभी तामलिने तपस्या के फलका नियाणा नहीं किया। यह इस वृत्तान्त का तात्पर्य है अत मुनियों को मुक्ति के अमूल्य सुख को देनेवाली तपस्या का नियाणा कर उसे अल्प मूल्य नहीं करना चाहिये।

[इत्यब्दिनपरिमितोपदेशप्रासादवृत्तौ षोडशस्तम्भस्य चतुस्त्रिंशदधिकद्विशततम प्रबंध ॥ २३४ ॥]

अन्न को इक्कीस बार जलसे धो उसे निरस कर फिर मैं अन्न को खाउगा ।" ऐसा विचार प्रात काल होते हुए उसने रात्रिमे सोचा हुआ सब कार्य किया, और उसकी उदर पूर्ति के अनुसार काष्टका एक पात्र बनवाया । उस में चार खाने बनवाये । उसमे समाये अन्नमेसे तीन भाग दान में दे, चोथे भाग से पारणा करना निश्चय किया, और अन्यक्त लिंग तथा सब को प्रणाम करनेके व्रत को अगीकार कर वह नदीके समीप आश्रम बना उसमे रहने लगा । वह इन्द्र, शङ्कर, राजा, कौआ, कुत्ता, चाण्डाल आदि जिस किसी को देखता उन सबको प्रणाम करने लगा । षट तपके पारणे नगरीमे अटन कर उस पात्रको भर लीआ उसमे से एक भाग जलचर प्राणियो को, एक भाग स्थलचर प्राणियो को और एक भाग खेचर प्राणिया (पक्षी) को इसप्रकार तीन भाग दे चोथे भाग को इक्कीस बार जलसे धो उसके द्वारा सतोपसे उदरपूर्ति करने लगा । इस प्रकार उसने साठ हजार वर्ष तक तप किया जिस से उस बालतपस्वी (अज्ञान तपस्वी) का देह बहुत शुष्क हो गया, और अस्थि भी नजर न आने लगी ऐसा हो गया । एकबार उसने रात्रि जागरण करते हुए सोचा कि, "मै मात्र जीवके बलसे गमनागमन करता हूँ, शरीर का बल बिलकुल नही है इसलिये इस शरीर का प्रभात मे त्याग दू तो अधिक उत्तम होगा ।" ऐसा विचार कर प्रात काल ईशान कोणमे अपने देह प्रमाण गड्ढा खोद उसमें अनशन कर आत्मध्यान करने लगा ।

अज्ञान के दोष से वह मात्र इशानेन्द्र ही हुआ।" श्रीउपदेश माला में कहा है कि —

सट्ठिं वाससहस्सा, तिसत्तगुणोदयेण धोएण।
अणुचिण्णं तामलिणा, अन्नाणतवत्ति अप्पफलो ॥ २ ॥

भावार्थ —"तामलि तपस्वी ने साठहजार वर्ष तक इकीस वार जल से धो धो कर अन्न खाया और महा तप किया, परन्तु वह अज्ञान तप होने से उसे अल्प फल मिला।"

पृथ्वीकाय आदि छ काय जीवोंके वध करने वाले और सवज्ञ के शासन से पराङमुख बालतपस्वी बहुत तपक्लेश उठाने पर भी अल्प फल प्राप्त करते हैं।

मिथ्यादृष्टि होने परभी तामलिने तपस्या के फलका नियाणा नहीं किया। यह इस वृतान्त का तात्पर्य है अतः मुनियों को मुक्ति के अमूल्य सुख को देनेवाली तपस्या का नियाणा कर उसे अल्प मूल्य नहीं करना चाहिये।

[इत्यब्ददिनपरिमितापदेशप्रासादवृत्तौ षोडशस्तम्भस्य चतुस्त्रिंशदधिकद्विशततमः प्रबन्धः ॥ २३४ ॥]

व्याख्यान २३७

उपदेशमें अयोग्य चार प्रकार के मनुष्यों के विषयमें प्रथम अत्यन्त रागी पुरुष उपदेश के अयोग्य हैं। वे कहते हैं कि -

यस्मिन् वस्तुनि सञ्जातो, रागो यस्य नरस्य सः।
तदीयान्नतु दोषाश्च, गुणतयैव पश्यति ॥ १ ॥

भावार्थः-"जो पुरुष जिस वस्तु में रागी होता है वह पुरुष उसके दोष को गुनरूप देखता है।"

मगध देश के एक शहर में नन्दन नामक एक कोटवाल था, जिसके आद्यश्री और द्वितीयश्री नामक दो स्त्रिये थीं। जिनमें से द्वितीयश्री पर वह आसक्त था, इससे उसी के घर पर रहता था। एक बार वह जब परदेश जाकर लौटा तो आद्यश्री के घर गया। आद्यश्रीने अत्यन्त हर्ष से शाक, पकवान आदि उत्तम भोजन बनवाकर उसे जीमने बैठाया, परन्तु जब वे उत्तम भोजन उसे स्वादिष्ट नहीं लगे तो उसने मन मे कहा कि, "इनमें से क्या खाउ ?" फिर उसने आद्यश्री से कहा कि,-"द्वितीयश्री के घर से उसने जो भोजन पकाया हो उस मे से शाक, पापड आदि ले आ।" इस पर आद्यश्री ने शोक के पास जा पति के लिये शाक मागा। उसने कहा कि, "आज कुछ पकाया ही नहीं, फिर शाक कहा से मिले ?"

आद्यश्री ने आ बात नन्दन से कहदी। उसने फिर से कहा कि,–"मानो याद जो कुछ बचा हो वही मांग ला।" उसने फिर से जाकर मांगा तब द्वितीयश्री ने कहाकि–"बचा हुआ सब खाना चाकर को दे दिया है, इसलिये अब कुछ भी नही है।" यह बात को आद्यश्री ने उसके पति से जाकर कहा। इस पर नन्दन ने फिर से कहा कि, "उसके घर से कोई खानी जैसा (पथ्य पदार्थ) चाहे सो ले आ!" इसे सुन आद्यश्री क्रोधित होगई इसलिये उसने बहार जा तुरन्त किया बछडे का गोबर ले उसमें चन का आटा (बेसन), पानी, मसाला आदि डाल उसे कुछ गरम कर लेआई और कहा कि, "यह उसके घर से लाई हूँ" उसे खाता खाता वह सडाक से बोलाकि, "अहो! बडा स्वादिष्ट है। उस स्त्री में कैसा गुण है?" आदि प्रकार से उसकी प्रशंसा की। वह कोटवाल नई स्त्री का रागी था इससे वह गुणदोष के विवेकसे रहित था। इसी-प्रकार जो कोई असत्य धर्म में रागी होता है वह गुणदोष के विवेक से अज्ञात होता है, इसलिये वह धर्म प्राप्त नहीं कर सकता। कहाहै कि —

मिथ्यात्वपङ्कमलिनो आत्मा विपरीतदर्शनो भवति।
श्रद्धत्ते न च धर्मं मधुरमपि रसं यथा ज्वरितः ॥

"मिथ्यात्वरूपी पकसे मलिन आत्मा विपरीत श्रद्धावाला होता है इसलिए जैसे ज्वरवाले पुरुषको मधुर रस रुचिकर नहीं होता वैसे ही उसे सद्धर्म पर रुचि नहीं होती।" (१)

(२) जो अत्यन्त द्वेषी हो उसे भी धर्म प्राप्त नहीं होता।
इस विषय मे कहाहै कि —

यो यस्मिन् द्वेषमापन्न. क्रोधमानातिरेकवान् ।
स लुप्यते गुणास्तस्य दोषान् प्रादुष्करोत्यथ ॥ १ ॥

भावार्थ – "जो मनुष्य क्रोध अथवा मान के अधिकपन मे जिससे द्वेष रखता हो वह उसके गुण को भूलकर द्वेष को ही प्रगट करता है।"

इस पर निम्नस्थ दृष्टान्त है कि-

पाडवों के वनवास के तेरह वर्ष व्यतीत होने पर उनका कौरवों के साथ परिणाम में दु खदाई क्लेश की स भावना देख श्रीकृष्णने दुर्योधन के पास जा पाडवों का स देश सुनाया कि —

इन्द्रप्रस्थ यत्नप्रस्थ, माकदी, वरुणावतम् ।
देहि मे चतुरो ग्रामान् पचम हस्तिनापुरम् ॥ १ ॥

भावार्थ –" इन्द्रप्रस्थ, यत्नप्रस्थ, माकदी, वरुणावत और पाँचवा हस्तिनापुर ये पाच गाव मुझे दीजिये और शेष सम्पूर्ण राज्य का तू उपयोग कर।" यह सन्देश सुन दुर्योधन ने कहा कि —

सूच्यग्रेण सुतीक्ष्णेन, या भिद्यते मेदिनी ।
तदर्धंतु न दास्यामि, विना युध्देन केशव ॥१॥

भावार्थ –" हे कृष्ण ! अति तीक्ष्ण सुई के अग्रभागसे जितनी पृथ्वी खोदी जा सके उसकी आधी पृथ्वी भी मैं विना युद्ध किये नही द सकता।"

कृष्णने फिर से कहा कि–" हे दुर्योधन ! युद्ध करने से कुल का क्षय होता है, ऐसा होने पर भी जय होगा या पराजय यह भी संदेह भरा है और परभव मे नरक मे जाना पडता है, इसलिये युद्ध की बात छोड कर यह अल्प भाग स्वीकार करले।" आदि अनेक प्रकार से समझाया फिर भी दुर्योधन नही समझ पाया और उलटी कृष्ण को भी बांध लेने का विचार किया।

इसी प्रकार धर्म के विषय मे भी द्वेषी पुरुष को उपदेश करने पर वह उलटा अनर्थ करने को तत्पर हो जाता है। इस विषय मे भद्रबाहुस्वामी प्रत्ये वराहमिहिर, जमालि,[1] ब्योटिक, सहस्रमल्ल[2] और मरुलिपुत्र[3], आदि के दृष्टान्त पढे।

तीसरा मूढ पुरुष भी उपदेशके अयोग्य है। इसके बारे मे कहा जाता है कि —

अज्ञानोपहतचित्त. कार्याकार्यविचारक.
मूढ स एव विनेयो वस्तुतत्त्वमवेतक' ॥ १ ॥

भावार्थ –" जिसका चित अज्ञान से नष्ट किया हुआ है और जो कार्य अकार्य का विचार नहीं करसकता ऐसे

---

१ भगवत का जमाई—प्रथम निन्हव २ दिगंबरमत स्थापक ३ गोशाला

ही मूढ समझना चाहिये क्योंकि वह वस्तु सत्व को नहीं पहचान सकता।"

इस विषय मे निम्नस्थ दृष्टान्त है —

किसी ग्राम मे एक विधवा स्त्री दुःख से दिन निर्गमन करती थी। उसको एक पुत्र था। वह जब युवावस्था को प्राप्तहुआ तो उसने उसकी माता से पूछा कि-" हे मा! मेरे पिता की क्या आजीविका थी?" उसने उत्तर दिया कि, "हे पुत्र! तेरे पिता राजा के नोकर थे।" पुत्रने कहाकि, "मै भी राज्य सेवा करु" माताने कहा कि, "हे पुत्र! राजसेवाअति दुष्कर है और उसमें अत्यन्त विनय की आवश्यकता है।" पुत्रने पूछा कि-" विनय कैसे कीया जाता है?" माता ने कहा कि, "जिस किसीको देखो उसे नमस्कार करना और नम्र वृत्ति से रहना।" यह सुन, "मै उसीप्रकार करुगा" ऐसा अंगीकार कर वह राजसेवा करने को चलदिया। मार्ग मे हिरन जा रहेथे, उन्हे मारने के लिये वृक्ष के मूलमे छीप कर तथा धनुष पर तीर चढाकर बैठे हुए पारधियों को जब उसने देखा तो उसने दुरसे ही उचा स्वर से उन्हे प्रणाम किया, वह शब्द सुन मृग भयभीत हो भग गये जिसपर पारधियोंने उसे पीट कर बांधदिया। तब उसने कहा कि- "मेरी माने मुझे सिखाया था कि जिनको तू देखे उनको नमस्कार करना।" यह सुन उन्होने यह जानाकि "यह भोला पुरुष है" उसे छोड दिया और शिक्षा दी कि—"यदि इसप्रकार कोई छिपकर बैठे हों तो धीरे धीरे मौन रखकर

उस ओर जाना।" ऐसा करना स्वीकारकर वह आगे चल दिया। आगे जाने पर उसने धोबिया को कपडे धोते देखा उनके वस्त्र सदैव चोर लोग चोरकर लेजाते थे इसलिये उस दिन वे धोबी चोर का पता लगाने के लिये हाथ में लकडिये ले छीपकर बैठे थे। उनको छिपकर बैठे देख वह कुछ नहीं बोला और छीपता छीपता शरीर को निचे झुकाकर धीरे धीरे आगे बढ़ा। इसप्रकार चोर के समान उसको आता देख "यह ही चोर है" ऐसा समझ उन्होंने उसे पीटकर बांध दिया, और फिर सत्य बात कहने पर ही छोडा उन्होंने उसे शिक्षा दी कि-"इस प्रकार यदि किसीजगह देखे तो कहना कि, इस स्थान पर ऊस खार पड तो अच्छा हो।" इस वाक्य को भी अंगीकार कर जब वह और आगे बढा तो किसी गांव में उस दिन प्रथम हल चलाने का मुहूर्त था। जिसकी अत्यन्त मंगलपूर्वक क्रिया हो रही थी। वहा जाकर उसने कहा कि, "यहां खार पडे तो अच्छा हो!" इस से वह यहा भी पिटा गया व बांधदिया गया। फिर सत्य बात कहने पर छोडा गया और समझाया गया कि, "ऐसा देखने पर यह कहना कि-यहा गाडे भरे, बहुत हो, हमेशा ऐसा ही हो।" यह बात भी उसने स्वीकार की। फिर किसी जगह कोई मुर्दे को गांव में बाहर लेजा रहे थे। उस समय उसने ऊपर माफीक कहा जिससे वहा भी ऊसको बांधलिया गया। फिर सत्यबात कहने पर ऊसे छोडकर शिक्षादी कि-"ऐसा जहा देखे वहा इस प्रकार कहना कि-किसी भी

समय तुम्हारे ऐसा न हो न हो" यह भी स्वीकार कर वह यह ही वचन किसीस्थान पर विवाह के प्रसंग पर बोला जिसपर वहा भी उसे बाधदिया और सत्य बात कहने पर छोडकर शिक्षादी। इस प्रकार स्थान स्थान पर उसका अपमान हुआ। फिर एक दिन वह एक निर्धन ठाकुर (क्षत्रिय) के यहा नोकर रहा। उसके घर पर एक दिन छाश में राबडी राधी गईथी। ठकुरानीने जब उसे ठाकुरको बुलाने भेजा तो उसने ठाकुरके अनेक लोगों को सभामे बैठे होने पर भी उसके पास जा जोर से कहा कि-"हे ठाकुर! शीघ्र चलो वरना राब ठंडी हो जायगी तो फिर खाई नही जायेगी। मुझे ठकुरानीने इसीलिये तुमको बुलाने भेजा है।" यह सुन ठाकुर लज्जित हो घर गया और वहा उसे बहुत पीट पीट कर समझाया कि, "इस प्रकार पुकार कर घरका काम कभी नही करना, परन्तु वस्त्र से मुह ढक कर कान के पास आ धीरे धीरे कहना!" फिर जब एक बार उसी ठाकुर के घरमे आग लगी तो वह सभा में स्थित ठाकुरके पास धीरे धीरे गया और मुह के आड़ा वस्त्र रख कर कान में धीरे से कहा। जिसे सुन ठाकुर एकदम घर की और दौड़ा जितनी देर में घर जल गया। फिर अत्यन्त क्रोध से उसने उसको बहुत पीटा और समझाया कि, "हे मूर्ख! पहले धुआ निकले उसी समय उस पर पानी, धूल, राख आदि डालकर ऊँचेस्वर से पुकार करना चाहिये।" तब वह बोला की "अब आयगा ऐसा ही करुगा फिर किसी समय जब

ठाकुर स्नान कर अग्नि के पास तपने को बैठा था तब उसने ठाकुर के वस्त्रों से धुआ निकलता देखा कि तुरन्त ही उसने राख की भरी थाली उठा कर उस पर फेंक दी और फिर धूल, पानी आदि डालने लगा तथा बड़े उच्चेस्वर से पुकार मचाने लगा। इसपर ठाकुरने यह समझ कर कि "यह तो तद्दन अयोग्य है।" उसे निकाल दिया।

इस प्रकार श्रोता अथवा शिष्य जो गुरु वचन के परमार्थ को नहीं समझते हैं उनको उपदेश के अयोग्य समझना चाहिये।

वस्त्वनस्तुपरीक्षाया, धूर्तव्युद्ग्राहणावशात् ।
अक्षमो कुग्राहाविष्टो, हास्य स्याद्गोपवन्नरः ॥ १ ॥

भावार्थ –"धूर्त मनुष्या द्वारा उलटा समझाया हुआ पुरुष कदाग्रही होने से वस्तु और अवस्तु की परीक्षा करने में असमर्थ होता है और ग्वाल सदृश वह हास्यपात्र होता है।"

रत्नपुर नगर मे एक ग्वाल रहता था। उसने गाये चराकर बहुत साधन एकत्रित किया था। एक दिन उसके मित्र सोनीने उससे कहा कि–"तेरे धन का एक सोने का कड़ा किसी अन्य सोनी से करा।" इस ग्वाल ने कहा कि, "तूही बनादे।" सोनी ने कहा कि, "प्रीति को नाश करने का मूल कारन पैसा ही है।" कहा है कि —

यदीच्छेद्विपुलां प्रीतिं तत्र त्रीणि निवारयेत्
विवादमर्थसंबंध परोक्षे दारभाषणम्

भावार्थ -"यदि प्रीति बढ़ाना होतो मित्र के साथ वादविवाद, द्रव्य का सम्बन्ध और परोक्ष में उसकी स्त्री के साथ बातचित इन तीनो का त्याग कर देना चाहिये।"

अब लोग हमारी प्रीति का नाश करा देंगे। यह सुन ग्वालने कहा कि, "मैं कडे की परीक्षा करा लूंगा जब मेरा चित्त स्थिर होगा तो लोग क्या करेंगे ?" फिर सोनी ने एक सुवर्ण का व एक पीत्तल का इस प्रकार दो एक समान कड़े बनाये। उनमें से उसने पहले उस ग्वाले को सोने का कड़ा दिया जिसे ले उसने उसकी दुसरोंसे परीक्षा कराई। परीक्षकने कहा कि-" यह कडा सोने का है और इसकी इतनी कीमत है जिससे ग्वालको यकीन हो गया। फिर उस सोनी ने उसे ओपने को मागा जिसपर ग्वालने उसे उसको वापस दे दिया सोनी ने पीतलका कड़ा ओप कर उसे देदिया। मूढ ग्वाल यह फेरफार न जान सका और उसे लेकर उसके घर में रखदिया। फिर काम पड़ने पर उसने उसे एक शराफ को बतलाया उसे देख उन्होने कहा कि, "यह तो पित्तलका है।" जिसपर ग्वालने कहा कि, "तुमतो जूठ कहते हो। पहले तो तुमनेही इसे सच्चे सोनेका बत लाया था और अब खोटा बतलाते हो। इसलिये मेरे मित्र का इसमे कोई दोष नही है।" (४)

इस दृष्टान्त का यह तात्पर्य है कि–जैसे उस ग्वाल को पहले उलटा समझाया था जिससे वह योग्यायोग्य

को न जानसका वैसे ही जिसे उल्टा अवला समझा कर कुमत ग्रहण करा दियाहो वह पुरुष भी सिद्धान्त के सत्य सत्त्वको नही जान सक्ता है।

"इसप्रकार उपदेश देने में इन चार प्रकार के पुरुषों को अयोग्य बतलाये गये हैं इसलिये इनको छोड़कर अन्य को सिद्धान्त श्रवण कराना चाहिये।"

[इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशमासादवृत्तौ षोडशस्तम्भस्य पचत्रिंशदधिकद्विशततम प्रबंध ॥ २३५॥]

व्याख्यान २३८

कदाग्रही के विषय में

स्याद्वादयुक्तितो बोध, न प्राप्तवान् स निर्गुणः ।
विद्वन्मरालसंघेभ्यो, बाह्य कार्य शुभात्ममि ॥ १ ॥

भावार्थ –" जो स्याद्वादको युक्ति से बोध प्राप्त न कर सके उसे निर्गुण समझना चाहिये । उसे समझदार पुरुषों का विद्वानरूप हंस समूह से बाहर निकाल देना चाहिये।" इस पर दृष्टान्त कहा जाता है कि, दसपुर नामक नगर में तोशली पुत्र आचार्य के शिष्य आर्यरक्षित सूरि थे। वे वज्र सूरि आचार्य के पास कुछ अधिक नव पूर्व पढ़े थे। उन्होंने शिष्यों का अल्प बुद्धि जान अनुक्रम से भिन्न भिन्न अनुयोग में आगम को स्थापन किये[१] । तथा सीमंधर स्वामी के वचनसे निगोद संबधी प्रश्न करने को देवेन्द्र उनके पास आया और यथार्थ निगोद का स्वरुप सुन उसने उनको नमस्कार किया । वे सूरि एक बार विहार करते करते दशपुर नगर में आये । उस समय मथुरा नगरी में कोई नास्तिक वादी उत्पन्न हुआ उसका प्रतिवाद करनेवाला कोई न होने से सब संघने एकत्रित होकर विचार कियाकि "

---

१ कईमें द्रव्यानुयोग प्रधान रक्खा कइम गणितानुयोग प्रधानरक्खा कइम धर्मकथानुयोग प्रधानरक्खा और कइम चरणकरणानुयोग नही प्रधानता रक्खी, इसप्रकार चारों अनुयोगमें आगमको बांट दिया

वर्धमान समय में आर्यरक्षितसूरि युग प्रधान हैं।" ऐसा निश्चय कर यह वृतान्त उनको कहने के लिये दो साधुओं को उनके पास भेजा। साधुओं ने आकर सब वृतान्त उनसे कहा परन्तु सूरि के वृद्ध होने से वे अब जाने मे अशक्त थे इसलिये उन्होंने वादलब्धि के धारक गोष्ठा-माहिल नामक मुनि को भेजा जिन्होंने वहां जा वादीका पराजय किया, फिर वहां के श्रावकों ने गोष्ठामाहिल को विनति कर चातुर्मास के लिये उन्हें वहीं रक्खा। इस ओर आर्यरक्षित सूरिने उनके आयुष्य का अन्त समीप आया जानकर विचार कियाकि "योग्य शिष्य को ही गणधर (सूरि) पद देना चाहिये। कहा है। कि —

वुड्ढो गणहरसद्दो गोयममाइहि धीरपुरिसेहि
जो तं ठवइ अपत्ते जाणतो सो महापावो ॥१॥

भावार्थ —" गौतमआदि धीरपुरुषो द्वारा धारण किये हुए गणधर शब्द को यदि कोइ जानता हुआ भी अपात्र मे स्थापन करे तो वह महा पापी है।"

"इसलिये गणधर पद के योग्य तो दुर्बलिका पुष्प मित्र ही है जब कि अन्य सब साधु मेरे मामा गोष्टामहिल अथवा मेरे छोटे भाई फल्गुरक्षित को चाहते हैं।" ऐसा विचार कर आचार्यने सर्व संघको बुलाकर कहाकि—घडे तीन प्रकारके होते हैं एक रेत का, दूसरा तेल का और तीसरा घी का। उनको यदि उल्ट किए जाये तो रेत के घडे से सब रेत निकल जाती है, तेल के घडे में से कुछ

तेल घडे पे। चिपका रह जाता है और घीके घडेमें कुछ अधिक घी चिपका रह जाता है इसीप्रकार मैं सूत्र तथा उसके अर्थ के विषय मे दुर्बलिका पुष्पमित्र के सामने रेत के घडेके समान हूँ क्योकि मेरेमें से समग्र सूत्रार्थ उसने ग्रहण करलिये हैं जबकि फल्गुरक्षित के सामने तेल के घड के समान हूँ क्योंकि उसने सब सूत्रार्थ ग्रहण नही किये हैं और गोष्टामाहिल के सामने तो मैं घी के घडे के समान हूँ क्योंकि बहुत से सूत्रार्थ मेरे पास ही रह गये हैं इस लिये दुर्बलिका पुष्पमित्र को ही तुम्हारा सूरि बनाना चाहिये।" यह सुन सर्व संघने "इच्छामः" (ऐसाही चाहते हैं) ऐसा कह स्वीकार किया। फिर सूरि साधु तथा श्रावक दोनों को योग्य अनुशासन (शिक्षा) दे, अनशन ग्रहण कर स्वर्ग सिधाये यह सब वृतान्त जब गोष्टामहिलने सुना तो वह मथुरा से वहा आया और पूछाकि,-"सूरिने उनके स्थान पर किसको स्थापन किया ?" यह सुन सबने रेत आदि के घडे के दृष्टान्त सहित सब वृत्तान्त उसे कह सुनाया जिसे सुन वह अत्यन्त खेदित हुआ और अलग उपाश्रयमें रह सूरिकी निन्दा करने लगा तथा साधुओं को उल्टा समझाने लगा और कहा कि-"तुम रेतके घडे जैसे आचार्य के पास श्रुतका अभ्यास क्यों करते हो ?"

एकदिन दुर्बलिका पुष्पमित्रसूरिके शिष्य विन्ध्यनामक मुनि कर्मप्रवाद नामक पूर्वकी आवृत्ति कर रहे थे जिसमे यह विषय चल रहा था कि-"जीव के प्रदेश के साथ बहु

हुआ कर्म जिसका बधमात्र होता है अर्थात् कषाय रहित (केवली) मुनि को इर्यापथिकी सम्बधीसे जो कर्म बाधते हैं उसे बद्ध कहते हैं। वे कर्म कालान्तर स्थिति को बिना पाये हुए ही सूकी भींत पर डाले भूके की मुट्ठी के समान जीव के प्रदेश से अलग हो जाते हैं।

जीव के प्रदेशों द्वारा खुद का कियाहुआ कर्म बद्ध स्पष्ट कहलाता है। वह कर्म आर्द्र भींत परसे फके गीले के चूर्ण के समान कालान्तरमे नाश हो जाता है और अति दृढ अध्यवसाय से बाधा कर्म कि जो अपवर्तनादि कारण के अयोग्य होने से निकाचित कहलाता है वह कर्म अति दृढ बधवाला होने से आर्द्र भींत पर आकरे (गहरे) कलई, चुना या सफेदा का हाथ फरा हो उसके समान कालान्तरमे जो विपाक से भोगे बिना प्राय क्षय नही हो सकता है। इन तीनो प्रकार के कर्म के बधनको समजने के लिए सुई के समूहका दृष्टान्त निम्नस्थ प्रकारसे है कि—दौरे से बाधे हुए सुई के समूह जैसा बद्ध कर्म को जानना चाहिये, लोहेकी पत्तिसे बाध सुई के समूह जैसे स्पष्ट बद्ध कर्म को जानना चाहिये और अग्नी से तप्त हथोडे से पीटी जानेवाली टोपी से एकत्रित की हुई सुई के समूह जैसा बद्ध स्पृष्ट निकाचित कर्म को जानना चाहिये यहा पर यदि किसीको यह शका हो कि-"निकाचित और अनिकाचित कर्म मे क्या भेद है?" तो उसके उत्तर में बतलाया जाता है कि-"कर्म के सम्बध मे श्री

कम्मपयडी ग्रथमें जो अपवर्तनादिक आठ करण बतलाये गये हैं वे सब करण अनिकाचित कर्मसे ही प्रवृत होते हैं और निकाचित कर्म में तो उनका फल उदय होजानेसे प्राय कर भोगना ही पड़ता है। इतना निकाचित और अनिकाचित मे भेद है।

यहा निकाचित कर्म के सम्बन्ध में "प्राय कर भोगना ही पडता है।" ऐसे शब्द कहने का तात्पर्य यह है कि-"तपसाओ निकाइयाणपि (तप से निकाचित कर्म का क्षय होना भी सभव है, "इस वचनो के अनुसार अत्यन्त तप करने से तथा उत्कट अध्यवसाय के बल से निकाचित कर्म में भी अपवर्तनादिक कारणों का प्रवर्तन होता है इस प्रकार व्याख्या करने का यह तात्पर्य है कि,-क्षीर नीर के सदृश तथा अग्नि से तपे गोले के सदृश जीवप्रदेश के साथ कर्म का सम्बन्ध है।" इस प्रकार विन्ध्यत्र मुनि की व्याख्या सुन उस कर्म के उदय के कारण कदाग्रह से उसको नहीं मानता हुआ गोष्ठामाहिल उनके पास जाकर कहने लगा कि-" आपने जो जीव कर्मका तादात्म्य सम्बन्ध बतलाया है वह दूषित है क्योंकि तादात्म्य भाव मानने से जैसे जीव के प्रदेश भिन्न नहीं होवे उसी प्रकार कर्म भी जीव से अभिन्न रहेगा और इससे सदैव जीव कर्म सहित रहने मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकेगा। मोक्ष का अभाव होगा इसलिए मेरी युक्ति ही योग्य है कि-सर्प की कांचली के समान जीव के साथ कर्म का मात्र स्पर्श

ही है। अग्निसे तपाये लोहके गोलेके न्यायके समान तादात्म्य भाव प्राप्त किये बिना ही वह जीव के साथ जुड़ (मिल) जाता है और उस के साथ परभव में जाता है। ऐसा माननेसे मोक्ष की प्राप्ति कायम रहेगी।"

इस प्रकारके वचनो से विन्ध्य मुनि को शका हो जानेसे उन्होने आचार्य को जाकर पूछा तब उन्होंने कहा कि –" तुमने जो पहेले कहा था वो हि सत्य है क्योंकि–

जीवो हि स्वावगाहामि व्याप्त एवावरे स्थितम् ।
गृह्णाति कर्मदलिक जातु न त्वन्यदेशगम् ॥१॥
अथात्मान्यप्रदेशस्थ कर्मादायानुवेष्टयेत् ।
यद्यात्मान् तदा तस्य घटते कचुकोपमा ॥ २ ॥

भावार्थ –" जीव अपनी अवगाहना से व्याप्त हुआ आकाश प्रदेशमे रहे कर्म-दलियो को ग्रहण करता है परन्तु अन्य प्रदेशमें रहेको ग्रहण नहीं करता, इससे यदि कदाच आत्मा अन्य प्रदेशमें रहे कर्म को ग्रहण कर अपने आप उसमे चिपक जाये तो उस कर्म पर सर्प काचली की उपमा घटित हो सकती है, अन्यथा घटित नहीं हो सकती।"

इस प्रकार गुरू का वचन विन्ध्य मुनिने गोष्टामहिल को कहा परन्तु उसने जब उसे स्वीकार नहीं किया तो आचार्यने उसे बुलाकर पूछा कि–" तुम सर्प कचुकी सदृश

जीव का सम्बन्ध मानते हो उसे जीव के प्रत्येक प्रदेश के साथ मानते हो कि जीव के बाहरी त्वचाके पर्यंत भाग के साथ लिपटा हुआ मानते हो। यदि जीवके प्रत्येक प्रदेशके पर्यन्त भागके साथ मानोगे तो आकाशके समान जीवमें सर्व प्रदेशमे कर्म प्राप्त होंगे तो फिर जीवका मध्यभाग कौनसा रहेगा कि जो कर्म रहित रहेगा? क्यों कि जीव के प्रत्येक प्रदेश में कर्म लग जाने से कोई भी मध्य प्रदेश अवशेष न रहेगा कि जिससे कर्मका असर्वव्यापित्व हो। इस प्रकार साध्यविकलता प्राप्त होनेसे कंचुकीका दृष्टान्त अघटित है और यदि जीव के बाहरी त्वचाके पर्यंत भाग के साथ कंचुकी के समान स्पर्श किये हुए कर्म को मानोगे तो जब जीव एक भव से दूसरे भवमें जायेगा तब अंग के बाह्य मेलके समान उस के साथ कर्म नहीं जायगा और "चाहे जीवके साथ कर्म न जाये इसमें क्या दोष है?" यदि ऐसा कहोगे तो सब जीवोंका मोक्ष होगा क्योंकि पूनर्जन्मके कारणभूत कर्मका ही उनके साथ अभाव है। आदि अनेक दोष प्राप्त होंगे।"

यह सुन गोष्टामहिलने पूछा कि-"यदि जीव और कर्मकी मिलना न हो तो जीवसे उसका वियोग कैसे होगा?" इस पर गुरूने कहा कि, "यद्यपि कर्म जीव के साथ अभेदरुप से स्थित है फिरभी सुवर्ण और मिट्टी के समान उसका वियोग हो सकता है, जैसे मिथ्यात्वादि करके कर्म ग्रहण किया जाता है, वैसे ही ज्ञान और क्रिया

द्वारा उसका वियोग भी हो सकता है।" आदि अनेक युक्तियोंसे इसे समझने पर भी गोष्टामाहिल को बोध नहीं हुआ और इन्होंने कदाग्रह नहीं छोड़ा।

एक बार विन्ध्यमुनि नवमे प्रत्याख्यानप्रवाद पूर्व मे आये मुनियों के प्रत्याख्यान (पच्चक्खाण) का जब वर्णन कर रहे थे कि "मुनियों को यावज्जीव (जीवन पर्यन्त) सर्व सावद्य के प्रत्याख्याना को त्रिविध त्रिविध करना चाहिये।" इस समय यह सुन गोष्टामाहिलने कहाकि–"सर्व प्रत्याख्यान यावज्जीव आदि अवधिरहित ही करना चाहिये, अवधि सहित करने से [1]आशसा दोष प्राप्त होता है। जैसे कि यदि कोई साधु ऐसा विचार करे कि,–"प्रत्याख्यान के पूर्ण होने पर मैं स्वर्गादिक में देवागनाओं के साथ भोग आदि भोगूंगा।" तो ऐसा होने पर परिणामकी अशुद्धि से प्रत्याख्यान भी अशुद्ध होता है।" इस विषय पर सूत्र में कहा है कि–

रागेण व दोसेण व परिणामेण व न दूसियं जंतु।
तं खलु पच्चक्खाणं भावविसुद्धं मुणेयव्वं ॥

भावार्थ – "जो रागद्वेष के परिणाम से दूषित न हो उसी प्रत्याख्यान को भावविशुद्ध जानना चाहिये।"

यहा गुरू इसे उत्तर देते हैं कि,–"तुमने जो आशसा दोष बतलाया है वह कालकी अवधि करने से प्राप्त होता है कि वाञ्छा से प्राप्त होता है? यदि कालकी अवधि से

[1] परभवमे भोगादिकी इच्छा।

प्राप्त होता हो तो पोरसि आदि के पच्चख्खाणमें भी वह दोष प्राप्त होगा क्योंकि कालप्रत्याख्यानमें प्रहर आदि कालमान साक्षात् कहा गया है।" यदि कदाच यह कहोगे कि "पोरसी आदि में भी काल की अवधि न की जाय" तो दीक्षा ग्रहण करनेके दिन से ही अनशन कर लेना चाहिये और तीर्थ करोने तो तपस्वियों को दश प्रकारसे अनागत आदि प्रत्याख्यान करना सिद्धान्त में कहा है। अब यदि यह दूसरा पक्ष मानोगे कि, "तृष्णा से आशसा दोष प्राप्त होता है।" तो यह भी अयोग्य है क्योंकि मुनि को अन्य भव मे पापसेवन की इच्छा नही होती, इसलिये यदि अवधि रहित प्रत्याख्यान करेगा तो सब आयदा (भाविष्य) कालका प्रत्याख्यान हो जायगा। वैसा होनेसे आयुष्य के क्षय होने पर देवगति प्राप्त यति को सावद्य कर्मके सेवन से अवश्य व्रत भग होगा, इन कारणों से आशसा रहित अवधि सहित प्रत्याख्यान करनेसे कार्योत्सर्ग के समान कोई भी दोष नही है।" आदि युक्तियों से समझाने पर भी जब उसे कोई श्रद्धा नही हुई तब पुष्पमित्र आचार्य उसे अन्य गच्छ के बहुश्रुत एव वृद्ध मुनियोंके पास ले गये। उन्होने कहा कि, "ये पुष्पमित्र आचार्य जैसा कहते हैं उसी प्रकार ही आर्यरक्षित सूरिने भी प्ररुपणा कीथी इसमें कुछ भी न्यूनाधिक नही हैं।" तब गोष्टामाहिलने कहा कि-"तुम्हारे जैसे ऋषि क्या जाने ? तीर्थ करोंने तो जैसा मैं कहता हू उसी प्रकार प्ररूपणा की है।" स्थवीर मुनियोंने कहा कि-"तू मिथ्या अभिनिवेश न कर, ऐसा करनेसे क्या तू नहीं

जानता कि तीर्थंकरकी आशातना होती।" आदि कहने पर भी गोष्ठामाहिलने अंगीकार नहीं किया। तब सब संघने मिलकर शासनदेवताको बुलाने के लिये कायोत्सर्ग किया, जिसपर किसी भद्रकदेवीने आकर कहा कि, "मुझे आज्ञा दो, मैं क्या कार्य करू?" संघने सिद्धान्त का परमार्थ जानते हुए भी लोक विश्वास के लिए कहा कि-"हे देवी! तुम महाविदेहक्षेत्रमें तीर्थंकरके पास जाकर पूछ आओ कि-संघ जो बात कहता है वह सत्य है, या गोष्ठामाहिल जो कहता है वह बात सत्य है?" देवीने कहा कि, "मैं महाविदेह क्षेत्रमें जाकर वापस आउ तबतक मार्गमे विघ्न न होने के लिए कृपा करके आप सब कायोत्सर्ग मे ही रहे कि जिससे मैं वहां जा सकूँ।" संघने उसी प्रकार किया। फिर वह देवी महाविदेहमे जा प्रभुको पूछ कर वापस लौट संघसे कहा कि, "तीर्थंकर भगवतने मुझसे कहा है कि "तुम (संघ) जो कहते हो वह सत्य है और श्रीवीर जिनेश्वर के मुक्ति प्राप्त करने पश्चात् पांचसो चोरासी वर्ष में जो सातवा निन्हव होने वाला था, वह यह मिथ्यावादि गोष्ठामाहिल ही है।" यह सुन गोष्ठामाहिलने कहा कि-"यह बिचारी देवी अल्पर्द्धिशाली है इसकी महाविदेहमें जानेकी शक्ति कैसे हो सकती हैं?" ऐसा कह उसने उसकी बात भी स्वीकार नही की इससे संघ से बाहर निकाल दिया। तत्पश्चात् आयुष्यके क्षय होने पर मिथ्याप्ररुपणा तथा कदाग्रहकी आलोचना किये बिना ही वह मृत्यु का शिकार हो गया।

इस दृष्टान्त का यह तात्पर्य है कि–"सघद्वारा संघ से बाहर कर देने पर भी गोष्ठामाहिलने अपने मतका त्याग नही किया, और बोधिरत्न रहित होकर पृथ्वी पर अनेकों पुरुषों को भ्रमाकर स्वय भी ससार में भ्रमा।"

[इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशप्रासादवृत्तौ षोडशस्तम्भस्य अष्टात्रिंशदधिकद्विशततम: प्रबध. ॥ २३८ ॥]

व्याख्यान २३९

आठवा निन्हव

स्वल्पमात्रजिनप्रोक्तवचनोत्थापकारिण ।
जमालिप्रमुखा ज्ञेया, निन्हवा सप्त शासने ॥१॥

भावार्थ -" जिनेश्वरद्वारा कथित अल्प मात्र वचनको भी उत्थापन करनेवाले जमालि आदि सात निन्हव जिनशासन मे प्रसिद्ध हैं ।

अथ सर्वविसवादी, निन्हव प्रोच्यतेऽष्टम. ।
श्रीवीरमुक्तेर्जातोऽब्दशतैः षड्भि र्नवोत्तरैः ॥२॥

भावार्थ - ' श्रीवीर के निर्वाण के छसो नो वर्ष बाद जिनेश्वर के सर्व वचनों का उत्थापन करने वाला आठवा निन्हव उत्पन्न हुआ । उसका हाल कहा जाता है । "

आठवें निन्हवकी कथा

रथवीर नामक नगरम हजार योद्धाओं को जीतने वाला शिवभूति नामक एक क्षत्रिय था । वह राज्य सेवा करता था । एक बार वे उसके शौर्यादिक गुणों की परीक्षा करनेके लिए कृष्ण चतुर्दशीके दिन उसे एक पशु और मदिरा देकर कहा कि-"तू अकेला स्मशान में जा और यह बलिदान

देकर वापस आ।" वह मध्यरात्रिमें अकेला स्मशान में गया, जहां अनेकों भूत, प्रेत, पिशाच आदिने उसे भय दिखलाया परन्तु उसका एक रुआ (रोम) भी खड़ा नहीं हुआ, जिससे उसको शूरवीर जान राजाने उसका वेतन बढ़ा दिया। फिर एक दिन राजाने दक्षिण मथुराके राजाको जीतने के लिये हजार योद्धाओंका सैन्य भेजा और उत्तर मथुराके राजा को जीतने के लिये अकेले शिवभूति को भेजा। वह तुरन्त विजय प्राप्त वापस लौटा जिसे देख राजाने उसका नाम सहस्रमल्ल रक्खा और वरदान मांगने को कहा। उसने मांगा कि, "हे स्वामी! मुझे स्वतन्त्रता दीजिये" इसलिये राजाने उसे स्वतन्त्र कर दिया।

फिर वह राजा के प्रसाद से इच्छानुसार विलास करता हुआ नगरमे घूमने लगा, और रात्रिमे दो पहर रात्रि गये बाद घर आने लगा जिससे दुखि होकर उसकी स्त्रीने उसकी मांसे कहा कि-"तुम्हारे पुत्र से मे घबरा गई हूँ वे किसी भी दिन रात्रि को समय पर घर नहीं लौटते इसलिये जागरण व भूख से मैं दुखी होती हूँ।" यह सुन कर सासुने कहा कि-"हे बहू! आज तू सोजा मैं जगती रहूँगी" ऐसा कहने से बहू सो गई। मध्यरात्रि में सहस्रमल्लने आकर कहा कि-"दरवाजा खोलो" यह सुन माताने कुपित होकर जवाब दिया कि-"हे दुष्ट! इस मध्यरात्रि के समय जहां दरवाजे खुले हो वहीं जा।" इस प्रकार सुनने से क्रोधित हो वह गावमें फिरने लगा कि उसने खुले दरवाजे

वाले साधु के उपाश्रय को देखा, इसलिये उसने उसमे प्रवेश कर साधु को वन्दन कर व्रत मागा । सूरिने उसे राजवल्लभ तथा माता आदि से भेजा हुआ नही होने एव स्वेच्छाचारी जान कर दीक्षा नही दी । तिसपर भी उसने साधुओं के थूकने के पात्रमे से गीली राख लेकर स्वय ही लोच कर लिया इससे फिर कृष्णसूरिने उन्हे मुनिवेश दिया । फिर कृष्णसूरि के साथ विहार करते हुए एक दिन वे वापस उसी नगर मे आये । राजाने सहस्रमल्ल को एक रत्नकबल दिया तब आचार्यने उनसे कहा कि-" हम साधुओं को ऐसे बहु मूल्य उपकरण नही रखने चाहिये । " गुरूने ऐसा कहने पर भी उसने उस कबल को राग वश गुप्तपन से रखा और सदैव उसकी चोकसी (देखभाल) करने लगा । गुरूने उसका कबल पर राग जान एक बार जब वह कहीं बाहर गया हुआ था, उस समय उसके कबल को फाड़ उसके पादप्रोच्छण (पैर पौछनेका वस्त्र) करने के लिये सब साधुओं को बाट दिया । यह बात जान शिवभूति को बड़ा क्रोध चढ़ा और वह उसी स्थिति में वहा ठहर गया ।

एक दिन जब आचार्य जिनकल्पिकका वर्णन कर रहेथे कि, "जिनकल्पिक दो प्रकार के होते हैं । एक पाणिपात्र अर्थात् हाथमे लेकर भोजन करने वाले और दूसरे "पात्रभोजी" अर्थात् पात्रमें लेकर भोजन करनेवाले इनमें से भी प्रत्येक के दो दो भेद हैं, एक स्वल्प सचेलका अर्थात् अल्प वस्त्र रखने वाले और दूसरे अचेलका अर्थात् बिलकुल

वस्त्र नहीं रखने वाले।" यह वृत्तान्त सुनकर शिवभूतिने कहा कि–"यदि ऐसा है तो वर्तमानमें बहु उपाधि क्यों रक्खी जाती है? जिनकल्प क्यों नहीं अंगीकार किया जाता?" गुरूने कहा कि, "इस भरतक्षेत्रमें श्रीवीर के धर्मपौत्र अर्थात् उनके तीसरे पाट हुए श्री जम्बुस्वामी के निर्वाण के साथ ही साथ जिन कल्प आदि दश वस्तुओं का विच्छेद हो गया है, अपितु वैसे संहननादिक[1] के अभाव से वर्तमानकाल में वैसा नहीं किया जा सकता।" यह सुन शिवभूति बोला कि–"अल्प सत्ववाला के लिये जिनकल्प विच्छेद हो गया है परन्तु मेरे जैसे के लिये नही। क्योंकि मेरे जैसे महासत्व तो वर्तमानकाल में भी जिनकल्प अंगीकार करनेमें समर्थ है। मोक्षके अभिलापी को समग्र परिग्रहका त्याग कर देना चाहिए। तो फिर कषाय, भय, मूर्छादिक दोष के निधि समान इस अनर्थकारी परिग्रह से क्या? जिनेन्द्र स्वयं अचेलक ही थे। इसलिये वस्त्ररहितपन ही श्रेष्ठ है।" तब गुरूने कहा कि–"यदि ऐसा हो तो देहमें भी कषाय, भय, मूर्च्छा आदि दोषों का होना संभव है इसलिये इस देहको भी व्रत ग्रहण करने पश्चात् तुरन्त त्याग कर देना उचित है, परन्तु शास्त्रमे जो परिग्रहरहितपन कहा गया है उसका यह हेतु है कि–धर्मके उपकरणों पर मूर्च्छा नही रखना, परंतु सर्वथा धर्मके उपकरणोंका त्याग कर देना ऐसा नही है, अपितु यह भी नही

१ संहनन अर्थात् शरीरकी पुष्टि जिनकल्पीपन पालनेमें जैसी आज नहीं है अपितु आदि शब्दसे उस प्रकारका ज्ञान आदि भी नहि है।

है कि जिनेश्वर सर्वथा अचेलक ही थे। क्योंकि-" सव्वे वि एगदूसेण निग्गया जिणवरा चउवीसवि" (सर्व चोवीस तीर्थंकरोंने एक दव दुष्य वस्त्र को ही लेकर दीक्षा ली है) आदि वचनों से जिनेन्द्र भी अचेलक थे।" इस प्रकार आचार्य तथा स्थविर मुनियों द्वारा पूर्वोक्त तथा वक्ष्यमाण[1] युक्तियों से बोध कराने पर भी उसप्रकार के कषाय और मोहनीय के उदय से उन्होंने अपना आग्रह नहीं छोड़ा और सब वस्त्रों को छोड़कर गावके बाहर एक अरण्यमें जा रहने लगे।

एकबार जब उसकी बहन उत्तरा उनको वन्दना करने गई तो वहां उसके भाईको वस्त्र रहित देख उसने भी वस्त्रों का त्याग कर दिया। फिर वह भिक्षाके लिए नगर में गई वहां किसी वेश्याने उसे देख विचार किया कि-"वस्त्ररहित बीभत्स[2] दिखाती इस स्त्रीको देखकर लोग हमसे भी विरक्त हो जायेंगे" ऐसा सोचकर उसने उसे उसकी इच्छासे विरुद्ध भी बलात्कारपूर्वक वस्त्र पहिना दिये। यह वृत्तान्त उत्तराने शिवभूतिसे आकर कहा, जिसे सुन शिवभूतिने विचार किया कि-"वस्त्ररहित स्त्री अति बिभत्स तथा अति लज्जास्पद हो जाती है।" इसलिये उसने उत्तरा से कहा कि-"अब तू तो इसीप्रकार रहना वस्त्रोंका त्याग मत करना।"

अब अनेक साधु शिवभूति को समझाने लगे कि—"जिनागम में तीन कारणोंसे वस्त्र धारण करना कहा गया है।"

---

१ आगे बतलाई हुई २ खराब नजर आने वाली

तिहि ठाणेहि वत्थ धारेज्जा हिरि पत्तिय ।
दुगच्छावत्तिय, परिसहवत्तिय ।"

अर्थ –ही" अर्थात् लज्जा अथवा सयमका रक्षण निमित्त, लोक में दुगच्छा (निन्दा) न होने के लिए तथा "परिषह" अर्थात् शर्दी, गर्मी, डास, मच्छर आदि से रक्षा करने को । इन तीन कारणोंसे वस्त्र धारण करने चाहिये ।

अपितु कहा गया है कि–"तपस्वियों को धर्ममें सहायभूत होनेसे शुद्ध आहारादिकके समान वस्त्रादिकको भी ग्रहण करना चाहिये। इनमे उनका कोई दोष नहीं है।"

अपितु ऐसा कहते हैं कि–"हिंसानुबधी, मृषानुबधि, स्तेयानुबधि और सरक्षणानुबधि इस प्रकार चार प्रकार का रौद्रध्यान कहा गया है । उनमे से "हिंसा" अर्थात् प्राणी का वध उसका "अनुबध" अर्थात् जिसका निरन्तर चिन्तवन हो वह हिंसानुबधि कहलाता है। जिसमें असत्यका चिंतवन हो वह मृषानुबधि, जिसमे चोरीका चिन्तवन हो वह स्तेयानुबधि और तस्करादिक से अपने वित्त को गुप्त रखने को नित्य उसके रक्षण के लिये जो चिन्तवन किया जाता है उसे सरक्षणानुबधि कहते हैं । इनमेसे रौद्रध्यानका चोथा भेद जिसे सरक्षानुबधि कहते हैं वह वस्त्रादि ग्रहण करने से अवश्य होगा क्यो कि वह रौद्रध्यानका हेतु है । अपितु" शस्त्रादिक के समान दुर्गति का कारण होने से वस्त्रादिक

ग्रहण नहीं करना चाहिये ।" यदि ऐसी तेरी धारणा हो तो वह भी अयुक्त है क्यों कि, "हे देवानुप्रिय ! तेरी इस युक्ति के अनुसार तो देहादिक में भी रौद्रध्यानकी प्राप्ति होगी । क्योंकि शरीरकी भी जल, अग्नि, चोर, डास, शिकारी पशु, विष, कटक आदि से रक्षण करनेकी आवश्यकता होती है ।" इसलिये देहादिक में भी सरक्षणानुबंधिकी तुल्यता है अत उन देहादिकका भी त्याग करना पडेगा ।

कदाच तू ऐसा कहे कि-"देहादिक मोक्ष साधन मे अगीभूत होने से यत्नपूर्वक उनके सरक्षण मे कोई दोष नहीं है । परन्तु वह प्रशस्त सरक्षण है ।" तो यहा भी आगममे वर्णित यत्नके प्रकार से ही वस्त्रादिक का त्याग क्यों नही है ? इसलिये वस्त्रादिकका त्याग क्यों करना चाहिये ? अपितु "मुच्छा परिग्गहो वुत्तो, इति वुत्त महेसिणा (भगवतने मूर्छा को ही परिग्रह बतलाया है ऐसा महर्षि श्री सुधर्मा स्वामी का कथन है ।" आदि श्री सद्यभव सूरि के वचनानुसार वस्त्र, वित्त, देह आदि मे मूर्छा उत्पन्न हो तो वह परिग्रह है ।

प्रश्न—यदि मुनि वस्त्र ग्रहण करे तो फिर साधु को अचेल परीषह सहन करने को क्यों कहा गया है ? क्योंकि वस्त्रके न होनेपर ही वह घटित हो सकता है ।

उत्तर—तेरा कहना अयोग्य है क्योंकि जीर्ण प्राय-वस्त्र से भी वस्त्ररहित होना लोकमे प्रसिद्ध है । जैसे कि-

कोई स्त्री जीर्ण एव फटा वस्त्र शरीर पर धारण कर कौलि वस्त्रे बुनकर को कहती है कि—"हे बुनकर! मेरी साड़ी शीघ्र बनाकर दे क्योंकि मैं नगी फिरती हू।" यहा वस्त्र सहित होनेपर भी स्त्रीके लिये नग्नपन शब्द का प्रयोग किया गया है। शास्त्रमें भी "जासट्टा कीरइ नगभावो" ऐसा वाक्य हैं यह उपचारिक नग्न भावके लिए ही है, अत वस्त्र रखने मे किसी प्रकार का विरोध नही है, इसीप्रकार मुख वस्त्रिका रजोहरण रखने लायक है। कहा है कि—

स्थानोपनेशनस्वाप, निक्षेपग्रहणादिषु।
जतुप्रमार्जनार्थ हि, रजोहरणमिष्यते ॥१॥

भावार्थ —"किसी भी स्थान मे बैठने, शयन करने, किसी वस्तु को रखने, लेने आदि कार्य में जन्तुओं के प्रमार्जन के लिए रजोहरण की आवश्यकता है।"

सपातिमादिसत्वानां, रक्षार्थ मुखवस्त्रिका।
भक्तपानस्थजतुना, परीक्षार्थ च पात्रकम् ॥२॥

भावार्थ —"सपातिम[१] जन्तुओं की रक्षाके लिए मुख-वस्त्रिका की आवश्यकता है, और भक्तपान मे रहे जन्तुओं की यतना के लिए पात्रकी आवश्यकता है।"

अपितु पात्र बिना यदि सजीव [२]गोरसादिक अनजाने हाथमें ले लिया जाये तो फिर उसका क्या किया जाये?

---

१ उड़कर पड़नेवाले २ दही, दुध, छास आदि

उसमें रहे जीवकी तो हिंसा ही होती है तथा हाथमें लिये प्रवाही पदार्थ हाथमेसे निचे गीरे जिनसे कुथुवा, कीड़ी आदि अनेकों जीवोंकी हिंसा होती है तथा गृहस्थ मुनिके काममे आये पात्रा धोह, पूछे तो उससे पश्चात्‌कर्मादि दोष लगते हैं, इसलिये बाल और ग्लानादि साधुओंकी वैयावच्च के लिए तथा पारिष्टापनिका समिति रखने के लिये साधुओं को पात्रका ग्रहण करना योग्य है। अपितु जघन्यसे भी नव पूर्वमें कुछ अल्प पढ़, उत्तम धैर्य और सहननवाले "तवेण सुत्तेण सत्तन (तप, सूत्र और सत्य द्वारा) आदि भावनाएं कर प्रथम तुलना करने पश्चात्‌ ही जिनकल्प अगी कार कर सकते हैं परन्तु शेरीके सिह समान तेरे जैसे के लिए तीर्थंकरोने जिनकल्पकी आज्ञा नहीं दी है तिसपरभी जो तू तीर्थंकरकी तुलना करता है वह अयोग्य है क्यों कि जिनेश्वर तो पाणिप्रतिमहादि अनन्त अतिशयों वाले होते हैं इसलिये तेरी मान्यता सवथा त्याज्य है।"

आदि अनेक युक्तियों से समझाने पर भी वह मिथ्या अभिनिवेश से श्री तीर्थंकर के तथा मुनीन्द्रों के अनेक वचनों का उत्थापक हुआ। अब शिवभूति के कोडिन्य और कोट वीर नामक दो बुद्धिशाली शिष्य थे। जिनसे इस मतकी परपरा आरंभ हुई। फिर उन्होंने अनुक्रमसे "केवली आहार नहीं करते, स्त्रीका मोक्ष नही होता, तिविहार उपवास में सचित, जल पीनेमे कोई दोष नहीं, दिगबर साधु देवद्रव्य लेकर उसका व्यय करे तो उसमें दोष नही।" आदि

जिनागम से विरुद्ध लगभग आठसो वचन नये रचे और वे वचन वे स्वेच्छासे बोलने लगे इसलिये वे सर्वविसवादी (उत्थापक) हुए । उस साधुकी परपरामें हुए साधु दिगबर कहलाते हैं ।

इस प्रकार दिगम्बर नामक आठवा निह्नव अपना शुद्ध बोधिरत्न खो बैठा क्योंकि समक्ति (बोधिरत्न) प्राप्त हो जाने पर भी कोई उसे खो बैठता है, इसलिए हे भव्य प्राणियों ! प्रयत्न द्वारा समकित का रक्षण करो ।

[इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशप्रासादवृत्तौ षोडशस्तम्भस्य]
एकोनचत्वारिंशदधिकद्विशततमः प्रबंधः ॥२३९॥]

व्याख्यान २४०

दुदस्मन के विषय में

श्रीमद्वीरजिन नत्वा, धर्ये ऽह श्रुतनिंदकान् ।
चरित्र वगचूलिकाध्ययनाद्वारित यथा ॥१॥

भावार्थ —"श्रीमान् वीरजिनेश्वर को नमस्कार कर वग चूलिका नामक ग्रंथसे यह श्रुतनिन्दक के चरित्र का यहां वर्णन किया जाता है।"

श्री वीर परमात्मा के पांचवे पट्टको धारण करने वाले श्री यशोभद्रसूरि के शिष्य श्री भद्रबाहु स्वामी श्रुतकेवली हुए। उनके शिष्य अग्निदत्त मिथिला नगरी के उद्यान में प्रतिमा[1] अंगीकार कर तप करते थे। उस समय मदिरा तथा मांसमें आसक्त कोई बाईस मित्र कामलता नामक वेश्या के साथ अयोग्य चेष्टा करते हुए हमेशा उपवन में क्रीड़ा करते थे। एकबार मदिरा पानसे उद्धत हो वे अग्निदत्तमुनि को देख उसे मारने के लिए हाथमें अति तीक्ष्ण खड्ग ले एक साथ दौड़े। दौड़ते हुए मार्ग में एक अन्ध[2]कूप में वे एक दूसरे पर गिर पड़े जिससे एक दूसरे के शस्त्र परस्पर लगने से वे सब मर गये। उनकी यह स्थिति देखकर अग्निदत्तने विचार

1 मुनि वहनकी बारह पडिमाओं का अंगीकार कर।
2 जलरहित बहुत गहरा कुआ।

किया कि-"अरेरे ! ये बेचारे बिना कोई सुकृत किये ही अकाल मृत्युको प्राप्त हो गये।" फिर व साधु कायोंत्सर्ग पालकर यशोभद्र गुरू महा राजा के पास गये। गुरुके पास जाकर विनयपूर्वक पूछा कि, "वे बाईसे मित्र जो मर गये उनकी क्या गति हुई और क्या गति होगी?" तब तीन ज्ञान और दृष्टिवाद के ज्ञाता यशोभद्र गुरूने श्रुतका उपयोग दे उनके बहु भवभ्रमण का चरित्र बतलाया कि —

"हे अग्निदत्त! वे बाईस मनुष्य तुझे मारने के लिए दौड़ते हुए अधकूवे में गिरे कि अतर्मुहूर्त मे ही गणिका की इच्छा के अध्यवसाय से मर कर उसी वेश्याके दाहिनस्तन मे उनके द्वारा किये नखक्षत मे कृमिरूप से उत्पन्न हुए। जिससे वेश्या के स्तन में अत्यन्त वेदना होने लगी। अनकों वैद्यों की औषधिये निष्फल गई। अन्तमें एक वैद्यने उसका उपाय जानकर उसक स्तनको चीर उसमें से हाड़, मास और रुधिर के अति तृष्णावाले उन बाईस बेइद्रिय कीड़ोको निकाल जलपात्र म डाल उस वेश्याको बतलाये फिर स्तनके घावको घाव भरने की दवासे भरदिया। उस वैद्यको वेश्याने बहुतसा द्रव्य दिया। फिर उन बाईस कीड़ो पर पूर्वभव के स्नेह से दयाकर वेश्याने विचार किया कि, "ये बिचारे मेरे हाथके स्पर्श से मर जायेगे इसलिये मैं इन्हे नगर की खाईमें पड़े कुत्तेके शबमें डाल दू।" ऐसा सोच उसने वैसा ही किया। परन्तु वहा भी वे बाईस ही कीडे ताप, क्षुधा और तृषा से पीड़ित होकर अतर्मुहूर्त में ही मर

गये । वहा से वे साधारण वनस्पतिकाय में मोथ जाति के कद में उत्पन्न होगे । वहां उस कद को खोदते हुए वे सब मर कर पृथ्वीकाय आदि पांचों एकेन्द्रिय में जघन्य और मध्यम स्थिति के आयुष्य वाले होगे । वहा मरकर वे ही कामलता वेश्या के उदर में कृमिया होगे जहा विरेचनके प्रयोग से वे मरकर मलद्वार से बाहर निकलेगे और उसीकी विष्ठामे चौरिंद्रिय में उत्पन्न होगे । इसीप्रकार उसी वेश्याकी विष्टा, मूत्र म, चूकमे, वडगामे, नाकस सेडे आदिमे बेइन्द्रिय, तेईन्द्रिय और चौरिन्द्रियमे सात सात वार उत्पन्न होग । इस प्रकार इकतीस भव करेगे । फिर तीस वे भव मे वे बाईस जीव उसी वेश्या के घर की खाल में सम्मूर्च्छिम मेढक होगे वहा छोसे नो (२०९) दिन का आयुष्य भोगकर इकतीस वे भवमे उस वेश्या के घरम गर्भज चूहे होगे । वहा छोसेनो मास के आयुष्य के अन्त में मरकर बतीस वे भवमें उस गाणिका के आगनम विष्ठा आदिका आहार करनेवाला सूकर (भूंड) होगा वहा दो सो नो वर्षका आयुष्य भोगकर तेतीस वे भवम अवन्ती नगरी मे चाडाल कुलमें उत्पन्न होगे जहां वे बाईस ही चाडाल वृद्धि पाकर हुड सस्थानवाले, लम्बे दांतवाले, मोटे पेटवाले, कृष्ण वर्णवाले, दिखने मी अयोग्य, मनुष्योंको दुर्गच्छा उत्पन्न करनेवाले और अपने नीच कर्ममें कुशल होगे । उस समय हे अग्निदत्त! वह वेश्या वृद्ध हो जाने से उसके द्रव्यने धर्मम खर्च कर, तापसी दीक्षारुप धर्म स्वीकार कर मिथिला नगरीसे निकलकर काशी देशमें गगा

नदी के किनारे रहनेवाले तपस्वीयोंके पास जायेगी और उनके पास शौचमूल्य धर्म अंगीकार करेगी । वहासे फिरती फिरती अनुक्रमसे अवंति देशमें बहने वाली सिप्रा नदीके किनारे आयेगी । वहा अनेक मनुष्योंको उसके शौचमूल धर्मका उपदेश करेगी और कहेगी कि, "हे मनुष्यो ! शौचमय धर्म दो प्रकारका है । द्रव्यशौच तथा भावशौच । उनमेंसे जल और मिट्टीसे द्रव्यशौच होता है और दम तथा मंत्रसे भावशौच होता है । जो कोई भी अशुचि हुई हो उस सबको मिट्टी लगाकर फिर उसे शुद्ध जलसे धोना चाहिये । ऐसा करनेसे सब वस्तुएं शुद्ध हो जाती है । इस प्रकार निरन्तर मातवार शुद्धि करनेसे प्राणी मोक्षपदको प्राप्त करते हैं । आदि उस वेश्या तापसीका उपदेश सुनकर वे चाडाल उस धर्मके रसिक होंगे जिससे दूसरे अन्य सब दर्शनोंके वे और विशेष तथा जनमुनि तथा जैन चैत्योंके अधिक द्वेषी होंगे एव उनका अवर्णवाद बोलेंगे । अन्तमें वे वैराग्य पाकर उस वेश्या तापसीके पास तापसी दीक्षा लेंगे । इसके पश्चात् पाचवे वर्षमें मरकर चोतीशवे भवमें उसी अवंती नगरीमें भाडकुलमें उत्पन्न होंगे । वहा अनेक प्रकारकी भांड चेष्टा कर उनकी आजीविका चलायेंगे । एकबार कुशस्थल नगरके राजाके पास वे भाडचेष्टा कर हसायेंगे । उस समय अट्ठम तपके पारणे कोई दो साधु गोचरी के लिए वहासे निकलेंगे उन्हे देखकर पुरोहितके कहनेसे वे भाड उनका अपमान करेंगे फिरभी वे साधु तो मौन ही रहेंगे जिससे वे भाड थक कर साधुओंको जाने देंगे । फिर हे अग्निदत्त !

जब वे वहां एकबार साथ साथ सोते हुए होंगे । तब उन पर अकस्मात् विद्युत्पात होगा जिससे वे मर जायेंगे । वहां से पैंतीसवें भवमें वे मध्य देशमें भिन्न भिन्न ब्राह्मण कुलमें उत्पन्न होंगे । वहां अनुक्रमसे वृद्धि प्राप्त कर चौदह विद्यामें प्रवीण होंगे । पश्चात् व धारापुर नगरमें यज्ञदत्त ब्राह्मणके निमन्त्रणसे उसके यज्ञमें आयेंगे । वहां यज्ञमण्डप द्वार बंध कर व अग्निकुण्डमें होम करेंगे । उस समय कुण्डकी अग्निकी ज्वालासे उडते अजन तृपासे व्याकुल होकर आर्तध्यान द्वारा मरेंगे और समुद्रादिके द्रहमें मत्स्यरूपसे उत्पन्न होंगे । इस तरह सातबार जलचर योनिमें उत्पन्न होंगे, तदन्तर नो बार पक्षियोंमें उत्पन्न होंगे और फिर ग्यारहबार पशुओंमें उत्पन्न होंगे अर्थात् सब मिलकर बासठ भव होंगे । उनमेंसे अन्तिम बासठवें भवमें वे मृगरूपमें होंगे जहां दावानल अग्निसे जल कर तेसठवें भवमें व बाईस गोष्ठीके पुरुष मध्यदेशमें श्रावक कुलमें भिन्न भिन्न उत्पन्न होंगे। वहां युवावस्थाको प्राप्त हो हुए, परन्तु, पूर्वभवसे मिथ्यात्वपनसे शुद्ध जैनमार्गके प्रत्यनिक और देवगुरुके निन्दक होंगे और अनेकों मनुष्यों को कहेंगे कि "पत्थर तथा धातु आदिकी बनाई हुई प्रतिमाके पूजनमें हिंसा होती है, इसलिये उसका पूजन करना व्यर्थ है ।" आदि कुयुक्तियोंसे चैत्य, धर्म तथा आगमका उत्थापन करेंगे ।

उपरोक्त वेश्या तापसी अट्ठोत्तर वर्ष तक गृहस्थाश्रम भोगकर छत्तीस वर्ष तापसी दीक्षा पाल कुल एकसोचार वर्ष

का आयुष्य भोग सात दिवस तक अनशन कर मृत्यु प्राप्त कर व्याणव्यतर योनीमें सुवच्छ नामक दक्षिणेन्द्रके देशमें उणा अर्ध पल्योपम की आयुष्यवाली सुवच्छा नामक देवी बनेगी। वहा विभग ज्ञान द्वारा पूर्वके अनेको भवाके सबन्धी उन बाईस बनियोको देखकर वह हर्षित होगी, तुष्टमान होगी और उनकी प्रत्येक कार्यमें सहायता करेगी। वे देवी के प्रभावसे समृद्धिवान होगे। फिर वे सब आद-मियोंके समक्ष हर्षपूर्वक उद्घोषणा करेंगे कि-"हे मनुष्यो! देखो हमारे धर्मका यह प्रत्यक्ष फलते है कि हम कैसा सुख भोग रहे है? तुम भी हमारे धर्मको अगीकार करो पत्थरके निम्की पूजा करने और छकाय जीवकी हिंसा करने से क्या फल मिलेगा ?" आदि शब्द कहकर वे बाईस भ्रष्ट श्रावक अनेकों लोगोंको कुमार्गगामी बनायेगे। उस समय तीर्थकारो द्वारा निरुपण किये श्रुतका अपमान रहेगा। श्रमण निग्रथका उदय, पूजा, सत्कार नही होगा और धर्मका पालन करना अतिदुष्कर हो जायेगा। फिर वे बाईस ही बनिये आयुष्यके अन्तमे सोलह प्रकारके रोगकी पीडासे अति-कष्ट पाकर अर्तध्यानद्वारा मर जायेगे और घम्मा नामक पहले नरकके प्रथम प्रतरमें दशहजार वर्षके आयुष्यवाले नरकों होगे वहासे निकलने पर भी अनक योनियोंमे परिभ्रमण करेगे। श्रीजिनागमका अपमान करनेसे उनको बोधिरत्नकी प्राप्ति अत्यन्त दुर्लभ होगी।

इस प्रकार सूरिके वचन सुन अग्निदत्त मुनिने फिरसे गुरूको वन्दना कर पूछा कि-"हे स्वामी! इन श्रुतनिन्दकों

की उत्पत्ति किस कालमें होगी ?" उसका उत्तर जो यशो-
भद्रसूरिने दिया उसकी जो वगचूलिआमें गाथा हैं वे निम्न
प्रकार की हैं -

भणइ जसभद्दसूरि, सुओवओगेण अग्गिदत्तमुणि ।
सुणसु महाभायजहा, सुअहिलमणह जहा उदओ ॥१॥
सुरकाओ वीरपहुणो, दुसएहियएगनवइअहिएहिं ।
वरिसाइ सपइनिवो, जिणपडिमाराहओ होही ॥२॥
तत्तो अ सोलसएहि, नवनवइसजुएहि वरिसेहि ।
ते दुहा वाणियगा, जनम नटस्स ति सुयमेय ॥३॥
तंमि समए अग्गिदत्ता, मघमुयजम्मरासिनरकत्ते ।
अडतीसइमो दुट्ठो, लग्गिस्सइ धूमकेउगहो ॥४॥
तस्स ठिइ तिन्निसआ, तित्तिसा एगरासि वरिसाण ।
तम्मियमीण पइट्ठो, सघस्स सुयस्स उदओ पच्छा ॥५॥
इय जसभद्दगुरुण, वयण सोच्चा मुणि सुवेरग्गो ।
पायाहिण कुणतो, पुणो पुणो वदए पाए ॥६॥
आपुच्छीऊण सूरि, सुगुरु तह भद्दबाहु सभूय ।
सलेहणपरन्तो, गओगिदत्तो पन्मकप्पे ॥७॥

भावार्थ -यशोभद्र सूरिने श्रुतके उपयोग पूर्वक अग्निदत्त
मुनि से कहाकि-" हे महा भाग्यशाली ! श्रुतकी निन्दा और
उदय कैसे होगा वह सुन, श्रीवीरप्रभुके निर्वाणके पश्चात् इकानवे

वर्ष में जिनप्रतिमाका आराधक सप्रति राजा होगा उसके बाद सोलहसे। निनान्व वर्ष वे दुष्ट धनिये श्रुतकी निन्दा करेगे । उस समय हे अग्निदत्त सघ और श्रुतकी जन्मराशी पर अड़तीमवा धुमवतु नामक ग्रह चढेगा । इस ग्रहकी स्थिति एक राशी पर तीनसे। तेतीस वर्षकी है, इसलिये वह जब तक वर्तगा तबतक इन लोगोंका पथ रहेगा उसके उतरने पर सघ और श्रुतका उदय होगा । इस प्रकार यशोभद्रसूरि के वचन सुन अत्यन्त वैराग्य प्राप्तकर अग्निदत्त मुनि अनशन कर प्रथम देवलोकमे गये ।

"सिद्धान्त और चैत्य आदिके लेप करने वाले और मिथ्यात्व गुणस्थानमे रहे वे बाईस धनिये ससाररूप कूपमें चिरकाल तक भटकेगे इसलिये आगमके जाननेवालोंको कदापि वैसा नही करना चाहिये ।"

[इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशप्रासादवृत्तौ षोडशस्तम्भस्य चत्वारिंशदधिकद्विशततम प्रबध. ॥ २४० ॥]

स्थभ सोलहवा सम्पूर्ण

व्याख्यान २४१

क्रोध के विषयमें

वध्य वचनेन क्रोधेन, घातिता पूर्वजन्मनि ।
रुदद्भिर्वेद्यतेऽन्य, तत्कर्मेह शरीरिभि ॥१॥

भावार्थ –"प्राणियोंने वचन द्वारा क्रोधसे जो कर्म बांधा हो वह कर्म प्राणियोंको इस जनममें रोते रोते भी अवश्य भोगना पड़ता है ।" इस पर एक दृष्टान्त है कि –

अमरदत्त और मित्रानन्दकी कथा

अमरपुर नगरमें मकरध्वज नामक राजा राज्य करता था, जिसके मदनसेना नामक पट्टराणी थी । एक बार उसने राजाके मस्तक पर उगा हुआ एक सफेद बाल निकाल कर राजाको बतलाया । जिसे देख राजाको वैराग्य उत्पन्न हो गया और उसने राणी सहित तापसी दीक्षा ग्रहण की । बादमें गुप्त गर्भवाली राणी तापसीने पुत्र प्रसव किया, परंतु अयोग्य आहारके प्रभावसे वह मूर्छागत होकर मर गई ।

---

१ जिस गर्भका दिखाव न मालुम हो वह गुप्त गर्भ कहलाता है । रानीके पहले संसारीपनमें गर्भ रह गया था किन्तु उसे उसने नहीं बतलाया इससे वह तापसी होगई अन्यथा गर्भिनी स्त्री तापसी नहीं बन सकती ।

उसे देख राजा तापस चिन्तातुर हो गया । उसने उसके किस श्रेष्ठीको वह पुत्र पालने के लिये सौंपदिया । श्रेष्ठीने उसे उसकी स्त्रीको दिया । उस पुत्रका नाम अमरदत्त रक्खा गया । वह अनुक्रमसे युवा हुआ । उसका मित्रानन्द नामक एक मित्र था । एकबार वे दोनों मित्र सिप्रा नदीके किनारे खडे एक वट वृक्षके पास गिल्लीडंडे खेल रहेथे । उस समय अमरदत्तने डंडसे गिल्लीको उछाला वह वटवृक्षसे बांधे किसी चोर के मृतकके गुदमें पडी । उसे देख हसते हसते मित्रानन्दने मित्र से कहा कि–"यह अद्भुत बनाव तो देखो ।" इस पर वह चोरका शव बोलाकि, "अरे तू क्यों हसता है ? तेरी भी ऐसी दशा होगी और इसी प्रकार तेरे गुदमें भी गिल्ली पडेगी ।" इसे सुन मित्रानन्द भयभीत हो गया और किसीभी जगह उसे रति नही हुई । उसे शान्त करने के लिए अमरदत्त शिक्षा देने लगा कि, "हे मित्र ! मृतकमे प्रवेश किये व्यंतर से क्यों भयभीत होता है ? उस तो तुझे मजाकमें कहा होगा फिर भी तू उद्यम कर ।" कहा है कि –

आपन्निमित्तदृष्टापि, जीवितातन्निधायिनी ।
शाता पुरुषकारेण, ज्ञानगर्भस्य मन्त्रिण· ॥१॥

भावार्थ –"ज्ञानगर्भ नामक मन्त्रीकी प्राण नाशक अपत्ति निमित्तद्वारा जाने हुए भी पुरुषार्थ द्वारा शान्त हुई ।"

"अत हमे यह स्थान छोड़कर दूसरे स्थान पर चले जाना चाहिये" फिर तुल्य सुख दुख वाले वे दोनों मित्र

वहांसे निकल कर पाटलीपुर के समीप जा पहुचे । वहा पुष्प आदिसे सुशोभित एक उपवनमें ऊंचा महल देख उन्होंने उसमें प्रवेश किया और बागकी शोभा देखते देखते महलमें गये । वहां मानों साक्षात् ब्रह्माने बनाई हो ऐसी एक रूपवती युवा स्त्रीकी पुतली दिखाई दी, जिसके रूप तथा लावण्य को देख कर अमरदत्त उस पर मोहित हो गया और वह वहांसे इधर उधर भी न जा सका वहा हि स्थिर हो गया । मित्रानन्द उसे वारवार गमन करनेको कह कर थक गया तब वह बोला कि "हे मित्र अमरदत्त ! इस पत्थरकी पुतली पर प्रेम कर क्या खडा है ? क्यो कि आकाश मथन के समान यही यह निष्फल अभिलाषा है ।" अमरदत्तने कहा कि, 'हे मित्र ! यदि मैं यहांसे हटुंगा तो अवश्य मर जाउंगा ।" यह सुन मित्रानन्द जोरसे रोने लगा और अमरदत्त भी उसकी पुतलीके वियोगको सहनेमें असक्त होकर रोने लगा कि इतनमें उस प्रसादका स्वामी श्रेष्ठी वहां आ पहुचा । उसने उन दोनोंको रोते देखकर पूछा कि–"हे भाई । तुम दोनो क्यों रोते हो ?" तब मित्रानन्दने सब वृतान्त सुना कर पूछाकि, "हे पिता ! इस सकटमें हम अब क्या उपाय करे ?" श्रेष्ठीने कहा कि, 'इस पुतलीका बनाने वाला कारीगर सोपारकपुरमें रहता हैं उससे जाकर पूछो तो वो तुम्हे इसका मर्म बतायगा ।' मित्रानन्दने कहा कि, "हे पिता ! यदि तुम मेरे इस मित्रकी सभाल रखसको तो मैं सोपारकपुर जाकर उस कारीगरसे पूछु कि–' यह पुतली तूने स्वभावसे ही घड़ी है कि किसी वर्तमान स्त्री

का रूप देख कर चित्रित की है?" यदि यदाच कोई ऐसी कन्या होगी तो मैं मेरे मित्रका मनोरथ पूर्ण करुगा।" यह सुन श्रेष्टीने अमरदत्तकी सभाल रखना स्वीकार किया। तब अमरदत्त कहने लगा कि, 'हे मित्र! तू जाता है परन्तु यदि मैं तुझे कोइ आपत्ति होगा सुनुगा तो मेरे प्राण चल बसेगे।" मित्रानन्दने कहा कि, "यदि मैं दो महिने मे वापस न लोटु तो तू समज लेना कि मित्र इस ससारमे नहीं है।" इस प्रकार उसको धैर्य बधा कर मित्रानन्द सोपारकपुर पहुचा और उत्तम वस्त्र धारण कर उस कारीगरके घर गया। कारीगरने उसका सत्कार कर जब उसके आनेका कारण पूछा तो मित्रानन्दने कहा कि-" मेरी एक मन्दिर बनानेकी इच्छा है परन्तु यदि किसी स्थानपर तुम्हारा बाधाहुआ देवालय होतो बताओं।" कारिगरने कहा कि-" पाटलीपुरमें मेरे हाथका बनाया हुआ एक प्रासाद है क्या तुमने उसको देखा है?" मित्रानन्दन कहा कि-" हा देखा है परन्तु उस प्रासादमे एक पुतली है क्या उसका रुप तुमने तुम्हारी बुद्धि कल्पनासे बनाया है कि ऐसा रुप साक्षात किसी स्थान पर देखकर बनाया है?" कारीगर ने कहाकि-" अवन्ती नगरी के राजाकी पुत्री रत्नमजरीका स्वरूप देखकर मैंने यह पुतली बनाइ है।" तब मित्रानन्दने उससे कहा कि, "तो ठीक मैं कोई उत्तम मुहूर्त देख कर तुम्हारे पास आउगा तुम तैयार रहना।" ऐसा कह कर वह अवन्ती नगरी गया और गावके दरवाजेके पास जो एक देवालय था उसमें उसने निवास किया कि उसने किसी गृहस्थकी एक उद्घोषणा सुनि कि-

"रात्रिके चार प्रहर तक इस मुर्देका जो रक्षण करेगा उसे मैं एक हजार सोनामहर दूंगा।" यह सुन मित्रानन्दने उस शवरक्षणको अंगीकार किया। उस समय लोगोंने उसे शिक्षा दी कि–"इस नगरमें अधिक रात्रिको गावके दरवाजे बन्द होजाने पर जो कोई मरजाता है उसके मृतकको [1]मारकी खाजाता है इसलिये यदि तुझमें उनसे इसकी रक्षा करनेका सामर्थ्य होतो यह काय स्वीकार करना।" मित्रानन्दने कहा कि, "वीर पुरुषोंके लिये यह कौनसा बड़ा कार्य है?" फिर उस गृहस्थने उसे शवके आधे रूपये तथा शव दिया और शेष रकम प्रातःकाल देना कह वह उसके घर चला गया। इधर मित्रानन्द शवकी रक्षा करने लगा। मध्य रात्रिमें भूत, प्रेत आदिके उपसर्ग होने लगे, परन्तु उसने उनको धैर्यसे दूर कर दिये और सम्पूर्ण रात्रिभर शवका रक्षण किया प्रातःकाल उस शवको लेजाकर उसके स्वजनोंने अग्निदाह किया। फिर मित्रानन्दने शर्तके अनुसार शेष रुपये मांगे परन्तु श्रेष्ठीने नहीं दिये। इस पर उसने कहा कि, "अबतो अब मैं यह द्रव्य यहांके राजाके समक्ष ही लूं तब तुम मुझे सच्चा वीरामणी समझना।" फिर वे सुन्दर वेश धारण कर राजाकी मान्य वश्याके घर गया। उस वेश्याने उसका सत्कार किया। मित्रानन्दने रात्रिमें वहां रहनेके लिये चार सोनामहर वेश्याकी माताको दी, जिससे हर्षित हो उस अक्काने उसकी पुत्रीसे (जो राजाकी वेश्या थी) कहाकि, "हे पुत्री! इस युव–

---

१ कोई देवी विशेष।

इसकी उत्तम सेवा करना।" इसलिये जब रात्रिमें सर्व भोग सामग्री तैयार कर श्रृंगार सज, वह वेश्या शयन गृहमें आई तब मित्रानन्दने विचार कियाकि, "विषयाशक्त मनुष्योंके कार्यसिद्ध नही होते।' ऐसा निश्चय कर उसने वेश्यासे कहा कि, "हे कल्याणी! एक पाटिया (तख्त) ला जिसमें मैं इष्ट देवका स्मरण करलूं।" इस पर वह शीघ्र एक सोनेका पाटला लाई जिस पर मित्रानन्द पद्मासन लगाकर बैठ गया। वेश्या उसके सामने अनेक हावभाव करने लगी परन्तु उसका मन चलित नही हुआ। सम्पूर्ण रात्रि इसी प्रकार निर्गमन कर प्रातःकाल वह वहांसे निकल अन्य स्थान पर गया। दूसरी रात्रि भी उसने उसी प्रकार निर्गमन की। यह वृत्तान्त सुन अक्काने उससे कहा कि, 'हे भद्र! मेरी यह पुत्री राजाओंको भी दुर्लभ है फिर तू क्यों इसकी अव गणना करता है?" मित्रानन्दने कहाकि-"समय आनेपर मैं सब कुछ कहूंगा, परन्तु मैं तुमसे पूछता हूं कि-"राजगृहमें तेरा प्रवेश है या नहि?" अक्काने उत्तर दिया कि, "ये मेरी पुत्री राजाकी चामरधारिणी है और राजाकी पुत्री रत्नमंजरी मेरी पुत्रीकी सखी है। यह सुन मित्रानन्दने राज्य वेश्यासे कहा कि, "हे भद्रे! तू आज रत्नमंजरीसे कहना कि, "हे सखी! जिनके गुणोंको तूने सुना है और जिनपर राग होनेसे तूने जिसको पत्र लिखाया उस अमरदत्तका मित्र यहां आया हुआ है। फिर उस वेश्याने रत्नमंजरीसे जाकर कहा कि- "हे सखी! आज मैं तेरे प्रियके समाचार कहनेके लिये

आई है।" तब वह हसकर विस्मय पूर्वक बोली कि-"मेरा प्रिय कौन है ?" तब उस वेश्याने सब समाचार कह सुनाया। यह सुन राजपुत्रीने विचार किया कि-"सचमुच यह कोई अलोकिक धूर्त होना चाहिये, क्योकि आजतक मेरा कोई प्रिय नही है परन्तु जिसने एसा कपट जाल रचा है उसे नजरसे देखना तो चाहिये।" ऐसा विचार कर उसने वेश्यासे कहाकि-"हे सखी ! मेरे प्रियका सन्देसा लानेवाले उस मनुष्यको मेरे प्रियके पत्र सहित आज इस बारी (खिडकी) के रास्तेसे यहा लाना।" उस वेश्याने घर आकर सब वृतान्त मित्रानन्दसे कहा। फिर उस रात्रिको अक्का द्वारा बतलाये मार्गसे सात किल्लोंका उल्लघन कर वह राजकन्याके निवास गृहमे पहुचा। अक्काने उसकी पुत्रीके पास उसके धैर्यकी प्रशसा की। इस और राजपुत्रिने उसका धैर्य, प्रियके पत्रिका लेखन, चातुर्य तथा उस रुप, लावण्य और वचन कलाका कौशल्य देख मानो स्तभित हो गई हो उस प्रकार विना एक भी अक्षर बोले वह स्थिर हो गई। उस समय मित्रानन्दने हिम्मत कर उसके हाथसे राजाका नामाङ्कित कड़ा निकाल लिया और उसकी जघा पर छुरीसे त्रिशूलकी आकृति बनादी, फिर वहासे निकल अक्काके घर चला गया राजकुमारी उसके गुर्णोसे आसिप्र होकर विचार करने लगी कि-"सचमुच वह कोई सामान्य पुरुष नही था, इसलिये मैंने जो उससे सभापण भी नही किया यह अच्छा नहीं किया है।" आदि विचार करते करते वह पीछली रात्रिमें निद्रावश हो गई।

प्रातःकाल मित्रानन्दने राजाके पास जाकर फरियादकी कि-" हे राजा ! अखंडित आज्ञा वाले आपके राज्यमें एक श्रेष्ठि मेरा मागता धन नही देता है । आप लोकपाल है इस-लिये ऐसे दुष्टको सजा देना चाहिये ।" यह सुन राजाने उसके सिपाईयोंसे भेज उस श्रेष्टीको बुलाया । उस श्रेष्टीने भी सब हाल जान लिया इसलिये उसने राजसभामें आते ही प्रथम मित्रानन्दको उसका अवशेष द्रव्य दे राजाको प्रणाम कर कहा कि-" पिताके पीछेके लोकाचारमे व्यग्र होजानेसे तथा पिताके विरहके शोकसे धन देनेमें विलम्ब हो गया था ।" राजाने उसकी बात सत्य मान उसे जानेकी आज्ञा दी । फिर राजाने मित्रानन्दसे पूछाकि, "तूने रात्रिमें मृतककी रक्षा कैसे की ?" उसने उत्तर दिया कि, "हे राजा ! उस रात्रिमें भूत, वेताल, राक्षस, शाकिनी, व्यन्तर आदि अनेक प्रकार के शस्त्रों सहित आये थे । उनके साथ रात्रिके तीन पहर तक मैने बहुत युद्ध किया अन्तमें गुरुके बताये मन्त्रबलसे भग गये । फिर चोथे पहरमें कोई एक अपसरा जैसी स्त्री मेरे पास आई, वो दिव्यवस्त्र धारण किये हुई थी विविध प्रकार के आभूषणोंसे शोभित थी, केश खुले होनेसे भयंकर दिखाइ देती थी, मुहसे अग्निज्वाला निकाल रहीथी और हाथमें कर्तीका लिये हुई थी । उस स्त्रीने मुझसे कहाकि, " हे दुष्ट ! आज तुजको ही खाउंगी ।" मैने उसे देख विचार कियाकि-"लोग जो कहते थे सचमुच वह मारी यह ही है ।" इससे मैने उसके साथ भयंकर युद्ध किया और चमत्कारसे उसका हाथ

भयकर युद्ध किया और चमत्कारसे उसका हाथ मरोड़ कर उसके हाथसे सुवर्ण कंकण निकाल लिया । अंत जब वह भगने लगी तो मैंने उसकी दाहिनी जंघा पर छुरी द्वारा शूलका चिन्ह बना दिया ।" इस प्रकार सुन कर राजा आश्चर्य चकित हो बोलाकि, "उस मारीके हाथसे निकाला हुआ कड़ा बतला ।" मित्रानन्दने वह कड़ा बतला दीया इस पर राजा उसके नामांकित कड़ेको देख विचार करने लगा कि, "अहो ! क्या मेरीही कन्या मारी है ? क्योंकि यह उसीका आभूषन है ।" ऐसा सोच उसकी परीक्षाके लिये राजा शौचका बहाना बना महलमें गया । वहां जाकर देखा तो कन्या सोती हुईथी, उसके हाथमें कंकण नहीं था और जंघा पर बनाये चिन्ह पर साडीका पाटा बांधा हुआथा । उसे देख राजा वज्रसे मारे हुएके समान हो गया और कहने लगा कि, "अहो ! इस पुत्रीने मेरे यशको कलंकित कर दिया ।" फिर राजाने सभामें आ गुप्तरूपसे मित्रानन्दको कहा कि, "हे पुत्र ! मेरी पुत्रीही मरकी साबित होती है इसमें कोई सन्देह नहीं है अतः इसका भेद बतला ।" उसने कहा कि, "हे राजा ! आपके कुलमें ऐसा नहीं हो सकता ! राजाने कहा कि-" नहीं, मैं सत्य कहता हूं, इसलिये जब तक वह सर्व प्रजाको मार न डाले उसके पूर्व तू किसीभी प्रकारसे इसका उपाय कर ।" मित्रानन्दने कहाकि, "प्रथम मुजे देखने दो कि यह मेरेसे साध्य है या नहीं ?" राजाने कहा कि, "स्वेच्छासे जाकर देख ।" इसलिये मित्रानन्द

राजकन्याके पास गया । उसने उसे पहचान लिया और उसे बैठनेके लिये आसन प्रदान किया । फिर मित्रानन्दने कहा कि, ' हे सुभ्रू ! मैंने तुझे कलंकित किया है, इसलिये अब तुझे यहां रहना अनुचित है । परन्तु तू चिन्ता न कर तुझे मैं एक उत्तम स्थान पर ले चलूंगा । ' यह सुन उसके गुणों पर मुग्ध हुई वह राजकन्या बोली कि, "ये मेरे प्राण भी आपको आधीन हैं ।" कहा है कि –

अधो नरपतेश्चित्त, व्याख्यान महिला जलम् ।
तत्रेतामहि गच्छति, नीयते यत्र शिष्य ते ॥१॥

भावार्थ –" अधा, राजाका चित्त, व्याख्यान (कथा), स्त्री और जल इनको जहां कहींभी लेजाया जाता है वहा ये चले जाते है ।" अर्थात् अधेको जितनी दूर और जिस ओर ले जाओं, उतनाही चलता है, राजाका चित्त, जिस ओर मोडो उस ओर वह जाता है, स्त्रीको जहां कही ले जाओं या भेजो वही चली जाती है और जल भी जिस ओर नीक कर दो उसी ओर वह निकलता है ।"

मित्रानन्दने कहा कि, " राजाके समक्ष मैं जब तेरे पर सरसों के दाने फेंकू तब तू फूत्कार करना ।" यह बात रत्नमञ्जरीने स्वीकार करली । तब उसने राजासे जाकर कहा कि, " हे स्वामी ! आपने जो कहा है वह सत्य है परन्तु एक खाट तैयार कीजिये, आज रात्रिमें मन्त्र बल से मैं उसे खाट पर बैठाकर आपके देश से बाहर ले जाउंगा ।

फिर मार्ग में जहा सूर्योदय होगा वहा वह मारी रह जायगी।" यह सुन भयभीत हुए राजाने एक वायुके समान वेगवती साढ मगवा कर उसे दी। सध्या समय उस राजकुमारीने पेश पक्ड मित्रानन्दने उस पर सरसोंके दाने फैंके जिस पर वह पुकारें करने लगी। फिर उसे साढ पर बिठा वह चल दिया। राजा नगरके दरवाजे बन्द करा उसके महलमें चला गया। मित्रानन्द भी मित्रकी पत्नी होनेसे माताके समान उसकी भक्ति करने लगा।

इस ओर अमरदत्त मित्रकी दो मासकी अवधि पूर्ण होजाने से चिता बना उसमे प्रवेश करनकी तैयारी कर ही रहा था कि काकतालिय न्यायके समान मित्रानन्द और रत्न मजरी उससे आ मिले। उसी समय उसी चिताकी अग्नि तथा पुरके लोगोंकी साक्षी ले उसके साथ पाणीग्रहण किया। *नगरनिवासी उस स्त्रीके स्वरुप, मित्रानन्दके धैर्य और अमर* दत्तके भाग्यकी प्रशसा करने लगे।

उसी समय उस नगरका राजा अपुत्र[१] ही मर गया इसलिये अन्य राजा स्थापित करने के लिये प्रधानोंने मिलकर पचदिव्य[२] किये। उन्होंने फिरते फिरते नगरके बाहर आ अमरदत्त पर कलश ढोल दिया, जिससे बडे उत्सवके साथ उसे राज्यका स्वामी बनाया गया। उसने अपने मित्रको मत्रीपद दिया और रत्नसारको नगर शेठ बनाया। इस प्रकार अखड आज्ञासे वह राज्य चलाने लगा।

---

१ पुत्र रहीत बिना २ हाथी, घोडा कलश छत्र और चामर ये पाच दिव्य किये जाते हैं।

मित्रानन्द राज्यकार्यमें निरत था तिस परभी उसे सबका वचन कभीभी विस्मरण नही होता था इसलिये उसने अमर दत्त राजासे कहा कि, " हमारा नगर यहांसे समीप है जिससे मेरा मन बड़ा दु खित रहता है, इसलिये मुझे दूर देश जानेकी आज्ञा दीजिये ।" राजाने कहा कि, " हे मित्र ! यदि ऐसा है तो अपने नौकरोंको साथ लेकर वसतपुर चला जा परन्तु सदैव कुशल समाचार भेजता रहना ।" फिर मित्रानन्दने शुभ दिवसको यहांसे प्रयाण किया । उसके चले जानेसे उसके वियोगमे पीड़ित राजा सदैव उसके कुशल समा चार पानेकी इच्छा किया करता था परन्तु कई दिन व्यतीत हो जाने परभी उसका कोई वृत्तान्त उसके जानने मे नही आया । इसलिये हृदय धर उसने रानीसे कहा कि, " अरे मित्रानन्दकी कोईभी सूचना नही मिली ।" रानीने कहा कि, " हे प्राणनाथ ! विना ज्ञानी गुरुके स शय नष्ट नही होता ।" तदन्तर किसी वनपालने आकर राजासे विनतीकी कि, " हे स्वामी ! आज आपके उद्यानमे ज्ञानभानु नामक गुरु महाराज पधारे है " यह सुन राजाने वनपालको वधाई दी और रानीके साथ ले बडे उत्सवके साथ यह गुरूके पास गया । गुरूको वन्दना कर योग्य आसन पर बैठ गया । गुरूने अनेक लोकोंने पूछने पर उनके स शयको निवारण किया यह सुन राजाने प्रत्यक्ष ज्ञानी गुरूसे अपने मित्रकी हकिकत पूछी इस पर गुरूने कहा कि,— " हे राजन् ! तेरा मित्र यहांसे चल- कर बहुत दूर पहुचा और एक पर्वतके पास नदी किनारे पड़ाव डाल कर रहा । तेरे सेवक जिमनेको ठहर गये कि

उस समय एकाएक चौरोंका हुमला हो गया जिन्होने तेरे सब सेवकोंको पराजित कर दिया और मित्रानन्द अकेला वहासे भग गया। वह किसी वटवृक्षके निचे सोता था कि किसी सर्पने उसे डस लिया। उसी समय कोई तपस्वी वहां आया जिसने उसका विष उतार दिया। वहासे मित्रनन्द तेरे पास आ रहा था कि मार्गमे चोर लोगोने उसे पकड़ लिया और एक वनियेके यहा जाकर उसे वेच दिया। उस वनियेने पारस कुलकी ओर जाते हुए रास्तेमे अवन्ती नगरीके बाहर पडाव किया। रात्रिका समय देख तेरा मित्र बंधन तुडा कर भग गया। गावकी खालके रास्तेसे जब वह गावमे प्रवेश करना चाहता था कि राजाके सिपाहियोंने उसे देख लिया इस लिये उसे जान चोरके समान पकड बाध लिया। प्रात काल होने पर राजाके हुक्मसे उसे पूर्वोक्त वटवृक्ष परही मार डालनेके लिये बाध दिया गया। उस समय तेरा मित्र विचार करने लगा कि, अहो! शवका कहा वाक्य सच हो गया। कहा है कि —

यत्र वा तत्र वा यातु, यद्वा तद्वा करोत्यसौ।
तथापि मुच्यते प्राणी, न पूर्वकृतकर्मण ॥१॥

भावार्थ — "प्राणी चाहे जहा जाये अथवा चाहे जो उपाय करे परन्तु वह पूर्व कृत कर्म से किसी भी प्रकारसे मुक्त नहीं हो सकता।"

वहा मित्रानन्द मर गया फिर एक दिन जब ग्वाल बाल उस वड़के पास खेल रहेथे उनकी गिल्ली उछल कर

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible] कहा कि—

[illegible], [illegible] धर्मीयम [illegible] ।
[illegible], [illegible] नागरजायनैः ॥८॥

[illegible] "हे राजा ! [illegible] स्थान पर धर्म में [illegible]"

राजाने शुकसे फिर भी पूछा कि "हे स्वामी ! मेरा [illegible] हुआ ?" शुकने कहा कि— "हे राजा ! [illegible] पुण्यसे उत्पन्न हुआ है [illegible] होगा ।" फिर राजाने उसके, रानीके और [illegible] पूर्व भव पूछे । तिस पर शुकने कहा कि— "हे राजा ! तू आगले तीसरे भवमें [illegible] नामक [illegible] था । [illegible] नामक तेरी पत्नी थी और [illegible] नामक चाकर था ।

वह चाकर जब एकबार तेरे क्षेत्रमें कार्य कर रहा था उस समय उसने दूसरोंके क्षेत्रमें किसी यात्रीको धान्यकी वाले लेत देखा। ऐसे देख चनुसेनने कहा कि, "इस महान् चोरको ऊंचा बांधकर लटकादो।" ऐसे शब्दोंसे उसने महा कठिन कर्म बांधा। सत्यश्रीने भी किसी समय उसकी पुत्र वधूसे कहा कि, 'राक्षण के समान जल्दी जल्दी क्या खाती है? धीरे धीरे क्यों नहीं खाती? कि जिससे कंठ न रुधे।" ऐसा कहनेसे उसने भी कर्म बांधा। एकबार क्षेमकरने नोकरसे कहा कि, "आज एक गांव जाना है सो जा" तब चाकरने कहा कि, "आज मुझे अपने स्वजनासे मिलना है इसलिये मैं आज नहीं जा सकूंगा।" क्षेमकरने क्रोध पूर्वक कहा कि, "चाहे तेरे स्वजन न मिलेतो कुछ परवा नहीं परन्तु तुझे तो जाना ही होगा।" इतने में कोई दो मुनि गोचरीके लिए पधारे। तब देख क्षेमकरने उसकी स्त्रीसे कहा कि-"इस महर्षिओंको बड़े हर्षसे प्रासुक और एषणीय अन्न बहराओ।" उस समय उस चाकरने मनमें विचार किया कि, "इन दम्पत्तिको धन्य है कि जो अत्यन्त भक्तिपूर्वक मुनिको दान देते हैं" उसी समय उन तीनों पर अकस्मात् बिजली गिरनेसे वे तीनो एक ही साथ मर गये। उनमेंसे क्षेमकर का जीव तो अमरदत्त हुआ, सत्यश्री का जीव तेरी पट्टरानी हुई और तेरा चाकर चनुसेन यह मित्रानन्द हुआ उस चाकरने जिस यात्रीको बाल लेते देख बांधनेको कहा था वह ही मर कर उक्त वटवृक्ष पर व्यन्तर हुआ। उसने मित्रानन्दको देखकर उसके पूर्व जन्मका वैर याद आने से वह शब द्वारा बोला था।

इस प्रकार गुरुके वचन सुन राजा तथा रानीको जातिस्मरण ज्ञान हो आया वे गुरुके वचनोंको प्रमाणित मान घर लौट आये। उनके एक पुत्र हुआ जब वह युवा हुआ तब उसे राज्य सौंप उस दम्पत्तिने दीक्षा ग्रहणकी और अन्त में मोक्ष गये।

इस दृष्टान्तका यह तात्पर्य है कि-अल्प मात्रभी क्रोध महान् दुःखका कारण होता है इसलिये मुमुक्षुको उसका त्याग कर देना चाहिये।

[इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशप्रासादवृत्तौ षोडशस्तम्भस्य एकचत्वारिंशदधिकद्विशततम प्रबंध. ॥ २४१ ॥]

व्याख्यान २४२

मानत्यागा महौजस्वी, तत्वज्ञानी सुदृश्यताम्
दधन् दधौ महज्ज्ञान, बाहुबलिमुनीश्वर॥ १॥

भावार्थ – " बडे पराक्रमी, तत्वज्ञानी, अतिदृश्र बाहु बाली मुनीश्वरने मान त्यागसे केवल ज्ञान प्राप्त किया।

श्री बाहुबलीका दृष्टान्त

श्री ऋषभदेवके पुत्र भरत चक्री साठ हजार वर्षमे छ खड पृथ्वीको जीतकर अयोध्या नगरीमें आये। वहा बारह बर्ष तक राज्याभिषेक होते समय कौन कौन राजा आये है और कौन कौन नही आये इसका अवलोकन करते हुए चक्रीने उसके छोटे भाइयोको न आया जान उनको बुलाने के लिये प्रत्यकके पास उनके दूत भेजे। दूतोने उनको जाकर कहा कि, " हे भरत राजाके भाइयो ! तुम सब भरत राजाके पास आ उसकी सेवा करो।,, उन्होंने कहाकि " जैसे भरत ऋषभदेवके पुत्र है वैसे ही हमभी ऋषभदेवके पुत्र है तो फिर क्या वे हमसे अधिक हैं कि जिससे हमारी सेवा चाहता है ? हे दूतों ! तुम तुम्हारे स्थान जाओ। हम पिताको पूछकर जैसा योग्य होगा करेंगे। ऐसा कह कर वे भाई [1]सुवर्णगिरिपर जिनेश्वरके पास गये और कहा कि " हे

---

[1] मेरु न होकर कोई पर्वत विशेष है

पिता ! हमारे छोटे भाई भरतने छ खण्डका राज्य प्राप्त कर लिया है फिरभी उसकी तृप्ति नही हुई है इससे तुम्हारा दिया हुआ हमारा राज्यभी लेनेका चाहता है । इसलिये यदि आपकी आज्ञा हो तो हम सब मिलकर उसका राज्य छीन ले । यह सुन प्रभुने उन्हे भद्रिक जान धर्मोपदेश दिया कि —

सबुज्झह किं न बुज्झह, सबोहि खलु पच्च दुल्लहा
नोहुवण मति राइयो, नो सुलह पुण रवि जीविअ ॥१॥

भावार्थ —समजो क्यो नही समजते ? इस प्राणीके लिये समज जिसे सम्यक्त्व कहते है यह ही दुर्लभ है । मंत्री या राजा होना दुर्लभ नही है परन्तु फिरसे मनुष्य पनका जीवन पाना दुर्लभ है ।"

आदि भगवानके देशना पाकर यवाणु भाईयोंने प्रभुके पास दीक्षा ग्रहणकी, और उनके राज्योंको भरत चक्रीने उसके कब्जेमे कर लिये । एकवार आयुध शालाके रक्षकने आकर चक्रीसे विज्ञप्तिकी कि—,, हे स्वामी ! जबतक आप बाहुबली कोन जीत लेवे तबतक यह ही समझना चाहिये कि आपने छ खण्ड पृथ्वी भी नही जीती है । क्योकि चक्ररत्न अभी तक आयुधशालामें प्रवेश नही कर रहा है ।" यह सुन चक्रीने तक्षशिला नगरीमें एक वाचाल दूतको भेजा । वह दूत कुछ दिनमें बाहुबलिके देशमे गया वहा वहांके देशमे गाव गावमे और नगर नगरमे अनेको लोगोके मुहसे बाहुबलीके यशका श्रवण करता हुआ वह तक्षशिला पहुचा । उस सुवेग

नामय दूतने बाहुबलीकी आज्ञासे सुवर्णके वर्ण जैसी सभामें प्रवेश किया बाहुबलीने उसके बधु तथा उसके देश नगरी आदिके कुशल समाचार पूछे । उसके बाद दूतने कहा कि, "हे राजा ! तुमसे मिलनको उत्सुक तुम्हारे बड भाईने तुमको बुला लानेके लिये मुझे भेजा है । इसलिये यहा आ तुम्हार भाईको नमस्कार कर उनकी आज्ञा शिरोधार्य कर फिर यहा वापस आ जाना क्या कि लोग निन्दा करते है जब भरत राजाका भाईभी इसकी आज्ञा नही मानता तो फिर इसका पराक्रम अकिंचित्कर[1] है इसलिये लोकापवादको दूर करनेके लिये तुम उसके पास आओ अन्यथा तुम्हारा राज्य भी सत्वर भग होगा ' कहा है कि —

कराग्रस्थ सर्प., पावक पवनोद्धुर ।
प्रभु प्रौढप्रतापश्च, विश्वास्या न त्रयोऽप्यमी ॥१॥

भावार्थ -भयकर विषवाला सर्प, पवनसे प्रज्वलित हुई अग्नि और प्रौढ प्रतापि राजा–ये तीनो विश्वास लायक नहीं है ।"

अपितु हे राजा ! देवता भी जिसकी सेवा करते हैं उसे तुम्हारे बधुकी सेवा करनेमें तुम्हे कोई हीन नहीं कहेगा ।" इस प्रकार दूतके वचन सुन बाहुबली बोला कि, "हे दूत ! तेरा राजा मुझे देख लज्जित होगा क्योंकि बाल्यावस्थामें जब क्रिडा करते हुए मैंने उसका पैर पकड़

---

[1] किंचित् भी नहीं ।

कर उसे आकाशमें उछालदिया था क्या वह भी यह भूल गया है ? हे दूत ! क्या साठ हजार वर्ष तक देश प्राप्त करनेमें पाप कर्मके संचय करनेवाले तेरे पूज्यको मेरे अतिरिक्त अन्य कोई प्रायश्चित देनेवाला नहीं मिला ? अतः तेरे राजाको उसके बलकी परीक्षा करनेके लिए यहां जल्दी ले आ।" यह सुन सुवेग भयसहित वापस लौट अल्प कालमें ही अपने नगरको चला आया और बाहुबलीका सब वृतान्त भरत महाराज से यह सुनाया। उसने कहा कि, "बाहुबलीको इन्द्र भी जीतनेमें समर्थ नहीं है। यह सुन भरत चक्री उनके सवाकरोड़ पुत्र और सैन्य सहित तक्षसिला नगरीकी ओर चल पड़ा। बाहुबली भी उनके पुत्रों तथा सेना सहित सामने आये। उसका जेष्ट पुत्र सोमयशा अकेलाही तीन लाख हाथी, घोड़े और रथोंको जीतने वाला था। उनके तीन लाख पुत्र थे। उनमेसे सबसे छोटा पुत्रभी अकेला एक अक्षोहिणी सेना जीतनेमें समर्थ था।

चक्रीके सैन्यमें चोराशी लाख डंके, अठारह लाख दुंदुभि और सोलह लाख सैन्य बाजिंत्र थे। उन सबका एकही साथ नाद होने लगा। उसे सुन दोनों पक्षके उत्साहित वीर परस्पर युद्ध करने लगे निरन्तर युद्ध चलने पर एक दिन अनिलवेग नामक विद्याधरने, कि जो बाहुबलीका भक्त था,

---

१ अक्षौहिणी सेनामें २१८७० हाथी, इतने ही रथ, ६५६१० घोडे और १०८३५० पैदल होते हैं। अन्य प्रकारसे भी इसका प्रमाण कहा गया है।

चक्रीके सेनापतिको अस्त्र विद्या द्वारा जीत कर आकाश मार्गसे चक्रीकी हस्ति सेनामें प्रवेश किया और गेदके समान हाथियोंको आकाशमें उछालकर उनको पृथ्वी पर गिरते समय मुष्ठिसे मारने लगा उसको अन्य किसीभी प्रकारसे पराजित होना न जान चक्रीने उस पर चक्ररत्न चलाया। चक्रको देखते ही वह भयके मारे भाग छूटा। फिर वह मेरुपर्वतकी गुफाओंमे, या समुद्र आदिमे जहां जहां गया वहां वहां पूर्व जन्मम किये कर्मके सदृश चक्र रत्न उसके पीछे पीछे गया। अत उसकी रक्षाके लिए उसने विद्याके जोरसे वज्रका पींजरा बनाया और उसने उसमें प्रवेश किया। उस समय चक्र रत्नके अधिष्ठायक देवोंने उससे कहा कि, "अरे! तेरे पराक्रमको व्यर्थ क्यों लज्जित करता है?" वज्र पींजरे से रहते उसे छ महीने व्यतीत हो गये। छ महिने बाद अभिमानवश वह बाहर निकला कि चक्ररत्न उसका मस्तक काट वापस चक्रीके हाथ मे लौट गया।

इस प्रकार युद्ध करते हुए बारह वर्ष व्यतीत हो गये। एक दिन चक्रीका जेष्ट पुत्र सूर्ययशा बाहुबलीकी सेनामे दावानलके समान फैला और अल्पकालमे ही काकाके पास जा पहुचा। उसे देख बाहुबली ने कहा कि, "हे वत्स! तुने छोटे होते हुए भी मेरी सेनामे प्रवेश किया जिससे मुजे बड़ा आनन्द होता है तेरे जैसे पराक्रमी पुत्रसे हमारा वश उद्योत होता है परन्तु तीनों लोकोंमे भी मेरे क्रोधको सहन करनेको कोईभी शक्तिवाला नही है इसलिये तू मेरी

दृष्टिसे दूर चलाजा।" सूर्ययशाने कहा कि, "हे काका! आज तुम्हारे बिना मेरा युद्ध मनोरथ कौन पूर्ण करेगा?" ऐसा कह उसने धनुष्टकार किया। उस समय आकाशमें रहकर देखने वाले देवताओंने एकत्रित होकर दोनों पक्षके सुभटोंको युद्ध करनेसे निषेध किया और दोनों भाइयोंसे जाकर कहा कि, "हे युगादीश के पुत्रों! तुम्हारे पिताने इस विश्वका पालन किया है, उसका संहार करनेको तुम क्यों उद्यत हो रहे हो? तुम्हें ऐसा करना उचित नहीं है परन्तु यदि तुम्हें अपने बलकी ही परीक्षा करनी होतो तुम दोनों व्यक्ति परस्पर हमारे द्वारा निर्धारित दृष्टि युद्ध, वाग् युद्ध, मुष्टि युद्ध, दंड युद्ध और अस्त्र युद्ध, ये पांच प्रकार के युद्ध करो। हम मध्यस्थ रहकर देखेंगे।" इस प्रकार देवताओंका वचन उन दोनों भाइयोंने स्वीकार किया इसलिये देवतालोग और मनुष्य साक्षी बन कर खड़े रहे। उस समय चक्रीके सैनिकोंने विचार किया कि, "इस बाहूबलीके साथ युद्ध करनेमें इन्द्रभी जीत सके या नहीं यह भी शक भरा है फिर हमारे स्वामीकी जित किस प्रकारसे होगी?" इस प्रकार विचार करते अपने सुभटोंको देख अपना सामर्थ्य बतलानेके लिए चक्रीने एक गहरा कुआ खुदवाया और उस कुए के एक किनारे खड़े रह कर चक्रीने अपने बाये हाथमें लोहेकी बड़ी बड़ी सांकले बंधवाई फिर सब सैनिको कुएमें उतार कर उनसे कहा कि–"तुम सब मिल इस सांकलको खींच कर मुझे कुएमें डालो।" उन सबने मिल कर उसी प्रकार उसे किया परन्तु चक्री लेश-

मात्रभी उसके स्थानसे चलित नहीं हुआ क्योंकि सम्पूर्ण भरतखंडके नर, नारी, हाथी, घोडे आदि सब प्राणी एकत्रित होकर खींचे फिरभी वे एक तिलमात्रभी चक्रीको हटानेमें समर्थ नही हो सकते तो फिर सेना मात्रसे तो क्या हो सकता है ? फिर चक्रीने हृदय पर लेप करनेके मिषसे अपना हाथ थोडासा खींचा कि सर्व सैन्य लता पर बैठे पक्षियोंकी तरह साकल के साथ लटक गये । इस प्रकार चक्रीका पराक्रम देख कर वे हर्षित हुए और साक्षी बन दूर खडे रहे ।

अब चक्री और बाहुबली प्रथम दृष्टियुद्ध करने के लिए आमने सामने खडे हुए और अनिमेष दृष्टिसे एक दूसरेके सामने देखने लगे उस समय नेत्र रक्त होनेसे वे भयंकर दिखाई देने लगे । अन्तमें बाहुबलीका भयंकर नेत्रवाला मुख देखकर चक्रीके नेत्रोंमें आसु भर आये जिससे वे शीघ्र बन्द हो गये । जिसे देख चक्री तथा उसका सैन्य नम्र मुख (लज्जित) हो गया । चक्रीको लज्जित देखकर बाहुबलीने कहा कि, "हे भाई ! क्यों लज्जित होते हो ? अब वचनयुद्ध करो ।" इससे चक्रीने अतिघोर सिंहनाद किया, जिससे सब सेना बधिर हो गई तब बाहुबलीने भी क्रोधसे सिंहनाद किया जिससे सब सेना मूर्च्छितप्राय होगई फिरसे चक्रीने और बादमें बाहुबलिने सिंहनाद किया । उस समय चक्रीका शब्द दिवसके प्रथम प्रहरकी छाया तुल्य और दुर्जन की मैत्रीमाफीक अनुक्रमसे क्षीण होने लगा और बाहुबलीका

शब्द वृद्धि पाने लगा इससे विलखित चक्रीसे बाहुबलीने कहा कि, " हे भाई । खेदित न हो । मै काकतालीय न्याय-से कभी वाग्युद्धम तुमको जीत लिया तो इससे क्या हुआ ? अत अब मुष्टि युद्ध करनेको तैयार हो जाओ । इस प्रकार के बाहुबलीके वाक्योसे उत्साहित हो मुष्टि-युद्ध के लिए तैयार हुए । दोनों हाथ द्वारा स्कध पर आस्फोट करते हुए कूद कूद कर परस्पर आलिगन कर बाहुद्वारा एक दूसरेको दबाते हुए गर्जना करने लगे । फिर बाहुबलीने चक्रीको हाथ से पकड़ खेलमे गेदके समान ऊपर आकाशमें फेका । वे इतने ऊचे गये कि आकाशमे अदृश हो गये । जिससे दोनों सैन्योंमे हाहाकार मच गया बाहुबलीको भी विचार आया कि, " मेरे बन्धु अतरिक्षसे भूमि पर गिर कर विशीर्ण न होजाये तबतक मै उनको अधर ही जेलदू । ऐसा विचार वे दोनों हाथ शैयाकी तरह रख ऊची दृष्टि कर खडे रहे । बहुत देरके बाद चक्री आकाशमेंसे नीचे आये कि बाहुबलीने उनको उसमें हाथोंपर जेल लिया । फिर चक्रीने क्रोधके आवेशसे बाहुबलीके मस्तक पर मुष्टी प्रहार किया जिसमे वे मूर्छित हो गये । बहुत देर बाद सचेत होकर उसने चक्रीके हृदयमें मुष्ठि घात कर उनेको मूर्च्छित कर दिया । क्षणभरमे सचेत होनेपर चक्रीने क्रोधसे रक्त हो दड द्वारा बाहुबलीके सिर पर प्रहार किया जिससे उसके मुकुटके सैकडों टुकडे हो गये और आखे बन्द हो गई । थोडी देरमें वापस सचेत होकर बाहुबलीने भी लोहेके दडसे चक्रीके बचन (बख्तर) को चूर्ण कर डाला । चक्रीने

फिरसे दड घातसे बाहुबलीको जानुतक जमीनमे गुसेड दिया। क्षण भरमे भूमिसे निकल कर उसने लोहेके दंडसे चक्रीके मस्तक पर प्रहार किया जिससे वे कंठ तक भूमिमे समा गये। क्षण भरमें सचेत होकर चक्री बाहर निकले और उन्होने विचार किया कि–"शाश्वती स्थिति ऐसी है कि चक्री किसीसे नही जीता जा सकता फिरभी मुझेतो इस बाहुबलीने पाचो युद्धमें जीत लिया इससे मेरेमे चक्रीपन नही है।" ऐसे विचारते हुए उसके हाथमे चक्ररत्न आ गया उसे उठा कर चक्रीने बाहुबलीसे कहा कि–"हे भाई! अबतक तुजे कोई नुकसान नहीं हुआ है इसलिये मेरी आज्ञा मानले अन्यथा इस चक्रसे तू यमराजका अतीथि बन जायगा।" बाहुबलीने कहा कि, "वृथा वाणीका आडम्बर क्यों करते हो? अभी बाकी होतो चक्रका बल भी दिखला दो।" आदि वाक्योंसे अपमानित हुए चक्रीने कोपसे उसपर चक्र फका। वह चक्र बाहुबलीकी प्रदक्षिणा कर वापस चक्रीके हाथमे आगया। क्योंकि, "गोत्र के किसी सामान्य पुरुष परभी चक्रकी शक्ति काम नहीं आती। तो फिर ऐसे चरम शरीरी पर तो उसका पराक्रम कैसे चल सकता है?" फिर बाहुबलीने मुष्टि उठाकर "इस हजार यक्ष सहित चक्रको तथा इसके अधिपति चक्रीको चूर्ण कर दू।" ऐसा विचार कर चक्रीके सन्मुख दोड़ा। अपितु विचार किया कि, "इस मुष्टि द्वारा उसका अवश्य नाश होगा और उसके नाश पर भी समग्र विश्वके लोग मुजे छ खंडके नायको वध

करने वाला यहेंगे अत अहंकार द्वारा अनेक पापोंके उपार्जन करने वाले मुझे धिक्कार है और पहिलेसे पिताश्री पास जा दीक्षा ग्रहण करने वाले मेरे लघु बंधुओंको धन्य है । अब तक पाप कर्ममें तत्पर मुजे वारंवार धिक्कार है ।" आदि विचार बाहुबलीने उसी ऊंची उठाई हुई मुष्टिसे उसके मस्तकका केश लोचन कर डाला । उसी समय देवताओंने "*साधु, साधु*" *ऐसा कह उस पर पुष्प वृष्टि की ।*

उसे निःस्पृही हुआ जान लज्जासे नम्र मुख वाला चक्री अपनी निन्दा और उसकी प्रशंसा करता हुआ कहने *लगा कि,* "हे बंधु ! मे पापियोंमें मुख्य हु और तू कृपालुमें मुख्य है, पहले तूने मुजे अनेक प्रकारसे जीता और अब व्रत रूपी शस्त्रद्वारा रागादिक शत्रुओंको भी जीत लिया इसलिये तीनों लोकोंमें तेरेसे अधिक बलवान् कोई नही है । हे बन्धु ! मेरा अपराध क्षमा कर ।" आदि प्रकारसे स्वनिंदा तथा बाहुबलीकी स्तुती की । बाहुबली मुनिने विचार किया कि "यदि मैं इस छद्मस्थपनसे मेरे पिता के पास जाउंगा तो प्रथम दीक्षित मेरे लघु बन्धुओं को मुजे वन्दना करनी होगी जिससे मेरा लघुपन होगा इसलिये केवल ज्ञान पानेके बाद ही जाउंगा ।" ऐसा विचार कर वे वही कायोत्सर्ग करके रहे ।

तदन्तर चक्री बाहुबलीके जेष्ठ पुत्र सोमयशाके साथ बहली देशमें गये । वहा तक्षशिला नगरीके उद्यानमें हजार

आरे वाद्य और विविध प्रकारकी मणि तथा रत्न जडित धर्म चक्र और उसी नामका प्रासाद देखा। उसमे प्रतिष्ठित प्रभुको नमस्कार कर चक्रीने सोमयशासे उस प्रासादका वृतान्त पूछा। सोमयशाने कहा कि, "पूर्वमें ऋषभदेव पिता विहार करते करते यहा पधारे थे। जिसे सुन आपके लघुनघु बाहुबलीने विचार किया कि, "अभी रात्रीका समय है इसलिये प्रातःकालमें बडे उत्सवके साथ पिताश्री की वन्दना करूंगा।" ऐसा निश्चय कर सब सामग्री सजा कर प्रातःकाल होनेपर बड़ी धामधूम से उद्यानमें आया परन्तु जब यहां प्रभु दीखाई नहीं पडेतो वहां बहुत रुदन करने लगा और "धर्म कार्यमे विलम्ब करनेवाले मुझको धिक्कार है! अब मुझे पिताके दर्शन कब होंगे?" आदि विलाप करने लगा। प्रधानोंने अनेक प्रकारसे उसे समझा कर शान्त किया। फिर बालुका (रेती) मे प्रतिबिंबित हुए भगवानके पांवको नमन कर पिताकी भक्तिसे प्रधानोंसे कहा कि, "इन पिताश्रीके पूज्य पगलाको कोई स्पर्श न करे।" ऐसा कह आठ योजन विस्तार वाला यह धर्मचक्र नामक प्रासाद बनाया।" ऐसा सुन चक्रीने उसकी स्तुति की। फिर तक्षशिलामें प्रवेश कर बाहुबलीकी गद्दीपर सोमयशाको बैठाया। उस सोमयशाके चोईस हजार रानियां थी और श्रेयांश आदि बहत्तर हजार पुत्र थे। फिर भरत राजाने छ खण्ड पृथ्वी पर उसकी अखण्ड आज्ञाको प्रवृत कर अयोध्या की ओर प्रयाण किया।

बाहुबली मुनिने निद्रा और आहार आदिका त्याग कर जिस वनमे कायोत्सर्ग ध्यानमें रहे थे वहा उनके मस्तक के केशोंमे, कर्णमे और दाढी आदिमें पक्षियोंने अपने निविड (घोंसले) बना दिये, वर्षाऋतुमे दर्भके अंकुर पैरके तलिये को विंध बाहर निकल आयेथे, लताये उनके शरीरके चारों ओर लिपट गई, और उनके तपोबलसे वाघ आदि हिंसक जन्तु भी शान्त भावको प्राप्त हो गये। इस प्रकार जब एक वर्ष व्यतीत हो गया तब उनके केवलज्ञानकी उत्पत्तिका समय जान उनका अभिमान छुड़ानेके लिये श्रीऋषभदेव भगवानने ब्राह्मी और सुन्दरी नामक दो साध्वीयोंको, जो बाहुबलीकी बहिने थीं, भेजी। उन साध्वियोंने वहा जा लता समूह स्थित मुनको जैसे तैसे ढूढ निकाल कर कहा कि, "हे बंधु बाहुबली ! हमारे द्वारा पिताश्रीने तुम्हें कहलाया है कि-मदोन्मत्त हाथी पर चढनेसे केवल ज्ञान कैसे मिलेगा ?" इसलिये इस मत्त हस्ती परसे नीचे उतर ! यदि तुझे मद गज पर चढकर ज्ञानकी अभिलाषा थी तो फिर तक्षशिलाका राज्यही क्यों छोड़ दिया।" इस प्रकार सुनकर बाहुबलीने विचार किया कि-"अहो ! ये मेरी बहिने ऐसा कैसे कहती है ? मैं सर्वथा परिग्रह रहित हू फिर मेरा हस्ती पर चढना कैसे संभव हो सकता है ? फिर कुछ अधिक विचार करने पर उनकी समजमें आया कि, "अहो ! जान गया, मैं मान रूपी मत्तग पर चढा हुआ हू इतना अधिक समय मैंने व्यर्थ ही कष्ट मे खोया है क्यो कि गर्व होनेपर केवल

ज्ञान कैसे प्राप्त हो सकता है ? इसलिये मुझसे गुणोंमें अधिक मेरे पूज्य लघु भ्राताओंको मैं जाकर नमस्कार करु आदि विचार कर वह ज्योंहि अपना पैर उठाता है कि त्योंहि उसे केवल ज्ञान प्राप्त हो गया । फिर देवताओं द्वारा दिये यतिलिंगको धारणकर वे भगवानके समवसरणमें गये । वहा "नमस्तीर्थाय" तीर्थको नमस्कार हो ऐसा कह जिनेश्वरकी प्रदक्षिणा कर केवलीकी सभामें बैठे ।

"सचमुच बाहुबलीको ही महा बलवान समजना चाहिये कि जिसने पहले छ खंड के नाथको जीता और फिर विश्व कंटक रूप मानरूपी महा मल्लको मारकर परमानन्द पदप्राप्त किया ।"

[इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशप्रासादवृत्तौ षोडशस्तंभस्य द्विचत्वारिंशदधिकद्विशततम प्रबंध. ॥ २४२ ॥]

व्याख्यान २४३

माया पिंडके विषयम

भक्तादिहेतवे कुर्वन्नानारूपाणि मायया ।
साधु र्वंचयते श्राध्धान्, मायापिंड स उच्यते ॥१॥

भावर्थ —" साधु जो भोजन-जल आदिके लिये नाना रूपसे श्रावकोंको सताते हैं उसे मायापिंड कहते हैं " । इसपर एक दृष्टान्त है कि —

अपाढभूति मुनिका दृष्टान्त

राजगृह नगरीमें सिंहरथ नामक राजा राज्य करता था । यहां एकबार विविध ज्ञानवाले तपस्वी और बुद्धिशाली धर्मरुचि आचार्य पधारे । गोचरीके समय उनके शिष्य अपाढ भूति गुरुकी आज्ञा ले अकेले गोचरीके लिये नगरमें गये । मध्याह्न समय महर्द्धिक नामक नटके घर पहुंचे । जहां उस नटकी भुवन सुंदरी और जयसुन्दरी नामक दो कन्याओंने उन्हें सुगंधीवाला एक मोदक वहराया । उसे ले बाहर निकल मुनिने विचार किया कि, " यह एक लड्डु तो मेरे गुरुको देना चाहिये । ऐसा निश्चय कर तत्काल युवावस्थावाला दूसरा रुप धारण कर उन्होंने फिरसे नटके घरमें

प्रवेश कर धर्मलाभ दिया। जिस पर उन कन्याओंने फिर एक दूसरा मोदक वहराया। इस ले बाहर पोलके दरवाजे तक जा उन्होने फिर विचारा कि—" यह दूसरा मोदक मेरे धर्माचार्यको देना होगा " ऐसा विचार कर काणी आंख वाले अतिवृद्ध साधुका रूप धारण कर वहा जाकर तीसरा मोदक लिया। अपितु फिर बाहर आकर " यह तो उपाध्यायको देना होगा " ऐसा मान कुबडेका रूप धारण कर चौथा मोदक लिया। यह भी " संघाडाका साधुका देना होगा " ऐसा सोच कोन्यिके रूपसे पाचवा लडु लिया।" यहभी बडे गुरू भाईको भेट करना होगा " ऐसा विचार अपने लिये बार वर्षके बाल साधुका रूप बना छट्ठा लाडु लिया इस प्रकार अपना मनोरथ सिद्ध करके गुरु समीप पहुचे।

इस साधुका यह सब चरित्र खिडकीमे बठे नटने देख लिया इसलिये उसने सोचा कि– " अहो! यह बड़ा अच्छा नट बन सकता है।" फिर उसने उसकी स्त्री तथा दोनों कन्याओंसे कहा कि, " इस साधुको खाने पिनेको अच्छा देकर इसे लोभित कर देना क्यों कि यह हमारे लिये सुवर्ण पुरुष है। यह अनेक रीतिसे रूप परावर्तनकी लब्धिको जानता है इसलिये यह सदैव अपने घर आता रहे इस प्रकार उसकी सेवा करना। वह रस-लोभी है अत शीघ्र फस जायगा। मायावीको माया ही बताना चाहिये।" फिर दूसरे दिनभी अषाढ भूति साधु वहा वहोरने आया तब उन्होने उसे बहुतसे मोदक देकर कहा कि, " हे पूज्य।

आप सदैव यहां ही पधारना । आपके आनेसे हमारे घरमें बड़ी समृद्धि होती है।" इस प्रकार नटके कहनेसे वह साधु हमेशा वही आने लगा और नित्य पिंड ग्रहण करने लगा। वहीं राते समय नट-कन्यायें हाव, भाव विलाप पूर्वक हास्य करती, उत्तम वस्त्र धारण करती और कभी कभी कटाक्ष पूर्वक मर्म वचन बोलती थी। उन सबको देख वशी भूत हुए साधु राग दृष्टिसे उनकी आकृति, वेश पास और पगकी पानी आदि बारबार देखते रहते थे। एक दिन उन कन्याओंने उनसे कहा कि, " हे स्वामी! आपका स्वरूप तथा श्रेष्ट चातुर्य देखकर हम आप पर आसक्त हो गई हैं। अब तक हमारे अंगमें व्याप्त कामज्वरकी पीड़ाका नाश कीजिये। इसी चित्रशालामें रहकर अर्कके तूल सदृश कोमल शय्यामें हमारे साथ विषय सुख भोगों और उत्तम मोदकों का स्वाद चक्खो। जो पुरुष प्रत्यक्ष मिले सुखको छोड़कर परोक्ष परलोग सुखकी वांछा करते हैं वे मूर्ख हैं।" मुनिने कहा कि, " मैं मेरे गुरु तथा धर्माचार्यकी आज्ञा लेकर फिर आउंगा।" उन कन्याओंने कहा कि, " हम अब आपकी विरहव्यथा सहन करनेमें असमर्थ हो चुकी हैं अतः हमको सत्य कहो कि जिसके आधारसे हम घड़ी मुहूर्त आदि काल निर्गमन कर सकें। " यह सुन उनकी चेष्टासे मुनि वापस आनेका वचन देकर गुरुके पास गये और गुरुसे कहा कि, " हे पूज्य गुरू! मैंने बाल्यावस्था में ही दीक्षा ग्रहण करली थी। इससे आजतक मैंने पंचेन्द्रियका कोई सुख नहीं देखा।

अभी देवागना सदश दो नटकन्याये मुझे चाहति है, इसलिये मैं वहा जाता हूँ । मुझे आज्ञा दीजिये और यह तुम्हारे रजोहरण, मुखवस्त्रिका आदि ग्रहण करो ।" यह सुन सूरिने विचारा कि, " अहो ! मायापिंडसे आहार ग्रहण करनेका यह फल है । क्यों कि उत्तर गुणकी हानि होनेसे मूल गुणभी परिणाममे नष्ट हो जाता है परन्तु यह नट पुत्रिके पाससे आकर यहा आज्ञा लेने आया है, इसलिये कुछ आज्ञाकारी जान पड़ता है, परन्तु भ्रष्ट हुए सयमके परिणामसे यह नही जानता है कि सावद्य वचन न बोलने वाले मुनि सावद्य कर्ममें प्रवृत होनेको आज्ञा क्यों कर दग ? फिरभी उसकी स्थिरताकी परीक्षा करनी चाहिये कि यह सरवथा व्रतसे भ्रष्ट हो गया है यह कुछ न्यूनता है।" ऐसा विचार कर सूरिने कहा कि, " ह शिष्य ! व्रताराधनसे प्राप्त होनेवाले इन्द्रादिके सुखको छोड़कर तू नटपुत्रिके अग सगमे आसक्त हो गया है फिरभी तुझे मद्य तथा मासका कभी सेवन नही करना चाहिये । इन दोनोंके प्रत्याख्यानका कभीभी त्याग न करना और इनके खाने वालेका सग भी न करना ।' इतना मेरा वचन प्रमाण कर" इस प्रकार गुरू वचन सुनकर वह विनयसे नम्र होकर बोला कि, " हे गुरु ! आपकी इस आज्ञाका मैं जीवन पर्यंत पालन करूगा।" गुरुने विचारा कि, " इससे ही इसको महान् लाभ होगा क्योकि यह अभी सर्वथा श्रद्धा रहित नही हुआ है इससे यद्यपि यह सयमगुणपणा से कर्मवश भ्रष्ट हो गया है फिर भी अल्प

मात्र विरत्तिका रक्षण करनेसे यह देश विरति रहेगा, और ईससे ईसकर पुनः उद्धार होना सभव है।"

फिर वे अषाढभूति चारित्रका त्याग कर, चरित्रके रसिक[1] हो नटके घर आये और उनके घरमे सब आदमियो से कहा कि, "यदि तुम मन मद्य मासका सर्वथा त्याग करो तो मैं तुम्हारे यहा रह सकता हूँ अन्यथा नहीं।" नटने उनका वाक्य अगीकार कर उसकी दोनों कन्याये उन्हे विवाह दी जिनके साथ वह सुख विलास भोगने लगा। फिर राजाके पास जो जो नट आते उनको अपनी कलासे जीतकर अनेक धन, वस्त्र आदि प्राप्त कर उसने उसके स्वसुर गृहको परिपूर्ण कर दिया जिससे समग्र नट कुलमे उसकी ख्याति बढने लगी।

इस प्रकार निरतर सुखमे मग्न रहते हुए उसने बारह वर्ष निर्गमन किये कि कोई एक नट अषाढ नटकी अनेक प्रकारकी प्रशसा सुन उसके सहन न होनेसे उसको जीतने के लिये राजसभामें आया। उसने बादमें अनेक नटोंको जीताथा और उनकी गिनतीके लिये उसने चोरासी सुवर्णके पुतले उसके पैरमे बाध रक्खे थे। उसने राजासे कहा कि "तुम्हारे राज नटको बुलाओ उससे मैं अपनी कला दिखला कर जीतुगा।" राजाके बुलाने पर अषाढ नट राज सभामें

[1] श्री चरित्रमें रसिक

आया और उसने परदेशी नटके साथ शर्तकी कि, "हमारे-मेंसे जो पराजीत हो वह अपना सर्वस्व छोड कर चला जाये।" इस प्रकार दोननि सबके समक्ष स्वीकार किया फिर अषाढने अपने घर जा स्त्रनोंसे कहा कि, "मै उस नटको जीतनके लिए जाता हूँ" तब उसकी दोना प्रियाओने कहा कि, "काय सिद्ध कर शीघ्र आना।" फिर वह सब सामग्री ले राजसभामे गया। उसके जाने बाद उसकी स्त्रियाने विचार किया कि, "अहो! मद्यमास खाये बिना हमने बहुत दिन बिताये इसलिये आज तो अब इच्छा पूर्वक खा लेना चाहिये। हमारे पतितो नटके साथ वाद करने गये हैं इससे व तो छ महिनमे आयेंगे।" ऐसा विचार उन्होने खूब मद्यपान किया कि उससे वे उन्मत्त हो गई। इधर राज सभामे परदेशी नटने प्रथम अपनी कला बतलाई कि अषाढने लीलामात्रमे अनेकों कला बतला उसे तत्काल जीत लिया जिससे वह नट अहंकार रहित हो पुतला आदि अपने सब लक्ष्मी छोडकर भारे लज्जासे भग गया।

अषाढ नट शीघ्र उसके घर लौटा। वहा आकर क्या देखता हैं कि उसकी दोना स्त्रिये मदोन्मत्त होकर पड़ी हुई हैं, उनके मुखसे दुर्गंध निकल रही हैं, मक्खिये उनके मुह पर गिनगिना रही है तथा समस्त शरीर मक्खिये यासे व्याप्त हो रहा है। उन्हे देख अषाढने विचार किया कि, "मुजे धिक्कार है कि मै ऐसी मायावी, और अनेक मक्खियोंने जिनके मुखको चुम्बन किया है उन स्त्रिये पर

अन्तरके समान आसक्त होकर उभय[1] भ्रष्ट हुआ हूं ।" आदि विचार करते हुए गुरु वाक्यका स्मरन हो आनेसे उसे वैराग्य उत्पन्न हो गया । वह शीघ्र मेड़ीसे निचे उतर सबके सामने कहने लगा कि, " अनेक पापके स्थान रूप स्त्रियोंके विचित्र चरित्रको देख मैंनेमोहमे लिप्त हो हाथमे आये चारित्र रत्नका रक्षण नही किया । तथा [2]मीम तीनियोंका सीमत प्रथम नरकके सीमत नामक पहले नरक वासका देनेवाला है । ऐसा निष्कारण जगद्वत्सल जिनेश्वरका वचन मुझ अज्ञानीने व्यर्थ किया परन्तु अब " चरित्र " शब्दके पहले अक्षरके दूसरी मात्रा[3] सहित करु । प्रथम उसको (चरित्रको) मात्रा रहित किया था सो योग्य नही किया था । इस प्रकारके उसने वचन सुनकर वे नट कन्याये भयभीत हो गई जिससे उनका मद्यका नशा उतर गया इसलिये वे दीन मुखसे आखोसे आसू डारती हुई बोली कि, " हे स्वामी ! हे प्राणनाथ ! इन दासियोंका एक अपराध क्षमा कीजिये । हम अबलाओंका उभरता यौवन क्यों व्यर्थ करते हो ?" उसने कहा कि, " ऐसे सुख भोग अनन्त वार भोगने पर भी भोगकी आशा परमात्माका मार्ग पाये विना व्यर्थ नही होती अर्थात् नष्ट नही होती ।" आदि अनेकों प्रकारसे उसने धर्मोपदेश किया परन्तु उन स्त्रियोंको कुछ भी धर्म प्राप्ति नही हुई और उल्टा धनोपार्जन करनेका उपाय बतलानेको कहा । अन्तमे कहा कि, "हे प्राणनाथ ! पुष्कल धन छोड़कर वादमे जाइये अन्य-

---

१ आलोक तथा परलोकके सुखसे भ्रष्ट २ स्त्रियो ३ दूसरी मात्रा अर्थात कमना सहित करनेसे चरित होता है ।

था हम जाने नही देगी ।" तिस पर अपाढ सिंहरथ राजाके पास गये और कहा कि, "हे राजा ! तुम्हे भरत चक्रवर्तीका नाटक दिखलाउ।" राजाने उसकी प्रार्थना स्वीकारी जिस पर उसने सात दिनमें भरत चक्रवर्तीका नया नाटक तैयार किया। फिर नाटकके प्रारभमे पाचसो राजपुत्रोंको तैयार कर उनसे कहा कि,—"मै जैसा करु वैसा ही तुमकोभी करना।" फिर स्वय भरत बना और चक्रकी उत्पत्ति, छखडका उपार्जन, बत्तिस हजार मुकुटवद्ध राजा, चोरासीलाख हाथी, चोरासीलाख घोडे, और चोराशीलाख रथोंका निर्माण किया छन्नु करोड़ सुभटों सहित तीनो खड जीते फिर विद्याधरकी कन्याको खिरत्नके रुपमे व्याही, ऋषभकूट पर्वत पर जा अपना नाम लिखाना, एक लाख बाण वे हजार स्त्रियोंको ले अयोध्यामे आना और राज्याभिषेक करना आदि सब यथाविधि कर फिर अनुक्रमसे वह आदर्श भुवनमें गया। वहा अगुलीमेंसे मुद्रिका गिरपडी उसे देखते ही उसे भरत क समान सब अनित्यादि भावना भाते हुए केवल ज्ञान प्राप्त हो गया। अब वहां ही पचमुष्टि लोचकर देवनाओं द्वारा दिये मुनिवेशको धारण कर निकल पडा और राजा आदिको प्रतिबोध कर नाटकके पात्ररूप पाचसो राजपुत्रोंको बोधित कर दीक्षा दी। तथा अन्य अनेको भव्य प्राणियों को भी प्रतिबोधित किया। नाटकके लिये जो रत्नादिक सब वस्तुएं एकत्रित कीथी वे सब उसके श्वसुर नटने लेली जिससे उसका जीवत पर्यतका निर्धनपन जाता रहा।

अषाढभूति मुनिने पांचसो साधु सहित अन्यत्र विहार किया। केवल ज्ञान प्राप्त हुआ होनेसे वे अपने गुरु से भी वंदना करने योग्य हुए। उस स्वरूपको जान उसके गुरु आदि वार वार मस्तक हिलाकर उसकी प्रशंसा करने लगे कि, "अहो! देवताभी चक्रीके समान संपत्ति विकुर्वीत करते हैं तथा बाहरके स्वरूप यथास्थित दिखाते हैं, इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है परन्तु इन अषाढ मुनिने तो बाह्यरूप इस प्रकार किये कि जिससे आन्तर स्वरूपभी भेद रहित प्रगट कर बतलाया। यह ही बड़ा आश्चर्य है।"

"ये अषाढ मुनि मायापिंडके भक्ष्यसे भ्रष्ट चित्त हुए फिरभी एक मासमास त्यागरूपी नियमकी शुद्धिसे उन्होंने अपनी आत्माको तारा बाधाकारी स्थानमें रहकरभी भरत चक्रीका नाटक खेल उन्होंने आत्माका मूल स्वरूप प्रगट किया।"

[इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशप्रासादवृत्तौ सप्तदशस्तम्भस्य त्रिचत्वारिंशदधिकद्विशततमः प्रबन्धः ॥२४३॥

व्याख्यान २४४

लोभ के विषयमें

पुमाननथ प्राप्नोति, लोभक्षोभित मानसः ।
यतो लोभपराभूत सागर सागरेऽपतत् ॥१॥

भावार्थ –" जिसका मन लोभसे क्षोभित है वह मनुष्य अनर्थको प्राप्त होता है । क्योंकि लोभसे पराभव पाया सागर श्रेष्ठी समुद्रमें पड़ाथा ।"

अतिलोभो न कर्तव्यो, लोभानैव च नैव च ।
अतिलोभाभिभूतात्मा, सागर सागर गत ॥२॥

" अति लोभ न करना, लोभ न करना, नहीं करना, अतिलोभमें पराभव पाया सागर सेठ समुद्रमें गया ।"

सागर शेठका दृष्टान्त

समुद्रके किनारे ध्यान सागर नामक एक शहर था जिसमें चोवीश करोड़ सोनैयोंका पति सागर नामक श्रेष्टी रहता था । वह जमकी सदृश क्रुर दृष्टि, जुआरी सदृश सबको ठगने वाला, कौंअे सदृश कठोर वचन वाला, सर्प सदृश कुटिलगति और पामर पुरुष सदृश सर्वदा कलह प्रिय था । उसके चार पुत्र थे सबको एक एक स्त्री विवाह

ने से उसके घरमे चार वधूएँ थी । श्रेष्टीकी स्त्रीके मरनेपर श्रेष्टी अति कृपण एवं अविश्वासी होनेसे वह घरमेही रहने लगा और यदि वो किसी को अच्छा भोजन करते, अच्छे वस्त्र पहिनते, तथा स्नान दान आदि करते, देखता तो वह सदैव उससे कलह करने लगता । कोई भिक्षुक उस घर नहीं जाते इतना ही नही अपितु कौऐं आदि पक्षियों तकने उसका घर त्याग दिया था । पोषण करने योग्यका पोषण न करनेसे गृहस्थ भी लोकाचार रहित कहलाता है और उससे उसकी शोभा तथा महिमाका नाश होकर उसे अपयश प्राप्त होता है । कहा है कि –

वृद्धौ मातपितरौ, साध्वी भार्या लघूनि शिशूनि
अप्युपायशत कृत्वा पोष्याणि मनुरब्रवीत् ॥१॥

भावार्थ –मनु हा महराजने ऐसा फरमाया है कि वृद्ध माता पिता सती स्त्री और छोटे बालकको सैकडो उपाय करके भी पोषण करना योग्य है ।"

सागर श्रेष्टीकी इस आदतसे उसका सब कुटुम्ब दु खी हो गया था परन्तु उसकी पुत्र–वधूएँ तो रात्रिमे उसके सोने पश्चात् स्वछ द रूपसे खाती और क्रिडा-करती-रहती थी । एक समय जब एक योगिनी आकाश मार्गसे जा रही थी कि उसने श्वसुरके घर रहने पर भी प्रीति न होनेसे म्लान मुख इन वधूओंको गोकडे (झरोखे) मे बैठे देखा और वह कौतुक वश इनके पास आई । उन्होने उसको गोत्रदेवी

सहर्ष नमस्कार किया तथा मोदक आदि भेट कर खूब सन्तुष्ट किया। इस पर वह योगिनी मात्र पढनेसे ही सिद्ध होने वाली आकाशगामी विद्या उन वधुओंको दे पक्षीकी तरह आकाशमें उड़ गई।

एक बार रात्रिमें पति आदिके सो जाने पर चारों बहुवें उस मंत्र द्वारा एक लक्कड़ अधिवासित कर उस पर चढ़ रत्न द्वीप गईं। वहां स्वच्छंद क्रीडा कर पिछली रात्रि को वापस लौटी और उस लक्कड़को इधर उधर रख अपने अपने स्थानोंमें आकर सो रहीं। इस प्रकार सब रात्रिमें करने लगीं। एक दिन पशुओंको, बांधने, छोड़ने तथा दोहने का काम करने वाला चाकर उस लक्कड़को सदैव उलटा मिला होते देख इसका कारण जाननेके लिये रात्रिमें जब गुप्त रूपसे देखा तो उसने उन बहुओंका चरित्र जान लिया फिर उसने विचारा कि, "ये हमेशा कहां जाती हैं यह मैं पता लगाऊंगा।" फिर दूसरे दिन रात्रिका वह उसका सब कार्य कर उस काष्टकी पोलमें छीप गया। समय होने पर सदैवकी तरह वह काष्ट उड़ कर सुवर्णद्वीपमें गया। चारों स्त्रियें काष्टसे उतर जब चारों ओर फिरने लगीं तो चाकरभी बाहर निकल आया, वहां वह सब पृथ्वीको सुवर्णमय देख कर अत्यन्त विस्मित हुआ। फिर जब बहुओंके आनेका समय हुआ तो वह चाकर उसके पहिले थोड़ासा सुवर्ण लेकर पूर्ववत् उस काष्टकी पोलमें घुस गया। थोड़ी देर बाद वे स्त्रियें भी आईं और मंत्र शक्तिसे उस काष्ट सहित

ने से उसके घरमे चार वधूएँ थी । श्रेष्टीकी स्त्रीके मरनेपर श्रेष्टी अति कृपण एव अविश्वासी होनेसे वह घरमेही रहने लगा और यदि वो किसी को अच्छा भोजन करते, अच्छे वस्त्र पहिनते, तथा स्नान दान आदि करते, देखता तो वह सदैव उससे कलह करने लगता । कोई भिक्षुक उस घर नहीं जाते इतना ही नही अपितु कौअें आदि पक्षियों तकने उसका घर त्याग दिया था । पोषण करने योग्यका पोषण न करनेसे गृहस्थ भी लोकाचार रहित कहलाता है और उससे उसकी शोभा तथा महिमाका नाश होकर उसे अपयश प्राप्त होता है । कहा है कि –

> वृद्धौ मातपितरौ, साध्वी भार्या लघूनि शिशूनि
> अप्युपायशत कृत्वा पोष्याणि मनुरब्रवीत् ॥१॥

भावार्थ –मनु हा महराजने ऐसा फरमाया है कि वृद्ध माता पिता सती स्त्री और छोटे बालकको सैकडों उपाय करके भी पोषण करना योग्य है ।"

सागर श्रेष्टीकी इस आदतसे उसका सब कुटुम्ब दु खी हो गया था परन्तु उसकी पुत्र-वधूएँ तो रात्रिमे उसके सोने पश्चात् स्वच्छद रूपसे खाती और क्रिडा-करती-रहती थी । एक समय जब एक योगिनी आकाश मार्गसे जा रही थी कि उसने श्वसुरके घर रहने पर भी प्रीति न होनेसे म्लान मुख इन वधूओंको गोखडे (झरोखे) में बैठे देखा और वह कौतुक वश इनके पास आई । उन्होने उसको गोत्रदेवी

सम्म नमस्कार किया तथा मोदक आदि भेट कर खूब संतुष्ट किया। इस पर वह योगिनी मात्र पढनेसे ही सिद्ध होने वाली आकाशगामी विद्या उन बहुओंको दे पक्षीकी तरह आकाशमें उड़ गई।

एक बार रात्रिमें पति आदिक सो जाने पर चारों बहुऍ उक्त मंत्र द्वारा एक लकड़ अधिवासित कर उस पर चढ रत्न द्वीप गई। वहा सवत्र क्रिड़ा कर पिछली रात्रि को वापस लौटी और उस लकड़को इधर उधर रख अपने अपने स्थानोंमें जाकर सो रही। इस प्रकार सदैव रात्रिमें करने लगी। एक दिन पशुओंको, बांधने, छोड़ने तथा दोहने को कार्य करने वाला चाकरने उस लकड़को सदैव उलटा सिधा होते देख उसका कारण जाननेके लिये रात्रिमें जब गुप्त रूपसे देखा तो उसने उन बहुओका चरित्र जान लिया फिर उसने विचारा कि, "ये हमेशा कहां जाती है यह मैं कल देखूंगा।" फिर दूसरे दिन रात्रिको वह उसका सब कार्य कर उस काष्टकी पोलमें छीप गया। समय होने पर सदैवकी तरह वह काष्ट उड़ कर सुवर्णद्वीपमें गया। चारों स्त्रिये काष्टसे उतर जब चारों ओर फिरने लगी तो चाकरभी बाहर निकल आया, यहां वह सब पृथ्वीको सुवर्णमय देख कर अत्यन्त विस्मित हुआ। फिर जब बहुओंके आनेका समय हुआ तो वह चाकर उसके पहिले थोड़ासा सुवर्ण लेकर पूर्ववत् उस काष्टकी पोलमें घुस गया। थोड़ी देर बाद वे स्त्रिये भी आई और मंत्र शक्तिसे उस काष्ट सहित

क्षण भरमें अपने स्थान पर आकर सो रही। ईस प्रकार बहुतसा समय व्यतीत हो गया। नूतन चाकर सुवर्ण ले आया था इससे शेठके घरका काम धाम करने में आना कानि करने लगा। और यदि श्रेष्ठि उससे कुछ कहता तो सामने जवाब देने लगता इससे धूर्तशिरोमणि श्रेष्ठीने विचारा कि, "बिना द्रव्यवान हुए ऐसे नहीं बोल सकता इससे जान पड़ता है कि इसने मेरे घरसे कुछ चुरा लिया है।" ऐसा निश्चय कर एक दिन उसे एकान्त में बुलाकर श्रेष्ठीने युक्ति पूर्वक इस प्रकार पूछा कि उसने पेट के अजीर्णके समान सब वृत्तान्त कह सुनाया। शेठने कहा कि, "आज मुजे जाना है तू किसीको कोई बात मत कहना।" चाकरको एसा कह कर रात्रिके समय श्रेष्ठी उस काष्टकी पोलमें घूस गया। पहलेकी तरह काष्ट सुवर्ण द्वीपमें गया और बहुए उतर कर घूमने गई कि श्रेष्ठी भी बाहर निकला। वहां जब उसने सब पृथ्वी सुवर्णमय देखी तो लोभवश उसने जितना सुवर्ण उस काष्टमें समा सका उतना उसमें भर दिया और खुदने भी अकमें आ सके उतना सुवर्ण ग्रहण कर उसकी पोलमें सिकुड़ कर बैठ रहा। समय होने पर चारों बहुऐं आई और सदैवकी तरह दो बहुए ऊपर बैठी और दो बहुए काष्ठ उठाने लगी तो उनको उसमें बहुत भार जान पडा परन्तु फिर भी वे चल दी और जब समुद्रके मध्य भागमें आई तो वे बहुऐं थक गई तो उन्होंने कहा कि इस लकड़ेमें तो बहुत भार लगता है इसलिये उसे

समुद्रमें ही छोड़कर यह दूसरा पानी पर तैरता हुआ जो लक्कड़ है उसे ले ले।" यह सुनकर पोतमें बैठे श्रेष्ठी बोला कि, "हे वधूओं! मैं अन्दर बैठा हूँ इसलिये इस लक्कड़ेको न छोड़ो।" यह सुनकर वधूएँ बोली कि, "तुम्हारे चौबीस करोड़ द्रव्यके स्वामी होने पर भी क्या कमी थी कि यहां आये? ऐसा पर औषध बिना व्याधि जाती है ऐसा सोच कर उन्होंने लक्कड़ सहित सागर सेठको समुद्रमें फेंक दिया और उसके लक्कड़ पर बैठकर वे अपने घर लौटी। समुद्रमें पड़ा सागर श्रेष्ठी लोभके प्रकारसे नीचे गया। अर्थात् आत्मामेंसे नीचे गया और मरकर नरकमें गया। कहा है कि –

लोभाभिभूतान् भ्रमयति जीवान्,
दुःखान्यसंख्यानि पदे पदेऽपि।
तृष्णा हि कृष्णाहिनपूरिवोग्रा,
निहंति चैतन्यमशेषमाशु ॥१॥

भावार्थ –"लोभ से पराभव पाये प्राणीको पद पद पर असंख्य दुःख प्राप्त होते हैं और काली नागण सदृश तृष्णा सर्व प्रकारसे चैतन्यका शीघ्र नाश करती है।"

वामदेवेन मित्रेण, रूपदेवो वनांतरे।
घोरनिद्रावशीभूतो, लक्षलोभेन मारितः ॥२॥

भावार्थ –"वनमें घोर निद्रामें वशीभूत हुए रूपदेवको उसके मित्र वामदेवने एक लाख द्रव्यके लोभसे मारडाला।"

अपितु लोभ सब पापका बाप है। कहा है कि,

जनकः सर्वदोषाणां, गुणनाशनराक्षसः।
कंदो व्यसनवल्लीनां, लोभः सर्वार्थबाधकः ॥३॥

भावार्थ –"लोभ सब दोषोंका बाप है (उत्पन्न करने वाला है), सब गुणोंका नाश करनेमें राक्षस तुल्य है, दुःख रूपी लताका कंद (मूल) है और धर्मादिक चारों पुरुषार्थोंका बाधक है।" इसपर शुभंकर ब्राह्मणका दृष्टान्त प्रसिद्ध है कि –

पृथ्वीपुर नामक नगरमें शुभंकर नामक एक ब्राह्मण रहता था उसके धर्मका मर्म जानने वाली जैनमति गुणवती नामक भार्या थी। एकबार वह ब्राह्मण विद्याभ्यास करनेके लिये परदेश गया जहां उसने चारों वेद, अठारह पुराण, व्याकरण, अलंकार, न्याय, साहित्य, कोष आदि सर्वशास्त्रोंका अभ्यास किया फिर स्थान स्थान पर अनेक विद्वानोंको वादमें जीतकर विजयी हो अपने घर लौटा। वहां भी अपने शास्त्र-ज्ञानका आडंबर सब लोगोंको दिखाने लगा। उसे देख उसकी जैन धर्मी भार्याने विचार किया कि–' यह मेरा पति मिथ्यात्वीयोंके एकान्तवादी शास्त्र पढ़ा हुआ है, परन्तु स्याद्वाद मार्गको न जाननेवाला मनुष्य वस्तुका योग्यायोग्य विवेक नहीं जानता इसलिये मैं उससे कुछ प्रश्न करु।" ऐसा निश्चय कर उसने उसके पतिसे पूछा कि–"हे स्वामी! सब पापोंका बाप कौन है? ब्राह्मणने कहा कि, "हे प्रिया!

मैं शास्त्र देखकर बतलाउगा फिर उसने जितने भी शास्त्र थे पढा था उन सबको उसने देखा परन्तु उनमें पापका बाप नही मिला इसलिये उसने दुखित होकर स्त्रीसे कहा कि— "हे प्रिया ! तेरे प्रश्नका उत्तर तो किसी भी शास्त्रमें नही मिला परन्तु तूने यह प्रश्न कहासे सुना ?" उसने कहा कि, "मैने मागम जाते हुए किसी जैनमुनिके मुहसे सुना था कि, "सब पापका एक पिता है। इसलिये मे तुमसे उसका नाम पूछता हू।" जिसने कहा कि, "मै उस साधुके पास जाकर पूछता हू कि जिससे सन्देह रहित हो सकू।" फिर वो ब्राह्मण साधुके पास जाकर बैठे और संस्कृत भाषामे कुछ प्रश्न किये उनकी यथास्थिति उत्तर मिलनसे वह बहुत खुश हुआ फिर उसने पूछा कि, "हे स्वामी ! पापके बापका नाम बताईये।" गुरुने कहा कि—"सध्या समय तुम यहा आना उस समय मै उसका नाम बतलाउगा।" इससे ब्राह्मण उसके घर गया। गुरुने सोचा कि, 'अवश्य इस ब्राह्मणको प्रतिबोध करानेके लिये उसकी भार्याने इसे भेजना मालुम होता है इसलिये किसी भी उपायसे इसे प्रतिबोधित करना चाहिये।" ऐसा निश्चय कर किसी श्रद्धालु श्रावकसे गुरुने कहा कि, "तुम्हारे घरसे दो अमूल्य रत्न लाकर मुझे दो मुझे उनसे काम है और दूसरा किसी चन्डालसे एक गधेका शव उठाकर इस उपाश्रयसे सो हाथ दूर किसी एकान्त स्थानपर रखाओ।" श्रावकने वह कार्य शीघ्रतासे कर दिया। फिर सध्या होने पर जब उक्त ब्राह्मण गुरुके पास आया

तो गुरुने उसे एकान्तमें कहा कि, "यदि तुम मेरा एक कार्य करनेका कबुल करो तो तुमको यह एक रत्न दू और कार्य संपूर्ण होने पर यह दूसरा रत्न भी द दूगा ब्राह्मणने रत्न देख हर्षित होकर कहा कि, "हे पूज्य! काम बतलाइये" गुरुने कहाकि इस उपाश्रयके पास एक गधेडाका शव पड़ा हुआ है जिसके पड़ रहने तक हमको स्वाध्याय आदि धर्मकार्याम विघ्न होता है अर्थात् धर्मकार्य नही कर सकत इसलिये उसे उठाक " गावके बाहर डाल आ" ब्राह्मणने सोचा कि, "अभी अधेरा हो गया है इसलिये मुझ वेदपारगामिको इस समय कौन पहचान सकता है? इससे स्वार्थ साध लेना हा श्रेयस्कर है" ऐसा सोच उसने चाडालका वेश बना, उक्त शवको क धे पर रख, यज्ञोपवीतको छिपा, उसे बाहर डाल आया। फिर स्नान कर शीघ्रतासे गुरुके पास आया और कहा कि, "हे स्वामी! आपका कार्य कर दिया है इसलिये आप अपने वचनोंका पालन कीजिये।" इस पर सूरिने उसे दूसरा रत्न भी द दिया। फिर ब्राह्मणने जब सूरिसे अपने प्रश्नका उत्तर पूछा तब गुरुने कहा कि, "क्या अभी भी तू तेरे प्रश्नका उत्तर न समझ सका?" यह सुन वह लघुकर्मी होनेसे सुलभ बुद्धि होनेसे तथा अनेक शास्त्रोंका ज्ञानवाला होनेसे अच्छी तरह विचार करने पर उसे ज्ञान हुआ कि-"अहो! मैं "ब्राह्मण" कि जिसका अर्थ "ब्रह्म तत्त्वको जाननेवाला" होता है तथा मै गायत्रीका जप करने वाला होनेपर भी लोभके परवशसे ऐसी निंद्य दशाको प्राप्त हो गया हू। धर्म शास्त्रादिकमे कहा गया है कि –

लोभश्चेदविपापकर्मजनको यद्यस्ति किं पातकैं ।
सत्य चेत्तपसा च किं शुचिमनो यद्यस्ति तीर्थेन किम् ॥
सौजन्य यदि किं निजैश्च महिमा यद्यस्ति किं मडनै ।
सद्विद्या यदि किं धनैरपयशो यद्यस्ति किं मृत्युना ॥१॥

भावार्थ –" अत्यन्त पाप कर्म को उत्पन्न करने वाला यदि पापका बाप लोभ होवो फिर अन्य पापसे क्या ? यदि सत्य हो तो फिर तप की क्या आवश्यका है? यदि मन पवित्र हो तो फिर तीर्थ करनकी क्या जरूरत है ? यदि सुजनता हो तो फिर आप्त पुरुषो से क्या काम है? यदि महिमा हो तो फिर अलकार पहनने की क्या जरूरत है ? यदि उत्तम विद्या होवो फिर धनकी क्या आवश्यकता है ? और यदि अपयश हो तो फिर मृत्युसे भी क्या अधिक है अर्थात् अपयश ही मृत्यु है (ऐसा सर्वत्र जाने) ऐसा विचार कर यह ब्राह्मण अपने घर आ उसकी स्त्रीसे कहने लगा कि, "हे प्रिया ! उन साधुने मुजे भली भांति प्रतिबोधित किया । जैन धर्म सब धर्मोमे उत्तम और लोकोत्तर है मात्र एक लोभको न जीतने से सब धर्मकृत्य व्यर्थ हैं लोभी पुरुष सब प्रकार के पाप कर्म करता है।" फिर वह ब्राह्मण फिरसे गुरुके पास गया और गुरुसे कहा कि, हे स्वामी ! आपकी कृपासे मुजे ज्ञान, दर्शन और चारित्र रूपी तीन

रत्न प्राप्त हुए हैं ।" आदि गुरुकी प्रशंसा कर उसका अत्यन्त उपकार माना ।

इस दृष्टान्तका यह तात्पर्य है कि–'लोभके नाश करने जैसा दूसरा कोई धर्म नहीं है और लोभके वशीभूत होने जैसा अन्य कोई पाप नहीं है' देखो, स्त्री द्वारा भेजे ब्राह्मण को निःस्पृह गुरुने युक्तिया से प्रतिबोधित किया ।

[इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशप्रासादवृत्तौ षोडशस्तम्भस्य चतुश्चत्वारिंशदधिकद्विशततमः प्रबन्धः ॥ २४४ ॥]

व्याख्यान २४५

लोभके क्रमके विषयमें

आरम्भे पूरयितुं, लोभगर्तो यथा यथा।
तथा तथा महच्चित्रं, मुहुरेष विवर्धते ॥१॥

भावार्थ —"लोभरूपी गर्त (खड्डा) को जैसे जैसे पूर्ण करना आरम्भ करते हैं वैसे वह खड्डा बारबार वृद्धिको प्राप्त होता है यह एक बड़ा आश्चर्यकी बात है।"

अनन्ती बखत भोजन किया, वस्त्र पहिने, विषय सेवन किया और धन धान्य आदि भी संचय किया परन्तु फिर लोभरूपी गढ़ेका एक कोना भी पूर्ण न हो सका। इस विषयमें सुभूम चक्रीका दृष्टान्त प्रस्तुत किया जाता है कि—

एकबार स्वर्गमें विश्वानर और धन्वन्तरि नामक दो देव परस्पर मित्र होनेसे अपने अपने धर्मकी प्रशंसा करने लगे। उनमेंसे एक जैनधर्मी था और दूसरा शैवधर्मी व धर्मकी परीक्षा करनेके लिए मृत्युलोकमें आये। उस समय मिथिला नगरीका पद्मरथ नामक राजा वासुपूज्य स्वामीके पास दीक्षा लेकर मार्गमें चला जा रहा था कि उसे देख उसकी परीक्षा करनेके लिये उन देवोंने अनेक प्रकारके स्वादिष्ट अन्न विकुर्वी उसको देना आरम्भ किया परन्तु वह देवपिंड है

ऐसा जान क्षुधासे पीडित होने पर भी उस मुनिने उन्हें ग्रहण नहीं किये और अपने नियमसे चलायमान नहीं हुए। आगे जाते दो मार्ग आये जिनमेसे एक मार्ग पर तीक्ष्ण कांट बिछुवे और दूसरे मार्गमें सूक्ष्म मेंढक उत्पन्न किये। तीसरा मार्ग न होनेसे वे राजर्षि ईर्यासमितिका पालन करनेको कांटावाले मार्गसे चाल दिये। कांटे लगनेसे पैरमें रुधिर धारा प्रवाहीत होने लगी फिर भी उन्होंने उस मार्ग परित्याग नहीं किया। उसके पश्चात् देवोंने अनेक स्त्रियोंके रूप विकुर्वी गीत, नृत्यादि करने लगे तिस पर भी उसका मन क्षोभित नहीं हुआ। अन्तमें नैमित्तिकका रूप धारण कर उन्होंने उनसे कहा कि, "हे मुनि! हम त्रिकालज्ञानी हैं इससे हम जानते हैं कि—अभी तुम्हारा आयुष्य बहुत है इसलिये युवावस्थाके फलरूप भोगविलासको भोग कर फिर वृद्धावस्थामें तप करना।" तब मुनिने कहा कि, "यदि आयुष्य अधिक होगा तो अधिक समय तक चारित्र पाला जायगा। विषय भोग तो पूर्वमें अनन्त वार भोग चूका हूँ परन्तु उससे कोई तृप्ति नहीं हुई अब जीवन पर्यन्त भी उनकी स्पृहा नहीं है।" यह सुन देवोने जैनशासनकी प्रशंसा की।

फिर एक अरण्यमें जमदग्नि नामक वृद्ध तापस चिरकालसे तपस्या करता था वहां जा चक्लीका रूप विकुर्वा उसकी दाढीमें घोंसला बना रहे। चक्लाने मनुष्यवाणीसे

चकलीसे कहा कि, "हे प्रिया ! मैं हिमवन्त पर्वत पर जाता हूँ, कुछ दिनों मे वापस आऊँगा।" चकलीने कहा कि, यदि वहा तुमको किसी दूसरी चकली पर आसक्ति हो जावे तो फिर म बिना पति से क्या करूँगी ?" यह सुन चकलेने वापस आनेके लिए गौहत्या आदिका शपथ खाया। तब चकलीने कहा कि, "यदि तुम वापस न आओ तो इस ऋषिका पाप तुम्हें लगे ऐसा यदि तुम शपथ ग्रहण करोगे तो जान दूं।" यह सुन तापस क्रोधातुर हो गया और उन पक्षियोंको पकडनेके लिये दाढीमें हाथ डाल उनको पकड़ कर कहा कि, "अरे पक्षियों ! मैं पापी कैसे हूं ? यह बतलाओ।" तब पक्षियोंने कहा कि, "हे तपोनिधि ! क्रोध न करो तुम्हारा शास्त्र देखो उसमे कहा है कि –

अपुत्रस्य गति र्नास्ति, स्वर्गो नैव च नैव च।
तस्मात् पुत्रमुखं वीक्ष्य, सर्वकार्याणि साधयेत् ॥१॥

भावार्थ –"अपुत्रकी गति नहीं होती तथा स्वर्ग तो कभी भी नहीं मिलता अतः पुत्रका मुंह देखकर फिर सब कार्य सिद्ध करने चाहिये।"

"अतः हे ऋषि ! तुम पुत्र रहित हो इसलिये तुम्हारी सद्गति कैसे होगी ?" इस प्रकार सुन कर वह तपस्वी मनमें क्षोभित हुआ और तपस्या छोड़कर केोष्ठक नामक नगरमें गया। वहां जीतशत्रु नामक राजा था। उसके पास जाकर उसने कन्याकी याचना की। राजाने कहा कि–

मेरे सा कन्या हैं उनमेंसे जो कन्या तुम्हारे साथ विवाह करनेकी इच्छुक हो उसे ग्रहण करो।" फिर तापस कन्याओं के अन्तःपुरमें गया जहा सब कन्याओंने उसे वृद्ध तथा सत्कार रहित भगवाला कुरूपी जानकर थू थू कर उसकी अवगणना की। जिस पर तापसने क्रोधसे उन सब कन्याओंको कुबडी बना दिया। वहासे वापस लौटते समय राजभुवनके आंगणमें एक मुग्ध कन्याको धूलमें खेलती देखकर तापसने उसे एक बिजोरा दिखलाया जिसको लेने के लिये जब उसने हाथ बढ़ाया तो यह कह कर कि "यह कन्या मुझे चाहती है" उसे उठा लिया। राजाने शापके भयसे हजार गाओं तथा दासी सहित वह कन्या उसे देदी। तब फिर राजाकी प्रार्थना पर तपस्वीने उन उन कन्याओंको ठीक किया।

उस रेणुका कन्याको लेकर जमदग्नि तपस्वी वनमें आश्रम बना उसका लालन पालन करने लगा। जब वह कन्या युवा हुई तब उसने उसके साथ विधिपूर्वक विवाह किया। उसके ऋतु काल आने पर उसकी प्रार्थनासे जमदग्निने ब्राह्मण तथा क्षत्रिय पुत्र उत्पन्न हो ऐसे दो चरु मन्त्र द्वारा तैयार किये जिनमेंसे रेणुकाने ब्राह्मणचरु न खा कर क्षत्रिय चरु खाया और ब्राह्मण चरु उसकी बहिनके पास जो हस्तिनापुरके राजा अनन्तवीर्यकी पट्टरानी थी, उसको भेज दिया उसने उसको खाया। समय आने पर रेणुकाको राम नामक और उसकी बहिनके कृतवीर्यनामक पुत्र हुआ बादमें उस आश्रममें एक विद्याधर आया जो अतिसारकी व्याधिसे

पिड़ित था । रामने उसकी सेवा कर उसे निरोगी बनाया । जिसपर विद्याधरने उसे परशु विद्या दी । राम यह विद्या-साधकर परशुराम के नामसे प्रसिद्ध हुआ और दवाधिक्षिन परशु लेकर चारों ओर घूमने लगा ।

एकबार रेणुका उसकी बहिनसे मिलनेके लिए हस्तिनापुर गई जहा उसन उसने बहिनके पतिके साथ भोग भोगे जिससे उसके एक पुत्र हुआ । रामने उसकी माताको दुराचारिणी जानकर उसे पुत्र सहित मार डाला जिससे क्रोधित होकर अनन्तवीयन उसका आश्रम नष्ट कर डाला । यह जान रामने परशु द्वारा उसे मार डाला । अनन्तवीर्यके राज्य पर प्रधानोंने उसके पुत्र कृतवीर्यको बैठाया उस कृतवार्य राजाने पिताका वर लेनेके लिये जमदग्निको मार डाला । जिसपर रामने कुपित हो कृतवीर्यको मार उसका राज्य छीन लिया । उस समय कृतवीर्यकी सगभा स्त्री भगकर तपस्वियोंके आश्रमम चली गई । उन तपस्वियोंने उसे राजा की रानी जान एक गुप्त गृहमें गुप्तरूपसे रख लिया । रामको क्षत्रिय जाति पर क्रोध आ जानेसे उसने पृथ्वीको सात बार क्षत्रिय रहित कर डाला और मारे गए राजाओंकी दाढ़ें निष्फलता कर उनका थाल भर सभामें अपने पास रक्खा ।

एकबार कोई एक निमित्तिया आया । उसने परशुरामके पूछनेसे कहा कि, 'जिस पुरुषकी दृष्टिसे ये दाढ खीररूप हो जायगी और जो पुरुष उस खीरको खा

जायगा उसने हाथसे तेरी मृत्यु होगी।" यह सुन कर रामने शत्रुकी खोज करनेके लिये एक दानशाला बनवाई। उसमें एक सिंहासन रख उस पर वह थाल रक्खा गया। फिर क्षत्रियोंका वध करनेको वह चारों ओर घूमने लगा। जहां जहां कोई भी क्षत्रिय होता है वहां वहां उस परशु (कुठार)मेंसे अग्निकी ज्वाला निकलती और उसको वह मार डालता फिरता फिरता एक दिन वह उक्त तपस्वियोंके आश्रममें जा निकला, जहां कृतवीर्यकी रानीने गुप्त गृहमें पुत्र प्रसव किया था। उसका नाम सुभूम रक्खा था। उसके क्षत्रिय पुत्र होनेसे रामके परशुमेंसे वहां ज्वाला प्रज्व लित हुई जिस पर रामने तपस्वियोंसे कहा कि-"इस आश्रममें कोई क्षत्रिय होना चाहिये।" तपस्वियोंने कहा कि, "हम सब तपस्वि मूलसे क्षत्रिय ही हैं।" इस प्रकार सुन सन्देह रहित हो परशुराम अपने स्थान पर जा राज्य करने लगा।

एकबार वैताढ्य पर्वतके स्वामी मेघनाद नामक विद्या धरने निमित्तियासे पूछा कि, "मेरी कन्याका पति कौन होगा?" निमित्तियाने कहा कि, "सुभूम नामक चक्रवर्ती तुम्हारी पुत्रीका पति होगा।" यह सुन मेघनादने उसकी पुत्रीको गुप्त गृहमें रहनेवाले सुभूमको ही विवाह दी। एक दिन सुभूमने उसकी माताले पूछा कि-"हे माता! क्या पृथ्वी इतनीही है?" तब माताने उत्तर दिया कि, "पुत्र! पृथ्वीतो बहुत बड़ा है परन्तु तेरे पिताको परशुरामने मार-डाला और इस समय वह हस्तिनापुरका राज्य कर रहा है।

उसके भयसे हम इस गुप्त गृहमे आकर रहे हैं ।" यह सुन सुभूमको बडा क्रोध आया इसलिये वह तत्काल बाहर निकल मेघनादको साथ ले वह हस्तिनापुरमे गया । जहा प्रथम वह दानशालामे गया कि उसकी दृष्टि पडते ही उक्त दाढे खीर रूप हो गई । उनको वह खाने लगा । उसे इस प्रकार करते देख राम द्वारा नियुक्त रक्षक उसे मारनेको दौडे जिनको मेघनादने पराजित कर दिया । यह वृतान्त सुन परशुराम स्वय हाथम परशु ले उसको मारने आया । सुभूमने उस पर थालको घुमा कर फेंका कि वह ही थाल हजार देवोंसे अधिष्ठित चक्र बन गया । जिससे परशुराम मारा गया । उस समय देवताओंने सुभूम पर पुष्प वृष्टि की ।

पूर्वके वैरके कारण सुभूमने इक्कीस बार पृथ्वीको ब्राह्मण रहित किया और अनुक्रमसे उसने छ खण्डका चक्रवर्तीपन प्राप्त किया । तिस परमी लोभवश उसे धातकी खण्ड स्थित भरत क्षेत्रके छ खण्डको जीतनेकी इच्छा हुई । उस समय देव, मानव और विद्याधरोंने उससे कहा कि, "हे राजा ! पूर्वमे भरतचक्री आदिने मात्र इस भरत क्षेत्रके छ खण्डोंको ही अपनी आज्ञामें रक्खा था । अनन्त कालमे अनन्ता चक्री हो गये, अनन्ता होने वाले हैं, उन सबकी ऐसी ही स्थिति और नीति है । कोईभी धातकी खण्डके भरतक्षेत्रको जीतने नही जाता" आदि देवादिकके उपदेशकी अवगणना कर सुभूम चक्री उसकी सेना सहित लवण समुद्रके किनारे जा पहुचा । और उसने चर्म रत्नको हाथसे स्पर्श कर विस्तृत

किया। उस पर सब सेनाको बिठाकर लवण समुद्रके दूसरी ओर जानेके लिए चल पड़ा। उस समय सब देवोंने पृथक पृथक अपने अपने मनमें सोचा कि, "इस राजाके कई देव सेवक हैं इसलिये मेरी अकेलेकी शक्ति किस कामकी है, मैं चला जाउंतो कोई कार्य नहीं रुकेगा" ऐसा विचार कर एक ही समय सब देवताओंने उसे छोड़ दिया जिससे वह सब सेना सहित दो लाख योजनके विस्तार वाले लवण समुद्रमें डूब गया और मरकर सातवीं नरकमें गया।

"अति लोभ रूपी पिशाचने जिसका चित्तग्रस्त किया है ऐसे कौनसे पुरुष हैं कि, जो विपत्तिमें नहीं गिरते? क्या कि चक्रवर्तीका पद प्राप्त कर लेने पर भी सुभूम राजा लोभसे ही सातवी नरकमें गया।"

[इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशप्रासादवृत्तौ सप्तदशस्तम्भस्य पंचचत्वारिंशदधिकद्विशततमः प्रबंधः ॥२४३॥]

व्याख्यान २४६

क्रोधपिंड तथा मानपिंडके विषयमें

उच्चाटनादि सामर्थ्यं शापमंत्रतपोबलम् ।

प्रदर्श्य क्रोधतो लाति, क्रोधपिंड स उच्यते ॥१॥

भावार्थ —"उच्चाटन, कामण, मारण, मोहन, वशीकरण आदिके सामर्थ्य से शापमंत्र तथा तपका बल दिखाकर क्रोधसे जो आहारादिक ग्रहण किया जाता है उसे क्रोधपिंड कहते हैं ।"

दृष्टान्त

हस्तीकल्प नामक नगरसे कोई साधु मासक्षमणके पारने पर एक ब्राह्मणके घर बहोरने गये । वहा किसीके मरण प्रसग पर ज्ञाति निमंत्रा थी । जिमने बैठे ब्राह्मणको घेवर आदि परोसा जा रहा था । वहा वे साधु बहुत देर तक खडे रहें परन्तु किसीने भिक्षा तो नहीं दी परन्तु उल्टे ब्राह्मण यहासे निकल, यहासे निकल, ऐसा कह उस साधुका निरादर करने लगे तब साधुने क्रोधसे कहा कि, "इस प्रसग पर यदि तुम मुझे अन्न नही देते हो तो मैं फिर ऐसे ही प्रसग पर आउगा ।" ऐसा कहकर साधु अन्य स्थान पर

चले गये । दैवयोगसे थोडेसे दिन बाद ही उस ब्राह्मणके घरमें दूसरा आदमी मर गया और इसी प्रकार उसके ज्ञाति भोजनके दिन वे साधु मासक्षमणके पारणे वहा गये । उस दिन भी बहुत समय तक खडे रहे पर भी भीक्षा न मिलने पर उस साधुने कोपसे कहा कि, "फिर में ऐसे ही कार्यके समय पर आउगा ।" ऐसा कह वे चले गये । विधिके वशसे उसके घरमें तीसरा मनुष्य मर गया । उसके ज्ञाति भोजनके दिन फिरसे उसी प्रकार वे साधु आये । उस समय भी भिक्षा न मिलनेसे कोपसे बोला कि, "इस कायमें नहीं देते तो फिरसे पिछा ऐसे ही कार्यमें आउगा ।" ऐसा कहकर जाते समय मार्गमे द्वारपालने उस साधुको देखकर घरके स्वामीसे कहा कि, "यह साधु बारबार भिक्षा न मिलनेसे क्रोधकर जाता है इसलिये इसको सन्मानपूर्वक भिक्षा दो ।" घरके स्वामीने विचार किया कि "इसका कोई भी कारण होना चाहिय अन्यथा प्रत्येक महिने ऐसा मरण प्रसग क्यो आये? क्योकि ऐसे ऐसे खर्चेसे तो मैं थक गया हूँ इसलिये इस साधुको सतोष कराउँ ।" ऐसा निश्चय कर शीघ्र खड़ा हो उस साधुके पास जा उसको नमस्कार कर बोला कि–"हे स्वामी! मेरा अपराध क्षमा कीजिये और इस घेवरको वहो कर मेरे पर अनुग्रह कीजिये, तथा जीवदान दीजिये ।" इसप्रकार उसको अनेक प्रकारसे क्षमा कर यथेच्छपनसे घेवर वहराया । इसप्रकार लिया आहार क्रोधपिंड कहलाता है । यह वृतान्त जब गुरुने

आलोयण देते समय पाना सो न्हूनि न्मको याग्य अलोयणा दे शुद्ध किया ।

मानपिडके विषयमें

लब्धिपूर्णस्त्वमेवासीत्युन्माहितोऽन्यसाधुभि ।
गृहिभ्यो गर्वितो गृह्णन् मानपिड स उच्यते ॥१॥

भावार्थ —"तुम ही सब लब्धीसे पूर्ण हो" ऐसा कह कर अन्य साधुओंसे न्माहित किया हुआ यदि कोई साधु गृहस्थसे पिंड ले आय तो उसे मानपिंड कहते हैं ।"

दृष्टान्त

कोशल देशमें गिरिपुष्प नामक नगरमें सेव मध्यधी कोई त्सव था । इसलिये उस दिन प्रत्येक घरमें सव बनाई थी । उस दिन युवान साधुओंमें परस्पर बत चलते एक साधुने कहा कि, "आज तो गोचरीमें बहुत सी सेव मिलेगी परन्तु जो कल सेवें लाये वो ही सच्चा लब्धिमान है ।" यह सुन अन्य साधु बोले कि, "अहो ! घी, गुड़, सहित और थोड़ीसी सेव ले आय तो उससे क्या ? इतनेमें एक गच्छके पवत समान साधु बोला कि, "कल मैं बहुत सी सेव लाऊंगा ।" ऐसी प्रतिज्ञा कर दूसरे दिन वे साधु गोचरी गये । वहां एक गृहस्थके घर सेव देखकर उसकी स्त्रीसे उसने विविध युक्तिसे सेवकी याचना की, परन्तु फिरभी जब उसने सेव नहीं दी तो साधुने गर्वसे कहा कि, "किसी

भी प्रकारसे मैं इन सेवोंको लूगा" उस स्त्रीने उत्तर दिया कि, "यदि कदाच तेरेको सेव देदू तो मुझ नफ्ट (नक्टी) कहना।" फिर वह साधु बाहर निकले और किसीके द्वारा यह सूचना मिलनेसे कि, "इस स्त्रीका पति तो सारी सभा एकत्रित हो रही है वहा बैठा हुआ है।" वे वहा गये और पूछा कि, "क्या यहा देवदत्त शेठ है?" इस पर किसीने उत्तर दिया कि, "उस शेठसे क्या काम है?" साधुने कहा कि, "उससे कुछ मागना है।" इस पर उन्होंने कहा कि, "अहो! क्या किसीके शून्य घरमें कुमारिका देखी है?" इसप्रकार मजाकके वचन सुन शेठने स्वयं कहा कि, "मैं ही देवदत्त हू। आपको क्या काम है?" साधुने कहा कि, "यदि तुम छ पुरुषोंमेंसे कोइ न हो और उनसे भिन्न सातवे हो तो तुमसे मागू।" यह सुन सब लोग विस्मय चित्त हो गये और कहने लग कि, "वे छ पुरुष कौनसे हैं?" तब साधुने कहा कि —

श्वेतागुलिर्बकोड्डायी, तीर्थस्नाता च किंकर।
हृदनो गृध्रपक्षीव, षडेते गृहिणीवशा ॥२॥

भावार्थ —"श्वेत अगुलीवाला, बगुले उड़ानेवाला तीर्थम (तालाव आदिमे) स्नान करनेवाला, चाकर, दुर्गंधित और गीधपक्षी जैसा ये छ पुरुष स्त्रीके वशीभूत होते हैं।" इनके दृष्टान्त इस प्रकार है कि —

(१) एक पुरुष उसकी स्त्रीके वशमें था। उसको भुख लगनेसे उसने उसकी स्त्रीसे खानेको मागा तो शय्यामें सोती उसकी स्त्रीने कहा कि, "यदि तुम्हे जल्दी खाना हो तो चूल्हे की राख निकाल, जलानेको लकडी आदि लाकर देवो कि जिससे में जल्दीसे पका कर तुम्हे खिला सकू।" ऐसा सुन उसने सदैव वैसा ही करना आरंभ किया। इस प्रकार प्रतिदिन चूल्हेसे राख निकालते रहनेसे उसकी अंगुलिये सफेद हो गई इससे जगतमे उसे सब श्वेतांगुली कहने लगे।

(२) किसी स्त्रीके आधिन पुरुषको उसकी स्त्रीने कहा कि-"तुम सदैव तालावसे पानी भरकर लाया करो।" इसलिये वह पुरुष दिनमे पानी लेने जानमे लज्जा आने से रात्रिको तालाव पर पानी भरने जाया करता था जिसेसे तालावमें रहनेवाले बगुले उड जाया करते थे। इसलिये वह जगतमें बगुला उडान वालेके नामसे प्रसिद्ध हुआ।

(३) किसी पुरुषने उसकी स्त्रीसे जब न्हानेका पानी मागा तो उसकी स्त्रीने कहा कि, "धोती लेकर तालावमे स्नान कर आओ।" उसने सदैव वैसा ही करना आरंभ किया इसलिये वह लोकमे तीर्थस्नाता नामसे प्रसिद्ध हुआ।

(४) एक स्त्री लुब्ध पुरुष सदैव प्रातःकाल उठकर ऐसा पूछता कि, "हे प्रिया! क्या काम करु?" फिर स्त्री उसे काम बतलाती। वह स्त्रीके कहने अनुसार दलने और

खाडनेका कार्य करने लगा इसलिये लोग उसे किकर कह पुकारने लगे ।

इसपर एक अन्य दृष्टान्त है कि– ब्रह्मदत्त चक्रीने जब उस पर प्रसन्न हुए किसी देवता सर्प जातिके तिर्यंचोकी बोली समझनेकी विद्या मागी तब देवताने कहा कि—"मैं वह विद्या तुझे दे दूगा परतु यदि यह बात तुम किसीसे कहोगे तो तुम मर जाओगे ।" ऐसा कह उसे विद्या दी । फिर एक दिन जब राजा अन्तपुरमे गया तब उसके अग विलेपनके लिये रानी चन्दनका कचोला लेकर आई । उसे देख भींत पर रहनेवाली एक घरोलीने उसके पतिसे उसकी भाषामे कहा कि, "इसमेसे मुझे चन्दन लाकर दो ।" तब उसने कहा कि, "यदि राजाके पासमे चन्दन लेने जाता हू तो राजा मुझे मार डालेगा ।" उसने कहा कि, "यदि चन्दन लाकर न दोगे तो मै मर जाउगी ।" यह बात सुनकर चक्री हस पड़ा । उसे देख रानीने पूछा कि, "बिना किसी कारणसे आप क्यों हसे ? इसका कारण बतलाइये अन्यथा मैं मर जाउगी ।" राजाने कहा कि, चिताके पास चल क्योंकि जब मैं हसनेका कारण बतलाउगा तब मेरा मृत्यु हो जायगा ।" ऐसा कहने पर भी रानीने जब हठ नही छोड़ा तब राजा चितामें प्रवेश करनेको चला । मार्गमे राजाके सेवक घोडके लिये हरेजीका गाड़ा भरकर ला रहे थे । उसे देख किसी बकरीने बकरेसे कहा कि, मुझे एक जवका पुला लाकर दो ।" बकरेने कहा कि,

"यदि म तुझे यो लाकर दू तो राजाके सेवक मेरे प्राण हर लेंगे ।" बकरीने कहा कि, "तुम लाकर न दोगे तो मै मर जाउगी ।" तब बकरा बोला कि, "मै कोइ इस बकरीके समान स्त्रीका चाकर नही हू कि स्त्रीके कहनेसे मरने को जाऊँ॥ यह सुन बकरीने विचार किया कि, "मैं पशुमे भी अधिक मूर्ख बना गया हू कि जिस से स्त्री के कहन से मरनेका मन दिया" ऐसा विचार बकरेको गुरु मान बकरी वापस लौट गया ।

(५) कोइ स्त्रीआसक्तपुरुष स्त्री के कहने स बच्चेको खिलाते उनको मुत्रोत्सर्गादि कराते, और उनके पोतडे धोने आदि का कार्य करने लगा जिसके वस्त्र मन्थेव दुर्गंधयुक्त रहते थे इससे लोग उसे हदन (दुर्गंधी) कहने लग ।

(६) कोइ पुरुष जब भोजन करने बैठा तब उसने उसकी स्त्रीसे शाक, छाश आदि मागा । उस समय वह स्त्री काम मे व्यक्त होने से क्रोधित हो कर बोली कि, " अपने हाथ से ही ले लिजिये । " इस लिये वह पुरुष गीध पक्षी की तरह कुछ थड्थड़ाता थड्थड़ाता हाथ से ही लेने लगा । " उस से वह लोक मे गिध पक्षी समान कहलाने लगा ।

अत ये छ प्रकार के पुरुष स्त्रीके आधिन है । इस प्रकार साधु के वचन सुन सभाके मनुष्योंने कहा कि–" हे

साधु ! यह शेठ भी उन छमेसे एक है।" तब शेठने कहा कि,-" हे साधु ! इन लोगो के कहने से क्या ? आप इच्छानुसार मांगो" साधुने कहा कि, यदि ऐसा है तो तुम्हारे घरसे घी, गुड़ सहित बहुत सी सेवे दो।" वह बात स्वीकार कर शेठ घर गये। साधुने उन्हें उनकी स्त्रीका

वृतान्त कहा इसलिये साधुको दरवाजे पर खड़ा रख वह घरमे गया। और उसकी स्त्रीको किसी कामसे बहाने उपर मेडीमे भेजा। मुनि द्वारा मांगी सब सामग्री वहरा दी। उसे लेकर साधुने अपना नाक अंगुलीसे घिस कर उस

शेठकी स्त्रीको सूचित किया कि, "नकटी (नकट) हो गई।" तब स्त्रीने साधुको वापस बुलाकर बहुत सेवे दी। जिन्हें ले वे संतुष्ट हुए और उपाश्रयमे जा सर्व साधुओके समक्ष अपने गुण और लब्धिकी प्रशंसा करने लगे।

एकबार आलोयणाके समय गुरुने पूछा कि, "तुममेंसे क्या किसीने कभी मूलगुण या उत्तरगुणकी कोइ भी खंडना की है।" उसने कहा कि, "मैने एकबार देवदत्त शेठने घरसे बडे आदरके साथ सेवे ली थी।" तब गुरुने

कहा कि-' इसे मानपिंड कहते हैं।" इसलिये तीनों कालमे भी पर वस्तुओं पर आशक्ति नही रखनेवाले मुनियोंको ऐसा पिंड लेना योग्य नही है" यह सुनकर उसने अपने आत्माकी निंदाकी और उस कर्माकी आलोयणा की।

"जैसे क्रोधपिंड लेनेसे मुनि धर्म उद्योत नहीं होता उसी प्रकार मानपिंड भी निःस्पृह साधुओंको लेना योग्य नहीं है। इसलिये पिंड शुद्धिके लिये साधुओंको निरन्तर प्रयत्न करना चाहिये।"

[इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशप्रासादवृत्तौ सप्तदशस्तम्भस्य षट्चत्वारिंशदधिकद्विशततम प्रबंध ॥२४६॥]

व्याख्यान २४७

लोभपिंडके विषयमें

स्निग्ध मनोहर पिंड, वीक्ष्यातिरसलालुपः ।
सर्वत्राटत्यनूचानो, लोभपिंड स उच्यते ॥१॥

भावार्थ –"गुड़, घी मिश्रित स्निग्ध और स्वादिष्ट आहारको देखकर अत्यन्त रस लोलुपी साधु वैसे आहारके लिये सर्वत्र ऊँचनीच कुलमें भटकते हैं। उस प्रकार मिला आहार लोभपींड कहलाता है।

दृष्टान्त

चम्पानगरीमे सुव्रत नामक साधु मासक्षमणके पारणे द्रव्य, क्षेत्र काल और भावसे चारों प्रकारका अभिग्रह धारण कर प्रथम पोरशीमें ही गोचरीके लिए निकले। उनके अति तपस्वी होनेसे उनको सर्व काल गोचरीके योग्य है।

श्रीकल्पसूत्रमें समाचारी व्याख्यानमें कहा है कि, "निच्चभत्तस्स भिक्खुस्स कप्पति एग गोयरकाल" आदि नित्य आहार करनेवाले साधुको गोचरीका काल कल्पता है अर्थात् सदैव एकाशन करनेवाले साधुको एकही गोचरीके समय श्रावकके घरमें प्रवेश करना और निकलना कल्पता

है दूसरी बार आना-जाना नही कल्पता। परन्तु यदि कोई साधु एकाशन करके आचार्य, उपाध्याय या ग्लान साधु आदिकी वैयावच्च करनेमे अशक्य हो तो उनको दो बार भी गोचरीके लिये जाना कल्पता हैं। क्योंकि तपसे भी वैयावृत्यका फल अधिक है। अपितु जो क्षुल्लक साधु हैं अर्थात जिनके दाढी, मूछ तथा बगलके बाल नही उगे हैं उनके दो बार गोचरी करने जानमे भी कोइ दोष नही है। एकान्तर उपवास करने वाले साधुको यदि पारणेके दिन एकबार गोचरी करनसे निर्वाह न हो तो दो बार गोचरी करनेकी छूट है। छट्ठ (दो उपवास) करनेवाले साधुका पारणके दिन दो बार गोचरी करनको जाना कल्पता है। और अट्ठम (तीन उपवास) या इससे अधिक ४-५ आदि उपवास करनेवाले साधुको पारणेके दिन सर्व काल गोचरीका है जब जब इच्छा हो तब तब ही गोचरीके लिये आ सकता है परन्तु प्रात काल लाई हुइ गोचरीको रख नही छोड़ सकते। क्योंकि उसमें जीवसंसक्तादिदोषका होना संभव है।

अब वह साधु आहारके लिये नगरमें फिरते हैं कि उस समय श्रावककी हाटमें सिंहकेसरिया लड्डुकी लाणी (भेट) देख उसने विचारा कि, "आज मैं लड्डु ही वहरुंगा और वे भी सिंहकेशरिया ही लूंगा।" ऐसा अभिग्रह धारण कर भिक्षाके लिये किसीके घरमे प्रवेश किया। रस लोलुपतावश दूसरा आहार नही लिया और सिंहकेसरिया लड्डु मिले नहीं। जिससे उनका क्लिष्ट अध्यवसाय हुआ

और वे सिंहकेशरिया लड्डुका ही ध्यानकर भटकने लगे। मध्याह्नकाल होनेपर "मुझे आज लड्डु नही मिले" ऐसा सोच चित्तमे खेद करने लगे। लड्डुके ध्यानमें ही तल्लीन होनेसे जब वे किसीके घर द्वारमे प्रवेश करते तो उस समय भी "धर्मलाभ" कहनेके स्थानमे "सिंहकेसरिया" शब्दका ही उच्चार हो जाता था। इसप्रकार पूरा दिन निर्गमन किया। रात्रिमें भी उसी प्रकार बाजारकी दुकानो तथा गली गलीम भटकने लगे। सायकालकी पडिलेहणा तथा तथा प्रतिक्रमणका समय भी स्मरणमें न आया। सूर्य किरणसे व्याप्त सर्व लोगोंके जाने-आनेके मार्गमे जीव रक्षाके लिये अवलोकन कर रखना चाहिये यह भी स्मरण नही आया। इसप्रकार भटकते भटकते रात्रिके दो पहर व्यतीत हो गये। उस समय किसी श्रावकके घरमे प्रवेश किया और "धर्मलाभ"के स्थानमे "सिंहकेसरिया" कह दिया। उस श्रावकने भी विनयसे अभ्युत्थान आदि कर "अयोग्य समयमे मुनिका आगमन कैसे हुआ?" इसका विचार करने लगा। उसने जाना कि, "यह साधु तपस्वी है आज ही मैंने इनको अप्रमत्त भाववाले देखा है। ससारी पनम भी इस साधुने धन, धान्य, सुवर्ण, स्त्री पुत्र, दास, दासी आदि सब वैभवका त्याग कर वैराग्यसे ही दीक्षा ग्रहण की थी। यह सब मैं जानता हू। अपितु यह मुनि गीतार्थ भी है फिर इस मुनिका अकस्मात् रात्रिके समय यहा आनेका क्या कारण है? यदि कदाच इसके प्रत्यक्ष दिखाई देनेवाले दोषोंको प्रगट करु तो मेरेमे श्रावकपन ही न कहलायगा।

अपितु अनेक सिद्धान्तके पारगामी इस मुनिके सामने मैं कुछ बोलने योग्य भी नहीं हूँ अथवा मेरे जैसे विषयासक्त पुरुषोंसे ऐसे महात्माका चरित्र जानते हुए भी नहीं कहा जा सकता अतः इसका परमार्थ तो ज्ञानीही जान सकते हैं क्योंकि बिना मनका भाव जाने बाहरकी मात्र व्यवहार विरुद्ध चेष्टा देखनेसे गुणीके गुण भी दोषरूप दिखाई देते हैं। फिर भी गुणग्राही बुद्धिसे इसकी परीक्षा तो अवश्य करना चाहिये—ये मुनि स्वयं पतित भाववाले हो गये हैं या कि वेषमात्र हो?" इस प्रकार विचार कर फिरसे वह श्रावक तर्क करने लगा कि, "इस मुनिकी कोई भी चेष्टा विषयोंमुख दिखाई नहीं देती तथा परधन हरणकी चेष्टा भी मालूम नहीं होती, अपितु बोलते समय मुखवस्त्रिका भी मुहके पास रखता है और चलते समय जयणापूर्वक डग भरता है, इसलिये यह मूलगुणका घातक तो नहीं जान पड़ता परन्तु इसे आहारकी तीव्र अभिलाषा हो जाना जान पड़ता है।" ऐसा विचार कर उससे नाना प्रकारका रसवती, मोदक, खाड, खाजा, घेवर, मोतीचूर, कपूरमिश्रित कूर (भात) तथा विविध प्रकारकी मिठाई उनके सामने लाकर रक्खा गया और उनको ग्रहण करनेको कहा गया परन्तु मुनिने तो प्रत्येक चीज देखकर "मुझे इसका खप नहीं, मुझे इसका खप नहीं" ऐसा बारबार कहने लगे। इसपर श्रावकने विचारा कि, "अभी तक तो यह मुनि उत्तम है क्योंकि इसके अभिग्रह रहित अन्य चीजोंको ये ग्रहण नहीं

करते हैं तथा जिस चिज़की इच्छा है उसकी याचना भी नही करते, तो फिर अब इसका क्या अभिग्रह है उसके भी कैसे जाना जा सकता है? फिर भी यहा प्रवेश करते समय ये 'सिंहकेसरिया" बोले थे इससे यह जान पड़ता है कि इनको सिंहकेसरिया लड्डूकी इच्छा होगी और वे किसी भी स्थानसे इनको न मिले हों इससे इनका चित्त भ्रमित हो गया हो।" ऐसा निश्चय कर उस श्रावकने लावणेमे आये सिंहकेसरिया लड्डुसे भरा बड़ा पात्र उनके समक्ष रख कर कहा कि, "हे पूज्य! इन मोदकोको ग्रहण कर मुझे कृतार्थ कीजिये।" इसपर मुनिने मोदक वहरे जिससे उसका चित्त स्वस्थ हो गया। फिर श्रावकने विचार किया कि, "मुनियोंके आहारके चार भाग हैं। (१) रात्रिमें लाकर रात्रिमेंही काममे ले लेना (२) रात्रिमे लाकर दिनमें काम लेना, (३) दिनमें लाकर रात्रिमे काम लेना और (४) दिनमें लाकर दिनमें ही काममे ले लेना। इन चार भागोंमेंसे अन्तिम भाग ही योग्य है। प्रथम तीन भाग योग्य नही है। इसलिये यदि यह मुनि कदाच जिह्वाकी लोलुपतासे यह आहार करेगा तो उसके उत्तर गुणको हानि होगी और उससे अनुक्रमसे मूलगुणका भी घात होगा जिससे महान् हानि होगी क्यों कि रात्रिभोजनमे अनन्त दोष हैं जिनको यह मुनि गीतार्थ होनेसे जानते हैं फिर भी इस समय इनके चित्तमें उसका स्मरण नही होता इसलिये मुझे ऐसा करना चाहिये कि जिससे इनको कालका निर्णय हो जाये और इनके लिये

महान् लाभदायक सिद्ध हो।" ऐसा विचार कर उस श्रावकने युक्तिपूर्वक विनय करके कहा कि, "हे स्वामी! आज जगम कल्पवृक्ष तुल्य तथा गुरुसे दो प्रकारकी शिक्षा धारण करनेवाले आप अकस्मात् मेरे घर पधारे जिसम मैं मेरेको बडाभागी समझता हू। आपको शुद्ध चारित्रवाला स्वरूप देखकर माना मैंने आज पुडरीक स्वामी आदि सब पूर्व मुनियोका दर्शन कर लिया है ऐसा मै मानता हू आपके सतोषामृतयुक्त आचरण और चरणकरणको धन्य है मै तो मोहजालमे फँसा हुआ लोभग्रस्त इन्द्रियोंके क्षणिक सुखम मग्न हुआ तथा स्त्री–पुत्रादिम आसक्त हुआ ह इसलिये एक मुहसे आपकी सद्भावनाका वर्णन करनेमें असमर्थ हू।

फिर भी आपने यहा पधार ससारमें डुबते हुए मुझ पर बडी कृपा की है। अब मै आपसे एक प्रश्न करता ह उसका उत्तर देनेकी कृपा करे। मैं प्रतिदिन प्रात काल जब दो तीन तारा आकाशम दिखाइ देते है उस समय नवकारसी आदि प्रत्याख्यान करता ह आज मैने पुरिमड्ढका पच्चक्खाण किया है सो उसका कालपूर्ण हुआ है या नही।" यह सुन मुनिने श्रुतज्ञानका उपयोग दे आकाशम तारामडलकी ओर देखा तो जान पडा कि अभी रात्रिके दो पहर व्यतीत हुए हैं इससे मध्य रात्रिका समय है, उत्तराध्ययनके छब्बीसवे अध्ययनमें कहा है कि —

पढमपोरिसि सज्झायं, बीयं झानं च झायइ ।
तइयाए निद्दमोक्खं तु चउत्थिए भूयोवि सज्झाय ॥१॥

भावार्थ –" रात्रि की प्रथम पोरसीमें स्वाध्याय, दूसरी में ध्यान, तीसरी मे निद्रात्याग अर्थात् निद्रा लेना और चोथी मे वापस स्वाध्याय करना चाहिये ॥

रात्रि के चार पहर जानने का उपाय

ज नइ जया रत्ति, नक्खत तम्हिह चउब्भाए ।
सपत्ते विरमिज्जा, सज्झायओ पओस कालंमि ॥२॥

भावाथ —" जब जो नक्षत्र रात्रि को समाप्त करे, अर्थात् जिस नक्षत्र के जिस स्थान पर अस्त होनेसे रात्रि पूरी होतो हो वह नक्षत्र प्रदोष काल में जहासे आकाश के चोथे भागमे आवे उस समय (पहला प्रहर पूरा हुआ जानना सज्झाय से विराम पाना चाहिये, (ईसी प्रकार चारों प्रहर के लिये समझ ले)

इस प्रकार विचार करते हुए उस साधुने उसके मन का भ्रमितपन भी जान लिया और मनमें विचार लगा कि, " अहो ! मुज मुर्ख ने विरुद्ध आचरण किया, लोभसे पराभव पाये मेरे जीवनको धिक्कार हैं । " ऐसा विचार कर उसने श्रावकसे कहा कि–" हे जैन तत्त्वज्ञ श्रावक ! तू धन्य है और कृत पुण्य हैं। तूने मुझे सिंहकेसरिया द कर और पुरिमड्ढ पच्चखाण सम्बन्धी प्रश्न कर ससार मे डूबने

मुझको रक्षण किया है तेरा ज्ञान सच्चा है अपितु मुझ मार्ग भ्रष्टको मार्गमें लानेसे तु मेरा धर्मगुरु है । तेरी चतुराई तथा धैर्यवाणीका वर्णन नहीं किया जा सकता " आदि स्वनिंदा और उस श्रावककी श्लाघा कर फिर रात्रि होनेसे चलनेका आचार न होनेसे उसने श्रावकसे रहनेके स्थानकी याचना कर वे वहा एकान्तमें ध्यानमग्न रहे ।

प्रातःकाल उस आहारको परठवन (फैंकने)के लिए शुद्ध स्थंडिल भूमि देखकर विधिपूर्वक मोदकका चूर्ण करते हुए वे दृढप्रहारि सदृश भावना भाने लगे और शुद्ध ध्यानरूपी अग्निद्वारा कर्मरूपी इंधनको जलाने लगे । इसप्रकार एक क्षणमात्रमें समग्र घातिकर्मका नाश हो जानेसे उनको केवल ज्ञान उत्पन्न हो गया । देवताओं द्वारा निर्मित सुवर्ण कमल पर बैठकर उन्होंने देशना दी । उक्त श्रावक आदि सब लोग यह देख आश्चर्यचकित हो गये ।

इन मुनिद्वारा लिये सिंहकेसरिया लड्डु समान लोभ पिंड शुद्ध न होनेसे ग्रहण करने योग्य नहीं है । ऐसा समझ और श्रावकके युक्तियुक्त वचनसे उन मुनिने अपने गुणका स्मरण किया तथा व्रतके रागी थे इससे उन्होंने परमात्मपद प्राप्त किया ऐसा जानना चाहिये ।

[इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशप्रासादवृत्तौ सप्तदशस्तम्भस्य सप्तचत्वारिंशदधिकद्विशततम प्रबंध ॥२४७॥]

व्याख्यान २४८

दशवे अद्धा पच्चखाणके दश भेद और उनका फल

प्रत्याख्यानानि दिग्भेदे, कालिकानि प्रचक्ष्यते ।
प्रत्याख्यान प्रतीत्यैक, वर्धमानफल भवेत् ॥१॥

भावार्थ —"प्रत्याख्यानके मुख्य दश भेद हैं ।" उनमेंसे कालप्रत्याख्यानके भी दस भेद हैं । जिनका वर्णन किया जाता है । ये प्रत्येक प्रत्याख्यान अधिकाधिक फल देनेवाले है ।"

पूर्वाचार्योने जो अद्धापचखाणके दश भेद प्रत्याख्यान भाष्यमे बतलाये हैं वे इस प्रकार हैं कि —

नवकारसहिय पोरिसी, पुरिमड्ढेगासणेगठाणेय ।
आयंबिल अभत्तट्ठे, चरमे अभिग्गहे विगई ॥१॥

भावार्थ —"नवकारसी, पोरसी, पुरिमड्ढ, एकासना, एकलठाणा, आंबिल, उपवास भवचरिम अथवा दिवस चरिम, अभिग्रह और विगई । ये दश प्रकारके प्रत्याख्यान हैं ।

इनमें प्रथम नवकारसी पच्चखाण है । इसमें प्रत्याख्यानके भंगका दोष टालनेके लिये [1]अनाभोग तथा [2]सह

---

[1] अजानपन [2] अकस्मातपन

साकाररूप दो आगार ;(अन्नथ्थणाभोगेण, सहसागारेण)
जानना । यहा यदि किसीको शका हो कि—"नवकारसीके
पच्चखाणमे कालका कोई मान नही बतलाया गया हैं,
इससे यह सकेत पच्चखाण होगा एसा अनुमान किया जाता
है कि-नवकारसीम भी, "सूरे उग्गए"का पाठ है इससे
यह पच्चखाण सूर्योदयसे ही होता है ।

प्रश्न —यहा मुहूर्त शब्दको विशेष्य होना नही बतलाया
गया फिर उसे क्यो माना जाये ? क्योंकि जब आकाश
पुष्प ही असत्य है तो फिर समझदार पुरुष उसके खुश
बूदार, सुन्दर आदि विशेषण क्यो कर लगाये ?

उत्तर —नवकारसी को अध्धापच्चखाणमें प्रथम स्थान
दिया गया है, तथा उसके पश्चात् दूसरा पच्चख्खाण पोरसी
का बतलाया गया है इसलिये पोरसी के पहलेका समय
मात्र मुहूर्त ही अवशेष रहता हैं इसलिये मुहूर्त शब्द को
विशेष्य में मानलेनेमे कोई अनुचित नही है ।

प्रश्न —कदाच ऐसा हो फिर भी एक ही मुहूर्त क्यो
कहा जाता है ? दो तीन मुहूर्त क्यो नही ले लेते ?

जवाब —नवकारसी के आगार मात्र दो ही है और
पोरसी के छ हैं, इसलिये नवकारसीका काल बहुत ही सूक्ष्म
होना चाहिये । इसलिये एक ही मुहूर्त का काल गिनना
योग्य हैं । अपितु जब पच्चखाण नवकारसहिका है
इसलिये एक मुहूर्तका काल पूर्ण होने बाद भी नवकार गिने

बिना पच्चखाण पूर्ण नही होता इसी प्रकार उस समय के पूर्ण होनेसे पूर्व नवकार मन्त्र गिन कर भी यदि पच्चखाण पाला जाये तो वह अपूर्ण रहता है इससे उनका भग होता है।

प्रश्न —तब इसका क्या कारण है कि प्रथम मुहूर्त ही नवकारसी के पच्चखाण मे लिया जाये। दूसरा तीसरा क्यो नही लिया जाता?

जवाब — पोरसी के पच्चखाणमे जैसे "सूरे उग्गए" का पाठ है वैसे ही नवकारसीमे भी "सूरे उग्गये" का पाठ है इससे यह पच्चखाण सूर्योदय से होता है।

अपितु नवकारसी, पोरसी आदि काल पच्चखाण यदि सूर्योदय क पूर्व ही लियाजाये तोही वह शुद्ध कहलाता है और दूसरे पच्चखाण तो सूर्योदय के पश्चात् भी लिये जा सकते हैं। यदि नवकारसी का पच्चखाण सूर्योदय के पूर्व किया हो तो उस पच्चखाण से पूर्ण होने पश्चात् भी पोरसी आदि काल पच्चखाण हो सकता हो परन्तु यदि नवकारसी का पच्चखाण नहीं किया हो और पोरसी आदि पच्चखाण सूर्योदयके पश्चात् करे तो वह शुद्ध नही होता है अर्थात् जिस जिस को उसको अवधि के पूर्व किया हो तो भी वह अशुद्ध ही कहलाता है। इसीप्रकार सूर्योदय से पूर्व पोरसी आदि पच्चखाण किया हो और नवकारसी का पच्चखाण न किया हो, तो उस पोरसी आदि के पच्चखाण

के पूरा होने बाद अन्य कोई पच्चक्खाण नहीं हो सकता है परन्तु उन उन पच्चखान के पूरे होने के पूर्व ही यदि किया जाये तो वह शुद्ध कहता है आदि वृद्ध व्यवहार प्रचलित है।

यह नवकारसी का पच्चक्खाण रात्रि भोजन के प्रत्याख्यान सदृशतका निर्णयरूप होने से रात्रि को चोवीहार करने वाला को ही करना उचित प्रतीत होता है।

दूसरा पोरसी का पच्चक्खाण एक पहर तकका है। इसके विषय मे श्री उत्तराध्ययन म कहा गया है कि—"पुरुष के शरीर जितनी छाया हो तब पोरसी पूरी होती है।" इस पच्चक्खाण के छ आगार बतलाये गये है। ऐसा ही साधपोरसी पच्चक्खाण के विषय म जान क्योंकि उसका इस मे समावेश होता है।

तीसरा पुरिमड्ढ पच्चक्खाण दिनके प्रथम दो पहर तकका है। इसम पोरसीमे बतलाये छ आगारोके उपरान्त एक महत्तरागार अधिक है अर्थात् इसके सात आगार हैं। नवकारसीका पच्चक्खाण यदि सूर्योदयसे पूर्व न लिया गया हो फिरभी पुरिमड्ढका पच्चक्खाण लिया जा सकता है। अवड्ढ पच्चक्खाणको भी पुरिमड्ढ पच्चक्खाणके समान पीछले दो पहरका [1]समझे।

---

१ अवड्ढ पच्चक्खाण सूर्योदयसे तीन पहरका कहलाता है। इसमें पूर्वार्द्ध (पुरिमड्ढ)के समान अवड्ढ (अपरार्द्ध) भी पिछले दो पहरका कहा गया है। तत्व तो बहुश्रुत ही जान सकते है।

चोथा एकासना अर्थात् एकवार अशन याने भोजन करना अथवा एक आसन पर बैठकर भोजन करना । इस एकासना पच्चखाणके आठ आगार बतलाये गये हैं ।

पाचवा एकलठाणा इसे एकासनाके समान ही समझना चाहिये । इसमे सिर्फ फर्क इतना है कि—शरीरका संकोच और विकास किये बिना एकही स्थान पर शरीरको रखना इसे एकस्थान (एकलठाणा) पच्चखाण कहते हैं । इससे इसमे आउट्टणपसारेण आगार रहित सात आगार हैं । इसमे भोजन समय प्रथम जिसप्रकार शरीरके अंगोपाग रक्खे हों उन्ह उसी तरह जबतक भोजन समाप्त हो तब तक रखना चाहिये । मात्र एक हाथ और मुह अशक्य परिहार होनेसे उनको चलानेका निषध नही है ।

यहा पर यदि किसीको शका हो कि—“एकासना आदिके पच्चक्खाणमें कालका नियम होना नही जान पड़ता हैं फिर उसे काल पच्चखाण क्यो कहा जाता हैं ?” इसका उत्तर यह हैं कि—“एकासणादिक पच्चखाण भी प्राय पोरसी आदि काल पच्चखाणके साथही साथ किये जाते हैं इससे इन्हे काल पच्चखाण कहा जाता है ।”

छट्ठा आयंबिल आचाम्ल अर्थात् [1]अवश्रावण तथा आम्ल अर्थात् चोथा रस (खट्टा) उससे निवृत होना आचाम्ल (आंबिल कहलाता है । यह तीन प्रकारका है । यह चावल,

[1] लोकमें ओसामण कहा जाता हैं

रूद्र व सायवे के आहारसे होता है अथवा अब श्रावण सदश जो अन्नादिक स्वादरहित कर दिये जावे उसे आचाम्ल कहते हैं । इस पच्चखाणमें भी आठ आगार है परन्तु वे एकासणासे भिन्न हैं ।

सातवां अभक्तार्थ अर्थात् उपवासका पच्चखाण । इसके पांच आगार हैं । जिसमें भोजन करनेका प्रयोजन न होनेसे उसे अभक्तार्थ अर्थात् उपवास करते हैं । यदि अगली रात्रिको चौविहारका पच्चखाण किया हो और दूसरे दिन उपवास किया जाय तो उसे चोथभक्त पच्चखाण दीया जाता है और अगली रात्रिको पच्चखाण किये बिना यदि दूसरे रोज उपवास किया जाय तो उस पच्चखाणमें मात्र "अभक्त" कहकर ही पच्चखाण दिया जाता है चोथ नहीं कहा जाता अपितु यदि अगले तथा पिछले दिन एकासना कर बीचमे उपवास करे तो उसे चोथ भक्त कहते हैं ऐसा वृद्ध सम्प्रदाय का मत हैं ।

आठवां चरिम अर्थात् दिनके पिछले भागमें तथा आयुष्य के पिछले भाग में जो पच्चखाण लिये जाते है उन्हे "दिवस चरिम" अथवा "भवचरिम" कहते है । इसमें चार आगार हैं । साधु को जीवन पर्यन्त सदैव रात्रिमे त्रिविध त्रिविध भागसे चोवीहार पच्चखाण होते है और श्रावकों को शक्ति अनुसार चौवीहार, तिविहार आदि पच्चखाण हो सकते है,

नवमां अभिग्रह पच्चखाण है इस के भी चार आगार बतलाये गये हैं । अंगुठि मुट्ठी, ग्रन्थी (गांठ) आदि सहित

किये जाने वाले सर्व अभिग्रहोंका समावेश इस पच्चखाण में हो जाता है। प्रमाद हटाने के इच्छुक पुरुष को पच्च खाण बिना एक क्षण भी रहना योग्य नहीं है अत नव कारसी आदि काल पच्चखाण के पूर्ण होने पर ग्रन्थी अथवा मुट्ठी सहित पच्चखाण करना चाहिये। बारबार औषधिखाने वाले बालक तथा रोगी आदि के लिये भी यह पच्चखाण सुसाध्य और अप्रमाद का कारण है। इस पच्चखाण के करने से महान फल की प्राप्ति होती है। मात्र एकही बार ग्रथी सहित प्रत्याख्यान करने वाले मास, मध में आसक्त कुविद नामक वणकर कपर्दि नामक यक्ष हुआ था। उसका दृष्टान्त इस प्रकार हैं —

क्षितिपुर नगरमे मद्य मांस भक्षक कुविद नामक एक वणकर रहता था, उसकी एक दिन अनायास हि वज्रस्वामी सुरिसे भेट हो गई, उस समय गुरूने दश प्रकारके प्रत्याख्यानका व्याख्यान सुनाया जिसमे गंठसीके पच्चख्खाण प्रसंग पर गुरूने कहा कि—

जे निच्चमप्पमत्ता, गंठि बंधंति गंठिसहियस्स ।
सग्गपवग्ग सुक्ख, तेहि निबद्ध स गंठिमि ॥१॥

भावार्थ —"जो अप्रमादी पुरुष हमेशा गंठसीके पच्चख्खाण सहित गांठ बांधते हैं उन्होंने मानो, वस ग्रंथीसे स्वर्ग मोक्षका सुख बांध लिया है ऐसा समझना चाहिये।"

भणिऊण नमुक्कार, निच्च चिम्मरण वज्जियघना ।
पारंति गठिसहिय, गठिसह कम्मगठि वी ॥२॥

भावार्थ –"जो धन्य पुरुस हमेशा स्मरण पूर्वक नमस्कार कर गठशी पच्चखाण पालते हैं (गाठ खोलते हैं) वे न्न गाठ खोल्नेके साथ साथ कर्मरुप ग्रन्थी भी खोल देते हैं ऐसा समझना चाहिय ।'

"रात्रिमें चार प्रकारसे आहारका त्याग करे, दिनमे एक स्थान पर बैठ कर तांबूल आदि द्वारा मुह शुद्धि करे तथा गठ्ठी प्रत्याख्यान कर ऐसे पुरुषको यदि वह हमेशा दिनमे एकबार भोजन करता हो, तब प्रति मास उनतीस निर्मल उपवासका और दोवार भोजन करता हातो अठाइस निर्मल उपवासका, फल मिलता है, ऐसा वृद्ध पुरुषाका कथन है क्योंकि भोजन, पानी, ताम्बूल आदिके उपयोगमें दिनभरमें करीब दो घड़ी व्यतीत होती है इसलिये महिनेम साठ घड़ी व्यतीत होनेसे एक दिन खान पीनका गिना गया है इससे शेष उनतीस और दोवार भोजन करने वालेकी चार घड़ी व्यतीत होती है इससे दोदिन कम करनसे अठाईस दिन उपवासवाले गिने गये हैं ।' आदि उपदेश सुननसे वह वणकर प्रतिबोधित हुआ और गठ्ठी पच्चख्खान धारनेका नियम किया । अनुक्रमसे मर कर कपर्दि नामक यक्ष हुआ ।

एक बार वज्रस्वामी चतुर्विध संघ सहित सिद्धगिरिकी यात्राके लिये रवाना हुए । मार्गमें शत्रुंजय गिरि पर रहने

वाले किसी मिथ्यात्वी देवताने उपसर्ग किया । जिसमे सपूर्ण सघको दिङ्मूढ कर दिया और महान् विकट तथा लम्बा पर्वत विकुर्वीत कर जानेका मार्ग सर्वत्र रोक दिया । उस समय सूरिने शासन देवताका स्मरण किया । इधर कपर्दि यक्षने तुरन्त उत्पन्न होनेसे विचार किया कि, "मैंने पूर्व भवमे क्या क्या पुण्य किया है कि जिससे मुझे ऐसा देवताका सुख प्राप्त हुआ है ?" ऐसे विचार जब उसने अवधि ज्ञानका उपयोग किया तो गुरु द्वारा कराये प्रत्याख्यान का फल प्रत्यक्ष दिखाई दिया । इसलिये वह गुरुको वन्दना करनेके लिये पूर्व भवका रूप धारण कर उनके पास गया । गुरुको नमस्कार कर उसने कहा कि "हे पूज्य स्वामी ! क्या आप मुझ पहचानते हैं ?" तब ऐसा पूछने पे ज्ञानी सूरिने उपयोग द्वारा उसका पूर्व भवको बतलाया । जिसे सुन कपर्दि बोला कि, "हे महाराज ! मुझे कुछ सेवा बतलाइये ।" सूरिने कहा कि, "किसी दुष्टने इस सघमे उपद्रव मचाया है सो तू इसका निवारण कर ।" यह सुन उस कपर्दि यक्षने शीघ्र उस मिथ्यात्वी देवको पराजित कर उसे सिद्धगिरिसे निचे गिरा दिया । वह वहासे दूर जा किसीस्थान पर शुभ रूपसे रहने लगा । सूरि उपद्रव रहित सघके साथ बडे उत्सव पूर्वक सिद्धाचल जी आये और वहा कपर्दि यक्षको शत्रुजय पर्वतके अधिष्ठायक के रूपमे स्थापित किया । इसीलिये पूर्वमे आचार्योंने युगादीशकी स्तुति करते हुए उसका स्मरण किया है कि—

य॰ पूर्वं ततुवाय, मुत्ततक्ष्त्वर्यई रिति पूरितोऽपि
मत्याखानप्रमादादमरमृगदशामातिथेय प्रपदे ।
सेवाहेवाकि शाली प्रथमजिनपदाम्भोजयोस्तीर्थरक्षा-
दक्ष श्रीयक्षराज स भवतु भविना विघ्नमर्दी कपर्दि ॥ ३

भावार्थः—"यद्यपि यक्षराज पूर्व भवमें पापवृत्ति ततुवाय (बुनकर) था किसी पुण्य लेश द्वारा प्रत्याख्यानके प्रभावसे देवागनाओं का अतिथि बना वो आदीश्वर के चरण कमलों का निरतर सेवा करने से शोभित तीर्थ रक्षणमें चतुर, कपर्दि यक्ष भव्य प्राणियोंके विघ्नों का नाश करे ।"

इस प्रकार मन्थी सहित अभिग्रह पच्चक्खाण का फल मिलता है ।

दशवां निविप्रत्याख्यान है जिसमें सर्व विगइका त्याग करना पड़ता है । उस पच्चक्खाण में आठ या नौ आगार हैं । इनमें पिंडरूप (कठिन वस्तु) मक्खन, गुड, आदि जो छोडे, जा सकते हैं । उनके सहित अर्थात् पिंड तथा द्रव्यरूप दोनो विषय का जो पच्चक्खाण किया जाता है उसे उत्क्षिप्तविवेगेण नामक आगार सहित नौ आगार समझे और यदि द्रव्यरूप अर्थात् जो छोडे न जा सके वैसे अकेले द्रव्य विषय का पच्चक्खाण करे उसे उस आगार रहित शेष आठ आगार जाने । इस विषय पर बहुत विस्तार है जो प्रवचन सारोद्धार की वृत्ति से जाना जा सकता है ।

विगइ काममे लेनेका फल पच्चक्खाण भाष्यमे इस प्रकार कहा गया है कि —

विगइ विगइभीओ, विगइगय जो अ भुजए साहू ।
विगइ विगइसहावा, विगइ विगइ बला नेइ ॥

भावार्थ —" विगति अर्थात् नरकादि गति से भय भित साधु भी यदि विगइ (दूध आदि) तथा विगइगत अर्थात् निवियाताका भोजन करे तो उसके विगइ विकृति के स्वभाव वाली अथात विकार करने वाली होनेसे वह उसे बलात्कार पूर्वक विगति अर्थात् कुगतिमे ले जाती है ।"

अत बिना कारण के विगइका भोजन नही करना चाहिये । इस प्रकार काल प्रत्याख्यानके दश भेद बतलाये गये हैं । उसका फल मात्र आधी गाथा द्वारा वर्णित किया गया है । उसका भावार्थ यह है कि—नरकके जीव अकाम निर्जराद्वारा सो वर्षमें जितने कर्मोका नाश करते हैं उतने कर्मोका नाश मात्र नवकारशी के पच्चक्खाण वाला श्रद्धालु जीव कर सकता है इसी प्रकार पोरसी पच्चक्खाण द्वारा हजार वर्षो के पाप कर्मोंका नाश किया जा सकता है । साढ पोरसीके पच्चक्खाण से दश हजार वर्षके अशुभ

१ दुध दही, घी तेल, गुड और पक्वान को विगइ कहा जाता है । इनम से प्रत्येक विगइ के पांच पांच निवीयाता हैं जैसे दुध विगइ के खीर, दुधपाक आदि है वैसे ।

कर्मोंका नाश होता है । सब जगह नारकी जीवके कर्मका अनुसंधान समझे । अपितु नारकी के जीव क्षुधा, तृषा, तथा अन्य क्षेत्रादिक वेदनाको लाख वर्ष तक अनुभव कर अकाम निर्जरा द्वारा पूर्व भवमे उपार्जित जितने निकाचित कर्मबंधनका नाश करते हैं उतनेही वर्षके अशुभ कर्म मात्र एक पुरिमड्ढ पच्चक्खाणसे नष्ट होजाते हैं । इस प्रकार उत्तरोत्तर बढते पच्चक्खाणसे दश दश गुने कर्मोंका नाश होता है । अर्थात् एकासनासे दस लाख वर्षके कर्म, निविसे करोड़ वर्षके कर्म, एकलठाणेसे दस करोड़ वर्षके कर्म, आंबिलसे सो करोड़ वर्षके कर्म, उपवाससे [1]दस हजार करोड़ वर्षके कर्म, दो उपवाससे लाख करोड़ वर्षके कर्म, और अट्ठम (तीन उपवास) से दस लाख करोड वर्षके अशुभ कर्मोंका क्षय होता है । इस प्रकार प्रत्याख्यानका फल जानकर योग्य जीवोंको बलात्कार पूर्वक भी पच्चक्खाण करना उचित है इस पर दृष्टान्त प्रसिद्ध है कि –

पाटलीपुर नगर मे शकडालमंत्रीका पुत्र श्रीयक नंद राजा का मंत्री था । उसने चिरकाल तक राज्य का प्रधान पद रह कर फिर, दीक्षा ली थी । वह अत्यंत क्षुधावान था इसलिये वह एकासना जैसा तप भी नहीं करसकता था परन्तु क्रिया मे सदैव तत्पर रहता था । एक बार पर्युषण

---

[1] हजार करोड वर्ष के लिए कौनसा पच्चक्खाण है इसका उल्लेख नहीं हैं। कदाच तिविहार उपवास का उतना काल हो और चौविहार उपवास का १० हजार करोड वर्षका हो तो हो।

पर्व में उनके बहिन यक्षा नामक आर्याने श्रीयक मुनि से कहाकि, बन्धु ! तुम पच्चक्खाण का फल जानते हो अपितु हालही में चारित्र ग्रहण कियाहैं अत ऐसे पयूषण पर्व पर तो विशेषतया तपस्या करनी चाहिये।" इस प्रकार उसकी बहिन यक्षा आर्या के वचन से श्रीयकमुनि लज्जित हो गये इस लिये उन्होने पेरसीका पच्चक्खाण लिया। उस पच्चक्खाण समाप्त होनेहीवाला था कि फिरसे यक्षा आर्याने कहा कि, "तुम पुरिमड्ढ पच्चक्खान करो। यह पर्व अत्यन्त दुर्लभ है, और इतना समयतो चैत्य परिपाटी करते हुएही सुगमता से व्यतीत हो जायगा।" यह सुन मुनिने वैसाही किया। उस पच्चक्खानके पूरा होने पर आर्याने फिरसे कहा कि, "अब अवड्ढ काल तक ठहेरो।" इस पर उमने इसे भी शिरो धार्य किया। उस कालके भी पूर्ण होने पर आर्याने फिरसे कहा कि, "हे बन्धु ! अबतो रात्रिका समय नजदीक आ गया है, और रात्रितो सोनेसे सुखपूर्वक व्यतीत हो जायगी अत उपवासका पच्चक्खाण कर लीजिये।" बहिन के आग्रहसे मुनिने वैसाही किया। अर्ध रात्रिमे क्षुधाकी पीड़ा बढ जानेसे देवगुरूका स्मरण करते हुए मुनि मरकर देवलोकमे चले गये ! यह बात सुन यक्षा साध्वीने उस पर ऋषिहत्याकी शका मान चतुर्विध आहारका त्याग कर दिया। उस समय चतुर्विध सघने एकत्रित होकर साध्वीसे कहा कि, "आपने तो शुभ भावसे उपवास कराया था इससे इसमें आपको कोईभी प्रायश्चित् नही है।" साध्वीने

ओस घसे कहा कि–"यदि साक्षात् जिनेश्वर मुजे कहे तबही मेरे मनकी शंका दूर हो सकती है अन्यथा मेरा मन शान्त नही हो सकता ।" ये सुन सब संघने कायोत्सर्ग किया जिस पर शासन देवीने आकर कहा कि, "जो काम हो सो कहो मैं क्या करूं ?" संघने कहा कि–'इस साध्वी को सीमंधर स्वामीके पास ले जाओ ।" देवीने कहा कि, "तुम सर्व मंघ मेरी निर्विघ्न गतिके लिये कायोत्सर्गमें ही रहो ।" संघने फिरसे कायोत्सर्ग किया । देवी उस साध्वी को जिनेश्वरके पास महाविदेह क्षेत्रमे ले गई । साध्वीने प्रभुको नमस्कार कर अपना वृतान्त कहा तिसपर प्रभुने कहा कि, "हे साध्वी ! तू निर्दोष है" उस साध्वीको देख वहके लोगोंको अत्यन्त आश्चर्य हुआ । फिर जिनेश्वरने उसे कृपा कर दो चूलिका दी । साध्वीका संदेह नष्ट हो गया इसलिये शासनदेवी उसे वापस उसके स्थान पर ले आई । संघने कायोत्सर्ग पूर्ण किया । फिर यक्षा आर्याने श्रीसंघसे कहा कि, "श्री सीमंधर स्वामीने मेरे मुहसे संघके लिए पदो तथा चार अध्ययन भेजे हैं जिसके विषयमे परिशिष्ट पर्वमे कहा गया है कि –

> भावना च विमुक्तिश्च, रतिकल्पमथापरम् ।
> तथा विविक्तचर्या च, तानि चैतानि नामत ॥१॥

भावार्थ –"भावना, विमुक्ति, रतिकल्प और एकान्त चर्या ये चार अध्ययनोंके नाम हैं ।"

हो और गुरू अज्ञान हो और (४) शिष्य तथा गुरू दोनों अज्ञान हो। इन चार भागोंमे से प्रथम शुद्ध है। दूसरा भी शुद्ध है, क्योंकि यदि गुरु ज्ञाता होतो अज्ञान शिष्य के भी समझा कर प्रत्याख्यान करा सकता है अन्यथा यह भाग अशुद्ध है। तीसरा भाग भी अशुद्ध है परन्तु यदि वैसे ज्ञाता गुरू न मिले तो गुरूके सदृश बहुमानसे - गुरू, सम्बन्धी, पिता, काका, मामा, भाई या शिष्य आदि अज्ञान को भी साक्षीरूप करा प्रत्याख्यान ग्रहण करेतो उसके स्वयके ज्ञाता होनेसे उसे शुद्ध समझे। चोथा भाग तो सर्वथा अशुद्ध ही है।

उत्तरगुण प्रत्याख्यान के दस भाग हैं। वे निरन्तर उपयोगी होनेसे प्रथम उन्हीका स्वरूप बतलाया जाता है।

अणागयमइक्कंत, कोडीसहिय नियंटि अणागारं।
सागार निरवसेसं, परिमाणकडं सकेअ अद्धा ॥१॥

शब्दार्थ -अनागत, अतिक्रांत, कोटीसहित, नियंत्रित, अनागार, सागार, निरवशेष, परिणामकृत, संकेत, और अध्धा ये दश प्रकार हैं।

१ पर्यूषण आदि पर्व आगे आने वाले हों, उनमें अट्ठम आदि तप करना हो परन्तु पर्यूषणमें तप करनेसे गुरु, ग्लान आदिकी वैयावच्च करनेमें अन्तराय आयगा ऐसा यदि विचार आता हो तो उस पर्वके आनेसे पूर्वही उस तपको कर लेना अनागत तप कहलाता है। २ पर्यू-

पण आदि पर्वमें गुरु आदिकी वैयावचमें व्याकुल रहनेसे तप न हो सका इससे उस तपको पर्वके व्यतित होने पश्चात् करना अतिक्रान्त तप कहलाता है। (३) प्रथम दिन प्रात काल अभक्तका प्रत्याख्यान कर उस दिन उपवास करे और दूसरे दिन भी प्रात कालमें जिस समय प्रथम दिन उपवासका पच्चक्खाण किया था उसी समय दूसरे उपवासका पच्चक्खाण ले अर्थात् दो उपवासकी कोटी मिलने

से उसे कोटी सहित पच्चक्खाण कहते हैं। इसी प्रकार पारणा करनेसे पूर्व आंबिल आदिका पच्चक्खाण करना भी कोटी सहित कहलाता है। ४ उपवासादिक करनेका जिस दिन निश्चय किया हो उस दिन ग्लानत्वादिक अन्तराय प्राप्त होने पर भी जो नियमपूर्वक उपवासादिक करता है उसे नियन्त्रित पच्चक्खान कहते हैं ऐसा तप पूर्वमे चौदह पूर्व धर आदि तथा प्रथम संघयण वाले और उस समयके स्थविरकल्पी भी करते थे परन्तु साम्प्रत समयमें उस तपका विच्छेद हो गया है। ५ अनागार अर्थात् "महत्तरागारेण"

आदि आगार रहित जो पच्चक्खाण किया जाता है उसे अनागार कहते हैं। इस पच्चक्खाणमें भी "अन्नथ्थणा-भोगेण तथा सहसागारेण" ये दो आगार तो आतेही हैं क्योंकि किसी समय अज्ञानसे अथवा रभसतासे मुहमें अंगुली, तृण आदि डाल दिया जाता है अथवा अचिन्त्य ही मुहमें आ पड़ते हैं अतः उपरोक्त दो आगारके अतिरिक्त अन्य जो "महत्तरागारेण" आदि आगार रहित पच्चक्खाण

किया जाता है उसे अनागार पच्चक्खाण कहते हैं। ६ महत्तरादिक आगार सहित जो पच्चक्खाण किये जाते हैं उन्हें सागार पच्चक्खाण कहते हैं। इनमे महत्तरागार होनेसे किसी महान् कायके प्रसग पर गुरूकी आज्ञा द्वारा यदि पच्चक्खाण करलेने परभी कदाच भोजन करना पडेतो उसमे पच्चक्खाणका भग नही होता है। ७ चार प्रकारके आहारका सर्वथा त्याग करना निरवशेष पच्चक्खाण कहलाता है उसमे अशन अर्थात् लड्डु, माडा, खाजा आदि, पान अर्थात् पीने योग्य वस्तु, खर्जूरका रस, द्राक्ष रस आदि, खादिम अर्थात् नारियल, आदि फल तथा गुड़ धाना आदि और स्वादिम अर्थात् इलायची, कपूर, लवग, सुपारी आदि। इन चारों प्रकारके आहारका त्याग किया जाता है। ८ आठवा परिमाण कृत पच्चक्खाण है इसमें कवल तथा भिक्षाके घर आदिको सख्या रखना अर्थात् नियम रखना होता है। इस तपमे जितना परिमाण किया हो उससे अधिक वस्तु किसीभी दशामे काममे नही लेना चाहिये।

नवमा सकेत पच्चक्खाण है। इसमें "सकेत" अर्थात जो "घर" सहित हो वह "गृहस्थ", अथवा सकेत अर्थात् गृहस्थके करने योग्य पच्चक्खाण उसे साकेतिक पच्चक्खाण कहते है। यह पच्चक्खाण प्राय गृहस्थको ही होता है अथवा "केत" अर्थात् चिन्ह और "स" अर्थात् सहित। अर्थात् किसी भी चिन्हके साथ लिया जाता है। जैसे कोई श्रावक पोरसी आदि पच्चक्खाण लेकर क्षेत्र आदि

अन्य स्थानमें गया हो अथवा घर ही रहा हो। फिर प्रत्याख्यानका समय पूर्ण होता हो परन्तु भोजन सामग्रीपे न बनी हो तो उसके लिये एक क्षणभर भी प्रत्याख्यान बिना रहना योग्य नहीं है ऐसा विचार कर अगुठी आदिका चिन्ह करे, अर्थात् कि-"जबतक मुट्ठिमें अगुठा रख नवकार गिन बाहिर न निकालु तब तक, अथवा मुट्ठी खोलु नहीं अथवा गाठ खोलु नहीं तब तक मुझे भोजन नहीं करना है" इसीप्रकार "जब तक द्वारमें प्रवेश न करू, अथवा पसीनेके बिन्दु न सूक जाये अथवा दिपक न बुझ जाये तब तक मेरे भोजन नहीं करना है ऐसा जो नियम कर लेता है उसे संकेत पच्चख्खाण कहते हैं। पहर पोरसी आदिका पच्चख्खाण न करनेपर भी जो मात्र मुठी आदि चिन्हको धारण कर अभिग्रह लिया जाता है तो उसे भी सांकेतिक पच्चख्खाण कहते हैं। इसीप्रकार साधु भी पच्चख्खाण कर सकते हैं। १० वां अद्धा पच्चख्खाण है। अध्धा शब्दसे प्रयोजन कालसे है। इसमें मुहूर्त प्रहर आदि कालका नियम कर पच्चख्खाण किया जाता है इससे इसको अध्धा पच्चख्खाण कहते हैं। इसका स्वरूप पीछले व्याख्यानमें बतला दिया गया है।

कोई भी पच्चख्खाण लिया हो तो उसका दामन्नककी सदृश बराबर पालन करना चाहिये। उसका दृष्टान्त इस प्रकार है कि:-

हस्तिनापुरमें सुनंद नामक एक कुल पुत्र रहता था। जिनकी जिनदास नामक श्रेष्ठीके साथ मित्रता थी। वह उसके पास सदैव पच्चक्खाणकी महिमा सुना करता था। एकबार श्रेष्ठी उसे गुरुके पास ले गये। गुरुने अनागत आदि प्रत्याख्यानका स्वरुप तथा उसके फलका वर्णन किया जिसे सुन सुनन्दने मद्यमांसका पच्चक्खाण शुद्ध भावसे ग्रहण किया। फिर किसी समय सब जगह महान् दुष्काल पड़ा जिससे छठे आरेके समान सब लोग प्राय मांस भक्षण करने लग गये। सुनन्दके स्वजन क्षुधासे अत्यन्त पिड़ित होने लगे। इसलिये एक दिन उसको बड़ा उपालम देकर उसके सालेके साथ इसे मच्छिये लेनेको भेजा। सुनन्दने पानीमें जाल डाली परन्तु जालमें फँसी मच्छलियोंको देखकर वह उन्हें छोड़ देता था। यह देख कहा कि "हे बहिनोई! तुम किसी साधुके वाक्यरूपी जालमें फँसे हुए हो, फिर तुम्हारे स्त्री पुत्रादिकको दुःखरूपी जालसे क्यों कर निकाल सकोगे? तुम्हारा दयापन मैंने देख लिया है।" आदि कहने पर भी उसने उस दिन एक भी मच्छी नही पकड़ी। इसीप्रकार दूसरे दिन भी एक भी मच्छी नही पकड़ी और कहने लगा कि, "मैं क्या करूं? मुझे किसी समय मच्छी पकड़नेका अभ्यास नही है।" यह सुन उसके स्वजन उसे सिखाने लगे परन्तु उसकी निर्मल धर्मकी भावना नही गई। तीसरे दिन तालाब पर जाकर जाल डाली जिसमें एक मत्स्यकी पांख टूट गई उसे देख सुनन्द अत्यन्त शोकातुर हुआ।

उसने उसके स्वजनोंसे कहा कि, "मैं किसी भी समय एसा हिंसक कार्य नही करगा।" ऐसा कह उसने प्रफुल्लित मनको निरवशेष अनशनका पच्चक्खाण किया। अर्थात आहारका त्याग कर दिया। वहासे मर वह राजगृह नगरमें मणिकार श्रेष्ठीके घरमें पुत्ररूपसे उत्पन्न हुआ। मातापितान उसका नाम दामन्नक रक्खा। अनुक्रमसे वृद्धि पाता हुआ वर्ष की आयुका हुआ तब मारीके उपद्रवसे उसके सब कुटुम्ब का नाश हो गया इससे भयभीत हो वह उसके घरसे भग गया। भटक्ते भटक्त उसी नगरमें सागरदत्त श्रेष्ठीके घर पहुचा और नोकरी कर आजीविका उपाजन करन लगा।

एक दिन कोई दो साधु गोचरीक लिये उस श्रेष्ठीके घर आये। जिनमेसे बड साधु सामुद्रिक शास्त्रम निपुण थे उन्होंने दामनक्को देख दूसरे साधुन कहा कि, "यह जो दासपनका कार्य करने वाला पुरुप है वह वृद्धि पाकर इसी घरका स्वामी होगा।" इस प्रकार साधुका वचन श्रेष्ठीनें दिवालके आडमें खडे रहकर सुन लिया जिस पर मानो वज्रपात हो गया हो वैसे उसको अत्यन्त खेद हुआ। उसने विचार किया कि, "इस बालको किसी भी उपायसे आज ही मार डालना चाहिये कि जिससे बीजका ही नाश हो जाने पर अंकुर कैसे पैदा होगा?" ऐसा विचार उसने उस बालकको लडुका लोभ दे उसे चाडालके घर भेजा वहा उस श्रेष्ठीने एक चाडालको द्रव्य दे छीपा रक्खा था और उसे कह रक्खा था कि,-"मैं जिस बालकको भेरे भेजू

तू उस बालको मार कर उसकी निशानी मुझे बतलाना ।" उस बालको मृगलाके बच्चे सदृश मुग्ध आकृति (सुन्दर आकृति) वाला देख उस चाडालको दया आ गई इसलिये उसकी कनिष्ठाका अगुली काटकर उस बालकसे कहा कि, "रे मुग्ध ! यदि तू जिन्दा रहनेका इच्छुक हो तो यहासे शीघ्र भग जा ।" यह सुन वह उसी सागरश्रेष्ठीका गोकुल जिस गावमें था उस गावमें गया वहां उस गोकुलके रक्षकने उसे विनयी देख अपने पुत्रके समान उसे वहा रख लिया वहा वह सुखपूर्वक रहने लगा और अनुक्रमसे युवान हुआ।

एकदा सागर श्रेष्ठी गोकुलमे आया वहा कटी हुई अगुलीके चिन्हसे उसने उस दामनकको पहिचान लिया । फिर किसी कार्यके बहाने गोकुलके रक्षकको कह श्रेष्ठीने उसके पुत्रको पत्र लिख दामनकको उसके पास भेजा । दामनक पत्र ले त्वरित गतिसे राजगृह अत्यन्त चलनेसे थक जाने के कारण वह गावके बाहर उद्यानमे कामदेवके मन्दिरमें विश्रान्ति लेनेको बैठ गया । वहा उसे उसके थके होनेसे शीघ्र निद आ गई कि उसी समय सागर श्रेष्ठीकी विषा नामक पुत्रि पतिकी इच्छासे उसी कामदेवके मन्दिरमें आई। वहां दामनकके पास उसके पिताकी मुद्राका पत्र देख उसने उस पत्रको धुरकेसे ले लिया और उस कागजको खोलकर पढ़ने लगी ।

"स्वस्ति श्री गोकुलसे लिखी श्रेष्ठी सागरदत्त समुद्रदत्त पुत्रको स्नेहसे फरमाता है कि,-इस पत्रके लानेवालेको बिना

किसी विलम्बके तुरतही विष दे देना, इसमें किसी प्रकार का सन्देह मत करना ।"

इस प्रकारका लेख पढ़ दामनकके रूपसे मोहित हुए विषाने सली द्वारा आंखके मेष (कज्जल) से विषके ऊपर का बिंदु मिटा कर "ष" के पास काना लगा विषके स्थान में विषा बनादिया फिर उस पत्रको बन्द कर जैसाथा उसी प्रकार रख हर्ष पूर्वक वह उसके घर चली गई । कुछ देर बाद दामनक भी जागृत हो गया और उसने गावमें जा वह पत्र श्रेष्ठीपुत्रको दे दीया । वह भी पत्र पढ़ अत्यन्त आनन्दित हुआ और उसी समय लग्न दिखा बड़े आडम्बर के साथ सर्व जन समक्ष उसकी बहिन विषाका उसके साथ विवाह कर दिया । दामनक उसके साथ सुखपूर्वक विलास करने लगा । कितने ही दिन बाद जब सागर श्रेष्ठी घर लौटा तब उसे विषाके लग्नकी बात सुन बड़ा खेद हुआ । उसने विचारा कि, "अहो ! मेरा सोचा हुआ कार्य तो उलटा हो गया और यह तो मेरा जामाता हो गया फिरभी किसी प्रपंचसे इसे मारडालना चाहिये । पुत्रि चाहे विधवा हो जायेतो अच्छा है परन्तु शत्रुकी वृद्धि होना अच्छा नही है ।" ऐसा विचार कर उसने उक्त चाण्डालको जाकर कहा कि—" अरे ! उस दिन जो तूने मुजे अंगुलीकी निशानी देकर धोखा दिया सो ठीक नही किया ।" चाण्डालने कहा कि, "हे शेठजी ! अब उसे मुजे बतलाओं मैं उसे जरुर मारडालूंगा ।" इस पर शेठ उसे मारनेके लिये मातृकादेवी

वे मन्दिरका संकेत कर घर आये और दामनकसे कहा कि, "हे वत्स ! तू आज सायंकालको विधा सहित मातृका देवीके प्रासादमें पूजा करने जाना कि जिससे देवीकी कृपासे तुम दम्पति कुशल पूर्वक जीवन व्यतीत करनेको चले। मार्गमें उसका साला मिला जिसने उससे पूछा कि, "कहां जा रहे हो ?" जब दामनकने देवीकी पूजा करनेको जानेके लिये कहा तो उसने कहा कि, "इस समय पूजाकाल नहीं है क्यों कि अंधकारके फैलनेका समय समीप होनेसे अनेकों दोषोंके उत्पन्न करनेवाले प्रदोषका समय है।" ऐसा कह वह दोनोंको वहीं ठहरा स्वयंपूजाकी सामग्री ले पूजा करने गया। श्रेष्ठीके पूर्व संकेतानुसार उक्त चांडालने उसके मन्दिरमें प्रवेश करते ही माना जैसे देवीका बलिदान देते हो उस प्रकार उसका वध कर दिया। पुत्र मरण सुन सागरश्रेष्ठीके वक्षःस्थल फट गया और वह मर गया। राजाने दामनकको उसके घरका स्वामी बनाया।

एकदा रात्रिके पीछले पहरमें दामनकने [१]मंगलपाठकके मुहसे एक कथा सुनि जिसका यह भावार्थ था कि, "निरपराधिका अनर्थ करनेके लिए यदि कोई अनेक प्रयत्न करे तो वे उल्ट उसके लिए बहुगुणकारक सिद्ध होते हैं। दुःखके लिए किये उपाय सुखकारक हो जाते हैं क्योंकि कृतान्त (दैव) ही जिसका पक्ष लेता हो उसका दूसरा क्या बिगाड़ कर सकता है ?"

---

१ भाट चारण आदि।

इस गाथाको उसने तीनबार उच्चारण किया जिसपर दामनकने उसे तीन लाख द्रव्य दिया जिसपर राजाने उससे इतना अधिक दान देनेका कारण पूछा। तब दामनकने उसको सर्व पूर्व वृतान्त कह सुनाया।

एकदा ज्ञानीगुरुके मिलने पर उनसे उसने पूर्वभवमें किये प्रत्याख्यानका फल सुन उसे जातिस्मरण ज्ञान हो आया और वह धर्मका विशेष रागी बन गया। मरने पर उसने देवलोकका सुख प्राप्त किया। वहांसे चव महाविदेह क्षेत्रमें उत्पन्न हो क्रमशः सिद्धिपदको प्राप्त करेगा।

"पूर्वभवमें किये प्रत्याख्यानके प्रभावसे दामनकका शस्त्र द्वारा किया वध नाश हो गया और उल्टा वह उसीके घर का स्वामी बना। तथा अनुक्रमसे उसे शाश्वत सुख मिला अतः सबको भावपूर्वक प्रत्याख्यान करना चाहिये।

[इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशप्रासादवृत्तौ सप्तदशस्तम्भस्य नवचत्वारिंशदधिकद्विशततम प्रबंध ॥२४९॥]

व्याख्यान २५०

व्रतखंडन करनेका फल

यथा श्रेष्ठिसुतः पूर्वं, धर्मखण्डनयानया ।
धनदाख्यः फलंखड, मत्स्योदरपराभिध ॥१॥

भावार्थ –"पूर्वमें अन्य मत्स्योदर नामक धनद श्रेष्ठि पुत्रने पच्चरखाण रूप धर्मका खंडन करनेसे खंडित फल प्राप्त किया " इसका दृष्टान्त इस प्रकार है कि –

मत्स्योदर की कथा

कनकपुर नगरमें कनकरथ नामक राजा था। उस गाममें सागरदत्त नामक एक श्रेष्ठी रहता था जिसके धन दत्त नामक पुत्र था। उस गाममे सिंहल नामक एक जुआरी था। वह एक दिन किसी देवीके मन्दिरमें गया और देवीसे कहा कि, "हे देवी! मुजे धन दे अन्यथा तेरी प्रतिमाको तोड़ दूंगा।" यह सुन देवीने कहा कि, "तेरे भाग्यमें धन नहीं हैं फिरभी इस गाथाको ग्रहण कर।

अचिय विहिणा लिहिय, तचिय परिणमइ सयललोयस्स ।
इय जाणेवि धीरा, विहुरेवि न कायरा हुंति ॥१॥

भावार्थ –" जितना विधाताका लिखा हुआ होता है उतनाही सब लोगोंको मिलता है ऐसा सोचकर धीर पुरुष संकट कालमें भी भीरू नहीं होते ।"

इस *गाथाको हजार सोना मोहर लेकर बेचना ।"* जुगारी उस गाथाको लेकर बजारमे गया । वहाँ धनदत्तने उस गाथाको वह हजार सोना महर दे उसे खरीद की । यह बात जब उसके पिताको मालूम पडी तो उसने उसे घरसे बाहर निकाल दिया । धनदत्त उत्तर दिशाकी ओर चल दिया । मार्गमे चोरोंने उसे पकड़ बनजारोंको बेच दिया । बनजारोंने उसे पारस कुलमे जाकर बेचदिया । उन्होंने उसे लोहीके लिए खरीद किया । फिर सदैव उसके शरीरसे लोही निकालनेसे वह अत्यन्त निसत्व हो गया । एकदा अचेतन होकर पडे उसके शरीरको लोहीसे लिप्त होनेस भारड पक्षीन उठा उसे सुवर्ण द्वीपमे ले जाकर डाल दिया । वहा भी वह उक्त गाथाके अर्थको स्मरण करता हुआ सुखपूर्वक रहने लगा । एक रात्रिको अरणिकी लकड़िये जला उसकी अग्नि से *जब वह तापने लगा तो प्रात काल उसने उस स्थानकी* भूमिको सुवर्णमय देखा । इसलिय उसन उस मिट्टीकी ईटे बना उनके मध्यमे उसका नाम लिख उनके आठ हजार और पाच सुपट बनाये । उनको अग्निमे पकानेसे वे सुवर्णमय हो गई । उनको उसने एक स्थान पर एकत्रित किया । एक बार कोई वहानवाला पानी लेनेको [illegible] आया ।

१ लोहीका रुम [illegible])

उसने धनदत्तसे पूछा कि, "तुम यहां कहांसे आये हो ?" धनदत्तने कहा कि, "मेरी सुवर्ण ईंटे लेनेको आया हूँ इसलिये यदि तुम इन ईंटोंको भाड़ा लेकर ले जाओतो इनमेंसे चौथा भाग तुमको दूंगा।" वहान वालेने यह शर्त स्वीकार कर उन इंटोंको वहानमें भरा दिया। फिर विश्वास दिलाकर उस वहानवालेने ईंटोंके लोभसे उसे एक कुएंमे डाल दिया।

धनदत्तने कुएंमे पगथिये देखे। उन पगथियोंके रास्ते अन्दर प्रवेश करने पर उसने जन रहित शून्य नगर देखा। वहां चक्रेश्वरी देवीका मनोहर मन्दिर देख वह उसमें गया। देवीको वन्दन कर उसकी पूजा की। भक्तिसे प्रसन्न होकर देवीने उसे पांच रत्न दिये। जिनमेंसे एक सौभाग्य, दूसरा रोगनाशक, तीसरा आपत्तिरक्षक, चौथा विषहरण, और पांचवा लक्ष्मीदायक था। उन रत्नोंको उसने उसकी जंघा चीर कर

उसमे छिपा लिया। फिर धनदत्त नगरमे आगे बढ़ा पर तु उसने वहां कोई भी मनुष्यको नहीं देखा चलते चलते वह राजमहलमें गया और ऊपर चढ़ा जहां उसने एक सुन्दर कन्या देखी। उस कन्याने उसका सन्मान किया। धनदत्तने जब उसे उस नगरके जन-शुन्य होनेका कारण पूछा तो उसने जबाब दिया कि, "यह तिलकपुर नामक नगर है इस नगरका मेरा पिता महेन्द्र नामक राजा था। एक दिन शत्रुओंने आकर इस नगरको घेर लिया। उसी रात्रिको कोई व्यंतर मेरे पिताके पास आया। मेरे पिताने उससे पूछा कि-"तू कौन है ?" तब व्यंतरने कहा कि, "मैं तेरा

पूर्वभवका मित्र हूँ" मेरे पिताने कहा कि, "यदि ऐसा है तो तू मेरे इस नगरको ऐसे स्थान पर ले जाकर रख दे कि जहा किसी शत्रुका भय न हो।" यह सुन उस व्यन्तरने एक शहर कुएंके पास बनाया और यह दूसरा इस कुएंके मार्गसे यहा लाया। एकबार कोई राक्षस यहा आया। उसने दोनों नगरोंका भक्षण कर उन्हे जनरहित कर दिया। मात्र एक मुझे ही विवाह करनेकी इच्छासे जीवित छोड़ा है और वह आजही मेरे साथ विवाह करनेवाला है।" इसप्रकार वह कन्या बाते कर ही रही थी कि आकाशमे शब्द करता हुआ वह राक्षस वहा आ पहुचा। उस कन्याने

धनदत्तसे कहा कि–"तुम यहा गुप्त रीतिसे रहो अन्यथा वह पापी तुम्हे भी मार डालेगा।" ऐसा कह धनदत्तको चन्द्रहास खड्ग बताकर कहा कि, "इस खड्गसे उस पापीष्टको देवपूजाके समय मारना कि जिससे वह मर जायेगा अन्यथा उसकी मृत्यु न हो सकेगी।" इसप्रकार संकेत कर उसे गुप्त स्थानमें छिपा दिया। अब राक्षस पूजा करने बैठा तो उस समय मौका देख धनदत्तने उसे उस खड्गसे मारडाला। फिर धनदत्तने उस कन्याके साथ विवाह किया और रत्नादिक मुख्य मुख्य वस्तुएं लेकर वे दोनों कुएंमें आये कि उसी समय कोई वहानवाला उस कुएंसे पानी लेनेको आया। उसने यह जानकर कि कुएंमें कोई मनुष्य है उन दोनोंको कुएंसे बाहर निकाला [illegible] धनदत्तके कहनेसे वहाणवालेने [illegible] बैठा लिया।

वाहनका स्वामी उस स्त्रीका स्वरूप तथा द्रव्य देखकर इस पर मोहित हो गया इसलिये उसने मार्गमें धनदत्तको मैत्री-भावसे विश्वास दिला समुद्रमें फेंक दीया । धनदत्त तो सदैव उस गाथाका अर्थ स्मरण करता हुआ सुखदुखमें समान भावसे रहता था । समुद्रमें गीरते ही उसका हाथ पाटिये पर गिरा उसने उसको पकड़ लिया । समुद्रके जल पर जब वहतेर रहा था कि एक बड़ा मत्स्य उस पाटिये सहित निगल गया । वहां उसे बड़ा खेद तथा कष्ट हुआ परन्तु वह तो *गाथाका अर्थ ही सोचने लगा कि, ' विधिने जैसा सुखदुःख लिखा हो वैसा ही भोगना ही पड़ता है ।"*

उक्त मत्स्य मनुष्यके भारसे खेदित होकर समुद्रके किनारे पर चला गया जहां मच्छीमारने उसे पकड़ लिया जिसके चिरने पर उसके उदरसे धनदत्त निकल पड़ा । वह मूर्च्छित हो गया था जिसको मच्छीमारने धीरे धीरे सचेत किया । फिर कनकपुरके राजाके सब वृतान्त कह उसे राजाके पास ले गया । राजाने उससे उसका सब हाल पूछा तो उसने एकान्तमें कुछ वृत्तान्त कहा जिससे प्रसन्न हो राजाने उसे बड़े सत्कारके साथ सगीधर[१] बनाया । जहां उसका मत्स्योदर नाम रक्खा गया ।

एक दिन जिस वाहनवालेने उसे कुएमें डाल दिया था वह उसी नगरमें वाहन सहित आया और राजाके सामने

१ राजा जिसपर प्रसन्न हो उसे पान (ताम्बूल) देनेवाला ।

उपहार रख कर बैठा, वहां उसने थगीधरको देखा और पहचान लिआ, इससे उसने सोचा कि-यह नया आया होगा इससे उसका कुल, आदि कोई नहीं जानता होगा इसलिये यदि इसको नीच जातिका बतलादू तो मेरा कष्ट नाश हो जायगा।" ऐसा विचार कर उसने चांडाल से जाकर कहा कि, "मैं तुझे सोनेकी ईंटे दूंगा परन्तु तू राजसभामें आकर राजाके थगीधरसे भेट कर उससे कहना कि,-"हे भाई! तू मुझसे कई दिन पश्चात् मिला। इतने दिन कहां गया था?' ऐसा कह कर उसे तुम्हारी जातका होना साबित करना।" चांडाल ने उसकी बात स्वीकार कर दूसरे दिन वैसा ही किया। जिसे सुन राजाने उस चांडालसे पूछा कि-"यह क्या है?" तब चांडालने कहा कि, "यह मेरा भाई है, इसने मैंने कई दिन बाद देखा है इससे रोता हूँ।" यह सुन राजाने थगीधरसे पूछा कि, "अरे रे! तू मेरे घर कहांसे आया? तूने हम सबको चांडाल सदृश बना दिया। इस पर उसने जवाब दिया कि, "हे स्वामी! सुनिये, इस विषयकी बहुत लम्बी बात है।" ऐसा कह उसने गाथा ग्रहण की तबसे आरंभ कर सब हकीकत राजासे निवेदन की और देवी द्वारा दिये पांचों रत्न उसकी जघासे निकाल कर राजाको बतलाये। फिर राजासे कहा कि-"ये पांच रत्न मेरे पास रहे हैं, शेष उसके पहलेका मेरा सर्व द्रव्य इसके पास है।" यह सुन राजाने उक्त चांडालको खूब पिटवाया तब उसने कबूल किया कि, "नये आनेवाले ब्राह्मण वालेने मुझे सुवर्ण ईंटे देकर यह प्रपंच मुझसे कराया है।" ऐसा कह उसने राजाको वे ईंटे बतलाई। राजाने जब ईंटोको तोड़ा, तो

उसके अन्दर धनदत्तका नाम अंकित निकला । फिर राजाने वाहनवालेको बुलवा उसके सिपाईयोंसे कहा कि, "अरे ! इस पापीने मत्स्यान्र का सब धन अपने कब्जेमें कर इसे द्वेष बुद्धिसे कुएमे धकेल दिया है इसलिये इसे मार डालो ।" ऐसा कह उसके सब वाहन लूट उसे दरिद्र बना दिया । फिर धनदत्तकी प्रशंसा कर राजाने उससे पूछा कि, "तू किसका पुत्र है सत्य सत्य बतला ?" उसने कहा कि, "हे स्वामी ! इसी नगरमे जो रत्नसार श्रेष्ठी है वे मेरे पिता है ।" आदि मूल वृतान्त कहा जिस पर राजाने हर्षित होकर उससे कहा कि, "अब तू तेरे पिताके घर चला जा" तब धनदत्तने कहा कि, "हे स्वामी ! अभी मैं एक दूसरे वाहन वालेका प्रतीक्षामे हूँ ।" राजाने उसका कारण पूछा तो उसकी उसके प्रिया संवन्धि सब वृतांत कह सुनाया ।

कई दिन व्यतीत होने पर वह वाहनपति देवदत्त शेठ भी उसी ग्राममे आया । वह भेट ले तिलकमंजरी सहित राजाके पास आया । उसे देख धनदत्तने राजासे कहा कि, "जिस पुरुषकी मैं प्रतीक्षा करता था वह ही आ गया है और उसके साथ जो स्त्री है वह मेरी प्रिया तिलकमंजरी है ।" तिस पर राजाने उस शेठसे पूछा कि, "ये किन्नरी सदृश रूपवाली लज्जित होकर खडी सुन्दरी कौन है ?" उसने कहा कि, "हे देव ! इस स्त्रीको मैं कटाह द्वीपसे लाया हूँ परन्तु यह स्त्री कहती है कि यदि मुझे राजा हुक्म दे तो मैं तेरे घर चलु ।" यह सुन राजाने

उसने पूछा कि, "यह शेठ क्या कहता है ? इसकी इच्छा पूर्ण करनेके लिये तू राजी है या नहीं ?" उसने कहा कि— "हे राजा ! मेरे स्वामीको इसने समुद्रमें डाल दिया है और मैं पतिव्रता स्त्री हूँ इसलिये मुझे पति मरनेके लिये अग्नि दिला दीजीये। इस शेठको भरमा कर मैंने इतने दिन निर्गमन किये हैं और यहातक मैं इसे ले आई हूँ। पूर्वमें मैंने मेरे स्वामीसे "न चिय विहिणा लिहिय" आदि गाथाका अर्थ सुना था उसका मैंने पूरा पूरा अनुभव कर लिया है इसलिये अब मेरे मनमें कोईभी शोक नहीं है।" राजाने पूछा कि, 'हे पुत्री ! तू तेरे स्वामीको कैसे पहिचान सकती है ?" उसने कहा कि, "हे देव ! मेरे पतिको तो इस पापीने समुद्रमें धक्का दिया है इसमें व चमत्कार कैसे जीवित होंगे ?" यह सुन राजाने धनंधरको बतलाया उसे देख उसने कहा कि, "हे राजा ! समान आकृतिवाले दुनियामें कई पुरुष होते हैं इसलिये आकृति मात्रसे कैसे निश्चय किया जा सकता है !" तब धनदत्तने तिलकपुरका वृत्तान्त, राक्षसका मारा जाना, कुएसे बाहर निकलना आदि सब कहा तब उसने उसे बराबर पहिचान लिया और राजा से कहा कि, "हे देव ! ये ही मेरे प्राणनाथ हैं" फिर राजाने देवदत्त शेठका सबस्व छीन लिया और उसे मार डालनेका हुकम दिया। उस समय भी धनदत्तने विनती कर उसे बचाया। फिर धनदत्त उसकी प्रिया सहित बडे उत्सवके साथ उसके पिताके घर गया। उसे देख उसके मातपिता अत्यन्त हर्षित हुए।

एक दिन धनदत्त राजाके साथ उद्यानमें मुनिको वन्दना करने गया । वहां धर्म देशना सुन उसने गुरुसे पूछा कि, "हे भगवन् ! मैंने पूर्व भवमे कैसे कर्म किये थे ?" गुरुने कहा कि, "हे धनदत्त ! तेरे पूर्व भवका वृतान्त सुन–रत्नपुर नगरमे महण नामक एक श्रेष्ठी था । वह एक बार उद्यानमे गया । वहां किसी मुनिको देख उन्हे वन्दना कर उनके पास बैठा । उस समय गुरु द्वारा कही धर्म देशना सुन उसने समकित सहित गृहस्थ धर्म अंगीकार किया । गुरुको नमस्कार कर वह उसके घर आया और बहुतसा द्रव्य व्यय कर उसने एक बड़ा चैत्य बनवाया परन्तु फिर उसे विचार आया कि, "धर्म रसमे पराधीन होकर मैंने इतना अधिक धन क्या व्यय किया ?" आदि भावनासे भ्रष्ट होने परभी उसने वापस लोकलज्जासे उसमे प्रतिमा प्रतिष्ठित की । एक बार उसने धारणाकी कि, "मै जितना द्रव्य उपार्जन करूंगा उसका चोथा हिस्सा मैं धर्म मार्गमे व्यय करूंगा ।" इस प्रकार करते हुए उसे फिर विचार आया कि, "मैने जो धारणा की है क्या उसका फल मुजे इसी भवमे मिल जायगा या नही ? क्योंकि शास्त्रमे तो थोडेसा अधिक फल होना वर्णित किया गया है" आदि शंका वारवार किया करता था और देवपूजा आदिभी फल की शंका सहित किया करता था । एकदा किन्ही दो मुनियोंको वहरा कर उसने विचार किया कि, "कदाच ये साधु सुंदर वेष पहन लेतो उससे जैन धर्ममे क्या दूषण आसकता

है ?" अपितु फिरसे विचार करने लगा कि-" अरे ! मने बुरा विचार किया क्योंकि उत्तम वस्त्र पहनना, देहकी परिचर्या करना, तथा उसकी शुश्रूषा करना य सबतो काम देवको बढानेके उपाय हैं इसीलिये साधु ऐसा कर्म नहीं करते ।" आदि शुभ तथा अशुभ परिणामसे वारी वारीसे उसने शुभ तथा अशुभ कर्मका बन्धन किया और अन्तमें आयुष्यकी समाप्ति पर मरकर वह भुवनपति देवता हुआ । वहासे चव कर तू धनदत्त हुआ है । तूने पूर्व भवमे धर्म कार्य किये परन्तु उनमे दूषण लगाये इससे तुझे इस भवमे उनके फल रूपसे दुःख सहित सुख प्राप्त हुआ ।" इस प्रकार सुन धनदत्त मूर्छित हो गया फिर चेतना आने पर जातिस्मरण ज्ञान हो जानसे माता पिताकी आज्ञा ले वैराग्य द्वारा राजा सहित उसने दीक्षा ग्रहण की । वहा मर वैमानिक देवताका सुख भोग वह महाविदेह क्षेत्रमे उत्पन्न हुआ और धर्मका आराधन कर अनुक्रमसे मोक्षमे गया ।

"दश दृष्टान्तोसे दुर्लभ मनुष्यभव तथा अन्य आर्य देशादि सामग्री पाकर तथा ससारकी असारता जानकर निरंतरका सुख (मोक्ष) चाहनेवाले पुरुषों को निरन्तर धर्म कार्य करते रहना चाहिये ।"

[इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशप्रासादवृत्तौ सप्तदशस्तम्भस्य पञ्चाशतधिकद्विशततम प्रबध]

व्याख्यान २५१

मौन एकादशी की कथा

प्रणम्य श्रीमद्वामेय, पार्श्वयक्षादिपूजितम् ।
महात्म्य स्तौमि श्रीमौनैकादश्या गद्यपद्यभृत् ॥१॥

भावार्थ –"श्री वामा माताके पुत्र, यक्षादिकसे पूजित श्री पार्श्वनाथ प्रभुको नमस्कार कर गद्य पद्यात्मक मौन एकादशीका महात्म्य कहता हूँ।"

एकदा द्वारका नगरीमें श्रीनेमनाथ स्वामी समवसर्थे जिसकी सूचना वनपालकके मुहसे सुन श्रीकृष्ण अत्यन्त हर्षित हुए। वे वनपालको योग्य दान दे सब समृद्धि सहित शिवा रानीके पुत्र श्रीनेमनाथ प्रभुको वन्दना करनेको गये। विधि पूर्वक वदना कर योग्य स्थान पर बैठ निग्रन्थ भगवान की देशना सुनि कि –

एगदिने जे देवा, चवंति तेसिपि माणुसा थोवा।
कत्तो मे मणुय भवो, इति सुरवरो दुहिओ ॥१॥

भावार्थ –"एक दिनमें जितने देवता चवते हैं उनसे भी इस पृथ्वी पर मनुष्यकी सख्या कम है इसलिये देवता लोग विचार करते हैं कि, "हमको मनुष्य भव क्यों कर

मिले ?" अतः वे दुःख उठाते हैं इस प्रकार मनुष्य भवको देवताओंको भी दुर्लभ समझ इसमे प्रमाद कदापि नहा करना चाहिये ।"

अन्नाण ससओ चेव, मिच्छत्ताण तहेव य ।
रागो दोसो मइन्भसो, धम मि य अणायरो ॥१॥

जोगाण दुप्पणिहाण, पमाओ अट्ठ महा भवे ।
ससारूत्तारकामेण, सव्वहा वज्जियवओ ॥२॥

भावार्थ –"अज्ञान, सशय, मिथ्यात्व, राग, द्वेष, मतिभ्रष्टता, धर्म पर अनादर और योग दुष्प्रणिधान–इस प्रकार प्रमाद आठ प्रकारका है । ससारसे मुक्त होनेके इच्छुकको इसका सर्वथा त्याग करना चाहिये ।"

आदि धर्म देशना सुन श्रीकृष्णने प्रभुसे कहा कि,– "हे भगवन् ! मैं अहर्निश राज कार्यमे व्यग्र रहता हूँ फिर निरतर धर्म कसे कर सकता हूँ अत सम्पूर्ण वर्षमे एक उत्तम दिन जो साररूप हो बतलाइये ।" भगवानने कहा कि, "हे कृष्ण ! यदि तुम्हारी इच्छा होती मार्गशीर्ष मासकी शुक्ल एकादशीका उत्तम रीतिसे आराधन करो । उस दिन वर्तमान चोवीसीके तीन तीर्थकरके मिला कर पाच कल्याणक हुए हैं । इसके विषयमे कहा गया है कि –

अरस्या चक्रिपद हित्वा, प्रहीदरजिनो व्रतम् ।
जन्म दीक्षा च सज्ज्ञान, मल्ली ज्ञान नमीश्वर ॥१॥

भावार्थ —"इस एकादशीके दिन श्री अरनाथ प्रभुने चक्रवर्तीपनका त्याग कर चारित्र अंगीकार किया था। मल्लीनाथ का जन्म, दीक्षा और केवल ज्ञान ये तीन कल्याणक हुए थे। और नमीनाथ का केवल ज्ञान कल्याणक हुआ था।"

इस प्रकार नियमपूर्वक उस दिन पांच भरतमे और पांच ऐरावतमे तीन तीन तीर्थंकरोके मिलकर पांच पांच कल्याणक होनेसे पचास कल्याणक हुए हैं। इसी प्रकार अतीत, अनागत और वर्तमान समयके भेदसे एकसो पचास कल्याणक तीस चोविशोमें नव्वे तीर्थंकरोंके हुए हैं। इससे यह दिन सबसे उत्तम है।

अर्कपुराण नामक शैवी शास्त्रमे भी इस एकादशी के महात्म्यका वर्णन किया गया है कि, "हे अर्जुन! हेमन्त ऋतुमे मार्गशीर्ष मासकी शुक्ल एकादशीके दिन अवश्य उपवास करना चाहिये क्योंकि जो सदैव अपने घर दो लाख ब्राह्मणोंको भोजन कराता है। उसे जितना फल मिलता है उतनाही फल मात्र इस एकादशीके एक उपवाससे मिलता है। जिस प्रकार केदारनाथ तीर्थमें उदकपान करनेसे पुनर्जन्म नहीं होता वैसेही इस एकादशीके उपवाससे भी पुनर्जन्म नहीं होता। हे अर्जुन! यह एकादशी गर्भवासका नाश करती है इसलिये इस व्रतके पुण्य समान दूसरा कोई पुण्य नहीं होता और नही होगा। हे अर्जुन! हजार गायोंके दानसे जितना पुण्य होता है। हजार ब्रह्मचारीकी भक्तिसे

जितना पुण्य होता है उससे अधिक पुण्य एकवानप्रस्था श्रमीकी भक्तिमें होता है। हजार वानप्रस्थाश्रमीकी भक्तिसे अधिक पुण्य पृथ्वीके दान करनेसे होता है। भूमिदानसे दश गुना पुण्य विद्यादानसे होता है। विद्यादानसे सो गुना पुण्य भूखेको अन्न दनसे होता है उससे सो गुना पुण्य गोमेध यज्ञसे, उससे सो गुना अश्वमेध यज्ञसे, उससे सो गुना नरमेध यज्ञसे, और उससे हजार गुणा केदारनाथकी यात्रा करनेसे होता है परन्तु इस एकादशीके पुण्यकी सो सख्याही नही है इसलिय ब्रह्मादि देवभी इस व्रतका आचरण करते हैं।" आदि लौकिक शास्त्रमे भी हे कृष्ण! इस एका दशीका महात्म्य वर्णित किया गया है।'

इस प्रकार लोकोत्तर फल देनेवाले मौन एकादशीका वर्णन नेमीश्वर प्रभुके मुहसे सुन श्रीकृष्णने फिर पूछा कि, "हे स्वामी! इस एकादशीकी आराधन पूर्वमें किसने किया है यह भी बतलाइये।" तब प्रभुने निम्नाथ सुव्रत श्रेष्ठीका दृष्टान्त बतलाया कि—

"धातकीखड स्थित विजय पत्तनमें सुर नामक एक श्रेष्टी रहता था। राजाभी उसका बहुत मान करता था और गावमें वह सब व्यौपारियोंमें अग्रेसर था। उसके सुरमती नामक शील वती पत्नी थी। एकवार जब वह श्रेष्टी सुख पूर्वक सोता था कि पिछली रात्रीको निद्रात्याग होने पर उसे विचार आया कि, "मैं पूर्वजन्मके पुण्योदयसे सुखमें मग्न होकर दिवस निर्गमन करता हू परन्तु परलोकका कोई भी हितकर कार्य

भी करना चाहिये क्योंकि उसके बिना सर्व निरर्थक है।" इसप्रकार विचार करते हुए सूर्योदय हो गया इसलिये शय्याका त्यागकर, नित्य कर्मकर वह श्रेष्ठी गुरु वन्दन करने गया। गुरुको वन्दना कर यथास्थान धर्मदेशना सुनने बैठा। गुरूने देशना दी कि —

आलस्स मोहवन्ना, थभा कोहा पमाय किविणत्ता।
भय सोगा अन्नाण, वक्खेव कुऊहला रमणा ॥१॥

भावार्थ –"आलस्य, मोह, वर्णना, स्तब्धता (अहंकार), क्रोध, प्रमाद (निद्रा), कृपणता, भय, शोक, अज्ञान, विकथा, कुतूहल, और रमण (रति) इन तेरह काठियोंका त्याग कर देना चाहिये।"

इन काठियोंका जो त्याग नहीं करता वह नरक गतिमें उत्पन्न होता है। कहा है कि —

पण कोडि अडसट्ठि, लक्खा नवनवइ सहस्स पचसया।
चूलसी अहियनरए, अपइट्ठाणमि वाहिओ ॥१॥

भावार्थ :–"पांच करोड़, अडसठ लाख, निननाणु हजार, पांच सो चोरासी व्याधियें अप्रतिष्ठान नामक सातवीं नरकके अन्तिम भागमें हैं।"

अत हे श्रेष्ठी! ऐसे नरक के दुःखका नाश करनेके लिए सदैव धर्म करना चाहिये क्योंकि पुण्यकी महिमा अचिन्त्य है। कहा है कि –

भरहे य केइ जीवा मिच्छादिट्ठी य भद्दया माया।
ते मरिउण नवमे वरिससि हुति केवलिणो ॥१॥

भावार्थ –"इस भरतक्षेत्रमें कई भद्र परिणामी मिथ्या-दृष्टि जीव भी हैं जो यहांसे मरकर नवमे वर्ष में (महाविदेहमें) केवली होते हैं "

हे श्रेष्ठी! "सुलभबोधि जीवको कोई भी दुष्कर नहीं है।' आदि सुनकर श्रेष्ठिने कहा कि, "हे महाराजा! गृहकार्यमें व्यग्र रहनेसे मैं सदैव धर्म नहीं कर सकता हूँ इसलिये आप मुझे एक ऐसा दिन बतलाइये कि जिस एक दिनके आराधनसे मुझे सम्पूर्ण वर्ष जितना पुण्य प्राप्त हो सके।" तब गुरुने कहा कि, "मार्गशीर्ष मासकी शुक्ल एकादशीके दिन उपवास पूर्वक आठ प्रहरका पोसहकर और उस दिन सावद्यवाणीका व्यौपार त्यागकर मौन धारण कर रहे। इसप्रकार ग्यारह मार्गशीर्ष मास तक एकादशीके दिन पूर्वोक्त विधिपूर्वक तप कर फिर बडे उत्सवके साथ उसका उद्यापन करना।" इसप्रकार सुन उस श्रेष्ठिने अति हर्षित हो भावपूर्वक परिवार सहित उस व्रतको अंगीकार किया और तपके पूर्ण होनेपर विधिपूर्वक उसका उद्यापन किया। उसके पन्द्रह दिन पश्चात् उसके एकाएक शुलकी व्याधि उत्पन्न हो गई जिससे वह मरकर ग्यारवे आरण नामक देवलोकमें उत्पन्न हुआ।

ग्यारहवे देवलोकमें इक्कीस सागरोपमका आयुष्यका 'आयुष्य भोग वहांसे चल वह इस भरतक्षेत्रमें सौरिपुर नामक

नगरमे समृद्धिदत्त श्रेष्ठीकी भार्या प्रीतिमतिकी कुक्षिमें पुत्रपन से उत्पन्न हुआ । गर्भकी महिमासे प्रीतिमतिको दोहद हुआ कि, "मैं श्रावकके बारह व्रत ग्रहण करु, महाव्रतके धारक मुनियोंको अशनादि बहरा कर उनकी भक्ति करू, सर्व संसारी जीवोंको व्रतधारी करु तथा नृत्य, गीत, वाजित्र, और वार्ता विनोदमे सम्यक् प्रकारसे व्रत पालन करनेवालोंके गुणोंका श्रवण करु ।" आदि दोहद श्रेष्ठिने पूर्ण किये फिर समय आने पर प्रीतिमतिने रुप एवं लावण्यसे भरपूर पुत्र प्रसव किया । नाल गाडते समय भूमिको खोदते पर उसमें से निधान प्रगट हुआ । पिताने उसका नाम सुव्रत रक्खा । अनुक्रमसे वह गुरुकी साक्षी मात्रसे ही समग्र कलाये सिख गया । युवावस्था प्राप्त होने पर उसके पिताने बडे महोत्सव के साथ उसे ग्यारह कन्याये व्याह दी । फिर आयुष्य पूर्ण होने पर जब उसका पिता मर गया तब वह सुव्रत ग्यारह करोड द्रव्यका स्वामी बना । एकबार वह गुरुको वंदना करने गया । गुरु पांच समिति तथा तीन गुप्ति युक्त थे, पांच महाव्रतकी पच्चीस भावनाओंका अन्तकरणमे मनन करनेवाले थे, पांच महाव्रतका भार धारण करनेमें धुरंधर थे । देव, मनुष्य, तिर्यंच, और अपनेसे उत्पन्न भयंकर उपसर्ग रूपी शत्रुओंको तथा बाईस परीषह रुपी शत्रुओंकी सेनाको जीतनेवाले थे, सत्ताईश गुणोंसे युक्त शिष्ट मुनियोंके नायक थे, अतिचार रहित पांच प्रकारके आचारोंके पालन करने -वाले थे । संसारी जीवोंको मूर्छा प्राप्त करानेवाले विषय

समूहसे विरमित थे । तिन भुवनके लोगोंका किंकररूप करने मे अति गर्विष्ट कामदेवके विकारको जिन्होने दूर कर दिया था । अर्हत् प्रणीत शास्त्रम बतलाये अति सूक्ष्म विचारोंका भलीभांति बोध होनेसे सर्व भव्य प्राणियोंके हृदयको हुलसाने वाले थे, चपल पाच इन्द्रियरुपी उद्धत अश्वोंको उन्होने काबू कर रक्खा था । अमृत समान धर्मदेशना द्वारा सर्व भव्य प्राणियोंके जीवितरुप थे सम्यक् दर्शन द्वारा उन्होने मिथ्या दर्शनरुप उग्रविषका नाश किया था । दुर्जन पुरुषोंके दुर्वचनाकी रचना रुपी प्रचड वायुसे बहते हुए भी वे अकप थे क्षमा, मार्दव, आर्जव और मुक्ति आदि दश प्रकार के साधु धर्मके आराधन करनेमें सावधान थे । उनके अन्त कारणरूपी घरमेसे शल्यरुप नो प्रकारके नियाणोंको उन्होने दूर कर दिया था नो प्रकारकी ब्रह्मचय गुप्तिको उत्तम प्रकारमे पालन करनेम तत्पर थे, दुष्ट कर्मरूपी राक्षस समूहका नाश करनेमें नारायण जैसे थे । हास्यादिक षट्कको उन्होने दूरही से त्याग किया था चन्दनादिकसे पूजा करने वाले पर तथा शस्त्रादिकसे छेदन करनेवाले सबलोगोंको रंजित किया हुआ था । अरिहंत

प्रणीत समग्र आगमके पारगामी थे । तीर्थंकरो तथा गणधरों द्वारा स्वीकृत सम्यक् मार्गके अनुयायी थे। इस लोक तथा परलोक आश्रित सर्व चराचर प्राणियों द्वारा किये मान अथवा अपमान, प्रशसा अथवा निन्दा, लाभ अथवा अलाभ, सुख अथवा दुःख आदिम उनकी समान चितवृत्ति थी । श्रीमत् अर्हंत् मतका स्थापन करनेमें असाधारण कुशलतारूपी सूर्यके

उन्यसे उन्होंने चारों और प्रसारित मिथ्यात्वरूप अंधकारका नाश किया था, अप्रशस्त आस्रवद्वारका निषेध किया था, अनेक भव्य समाजोंको बोधित करने वाले थे। आठ प्रकार के मदका त्याग किया हुआ था। बारह प्रकारके तपरूपी औषधकी क्रिया द्वारा दुर्भेद्य दुष्ट कर्मरूपी व्याधिका उन्होंने (नाश) किया हुआ था। पांच प्रकारकी स्वाध्याय विधि करनेमें तथा करानेमें सावधान थे, जगतके सब जीवोंको उन्होंने अभयदान दिया हुआ था, सागर सदृश गंभीर थे, मेरुपर्वत सदृश अचल (धीर) थे, शून्य सदृश निरंजन (निर्मल) थे अज्ञानरूपी अंधकारसे आच्छादित हुए नेत्रवाले भव्यप्राणियोंके नेत्रोंको खोलने तथा निर्मल करनेके लिये श्रेष्ठ ज्ञानरूपी अंजनके आंजने वाले थे। कछुएके सदृश गुप्तेंद्रिय थे, महामोह राजाको उन्होंने पराजित किया हुआ था, भारंड पक्षीके सदृश सर्वदा अप्रमत्त थे। कमलपत्रके सदृश उनका चित्त निर्लेप था, सूर्यके समान दिप्ततेज वाले थे। रागद्वेषरूपी महामल्लको जीतने लिये उन्होंने अत्यन्त पराक्रम प्रदर्शित किया था। चन्द्रके समान सौम्यगुणों द्वारा परिपूर्ण होनेसे समग्र साधुपुरुषोंको आनन्दकारी थे। सिंहके सदृश दुर्धर्ष थे। फिर भी सब लोगोंके लिए गमन योग्य थे। हाथीके समान शौर्यगुणसे युक्त थे। समग्र दोषोंसे मुक्त थे, वृषभके सदृश बलवान थे, अनेक वादियोंको जीत लेनेसे अधिक तेजस्वी हो गये थे। समुद्रके पानीके सदृश उनका हृदय अति शुद्ध था। संसाररूपी कारागृहमें स्थित

मोहरूपी बड़े चोर द्वारा पकड़े प्राणियोंके रक्षण करनेमें बड़े दयालु थे। आकाश सदृश अवलम्बन रहित थे। महानन्द (मोक्ष) रूपी महानगरमें जानेवाली निश्रेणि (सिढ़ी) पर चढ़नेमें विलम्ब नहीं करनेवाले थे। शून्यघरके सदृश शरीर परिचर्यासे रहित थे। अन्य प्राणियों द्वारा किये विक्रम रहने वाले सपक्ष सदृश पराक्रमी रहनेवाले थे। सांसारिक सब सम्बन्धको त्याग कर मुक्त थे, पवन सदृश अप्रतिबद्ध विहारी थे जीवनके सदृश अप्रतिहत गतिवाले थे, जिन प्रवचनके अनु सरती मतिवाले थे और पक्षी सदृश सबसे मुक्त थे। किं बहुना! इन मुनिराजके सब आचरण साधु समाचारीके सपूर्ण योग्य थे। मानो जंगम कल्पवृक्ष हो उस प्रकार इन श्रीमान् धर्मघोष नामक गुरुको समवसरे जान श्रेष्ठिपति सुमरन मानों उसका पुण्य समूह पूर्ति धारण कर प्रगट हुआ हो वैसे मान अपनी आत्माको धन्य मानता हुआ विनयसे विधिपूर्वक गुरुको नमस्कार किया। फिर गुरु द्वारा दी गई सब भव्य जीवोंके चित्तको हर्षसे व्याप्त करनेमें सावधान, मन, वचन और कायासे बांधे बद्धको कर्म समूह तथा पूर्वमें अनेकों भवोंमें उपार्जन किये अशुभ कर्म रूपी बड़े वृक्षोंको मूल सहित उखाड़नेमें प्रथम मेघ समान, जलधर वृष्टिसे वृद्धि पाये जनके महा प्रवाहमें प्राणियोंके अन्तरकी विषय कषाय रूप कीच आदिको खींचने वाले, सर्व श्रोताजनके कर्णोंको पवित्र करनेमें मन्त्र सहित महा विद्या समान, संयोग वियोगादि जिनमत सूचित महादुःख रूपी ऊर्मिके समूहसे व्याकुल और

महा साहसिक पुरूषोंको भी दुर्मोदा ऐसे दुरत संसार रूपी महासागरको तैरनेमें वाहन सदृश और चोराशीलाख जीवा-योनियोंमें परिभ्रमण करनेसे दिग्मूढ हुए प्राणियोंको महा वैराग्य उत्पन्न करनेवाली तथा सुष्ठुतया पाच पर्वणीके आराधन का उत्तम फल दिखानेवाली देशना सुनकर सुव्रत श्रेष्ठिको जातिस्मरण ज्ञान हो गया। फिर उसने गुरुसे पूछा कि, "हे पूज्य! मैने पूर्वभवमें एकादशीका तप किया था जिसके प्रभावसे मैं ग्यारहवे देवलोकमें उत्पन्न हुआ और वहांसे चलकर यहां भी ग्यारह करोड़ सुवर्णका स्वामी हो गया हू इसलिये अब मैं कौनसा सुकृत करू कि जिससे असाधारण फलका भोक्ता बन सकूँ।" गुरुने कहा कि,— "श्रेष्ठि! जिससे तुझे इतना सुख प्राप्त हुआ हैं उसी एकादशीका सेवन कर क्योंकि जिससे देहव्याधि रहित हुआ हो उसी औषधका सेवन करना चाहिये। अपितु कहा है कि—

विधिना मार्गशीर्षस्यैकादश्या धर्ममाचरेत्।
य एकादशवर्षैरचिरात् स शिवं भजेत् ॥१॥

भावार्थ —"जो पुरुष मार्गशीर्षकी शुक्ल एकादशीके दिन विधिपूर्वक ग्यारह वर्ष पर्यंत धर्मका आचरण करता हैं वह अल्प समयमें ही मोक्ष प्राप्ति करता है।"

ऐसा गुरु मुखसे सुनकर सुव्रत श्रेष्ठीने उसकी पत्नी-सहित मौन एकादशी तपको अंगीकार किया। एकवार जब श्रेष्ठी उसके कुटुम्ब सहित आठ पहरका पौषध व्रत लेकर

पौषधशालामें था उस समय यह हाल जानकर चोर लोगोंने रात्रिमें उसके घरमें प्रवेश किया और घरमेंसे सब धन लेकर उनकी गांठें बांध घरके बीचमें ढेर बनाया। फिर उन गठरियोंको उठाकर ले जानेका विचार कर ही रहे थे कि शासन देवीने उनको स्तंभित कर दिया। थोडी देर शोर गुल होनेसे राजाके सिपाही उन चोरोंको पकड राजाके पास ले गये। प्रात काल श्रेष्ठि पोषह पाल बहुतसे धनकी भेट ले राजाके पास गया और कहा कि, "हे राजन्! ये लोग मेरे घरके काम काज करने वाले हैं इसलिये घरमें इधर उधर बिखरे रत्नादिकको एकत्रित कर उनका घरके बीचमें ढेर बनाया और जो पैरोंमें चुभने थे उनको संभाल कर रख छोडा हैं इसलिये मेरे ये चाकर वध कराये जाने योग्य नही हैं।" आदि कहके उसने राजासे उन चोरोंको छुडवा दिया। यह समाचार सुन नगरके लोगोंने श्रेष्ठीकी अत्यन्त प्रशंसाकी तत्पश्चात् श्रेष्ठीने पारणा किया।

फिरसे दूसरी एकादशीके दिन भी जब श्रेष्ठीने पौषध अंगीकार किया तब उस रात्रिको दावानल सदृश सम्पूर्ण नगरमें अग्नि प्रसारित हो गई। उसे बुझानेका कोई उपाय न चलनेसे सब लोग भिन्न भिन्न दिशाओंमें भगे। उस समय किसीने श्रेष्ठीसे कहा कि–"हे शेठ! जैन मतमें प्रत्येक व्रत आगार सहित होता है इसलिये तुम इस समय व्रत त्याग दो।" आदि कहने पर भी व्रतभंगके डरसे श्रेष्ठी न्हे

भी नहीं। व्रतके प्रभावसे उसके घर, दुकान, वखारिये आदि कोई भी समुद्र स्थित वाहनके सदृश अग्निसे नहीं जली यह सुन सब नगरवासी उसके व्रतकी प्रशंसा करने लगे।

एकादशीके सम्पूर्ण व्रतके समाप्त होनेपर शेठने ग्यारह ग्यारह वस्तुएं एकत्रित कर विधिपूर्वक महान उत्सवसे उद्यापन किया और संघ पूजादिक सात क्षेत्रोंमें द्रव्यका व्यय कर अपना जन्म कृतार्थ किया। उस शेठको एकादशीव्रतके पुण्यसे स्त्रियें भी ग्यारह ही प्राप्त हुई थी। तथा उन प्रत्येक स्त्रीसे दश दश पुत्र और एक एक पुत्रि उत्पन्न हुई थी। एकबार चारों ज्ञानके धारक विजयशेखरसूरि उस गावमें पधारे उनकी वैराग्यमय देशनासे श्रेष्ठीको प्रतिबोध हो गया जिससे उसकी ग्यारह स्त्रियों सहित महान उत्सवपूर्वक सर्व विरती ग्रहण की और घरका सब भार लड़कोंको सौंप दिया अतिचार रहित चारित्रका पालन करते हुए उन्होंने द्वादशांगी कंठस्थ की। एक छमासी तप किया चार चौमासी तप किया और सो अट्टम तथा दोसो छट्ट किये। उसकी ग्यारह स्त्रियों मास मासकी संलेखना कर केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष सिधारे।

एक दिन एकादशी होनेसे सुव्रत मुनिने मौनव्रत धारण किया था कि उसी दिन एक साधुके पावमें तीव्र वेदना होने लगी। उस समय किसी मिथ्यात्वी व्यंतरदेवने सुव्रत मुनिको व्रतसे चलायमान करनेके लिए उस रोगी साधुके

शरीरमें प्रवेश किया और रात्रिके समय अधिक वेदना करने लगा। जिससे उस साधुने सुव्रत मुनिसे कहा कि, "तुम किसी श्रावकके घर जाकर मेरे शरीरकी व्यथाकी बात करो कि जिससे वे मेरी व्याधिकी चिकित्सा कर सके।" यह सुन सुव्रत मुनिने विचार किया कि-"मैंने आज उपाश्रयके बाहर जानेका निषेध किया है और मौन धारण किया है अत मैं श्रावकके पास कैसे जा सकता हूँ?" आदि विचार कर रहे थे कि उस साधुने सुव्रतमुनिको कोधित वचन कह उन्हें धर्मध्वज (ओघा)से पीटा। तब सुव्रतमुनिने विचार किया कि-"इन महात्माका इसमें कोई भी दोष नहीं है मेरा ही दोष है क्योंकि मैं इनकी चिकित्सा नहीं कराता" आदि लोकोत्तर भावना पर चढे और मेरुपर्वतके सदृश निश्चल हुए उनको देखकर वह देवता धर्मम स्थिर हो उसके स्थानको लौटा गया। सुव्रत मुनिने तो शुभ भावना भाते हुए लोका लोकमें प्रकाश करनेवाला केवलज्ञान प्राप्त किया। उस समय समीपवर्ती देवताओंने केवलज्ञानकी महिमा की। वहा सुवर्ण-कमल पर बैठकर सुव्रत केवलीने दयामय धर्मदेशना दी। फिर पृथ्वी पर विहार करते हुए अनेकों भव्यजीवोंको प्रतिबोधित कर व अन्तमें अनशन कर मोक्ष सिधारे।"

इसप्रकार नेमीनाथ भगवानके मुखसे एकादशीका उज्वल महात्म्य सुन समग्र नगरके लोगो सहित श्रीकृष्णने एकादशीका व्रत अंगीकार किया।

"शास्त्रोक्त विधिपूर्वक जो लोग अपनी शक्ति अनुसार एकादशीका व्रत अंगीकार करते हैं वे स्वर्गका सुख भोग अन्तमें मोक्षपद प्राप्त करते हैं।"

[इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशप्रासादवृत्तौ षोडशस्तम्भस्य एकपञ्चाशदधिकद्विशततमः प्रबन्धः ॥ २५१ ॥]

व्याख्यान २५२

समकितमे शंका न करनेके विषयमें

नास्ति जीवो न स्वर्गादि, भूतकार्य मिहेष्यते ।
इति प्रभृति शंकातो, सम्यक्त्वं खलु पात्यते ॥१॥

भावार्थ –"इस जगतमें जीव नामकी न तो कोई वस्तु ही है, न स्वर्ग, नरक आदि ही है, यह सब मात्र पंच महाभूत का ही कार्य है आदि शंका करनेसे समकित का नाश हो जाता है।" इस पर निम्नस्थ दृष्टान्त है कि –

अषाढाचार्यका दृष्टांत

किसी साधुसंघमें पूर्वमें अषाढा नामक आचार्य हुए थे। वे अन्तावस्था प्राप्त हुए प्रत्येक शिष्यको निझामणा करा कहते रहते थे कि, "हे शिष्य! यदि तू स्वर्गमें देवता हो जाये तो मुझे अवश्य दर्शन देना।" इस प्रकार अनेकों शिष्योंको कहने पर भी स्वर्गमें गया कोई शिष्य उन्हें दर्शन देने नहीं आया। एकबार उन्होंने उनके अति वल्लभ शिष्यको निझामणा करा उससे कहा कि, "हे वत्स! यदि तू भी देव होता मुझे अवश्य दर्शन देना।" ऐसा उन्होंने अति आग्रह पूर्वक कहा और उसने भी यह बात स्वीकार की। फिर वह शिष्य काल कर देवता

हुआ परन्तु देव कार्यमें फस जानेसे शीघ्रतया न आसका इसलिये गुरुने विचार किया कि, "मैंने अनेक शिष्योंको निजामिये तथा उन्होंने भी मेरे पास आनेकी मेरी शर्त स्वीकार की किन्तु फिरभी उनमेंसे एक भी मेरे पास नहीं आया इससे पता चलता है कि स्वर्ग या नरक कोई वस्तु नही है। आज तक मैंने वृथा ही क्रिया कष्ट किया है।" आदि विचार कर मिथ्याभाव प्राप्त कर गच्छका त्याग कर चल दिया। उस समय उक्त शिष्य देवने अवधिज्ञान द्वारा गुरुका स्वरूप देख कर विचार किया कि, "ये आचार्य मोहमें फस कर कोई दुष्कर्म न कर बैठे इसलिये ऐसा करनेसे पूर्व ही उन्हे बोधित कर सन्मार्गमे प्ररित कर दूं।" ऐसा विचार कर उस देवने गुरुके जानेके मार्गमे एक ग्रामके पास दिव्य नाटक विकुर्व्या। आचार्य उस नाटकको देखने के लिए ठहर गये। देखते देखते छ मास निर्गमन हो गये परन्तु देवके अनुभावसे उसे क्षुधा, तृषा, श्रम आदि कोई भी न जान पड़ा। फिर जब देवने उस नाटकको लोप कर दिया तो आचार्य आगे बढे। चलते चलते उन्होने विचार किया कि–अहो। मैंने आज एक क्षणभरके लिये सुखका अनुभव किया–" फिर उस देवने विचार किया कि, "इनमें कोई व्रत रहा भी है कि ये सर्वथा भ्रष्ट हो गये है इसकी भी परीक्षा कर लेनी चाहिये। ऐसा विचार कर उसने उत्तम अलंकारसे शोभित एक राजकुमार विकुर्व्या। सूरिने उसे देख कहा कि, "हे बालक! तू अकेला इस

घोर वनमें क्यों भटक रहा है ? तेरा नाम क्या है ?" बालकने जवाब दिया कि मेरा नाम प्रथ्वीकायिक है । मैं आपकी शरण आया हूँ चोर, (श्वापद) हिंसक पशु आदि के उपद्रवसे मेरी रक्षा कीजिये ।

बाल मा दीनतापन्न, पाहि पाहि प्रभो ततः ।
तैरेव भूपिता भूर्ये रक्षेपु शरणागतम् ॥१॥

भावार्थ –"हे प्रभू ! इस दीन बालककी आप रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये क्योंकि जो शरणागतकी रक्षा करते हैं उन्ही के द्वारा यह पृथ्वी सुशोभित है ।"

इस प्रकार उस बालककी नम्र प्रार्थना परभी जब वह लोभी आचार्य उसका अंत करदेना चाहता है तब वह बालक फिरसे कहता है कि, "हे भगवान् ! एक दृष्टांत सुनिये फिर जैसा आपको अच्छा लगे वैसा करना । किसी गांवमें एक कुम्भार रहता था । उसने एक दिन मिट्टी खोदते समय मिट्टीकी खान उस पर गिरते देख कर बोलाकि,

यत्प्रसादाद्वलिभिक्षा, ददे ज्ञातींश्च पोषये ।
साप्याक्रामति भूमिर्मा, तज्जात शरणाद्भयम् ॥१॥

भावार्थ –"जिसकी कृपासे मैं बलिदान और भिक्षा देता हूँ तथा कुटुम्ब पालन करता हूँ वह ही पृथ्वी आज मुझे दाट रही है इससे जिसका शरण था उसीसे आज मुझे भय प्राप्त हो रहा है ।"

"हे पूज्य आचार्य ! उसी प्रकार मैं भी भयभीत हो आपकी शरण आया था परन्तु आप ही मुझे मारनेको उद्यत होगये इससे मुझे भी जिसका शरण था उसीका भय प्राप्त हो गया है ।" इस प्रकार सुनकर भी उन आचार्यने "हे बालक ! तू बड़ा चतुर मालूम होता है ऐसा कह उस बालकको मारडाला और उसके अलकार ले उनके पात्रमे भर लिये ।

आगे बढने पर अपकायिक नामक दूसरे बालकको भी प्रथम बालकके सदृश देखा । उसके भी अलकार आदि लेनेको आचार्य उसीप्रकार उसे भी मारनेको तैयार हो गये । उस समय उस बालकने भी एक दृष्टान्त सुनाया कि, "कोई एक पुरुष सुभाषित (बोलने)मे बड़ा चतुर था । वह एक बार गगा नदीको पार करते हुए उसके जल प्रवाहमे बह चला । उस समय नदीके किनारे खडे लोगोंने उससे कहा कि, "हे भाई ! कुच्छ सुभाषित बोल" उसने कहा कि

येन रोहति बीजानि, येन जीवति कर्षका ।
तस्य मध्ये विपद्यते, जात मे शरणाद्भयम् ॥१॥

भावार्थ –"जिससे सब बिज उगते हैं और जिसके द्वारा कृषक जीवित रहते है उसी पानीमें में मर रहा हू इससे मुझे जिसका शरण था उसीका भय प्राप्त हुआ है ।"

यह सुन सूरिने कहा कि, "हे वत्स ! तू बड़ा अच्छा पढ़ा हुआ जान पड़ता है" ऐसा कह उसे भी मार उसके अलकार ले लिये ।

आगे चलने पर तेजस्कायिक नामक तीसरे बालकको देखकर उससे भी अलकार छीन लेनेको तैयार हो गये। तब उस बालकने भी पूर्ववत् उसका नाम बतला दृष्टान्त कहा कि, "किसी आश्रमम एक अग्निहोत्रि तपस्वी रहता था। वह सदैव विधिपूर्वक अग्नि पूजन किया करता था। एकबार उस अग्निसे उसका झोपड़ा जलने लगा। जिसे देख वह तपस्वी कहने लगा कि –

यमहं मधुसर्पिर्भ्यां, तर्पयामि दिवानिशम्।
दग्धस्तेनैवमेटजो मे, जातं तच्छरणाद्भयम् ॥१॥

भावार्थ –"जिसको मैं अहनिश मधु तथा घी से तृप्त करता हू उसी अग्निन मेरी झोपड़ी जला डाली इसलिये मुझे शरणसे ही भय प्राप्त हो गया है।"

अत हे पूज्य! आपको भी ऐसा करना अनुचित है आदि शब्द कहने पर भी सूरिने उसको मार कर उसके अलकार छीन लिये।

वहासे भी आगे चलने पर उन्होंने वायुकायिक नामक चौथे बालकको देखा। सूरि उसके भी अलकार ले लेनेको तैयार हो गये। तब उस बालकने भी पूर्ववत् अपना नाम प्रगट कर एक दृष्टान्त कहा कि –"पूर्व कोई युवा पुरुष बहुत बलवान था। उसे कोई भयकर व्याधि हो जानेसे उसके अवयव कापने लगे। जिसे देख जब किसीने उससे

पूछा कि पहले तो तू बहुत दोड़ता-भागता था और पवन सदृश बड़ा उद्योगी था और अब लकड़ीकी सहारा लेकर क्यों चलता है ?" तब उसने कहा कि –

सोनादीयो मरुज्ज्येष्ठाषाढयो सौख्यदाऽभवात् ।
स एव बाधतेऽङ्गं मे, जातं हि शरणाद्भयम् ॥१॥

भावार्थ –उस युवानने उत्तर दिया कि, "जो पवन मुझे जेष्ट तथा अषाढ मासमें अत्यन्त सुख देता था वह ही अब मेरे अगको पीडित कर रहा है इसलिये अब सु शरणसे ही भय उत्पन्न हो रहा हैं ।"

ऐसा कहने पर भी सूरिने उसे मार उसके अलकार ले अपने पात्रेमे डाल लिये ।

आगे जाने पर "वनस्पतिकाय" नामक पाचवे बालकको देखकर सूरिने उसके अलकार लेनेकी इच्छाकी जब उस बालकने भी एक दृष्टान्त बताया कि–किसी अरण्यमे कई पक्षी वृक्ष पर घोंसला बनाकर रहते थे । उस वृक्षके मूलसे एकलता उगकर उसके लिपटती हुई ऊपर चढ़ गइ । उस लताके आधारसे कोई सर्प उस वृक्ष पर चढ़कर उपरोक्त पक्षियोंके बच्चोंको खाने लगी । जिसे देख उस वृक्षके पक्षियोंने परस्पर कहा कि,—

अद्य यावत् सुखं वृक्षे, स्थितमत्रानुपद्रवे ॥
अस्मादेव लतायुक्तादधामूच्छरणाद्भयम् ॥१॥

भावार्थ –"आज तक हम इस वृक्ष पर उपद्रव रहित सुखसे रहते थे वहही वृक्ष लतायुक्त होनसे हमारे लिये जो शरणरूप था वह ही आज भय उत्पन्न करनेका कारण हो गया है।"

सूरिने कथा सुन, "हे बालक तू बुद्धिमान है।" ऐसा कह निर्दयता पूर्वक उसे मार उसके भूषण उतार लिये।

आगे जाने पर उसने छट्ठे बालकको देखा। उसका नाम पूछने पर उसने कहा कि, "मेरा नाम प्रत्रयायिक है। यह सुन सूरि उसके अलकार लेनेको उत्सुक हो गया। जिस पर उस बालकने कहा कि मेरी बात सुन कर फिर आपको जैसा उचित जान पड वैसा करना। किसी गांव को जब शत्रुओंने आकर घेर लिया तो उस गांवके सब निवासी अपना अपना धन लेकर बाहर निकल आये और गांवके बाहर रहनेवाले चण्डाल आदि गांवमें प्रवेश करने लगे जिसे देख किसी पुरुषने चाण्डालोंसे कहा कि –

भीता पौरा कर्पयति, यु मानिघ्नति च द्विप.।
तत्क्वापि यात मातगा, जात शरणतो भयम् ॥१॥

भावार्थ –"हे चण्डालो! पुरवासी तो भयभीत होकर उनका धन बाहर निकाल रहे हैं और तुम जो गांवमे घुस रहे हो परन्तु तुम्हें शत्रु मार डालेंगे इसलिये तुम कहीं अन्यत्र चले जाओ क्योंकि जिस गांवकी शरण थी उसी गांवसे आज भय प्राप्त हो रहा है।"

इस प्रकार उपनय सहित दृष्टान्त सुनाये परभी सूरिने उसे नहीं छोड़ा तब उस बालकने दूसरा दृष्टान्त बताया कि – किसी नगरका राजा स्वय ही उसके पुरुषोंसे चोरी कराता था और उसके लिये जब लोग फरियाद करते तो राजाका पुरोहित सब लोगोंको गाली देताथा जिससे सब लोग खेदित होकर कहने लगे कि –

यत्र राजा स्वय चौरो, भाण्डकश्च पुरोहित ।
यात पौरा पुरात्तस्माज्जात हि शरणाद्भयम् ॥१॥

भावार्थ – 'हे पुरवासियों ! जहा राजा स्वय चोरी करता है और जहा पुरोहित गालिये देता है उस नगरको छोड़ कर तुम कही अन्यत्र चले जाओ क्यो कि जिसकी शरण थी उसीसे भय प्राप्त होने लगा हैं ।"

इस कथाके कहनेपर भी जब सूरिने अपनी दुष्टता नही छोडी तो उस बालकने तीसरा दृष्टान्त कहा कि–किसी नगरमें एक कामान्ध ब्राह्मण रहता था । उसकी रूपवती पुत्रीको देखकर उसके साथ क्रीडा करनेकी इच्छा हुई परन्तु लज्जावश वह दुष्ट अपनी इच्छाकी पूर्ति न कर सका जिससे उसका शरीर अत्यन्त क्षीण हो गया । उसकी स्त्रीने जब अत्यन्त आग्रहपूर्वक उससे कृश होनेका कारण पूछा तो उसने उसका सही सही कारण कह सुनाया । उसे सुन उस स्त्रीने उसके पतिके प्राण बचानेके लिये उसकी पुत्रिसे कहा कि, "हे पुत्री ! हमारे कुलका यह रिवाज है कि प्रत्येक कुमारी

कन्याको प्रथम यक्ष भोगता है उसके पश्चात् उसका विवाह किया जाता है इसलिये तू कालीचतुर्दशीकी रात्रिको यक्षके मन्दिरमें जाना परन्तु वहां दिपक मत जलाना क्योंकि उससे यक्ष कोपित होता है।" यह सुन पुत्रिने माताके वचन अंगीकार किये परन्तु जाते समय शरावमें दिपक छिपा कर ले गई। फिर उसकी माताने उस ब्राह्मणको यक्षके मन्दिरमें भेजा वह वहां गया और उसकी पुत्रीसे निःशंक भोग सुखपूर्वक सो रहा। थोडी देर पश्चात् जब उस पुत्रीने कौतुकवश दीपक जला कर देखा तो उसके पिताको ही वहां सोता देखा। जिस पर उसने विचार किया कि, "अहो! मेरी माताने ही जब मेरे पर माया की है तो आजसे यह ही मेरा पति है। जब मैं नर्तकीका नाच करना आरंभ किया तो फिर घुंघट किस लिये निकालना?" ऐसा विचार कर वह पुत्रि भी जो निद्रासे श्रमित हो गई थी निरान्तसे उसके साथ सो रही। प्रातःकाल होने पर भी जब उन दोनोंमसे एक भी न आया तो उसकी माताने वहां जा-कर कहा कि, "हे पुत्री! अब तक क्या नहीं जगती है?" पुत्रीने जवाब दिया कि, "हे मा! जब मैंने तेरे कथनानुसार किया तो यक्षने मुझ इसे ही पतिरूपसे दिया है इसलिये अब तू दूसरा पति ढूंढ ले।" यह सुन माताने कहा कि—

निशामुत्रे च चिर यस्या, मर्दितं सापि नंदिनी।
मत्कातमद्दत्तमे, जातं शरणतो भयम्॥१॥

इस प्रकार उपनय सहित दृष्टान्त सुनाये परभी सूरिने उसे नहीं छोडा तब उस बालकने दूसरा दृष्टान्त बताया कि – किसी नगरका राजा स्वयं ही उसके पुरुषोंसे चोरी कराता था और उसके लिये जब लोग फरियाद करते तो राजाका पुरोहित सब लोगोंको गाली देताथा जिससे सब लोग खेदित होकर कहने लगे कि –

यत्र राजा स्वयं चौरो, भाण्डकश्च पुरोहितः ।
यात पौरा पुरात्तस्माज्जात हि शरणाद्भयम् ॥१॥

भावार्थ –"हे पुरवासियों ! जहा राजा स्वयं चोरी करता है और जहा पुरोहित गालियें देता है उस नगरको छोड़ कर तुम कहीं अन्यत्र चले जाओ क्यों कि जिसकी शरण थी उसीसे भय प्राप्त होने लगा है ।"

इस कथाके कहनेपर भी जब सूरिने अपनी दुष्टता नहीं छोडी तो उस बालकने तीसरा दृष्टान्त कहा कि–किसी नगरमें एक कामान्ध ब्राह्मण रहता था । उसकी रूपवती पुत्रीको देखकर उसके साथ क्रीडा करनेकी इच्छा हुई परन्तु लज्जावश वह दुष्ट अपनी इच्छाकी पूर्ति न कर सका जिससे उसका शरीर अत्यन्त क्षीण हो गया । उसकी स्त्रीने जब अत्यन्त आग्रहपूर्वक उसके कृश होनेका कारण पूछा तो उसने उसका सही सही कारण कह सुनाया । उसे सुन उस स्त्रीने उसके पतिके प्राण बचानेके लिये उसकी पुत्रिसे कहा कि, "हे पुत्री ! हमारे कुलका यह रिवाज है कि प्रत्येक कुमारी

कन्याको प्रथम यक्ष भोगता है उसके पश्चात् उसका विवाह किया जाता है इसलिये तू फाल्गुनचतुर्दशीकी रात्रिको यक्षके मन्दिरमें जाना परन्तु वहा दिपक मत जलाना क्योंकि उससे यक्ष क्रोधित होता है।" यह सुन पुत्रिने माताके वचन अंगीकार किये परन्तु जाते समय शरावमें दिपक छिपा कर ले गई। फिर उसकी माताने उस ब्राह्मणको यक्षके मन्दिरमें भेजा वह वहा गया और उसकी पुत्रीसे निःशंक भोग सुखपूर्वक सो रहा। थोड़ी देर पश्चात् जब उस पुत्रीने कौतुकवश दीपक जला कर देखा तो उसके पिताको ही वहा सोता देखा। जिस पर उसने विचार किया कि, "अहा! मेरी माताने ही जब मेरे पर माया की है तो आजसे यह ही मेरा पति है। जब मैं नर्तकिने नाच करना आरंभ किया तो फिर घुंघट किस लिये निकालना?" ऐसा विचार कर वह पुत्रि भी जो क्रिडासे श्रमित हो गई थी निरांतसे उसके साथ सो रही। प्रातःकाल होने पर भी जब उन दोनोंमसे एक भी न आया तो उसकी माताने वहा जाकर कहा कि, "हे पुत्री! अब तक क्या नही जगती है?" पुत्रीने जवाब दिया कि, "हे मा! जब मैंने तेरे कथनानुसार किया तो यक्षने मुझे इसे ही पतिरूपसे दिया है इसलिये अब तू दूसरा पति ढूंढ ले।" यह सुन माताने कहा कि—

निशापूर्ते च चिरं यस्या, मर्दिते सापि नंदिनी।
मत्कातमहरत्त्वमे, जातं शरणतो भयम् ॥१॥

भावार्थ –"जिसकी विष्टा तथा मूत्र मैंने बहुत समय तक धोये हैं उसी पुत्रीने मेरे पतिको हरण कर लिया इससे मुझे जिसका शरण था उसीसे भय उत्पन्न होने लगा है।"

इसप्रकार उस बालकके दृष्टान्त कहने पर भी जब गुरूसे विराम नहीं मिला तो उसने फिरसे उसे चौथा दृष्टांत कहा कि–किसी नगरमें एक मूर्ख ब्राह्मणने धर्मबुद्धिसे एक सरोवर खुदवाया और उस तालावके किनारे उसने अनेकों बकरोंका यज्ञ किया और अनुक्रमसे वह ब्राह्मण मर कर बकरा हुआ। एक दिन उस ब्राह्मणके पुत्र उसी बकरेकों यज्ञके लिये उस तालाव पर ले गये। जहां उसके बनवाये तालाव आदिकों देखकर उसे जातिस्मरण हो आया जिससे वह बारवर "बु बु" शब्द करने लगा। उसे सुन किसी ज्ञानि मुनिने उसका पूर्वभव जान कहा कि —

स्थानित हि त्वयैवेद, सरो वृक्षाश्च रोपिता
प्रवर्तिता मखाश्चापि, कि बु बु कुरुषे पशो ॥१॥

भावार्थ –"हे गुरु! तूने ही यह सरोवर खुदवाया है, तूने ही ये वृक्ष बोये हैं और तूने ही यहां यज्ञ कराया है तो फिर अब "बु बु" शब्द क्यों करता है?"

यह सुन कर उसके पुत्रोंने उसका वृत्तान्त पूछा तो मुनिने उसका पूर्वभव कह सुनाया जिसे सुन उन पुत्रोंने कहा कि, "यदि ये हमारे पिता हो तो ये वह धन हमने बतला दे कि जो इन्होंने पूर्वमे भूमिमें रख्खा हो। तब ही

हम यह वचन सत्य मान सकते हैं। यह सुन उस बकरेने तत्काल आकर वह धन बतला दिया जिसे देख सब निःशल्य हो गये और यम न करनेका नियम लिया। बकरा भी अनशन कर स्वर्ग सिधाया।

मर्त्ये मे शरणं मावीत्याशया स द्विजो यथा।
तटाकादि व्यधात्तत्र, तस्याशरणतामगात् ॥१॥

भावार्थ –' जैसे उस ब्राह्मणने इस आशासे व तालाव आदि बनवाये थे कि "ये मृत्यु बाद हमारे शरण होंगे" वे ही उसके लिए अशरणरूप सिद्ध हुए।"

एवं ममापि भीतेन, भवत शरणीकृता।
चेल्लुण्ठति तदा मेऽपि, शरणमशरणता गतम् ॥२॥

भावार्थ –' इसी प्रकार मैंने भी भयभीत होकर आप का शरण लीया है इसलिये यदि आपही मुझ लूट लेना चाहते हैं तो फिर मेरे लियेतो शरण ही अशरण रूप हो गई है।"

आदि कई प्रकारसे उस बालकने उन सूरिको समजाया परन्तु वे लोभी सूरि न समझ पाये और उसको भी मारकर उन्होंने उसके आभरण ले लिये।

इस प्रकार छ कुमारोंके आभरण अपने पात्रमें डाल कर जब वे मुनि मार्गमें प्रयाण कर रहे थे कि उन्होंने एक गर्भिणी साध्वीको, सर्व अलंकारसे भूषित तथा नेत्रोंमें अंजन डाले हुए थी, देखा उसे देख सूरिने कहा कि, जैन

शासनकी निन्दा कराने वाली हे दुष्ट साध्वी ! तू यहां कहां से चली आई है ?" यह सुन साध्वीने कहा कि –

साह रे सर्षपामानि परच्छिद्राणी पश्यसि ।
आत्मानो बिल्वमात्राणि पश्यन्नपि न पश्यसि ॥१॥

भावार्थ –"वह साध्वी कहने लगी कि अरे ! दूसरों के तो सरसवके दाने जितने सूक्ष्म छिद्रोंको भी तुम देखते हो और तुम्हारे खुदके मोटे बीले जितने छिद्रोंको देखते हुए भी नहीं देखते ।"

"अपितु हे आचार्य ! यदि तुम शुद्ध होवे मेरे पास आओ ऊंचे कान कर क्यों भगते हो ? तुम्हारा पात्र मुझे दिखलाओ ।" ऐसे शब्द सुन सूरि तत्काल वहांसे भगकर आगे चल दिये । थोड़ी दूर जाने पर उन्हें राजा का सैन्य दिखाई पड़ा जिनके भयसे वे सैन्यका मार्ग छोड़ कर दूसरे रास्ते चल दिये । किन्तु उधर तो दैवयोगसे राजाके समक्ष ही जा पहुचे । उन्हें देख राजाने भी हाथीसे निचे उतर उनको नमस्कार किया और कहा कि, "हे गुरू ! मैं बड़ा भागी हू कि मुझे यहा आपके दर्शन हो गये । इसलिये अब आप मुझ पर कृपा कर एषणीय मोदक आदि ग्रहण कीजिये ।" यह सुन सूरिने विचार किया कि, "यदि मैं मोदक लेनेके लिए पात्र बाहर निकालूंगा तो मेरी चोरी प्रगट हो जायगी ।" ऐसा विचार कर उन सूरिने कहा कि, "आज तो मेरे उपवास है" राजाने कहा कि, "मेरे

श्रावका खंडन मत कीजिये ।" ऐसा यह सूरिकी झोली से जबरदस्ती पात्रा बाहर निकाल उसमें मोदक डालने जाता है कि उसमें तो वे अलंकार दिखाई दिये जिससे वह राजा कोपायमान होकर बोला कि-"अरे साधुके वधकी हँसी करनेवाले दुष्ट ! मेरे पुत्रको मार कर तू जीवित कैसे जायगा ?" यह सुन सूरि निचा सिर कर विचारने लगे कि, "इस राजाने मेरा पाप जान लिया है इसलिये अब यह मुझे जीवित नहीं जाने देगा, बुरी मौतसे मारेगा मैंने बड़ा दुष्ट कार्य किया है । योग तथा भोग मैं दोनोंसे भ्रष्ट हो गया हूँ ! अब मेरी क्या गति होगी ?" आदि चिन्ता करते हुए सूरिको जानकर उस देवने अपनी माया हटादी और प्रत्यक्ष होकर कहने लगा कि-"हे पूज्य ! मैं आपका वह ही शिष्य हूँ कि जिसका आपने वचन लिया था । आपके वचनसे बंधा हुआ होनेसे मैं यहां आया हूँ स्वर्ग में जाने पश्चात् देव कार्यमें व्यग्र रहनेसे यहां आनेमें मुझे विलम्ब हुआ है परन्तु "संकंति दिव्व पेमा" और "चत्तारि पंच जोयण सयाइ" अर्थात् संक्रमेले-प्राप्त हुए दिव्य प्रेमादिके कारणसे देवतालोग उनमें लुब्ध हो जाते हैं इससे पृथ्वी पर नहीं आते अपितु चारसो पांचसो योजन तक ऊंची मनुष्य लोककी दुर्गंध जाती है इससे भी देवता पृथ्वी पर नहीं आते" आदि आगमके वाक्य जानते हुए भी आपने ऐसा कर्म क्यों आरंभ किया ? अपितु दिव्य नाटक देखनेमें लुब्ध होकर खड़े खड़े आपने भी छ मास

व्यतीक्रम कर दिये फिर भी उस समयको आपने एक मुहूर्त मात्र समझे है" इस प्रकार देवकी वाणी सुनकर सूरिका सब संशय नष्ट हो गया और वे उनके दुराचारकी निन्दा करने लगे। फिर उन्होंने देवसे कहा कि,—

"तुमने ही भाव बन्धुपनसे मुझे मोक्षमार्ग बतलाया है क्योंकि तुमने मुझ धर्म भ्रष्टको फिरसे धर्म बतलाया है इसलिये मैं कदापि तुमसे [1]अऋणि नहीं हो सकता इससे अधिक मैं क्या कहूँ ?" सूरिके ऐसे वचनोंसे संतोष पा अपने अपराधके लिये क्षमा–याचना कर वे देवता स्वर्गमें गये। फिर सूरिने आलोयण ले उग्र तप किया।

"इस प्रकार आषाढ सूरि प्रथम समकितसे भ्रष्ट हुए और चित्तमें संशय किया परन्तु पीछे शुद्ध भाव धारण किया इसलिये सब साधुओंको शंका रहित होकर निरन्तर निरतिचार चारित्रका पालन करना चाहिये।"

[इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशप्रासादवृत्तौ सप्तदशस्तंभस्य द्विपंचाशदधिकद्विशततमः प्रबंधः ॥२५२॥]

---

[1] देनदार रहितपन

१

व्याख्यान २५३

मिथ्यात्वके भेद

एकधा द्विविधा नून, चतुर्धा त्रिविधा मतम्।
दशधा पचधा चैव, मिथ्यात्व बहुधास्मृतम् ॥१॥

भावार्थ –" मिथ्यात्वके एक, दो, चार, तीन, दश और पाच आदि अनेक प्रकार कहे गये हैं।"

श्रीवीतरागके वचनों पर अविश्वास तथा जीवादि पदार्थों पर अश्रद्धा इसे एक प्रकारका मिथ्यात्व कहते हैं।

मिथ्यात्व व्यक्त और अव्यक्त इसप्रकार दो तरहका है। इनमे प्रमाण वाक्यों द्वारा, तथा युक्ति द्वारा एकात पक्षकी पुष्टि करने वाले स्पष्ट चैतन्यवाले सज्ञि पचेन्द्रियादि जीवोंका जो मिथ्यात्व होता है उसे व्यक्त मिथ्यात्व कहते है। और अनादिकालसे मोहनीय कर्मकी प्रकृतिरूप मिथ्यात्व जो सम्यग् दर्शन आदि आत्मिक गुणोका आच्छादन करनेवाला है और जीवनके साथ सदाकाल अविनाभावे रहा हुआ है, वह अव्यक्त मिथ्यात्व कहलाता है। यह अव्यक्त मिथ्यात्व असज्ञि एकेन्द्रियादि जीवोंका तथा निगोदके जीवोंको होता है।

द्रव्य भावसे भी दो प्रकारका मिथ्यात्व कहा गया है। इसमे बाह्यवृत्तिसे मिथ्यात्व आचरण करे परन्तु अतरग

वृत्तिसे निर्मलपना (समकित) ही हो उसे द्रव्य मिथ्यात्व कहते हैं । ऐसा द्रव्य मिथ्यात्व कुमारपाल राजाके आग्रहसे सोमेश्वर महादेवकी यात्रा करने वाले श्री हेमचन्द्र आचार्यके सदृश, तथा राजाके उपरोधसे गैरिक सपत्नीकी भक्ति करने वाले कार्तिक श्रेष्ठीकी तरह जानना चाहिये । और भाव मिथ्यात्व निरंतर त्रिकालज्ञानी तीर्थकरोंके वचनों पर जो अनादर किया जाता है उसे समझना चाहिये । इसीप्रकार व्यवहार मिथ्यात्व और निश्चय मिथ्यात्व ऐसे दो भेदोंको भी अनुक्रमसे द्रव्य मिथ्यात्व और भाव मिथ्यात्वके समान ही समझना चाहिये ।

चार प्रकारका मिथ्यात्व इसप्रकार है कि–लौकिक देवगत मिथ्यात्व, लौकिक गुरुगत मिथ्यात्व, इसमें ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, गणपति, गोत्रदेवी, क्षेत्रपाल आदि लौकिक देवोंका पूजनादि करना यह लौकिक देवगत मिथ्यात्व कहते हैं । बैरागी, सन्यासी योगी, जंगम, तपस्वी ब्राह्मण आदि लौकिक गुरुकी पूजा, सत्कार आदि करना लौकिक गुरुगत मिथ्यात्व कहलाता है । वीतराग देवकी यात्रादिक मानता करना जैसे कि, "हे अमुक प्रभु ! यदि मेरा अमुक कार्य सिद्ध होगा तो मैं श्रीफल, स्नात्र, दीपक, नित्य दर्शन, अष्ट प्रकारकी पूजा आदि करूंगा ।" आदि संसार सुखके लिये मानता करना अथवा "हे प्रभु ! मेरे विवाह आदि दुर्लभ कार्य आपहीने सिद्ध किये हैं अब मेरे पुत्र तथा पुत्रवधूको कुशल

रखना।" आदि विविध प्रकारकी स्तुति करना लोकोत्तर देवगत मिथ्यात्व कहलाता है । इसप्रकार मानता तथा स्तुति कर वह लोग अविकारी, अविनाशी और वीतराग प्रभुको दुषित करते हैं । अरे ! जिस मूढ प्राणिके चित्तमें मिथ्यात्व व्याप्त है उसे धिक्कार है । यहां है कि-लोकोत्तर देवमें लौकिक देवके जो चिन्हे उनका आरोपण करना भी मिथ्यात्व है अर्थात् "आपकी इच्छानुसार ही सुखदुख प्राप्त होते हैं तुम ही सुखदुखके देनेवाले हो आदि लौकिक देवके समान लोकोत्तर देवको कहना भी मिथ्यात्व ही है।" इसप्रकार लोकोत्तर देवगत नामक तीसरा मिथ्यात्व समझे । और पार्श्वस्थादिकको गुरु बुद्धिसे वन्दनादिक करना लोकोत्तर गुरुगत मिथ्यात्व कहलाता है । अथवा लोकोत्तर देवगत मिथ्यात्व इसप्रकार जानना कि, परतीर्थीको द्वारा ग्रहण की जिनप्रतिमाको वन्दन, पूजन आदि करना, रात्रिके समय श्राविकाओंका जिनमंदिरमें जाना, साधुओंको जिनमंदिरमें निवास करना अथवा रात्रिमें प्रभुकी स्नात्रादिक पूजा करना अथवा तंबोल दिकका भक्षण करना, जलक्रीडा करना, झूला झूलना, नाटकादिक देखना आदि लौकिक देवके मंदिर सदृश जिनेश्वरके मन्दिरमें भी उसीप्रकार करना यह सब लोकोत्तर देवगत मिथ्यात्व कहलाता हैं । लोकोत्तर गुरुगत मिथ्यात्व भी पक्षांतरसे पूर्वाचार्योंने कहा है कि —

जे लोगुत्तमलिंगा, लिंगिअदेहावि पुप्फतंबोल ।
आहाकम्म सव्व, जल फल चेव सचित्त ॥१॥

मुजति चीपमग, वन्वहार गथसग्गह भूस ।
एगागित्त ममण, सच्छदनिहिअ वयण ॥२॥

चेइअ मट्ठइ वास, वसहीसु निच्चमेव सठाण ।
गेअ तिअरणाण अच्चावणमवि कणयकुसुमेहि ॥३॥

तिंनिह तिनिहणय, मिच्छत्त वज्जिय जहि दूर ।
निच्छियउ ते सड्ढा, अने उण नामउ चेर ॥४॥

भावार्थ –" जो लोकोत्तर लिंगवाले (साधु) यतिवेश धारण करने परभी पुष्प, तम्बोल, आधाकर्मी सब वस्तुएँ तथा सचित जल और फल खाये तथा स्त्री प्रसग करे, द्रव्यादिककी गठि बांधे, अगुठी आदि आभूषण धारण करे, अकेले घूमे, स्वच्छन्दपनसे चले, इच्छानुसार वचन बोले, चैत्यमे मठवासीके समान रहे, वस्तीमे सदैव निवास करे गायनमे अपने प्रतिष्ठा करावे, और सोनैया द्वारा तथा पुष्पों द्वारा अपनी पूजा करावे इस प्रकार मिथ्याभावमे वर्ते उस वेष धारी साधुओंको जो त्रिविध त्रिविध प्रकारसे दूरसे ही वर्जित करते हैं वे निश्चयसे सच्चे श्रावक हैं । उनके अतिरिक्त अन्यतो मात्र नामके ही श्रावक हैं ।"

अब तीन प्रकारका मिथ्यात्व मन, वचन और कायासे जाने । इसके विषयमे पूर्वाचार्योका कथन है कि –

एय अणतरुत्त, मिच्छ मनसा न चितइ करेमि ।
सयमेन नो करेउ, अन्नेण कए न सुठठु कय ॥

एव वाया न भणइ, करेमि अन्न च न भणइ करेह।
अन्नकय न पससइ, न कुणइ सयमेव काएण ॥२॥

करसन्न भमुहखेवाइहि, न य काम्वेइ अणेण ।
अणयकय न पमसइ, अणेण कए न सुठट्ट कय ॥३॥

भावार्थ –"इस स्थान पर यह मिथ्यात्वके लिए मनमें यह न सोचे कि–मैं स्वयही यह काय करू अथवा किसीसे कराउ, अथवा यदि किसीने किया हो तो अच्छा किया ऐसा अनुमोदन करू । इसी प्रकार वचन द्वाराभी नहीं बोलना कि–'म यह कार्य करू, दूसरोंको न कहे कि, 'तू कर' और यदि किसीने किया होतो तूने अच्छा किया।' ऐसा बोलकर उसकी प्रशसा न करे । इसी प्रकार कायाद्वारा स्वय करे नहीं, हाथके ईशारे तथा भमरको हिलाकर दूसरों से करावे नही और यदि दूसरेने किया हो तो उसे 'इसने ठीक किया' ऐसा सज्ञादिक से प्रशसा न करे ।" (इससे यदि विपरीत किया जाय तो मिथ्यात्व जानना चाहिये)

मिथ्यात्वके दश भेद इसप्रकार बतलाये गये हैं कि—अधर्ममें धर्म सज्ञा, धर्मम अधर्म सज्ञा, उन्मार्गम मार्ग सज्ञा, मार्गम उन्मार्ग सज्ञा, अजीवमें जीव सज्ञा, जीवमें अजीवसज्ञा, कुसाधुमे सुसाधु सज्ञा, सुसाधुम कुसाधु सज्ञा, अमुक्तमें मुक्त सज्ञा और मुक्तमें अमुक्त सज्ञा । इनका भावार्थ इस प्रकार है कि –

(१) शुभ लक्षण रहित होनेसे वेद वाक्य अनागम हैं उनमें धम अर्थात् आगमबुद्धि रखना, इसे अधर्ममें धम संज्ञा कहा गया है ।

(२) सर्वकर्म नाश करने वाले और शुद्ध सम्यक्त्व की प्राप्ति करानेवाले आप्त वचनोंमें अनागमकी (अधमकी) बुद्धि रखना अथवा ऐसा कहना कि "सब पुरुष हमारे समानही मनुष्य होनेसे रागादिक सहित ही होते हैं कोई सर्वज्ञ नहीं होता आदि अनुमान प्रमाणसे कोई भी आप्त नही है ।" ऐसी कुयुक्ति कर आप्तप्रणीत आगममें अनागम बुद्धि रखना इस धममें अधम संज्ञा कहा जाता है ।

(३(मोक्षपुरीका अमार्ग अर्थात् वस्तु तत्वकी अपेक्षासे विपरित श्रद्धानयुक्त ज्ञान और क्रिया करना उन्मार्ग कह लाता है । उनमें मार्ग बुद्धि रखना उन्मार्गमें मार्ग संज्ञा कहलाती है ।

(४) मोक्षपुरीके मार्गमें अर्थात् शुद्ध श्रद्धासे ज्ञान और क्रिया करनेमें उन्मार्गपनकी बुद्धि रखना मार्गमें उन्मार्गमें संज्ञा कहलाती है ।

(५) अजीवके विषयमें अर्थात् आकाश, परमाणु आदिमें जीव है ऐसा मानना, यह शरीर ही आत्मा है ऐसा मानना अथवा पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, यजमान, आकाश, चन्द्र, और सूर्य ये आठ महादेवकी मूर्तियें हैं आदि मानना अजीवमें जीव संज्ञा कहलाती है ।

(६) पृथ्वी आदि जीवोंमें चलने फिरने समान उच्छ्वास आदि जीवके धर्म नहीं दिखाई देने अत यह पृथ्वी आदि अजीव हैं ऐसी युक्तिसे जीवमें अजीव बुद्धि रखना जीवमें अजीव संज्ञा कहलाता है ।

(७) छ काय जीवकी हिंसामें प्रवृत्त असाधुमें साधु बुद्धि रखना असाधुमें साधु संज्ञा कहलाती है ।

(८) "इनके पुत्ररहित होने तथा स्नानादिक न करने से इनकी सद्गति नहीं होगी । आदि कुतर्क कर पंच महाव्रतादिकके पालन करनवाले सुसाधुमें असाधु बुद्धि रखना साधुमें असाधु संज्ञा कहलाति है ।

(९) कमवाने और लौकिक व्यवहारमे प्रवृत्त हुए अमुक्त पुरुषोंको मुक्त मानना अर्थात् अणिमादि अष्ट सिद्धिका प्राप्त कुशल पुरुष सदा आनन्दपूर्वक रहते हैं, वे ही निवृत्तात्मा (मुक्त) हैं और वे ही दुष्कर संसारसे तैर गये हैं आदि मानना अमुक्तमें मुक्त संज्ञा कहलाती है ।

(१०) समस्त कर्मविकारसे रहित तथा अनंत ज्ञानदर्शन चारित्र और वीर्यवान् मुक्त पुरुषोंको अमुक्त मानना मुक्तमें अमुक्त संज्ञा कहलाती है ।

अब मिथ्यात्वके पाँच प्रकार बतलाये जाते हैं —

(१) अपने मतको ही प्रमाणरूप मानने वाले कुदृष्टि वासित मनुष्योंको जो मिथ्यात्व होता है उसे अभिग्रहिक मिथ्यात्व कहा जाता है ।

(२) सब देवों और सर्व गुरुओंको नमस्कार करना, सर्व धर्म करना इसप्रकार धर्म अधर्मके ज्ञान बिना सब धर्मोंको समान मानना अनभिग्रहिक मिथ्यात्व कहलाता है।

(३) श्रीमत् अरिहतके मतका यदि कोई यथास्थितरूपसे वर्णन करे तो उस परसे मत्सरके कारण उसका जानबूझकर खडन करना अभिनिवेशिक मिथ्यात्व कहलाता है अथवा अज्ञानसे प्रथम जो उत्सूत्र प्ररुपणा हो जाये तो फिर सच्चे तत्वको जान लेने परभी अपने ही मतकी आग्रहपूर्वक स्थापन की जाये, अथवा अनजान सूत्रके भावार्थकी उत्सूत्र प्ररुपणा करे और फिर यदि कोई उसे समझा कर उससे निवारे तो भी अपने आग्रहको न छोडे इसे भी अभिनिवेशिक मिथ्यात्व कहते है।

(४) सूत्रमें, अर्थमे या सूत्रार्थमे यदि किसी भी प्रकार की शका हो तो भी किसीसे उसका समाधान न करावे तो तो उसे साशयिक मिथ्यात्व कहते हैं।

(५) और जो किसीभी प्रकारका तत्त्वातत्त्वका विचार नही जानते ऐसे एकेंद्रियादिक जीवोंका अज्ञानरूप अनाभोगिक मिथ्यात्व कहलाता है।

इसप्रकार मिथ्यात्वके कई भेद बतलाये गये हैं। विधि कौमुदिम तहत्तर (७३) भेद कहे गये हैं किसी स्थानपर इकीस भेद भी बतलाये गये है आदि अनेक भेद उन उन ग्रथोंसे पढ

लेवे । अब यह बतलाया जाता है कि इन मिथ्यात्वकी स्थिति कितनी है —

अभव्याश्रितमिथ्यात्वेऽनाद्यनन्ता स्थितिर्भवेत् ।
सा भव्याश्रितमिथ्यात्वेऽनादिसान्ता पुनर्मता ॥१॥

भावार्थ —"अभव्य प्राणीके लिये मिथ्यात्वकी स्थिति अनादि अनन्त है और भव्य प्राणीके लिये अनादि सांत स्थिति मानी गई है ।"

इस श्लोकके उपलक्षणसे मिथ्यात्वकी स्थिति कालके विचारसे चार भागोंमें बांटी जा सकती है । अनादि अनन्त, अनादि सांत, सादि अनन्त और सादि सांत । इनमेसे अभव्य प्राणियोंको विपरीत रुचिरूप मिथ्यात्व अनादि अनन्त होता है । क्योंकि अनादि कालसे मिथ्यात्व लगा हुआ है और उसका फिर किसी भी समय अन्त नहीं आ सकता है । भव्य प्राणिओंको मिथ्यात्व अनादि सांत होता है क्योंकि भव्य प्राणी भी अनादि कालसे मिथ्यादृष्टि होते हैं परन्तु वे भव्य होनेसे किसी भी समय समकित प्राप्त करते हैं अर्थात् उस समय मिथ्यात्वका अन्त हो जाता है इसलिये उनका मिथ्यात्व अनादि सांत है । अपितु अनादि मिथ्यादृष्टि भव्यजीव समकित प्राप्त कर फिर किसीभी कारणसे फिरसे मिथ्यात्व प्राप्त करते हैं इसलिये उनका मिथ्यात्व सादि हुआ । [१] इस मिथ्यात्वमें जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टसे आशातना-

[१] समकित पाये बाद मिथ्यात्व हुआ ।

दिक महान् पापके कारण अर्धपुद्गल परावर्त तक रहकर जब फिरसे सम्यक्त्व प्राप्त करते हैं उस समय वह मिथ्यात्व सात होता है उसे सादि सात जाने । इन चार भागोंमें सादि अनन्त नामक तीसरा भाग जो है वह किसी भी जीवको लागु नहीं होता इसलिये शुन्य जाने । क्योंकि सादि मिथ्यात्व भव्य प्राणियोंको ही हो सकता है इसलिये वह मिथ्यात्व अनन्त नहीं हो सकता । अर्ध पुद्गल परावर्त मेंतो उसका अन्त होता ही है

इस प्रसग पर भव्य तथा अभव्यका स्वरूप जाननेकी इच्छासे शिष्यके प्रश्न करने पर गुरु कहते हैं कि, "जिनकी पर्याय द्वारा मुक्ति होगी अर्थात् जो मुक्तिके योग्य है वे भव्य, अवश्य मुक्तिमे जाये वे ही भव्य हो ऐसा नहीं है क्योंकि यह भव्य प्राणीभी सिद्धिको प्राप्त नही करते, अत "सिद्धिके योग्य हो वे भव्य" ऐसा कहा गया है । अपितु "भव्वा वि न सिज्झिसंति केई" "कई भव्य प्राणीभी सिद्धिको नही पायेंगे ।" ऐसा वचन है और भव्यसे जो विपरीत अर्थात जो कदापि भी ससार समुद्रका पार नही पाये, पाते नही और पायेंगे भी नही उन्हे अभव्य जाने । यहा भव्य और अभव्यके लक्षण जानने के लिए वृद्ध पुरुष ऐसा कहते हैं कि जो प्राणी ससारसे विपक्षभूत मोक्षको मानते हैं और मोक्ष प्राप्तिकी अभिलाषा रखकर मनमें ऐसा विचारते हैं कि –"भव्य होउगा या अभव्य ? यदि भव्य

होउ तो उत्तम है परन्तु कदाच अभव्य हो जाउ तो मुझे धिक्कार है ।" ऐसा विचार किसी भी समय जो करता हो उस प्राणीको भव्य समझे । और जिस प्राणीको किसी भी समय ऐसा विचार न आया हो, न आता हो और न आवेगा ही उस प्राणीको अभव्य जाने । श्री आचारांग सूत्रमें कहा गया है कि, "अभव्यस्य हि भव्याभव्यशङ्काया अभाव ।" "अभव्य प्राणिको मैं भव्य हूं या अभव्य ? ऐसी शंका भी नही होती है ।" इस प्रसंग पर महा पापी पालक नामक अभव्यका दृष्टान्त संक्षेपसे कहा जाता है कि –

श्रावस्ति नगरीके राजाके पुत्र स्कंदकने श्री मुनिसुव्रत स्वामीके पास श्रावक धर्म अंगीकार किया था । एक दिन कुंभकार नामक नगरसे पालक नामक पुरोहित वहां आया उसके साथ राज्यसभामें विवाद कर स्कंदकने उसे पराजित कर दिया । उसके बाद कुछ समय बीतने पर स्कंदकको वैराग्य होनेसे उसने श्री जिनेश्वरके पास दीक्षा ग्रहण की । एकबार उसने प्रभुसे कहा कि, "हे स्वामि ! यदि आपकी आज्ञा होतो मैं मेरी बहिनके देशमें जाउं" प्रभुने कहा कि, "यदि तू वहां जायगा तो बड़ा उपसर्ग होगा और तेरे सिवा अन्य सब आराधक होंगे ।" तब स्कंदकाचार्यने कहा कि– साधुको तो उपसर्ग ही मोक्ष साधन है इसलिये तपस्वियोंको कोई उपसर्ग ही नही है । मोक्षके आनन्दके अभिलाषी मुनियोंको यदि कोई दुःख आता है तो वह महान् आनन्दके

"लिये ही है।" आदि कहकर स्कंदकआचार्य पांचसे साधुओं सहित विहार करते करते कुंभकार नगरके उद्यानमें पहुंचे। यह समाचार सुन पालकने पूर्वके वैरके कारण उस उद्यानकी धूलिमें गुप्तरूपसे शस्त्र गाडकर राजासे कहा कि, "हे राजा! ये साधु तुमको मारकर तुम्हारा राज लेनेको आये है।" ऐसा यह राजाको यकीन दिलानेके लिए छिपाये हुए शस्त्र दिखलाये। जिससे क्रोधित हो राजाने उन साधुओंको मार डालनेकी आज्ञा दी। राजाका हुकम लेकर पालक उन साधुओंको पील डालनेके लिए मनुष्योंको पीलनेकी घाणी पास ले गया उसमें चारसो निनाणे साधुओंको पील डाला तब स्कन्दक आचार्यने उससे कहा कि–"तू इस बालक साधुको शेष रख कर प्रथम मुझे पील डाल" तिस परभी पालकने आचार्यको अधिक दुखी करनेके हेतुसे प्रथम बालकको ही पीला। उन सबको सूरिने निर्यामणा करा मुक्त कराया फिर सूरिने उस पालक सहित सारे देशको भस्म करनेका नियाणु किया यहासे कालधर्म प्राप्तकर आचार्य वाहनकुमार देवता हुए उन्होंने अपना वैर लेनेके लिए यहां आकर पालक सहित सम्पूर्ण देशको जलाकर भस्म कर दिया। वह स्थान आज भी दंड कारण्यके नामसे प्रसिद्ध है।

उन साधुओंको पीलते समय "मैं पहला, मै पहला।" ऐसा बोलते हुए व कालके सन्मुख गये परन्तु किंचित् मात्र भी खेदित नहीं हुए। इसीप्रकार अनेक प्रकारकी लब्धीवाले

होनेपर भी अंतःकरणमें लेश मात्र भी क्रोध नहीं किया,—"अतः उनके वीतरागपनको धन्य है।"

"उस महापापी पालकको अनादि अनंतभाग मिथ्यात्व था। वह मरकर सातवीं नरकमें गया। जो लोग मिथ्यात्व रूप मदिराका पान नहीं करते वे मोक्षरूपी वधूको प्राप्त करते हैं।"

[इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशप्रासादवृत्तौ षोडशस्तम्भस्य त्रिपंचाशतधिकद्विशततमः प्रबंधः ॥ २५३ ॥]

व्याख्यान २५४

मिथ्यात्वका दुस्त्यज्यपन

अनन्तज्ञानसंपूर्णदर्शनचरणान्वितम् ।
गुरुं प्राप्य न मिथ्यात्वं, त्यजति मूढबुद्धयः ॥१॥

भावार्थ –" अनन्त और सम्पूर्ण ज्ञान, दर्शन तथा चारित्रसे युक्त गुरुको पाकर भी मूढ बुद्धि वाले जीव मिथ्यात्वको नही छोडते ।" इस पर दृष्टान्त है कि –

मखलीपुत्र गोशालाका दृष्टान्त

एकदा श्री वीरभगवान श्रावस्तिनगरके उद्यानमे समव सर्यें । उस समय अत्यन्त अभिमानी गोशाला वाद करनेको वहा आ रहा है ऐसा ज्ञान द्वारा देखकर प्रभुने गौतम आदि मुनियोंसे कहा कि, "यहा मखली पुत्र (गोशाला) आ रहा है इसलिये तुम उसकी दृष्टिमे न रहो ।" इस प्रकार भगवानका आदेश सुन क्षत्र और सर्वानुभूति मुनिके अतिरिक्त अन्य सब दूर चले गये । उस समय वह गोशाला आकर जिनेश्वरसे कहने लगा कि, "मैं सर्वज्ञ हूँ, हमारे शास्त्र मे कर्म के पाच लाख साठ हजार छसो तीन भेद हैं । इतो कर्मोका क्षय होने पर ही जीव सिद्धि प्राप्त करता है । अपितु हे काश्यप गोत्री ! आपका जो एक

शिष्य गोशाला नामक था वह तो मर गया है और मैंतो अति बुद्धिमान होनेसे सात शरीरमे परावर्तन कर इस शरीरमे आया हूँ। प्रथक मैं राजगृह नगरम उदायी राजा था, उस शरीरको त्यागकर उसी राजाके देहमें बाईस वर्ष तक रहा। फिर उस शरीरको छोड़कर दंडपुर नगर है वहां मलरामके देहमें इकीस वर्ष तक रहा वहांसे चम्पापुरीमें मंडिलके देहम बीस वर्ष रहा, वह शरीर भी छोड़कर वाराणशी नगरीमे राहुके शरीरमे उन्नीस वर्ष रहा, वहांसे आलभिका नगरीमे भारद्वके शरीरमे अठारह वर्ष रहा, उसका भी त्यागकर विशालानगरी में अर्जुनके शरीरमे सत्तरह वर्ष रहा, उसका शरीर भी त्याग कर श्रावस्ति नगरीमे मखली पुत्रके शरीदको परीषह सहन करनेमें समथ जान उसमे आया हूँ। यहा सोलह वर्ष तक रहूगा। हे काश्यगोत्री! इसप्रकार एकसो तेत्तीस वर्षमे सात शरीर बदलने चाहिये ऐसा हमारे शास्त्रमे कहा गया है।" इसप्रकार गोशालाके वचन सुनकर प्रभुने कहा कि, "जैसे कोई चोर अपने शरीरको छिपानेकी इच्छासे ऊनका एक तन्तु बनाकर अथवा रुईकि पोणीकर अथवा एक तृण बना अपने शरीरको आच्छादन करे उस प्रकार तू वृथा ही तेरी आत्माको क्यों छिपाता है?" प्रभुके ऐसे वचन सुन गोशाला क्रोध कर वीतराग प्रभुको अयोग्य वचन बोल आशातना करने लगा। उसको न सुन सकनेसे भगवानके परम भक्त सर्वानूभूति मुनिने गोशालाको कहा कि, "हे मखली पुत्र! झूठ क्यों बोलता है? और तेजोलेश्यादिक विद्याके देने

वालेकी क्या आशातना करता है ?" यह सुन अति क्रोधित हो गोशालाने सर्वानुभूति मुनिको तपके तेजसे (तेजोलेश्यासे) भस्मसात कर फिरसे स्वामीकी आशातना करना आरंभ किया । तब प्रभुके शिष्य सुनक्षत्रमुनिने उससे कहा कि, "अरे ! तीनों भुवनके गुरुकी अवज्ञा क्यों करता है ? ऐसे आचरणसे तेरी नरक गति होगी ।" यह सुन गोशाला को और अधिक क्रोध चढ़ा जिससे उसने तेजो लेश्या द्वारा उस साधुको भी जला दिया और फिर प्रभुकी अयोग्य वाक्यों द्वारा निन्दा करने लगा तब श्री जिनेश्वर बोले कि, "ऐसी कुबुद्धि एवं मिथ्यात्वसे तू ऐसे दुर्लभ मनुष्य भवको हीन गतिमें क्यों डालता है ?" यह सुनकर भी उसको क्रोध चढ़ आया जिससे उसने सात आठ कदम पीछे हट कर प्रभु पर भी तजोलेश्या का प्रहार किया परन्तु तेजोलेश्या भगवानकी प्रदक्षिणा कर वापस लौटी और गोशालाके शरीरमें प्रवेश कर गई । उस समय प्रभुके शरीरके बाहरी देखावमे कालाश देख कर गोशालाने भगवानसे कहा कि, "मेरे तप के तेजसे छ महिनेमें तुम्हारी मृत्यु हो जायगी ।" तब प्रभुने कहा कि, 'मै तो अभी सोलह वर्ष तक केवली अवस्थामे ही विचरण करूगा परन्तु तुतो पित्तज्वरकी व्याधिसे सात दिनमें ही छद्मस्थपनमे मृत्यु प्राप्त करेगा ।" फिर प्रभुने गौतम आदि मुनियों को बुला कर कहा कि, "तुम धर्म वाक्यों द्वारा इसको उपदेश करो" यह सुन गौतमादि गणधर उसे उपदेश देने लगे । परन्तु वह तो उल्टा उससे कुपित

होकर उन मुनियोंको बाधा पहुंचानेका उपाय सोचने लगा परन्तु उसकी शक्तिका नाश हो जानेसे वह सब प्रयत्नोंमें निष्फल रहा। फिर उसके शरीरमें दाह होनेसे "अरे! इन महापुरुषका वाक्य निष्फल नहीं होगा।" ऐसा विचार सा हुआ, दीर्घ निसासा डालता हुआ, और अरेरे! यह क्या हो गया? ऐसा कहता हुआ वहांसे निकल भागा। मार्गमें पृथ्वी पर पैर पटकता हुआ वह शातापचारके लिए कुंभारके घर गया और मद्यपान करता था हाथमें आम्रफल रख कर वह नृत्य करने लगा। उस समय जिनेश्वरने सब साधुओंसे कहा कि-"इस गोशालाने मेरे वधके निमित्त जो तेजोलेश्या छोड़ी थी वह सोलह देशोंको जलादेने वाली सदृश उस छोड़ाथी परन्तु वह इसीके शरीरमें प्रवेश कर गई है जिसकी वेदनासे वह अब शीत उपचार कर रहा है।"

अब गोशालाने भगवान द्वारा कहे वचनसे अपनी मृत्यु समीप जान आजीविक मतवाले अपने भक्त श्रावकोंको अन्तिम उपदेश दिया और अपने शिष्योंसे कहा कि, "जब मैं मरू तब मेरे शरीरको सुगंधित जलसे स्नान करा, गोशी र्ष चन्दनसे विलेपन कर, और हजार पुरुषों द्वारा उठाई गई शिबिकामें बैठा श्रावस्ति नगरीके प्रत्येक बाजारमें लेजाकर तुम उच्च स्वरसे उद्घोषणा करना कि- य मखलो पुत्र जिन नहीं होने पर भी 'मैं जिन हूँ" ऐसा कहने वाला चरम तीर्थंकर की आशातना करने वाला, दो मुनियों का घातक, तथा अनेक जीवोंको मिथ्यात्वी बनानेवाला वह अपनी ही तेजोलेश्यासे महात्माके वचनसे सातवी रात्रिको छद्मस्थ-

पनसे मृत्युको प्राप्त हुआ हूँ ।" इस प्रकार वारवार बोलना फिर यदि तुम मेरे शिष्य होतो मेरे दाहिने पैरमे डोरी बाधकर तीन वार मेरे मुहमे थूक कर श्रावस्ति नगरीके बाजारमें सर्वत्र मुझे घीसना और उसके पश्चात् मेरा देह सस्कार करना ।" इस प्रकार गोशालाने अन्तिम अवस्थामें कुछ समकित प्राप्त किया और वीतरागके वचनों पर विश्वास करने वाला हुआ । अन्तम अपने सब शिष्योके समक्ष अरिहंतका शरण लेकर काल धर्मको प्राप्त किया । फिर उसके शिष्य उनके महत्व तथा पूजा सत्कार आदिकी हानि होनेके भयसे गुरुका वचनोंका पालन करनेके लिये अपनेही उपाश्रयमे उसके द्वार बंद कर श्रावस्ति नगरीका नाम निकाल पूर्व कही सब क्रियाये कर फिर उसका देह सस्कार करनेके लिए उसे बाहर निकाला तब श्रावकान उसका अग्नि सस्कार किया ।

अब श्रीवीरभगवान विहार के क्रमसे मेढक नामक नगरमे गये । वहा उनके शरीर को पित्तज्वरसे व्याप्त देख कर चारो वर्णके लोग कहने लगे कि-' गोशाला द्वारा छोडी तेजोलेश्या से शरीर दग्ध होजानेसे प्रभु छ महिनेमे काल कर जायेगे ।" यह बात सुन सिंह नामक भगवानके शिष्यने, जो निरन्तर छठ तप किया करतेथे, तथा सूर्यके सन्मुख दृष्टि रख आतापना लेतेथे उन्होने उस आतापना के अन्तमें विचार किया कि मेरे धमगुरु श्री जिनेश्वरको पित्तज्वर उत्पन्न हुआ है जिससे वे छ महिनमें काल धर्मको प्राप्त करेगे इससे अन्य दर्शनी कहेगे कि-" गोशालाकी तेजोलेश्या

से दग्ध हुए महावीर छद्मस्थपनमें ही कालधर्मको प्राप्त हो गये हैं ।" इस प्रकार उनकी भद्रक प्रकृति होनेसे इसका विचार कर उनके मनमें अत्यन्त दुःख हुआ । वह अत्यन्त खेद करने लगा और मालुककच्छ नामक निर्जन वनमें जाकर उच्च स्वरसे रुदन करने लगा । उसे जान भगवानने स्थविर साधुको भेज उसे अपने समीप बुलवा कर कहा कि, "हे सिंहमुनि ! तुने जो तेरे मनमें विकल्प किया है वह नहीं होनेवाला है क्योंकि देसे उणा सोलह वर्ष तक मुझे केवलज्ञानका पर्याय भोगना है इसलिये तू नगरमें जा और रेवती नामक श्राविकाने जो मेरे लिए पेठ्ठका पाक बनाया है वह तू मत लाना क्योंकि वह ग्रहण करने योग्य नहीं है । परन्तु उसीके घर पर उसने अपने लिये जो बीजोरे का पाक बनाया है वह तू लेआ । इस प्रकार भगवानके वचनसे सिंहमुनि रेवती श्राविकाके घर गये ।

रेवती श्राविका निर्विकार मुनिको आते देख अत्यन्त हर्षित हुई और आसनसे उठ सात आठ कदम सन्मुख जाकर उनको वन्दना कर कहने लगी कि, "हे स्वामी ! आप यहां किस प्रयोजनसे आये हैं कृपा कर बतलाइये ?" इस पर सिंहमुनिने भगवान द्वारा कहे योग्य औषधि की मांगनी और अयोग्य औषधिका निषेध किया । रेवतीने अपनी आत्माको सफल हुए मान मांगी औषधि वहराई । उसे ले मुनिने भगवन्तके हाथमें दी । भगवानने भी वीतराग पनसेही उसे उदरमें रक्खा जिससे उसी क्षण भगवानकी

व्याधि शान्त हो गई । मुनि वर्ग आनन्दित हो गये और देवतादिक भी हर्षित हुए । उस समय रेवती श्राविका भी त्रिकाल ज्ञानी परमात्माकी स्तुति करती हुई तीर्थंकर पदके योग्य अध्यवसायको धारण कर रही थी ।

उस समय गौतम गणधरने श्री वीरप्रभुको नमस्कार कर पूछा कि–" हे स्वामी ! आपका सर्वानुभूति शिष्य जो गोशालाका तजोलेश्यासे दग्ध हो गया था किस गतिको प्राप्त हुआ है ।" भगवानने कहा कि–" वह साधु सहस्रार नामक आठवे कल्पमे अठारह सागरोपम का आयुष्य वाला देव हुआ है । वहासे चव कर महाविदेह क्षेत्रमे मनुष्य हो मोक्ष गतिको प्राप्त करेगा ?' गौतम स्वामीने फिरसे पूछा कि– " हे भगवन् ! आपका शिष्य सुनक्षत्रमुनि किस गतिको प्राप्त हुआ ?" प्रभुने कहा कि, ' वह साधु आलोचना प्रतिक्रमणा कर अच्युतकल्पमे बडे आयुष्यवाला देवता हुआ है वहासे चव महाविदेहक्षेत्रमे मनुष्य बन सिद्धि पदको प्राप्त करेगा ।" गणधरने फिरसे पूछा कि, "हे प्रभु ! मखली पुत्रने कौनसी गति प्राप्त की ?" प्रभुने कहा कि, "अन्त समय कुछ श्रद्धा हो जानेसे वह बारहवे देवलोगमें बाईस सागरोपमका आयुष्यवाला देवता हुआ है ।"

अब ग्रथकार कहता है कि–

> कि करोति गुरु प्राज्ञ , मिथ्यात्वमूढचेतसा ।
> शिष्याणां पापरक्तानां, मखलीपुत्रसादृशा ॥१॥

भावार्थ –" पाप कर्ममें रक्त और मिथ्यात्व द्वारा मूढ चित्त वाले गोशाला जैसे शिष्यको ज्ञानी गुरू भी क्या कर सक्ते हैं ?' गोशाला पहलेसे ही मिथ्यात्वी था परंतु फिर उसे वीतरागके वचन सत्य होनेका विश्वास हो गया था और इसीलिये उसने " मैं जिन नहीं हूँ, महावीर ही जिन है" ऐसा उसने शिष्योंको कहाथा पहले भी गोशाला "मुझ आपकी दीक्षा हो।" ऐसा अपनी इच्छासे ही कहकर वह भगवानका शिष्य हुआ था। भगवानने भी उसे अपना शिष्य जानकर ही उपदेश दिया था परन्तु उसने उसको नहीं माना तिसपर भी अन्तमें भगवानने उसे मर्म वचन कह कर सद् बुद्धि प्रदानकी थी " गोशाला जैसे मूर्खके प्रतिबोधन पर ध्यान न देकर उल्टी उसे सद्बुद्धि प्रदान की इसलिये हे प्रभु ! आपके वीतरागपन को धन्य है।"

[इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशप्रासादवृत्तौ सप्तदशस्तम्भस्य चतुष्पञ्चाशदधिकद्विशततम प्रबंध ॥२५४॥]

व्याख्यान २५५

भगवानकी आशातनाका फल

प्रभोराशातना तन्वन्नल्पधीमखलीसुतः ।
निजात्मानं भवौधेषु, न्यधादहो कुतर्कता ॥

भावार्थ —"प्रभुकी आशातना कर तुच्छ बुद्धि मखली पुत्रने अपनी आत्माको संसार समुद्रमें फैंक दिया । यह कैसा कुतर्कपन है ?"

श्री गौतमगणधरने त्रण भुवनके शरणरूप और वांछित फल देने वाले श्री महावीर स्वामीसे पूछा कि, "हे प्रभु ! मखलीपुत्रका देवलोकमें जानेके बादके भावी चरित्रका वर्णन कीजिये ।" तब भगवानने कहा कि, इस भरतक्षेत्रके शतद्वार नामक नगरमें सुमति नामक राजा होगा जिसके सुभद्रा नामक राणी होगी । उसके उदरमें बारहवें देवलोकसे चवकर गोशाला महापद्म नामक पुत्र होगा । वह देवसेन तथा विमल वाहनके नामसे भी प्रसिद्ध होगा । उसे एकबार चार दांतवाला श्वेत हाथी प्राप्त होगा । उसके पश्चात् उसे राज्यगद्दी मिलेगी । वह राजा मिथ्यात्वी होनेसे अनेक साधुओंकी कदर्थना करेगा । जिसे देख उसके प्रधान उसे विनय पूर्वक कहेंगे कि-"हे राजा ! आप प्रजानाथ होकर जो ऐसा कृत्य करते हैं यह

आपके योग्य नहीं है" इससे वह राजा कुछ पापकर्मसे पीछे हटेगा। एकदिन जब वह उद्यानकी शोभा देखने आवेगा तब एक स्थान पर वह तीर्थंकरके शिष्य के शिष्य तथा मनके धारक तथा निरंतर छट्ठ तप करने वाले सुमगल नामक साधुको आतापना करते देखेगा। उसे देख उस विमलवाहन राजाको क्रोध उत्पन्न होगा जिससे वह सिंह सदृश दुष्ट उसरसे उस ध्यानमें तत्पर मुनिको देखेगा। फिर तत्काल अथवा त्वरित गतिसे हांक रथको साधु पर धक्का देगा जिससे साधु गिर पड़ेगा, फिर जब उठ खड़ा होगा तो वह फिर उसपर रथ हांकेगा। दूसरी बार खडे होनेपर वह साधु मनमें विचार करेगा कि "अहा! यह जीव महा निर्दय क्यों है?' ऐसा विचार कर अवधिज्ञानसे देखनेपर उसे गोशालाका जीव जानकर कहेगा कि, "हे महापद्म! आजसे तीसरे भवमें तू गोशाला था। उस समय तूने तेरी तपोलब्धिसे श्री महावीर भगवानके सर्वानुभूति तथा सुनक्षत्र नामक दो शिष्योंको दग्ध कर दिया था। परन्तु वे साधु क्षमा धारण करनेमें महासमर्थ थे क्योंकि इन्द्रादिक देवोंका सामर्थ्य भी उनके सामने एक धुआ जैसा था फिर तेरे जैसेकी तो गिनती ही क्या है? परन्तु उनको धन्य है कि उन्होंने तेरे द्वारा किया हुआ प्राणान्त उपसर्ग सहन किया। परन्तु नेत्रके प्रान्त भागमें भी क्रोधका लेशमात्र भी अंश नहीं लाये उसीप्रकार समग्र संसारी जीवोंसे भी अनन्त बलशाली श्री वीर परमात्मा पर भी तूने तेजोलेश्या छोड़ी फिर भी

उन्होने थोडासा भी क्रोध नही किया अपितु उल्टा तुझे प्रतिबोध किया परन्तु तुझे बोध नही हुआ। मैं तो सुमगल हू पूर्वके साधु सदृश क्षमावान् नही हु इसलिये यदि तू तुझे और अधिक दुःख दगा तो मैं तपके तेजसे रथ, घोड़ा और सारथि सहित तुझे भस्मसात् करदूगा।" इसप्रकार उस साधुके कहन परभी वह राजा तीसरीवार उस पर रथ चला कर उस मुनिको पृथ्वीपर गिरा देगा। उस समय वह मुनि क्रोधसे तेजस समुद्घात कर सात आठ कदम पीछे हट तेजोलेश्या द्वारा रथ, घोड़ा और सारथि सहित विमलवाहन राजाको भस्मीभूत करडालेगा। उसके बाद वह साधु अनेक प्रकारके छट्ठ अट्ठम आदि तप सहित वर्षो तक चारित्र पाल कर अन्तम एक मासका अनशन कर सर्व पाप आलोई पडिक्कमी सर्वार्थ सिद्ध विमानमें देवरूपसे उत्पन्न होगा।

विमल वाहन राजा मर कर सातवी नरकमें तेतीस सागरोपमकी उत्कृष्ट आयुष्यवाला नारकी होगा। वहासे निकल कर मत्स्य योनीमें उत्पन्न होगा। वहासे मरकर फिरसे सातवी नरकमें जायेगा। पीछे मत्स्य योनिमें उत्पन्न होगा वहा बहुत दुःख उठा कर छट्ठी नरकमें उत्कृष्ट आयुष्यवाला नारकी होगा। वहासे निकल स्त्रीपन प्राप्त कर फिरसे छट्ठी नरकमें उत्पन्न होगा। वहासे निकल फिरसे स्त्रीपन प्राप्त कर बड़ा कष्ट उठायगा। वहासे पाचवी नरकमें जा अत्यन्त दुःख प्राप्त कर उर परिसर्पमें उत्पन्न होगा वहा वध बधन आदि के अनेक कष्ट पा फिरसे पाचवी नरकमें जायेगा। वहासे

निकल उरपरिसर्प हो चोथी नरकमें जायेगा । वहासे निकल सिंह योनीमे उत्पन्न होकर फिरसे चोथे नरकमे जा पीछे सिंह योनीमे उत्पन्न होगा । वहासे तीसरी नरकमे जा दुःख भोग कर फिर पक्षीमे उत्पन्न होगा । वहासे फिर तीसरी नरकमे जाकर पीछे पक्षीके भवमे आयगा । वहासे मरकर दूसरी नरकमे उत्पन्न होगा । वहासे निकल भुजपरिसर्पमे होकर फिरसे दूसरे नरकमें उत्पन्न होगा । वहासे निकल फिरसे भुजपरिसर्पमें उत्पन्न हो प्रथम नरकमें दुःख भोगेगा । वहासे निकल असंज्ञि पंचेंद्रियमे उत्पन्न होकर फिरसे प्रथम नरकमें जायेगा । इस प्रकार उपरोक्त कर्मानुसार असंज्ञि आदि रत्नप्रभा (प्रथम) नरक आदिमे उत्पन्न हो सकता है । इसके क्रमके विषयमें कहा गया है कि –

असन्नी सरिसीव पक्खी, सीह उरगित्थी जंति जा छट्टी ।
कमसो उक्कोसेण, सत्तम पुढवी मणुअ मच्छा ॥

भावार्थ –"असंज्ञि भुजपरिसर्प, पक्षी सिंह, उर परिसर्प और स्त्री— ये जीव अनुक्रमसे पहलीसे छट्ठी नरक तक उत्पन्न हो सकते हैं अर्थात् असंज्ञि उत्कृष्ट पहली नरक मे जाते हैं, भुज परिसर्प उत्कृष्ट दूसरी नरकमे जाते हैं आदि । तथा मनुष्य और मत्स्य उत्कृष्ट सातवीं नरक तक जा सकते हैं ।"

तत्पश्चात् वह चामाचिडिया, वड्गुली, आदि चर्म पक्षीमे उत्पन्न होगा । वहासे राजहंस आदि लोमज पक्षीमें

तथा भुजपरिसर्पमे हजारो भव करेगा । उसके बाद अजगर, अलसिया आदि उर परिसर्पमे हजारो भव करेगा । अल सियेका जीव गाव नगर और चक्रवर्तीके सम्पूर्ण सैन्यका भी नाश करडाले उतना बड़ा होता है । वह घोडेकी लाज आग्निमे उत्पन्न होता है । वह जीव पृथ्वीके अंगुलीके असख्यातवे भागसे प्रारंभ होकर उत्कृष्ट रुपसे बारह योजन जितना बड़ा होता है । वह संमूर्च्छिम और मिथ्यात्वी होता है । वह जब अपने शरीरकी करवट बदलता है तब पृथ्वीमें बड़ा खड्डा बनजाता है । वह पर्याप्त होकर अंत मूहूर्तके आयुष्यमे विनाश होता है । कई इस अलसियेको बेइन्द्री भी कहते हैं परन्तु यहा तो भगवती सूत्रके अनुसार पंचेन्द्रिय कहा गया है ।

तत्पश्चात् गोशालाका जीव एक खुरवाला, दो खुरवाला, गेंडा, हस्ती तथा नखवाला (सिंह आदि) आदि जीवोंमें सैकडो और हजारो भव करेगा । उसके बाद जलचरमे, चतुरिन्द्रियमे, तेइन्द्रियमे, बेइन्द्रियमे, वनस्पतिकायमे, वायु कायमे, तेजस्कायमे, अप्पकायमे, और पृथ्वीकाय आदि सर्व जातिमे लाखों बक उत्पन्न होगा । इसके बाद राज-गृह नगरमे जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट ऐसे वेश्याके तीन भव करेगा । उसके बाद ब्राह्मणकी पुत्री होगा । जिसका लग्न उसके माता पिता बडे उत्सवके साथ करेंगे और वह उसके ससुराल जाकर गर्भवती होगी । वहासे उसके पिता के घर जानेको निकलेगी । उसे अशुभ शुकन होगे । प्रयाण

करते हुए मार्गमें रात्रिके समयमें दावानलकी ज्वालासे पिड़ा पायेगी। वहां अन्य कोई शरण न मिलनेसे तथा दौड़न भागनेको कोई स्थल भी न मिलनेसे यह अत्यन्त विलाप करती हुई भस्मसात् हो जायेगी। पूर्वमें गोशालाने अनेक मुनियोंके अन्त करण जलादिये थे उन कर्मोंका यहां उदय होगा। जीव जो जो कर्म करता है वह स्वयं तो भूल जाता है परन्तु समय समय किये कर्म उस जीवको नहीं भूलते। जीव चाहे जहां रहता हो परन्तु उसे ढूंढ कर कर्म उसे योग्य स्थान पर ले जाते हैं।

तत्पश्चात् वह अग्निकुमार देवके रूपमें उत्पन्न होगा वहांसे मनुष्यपन प्राप्त कर साधुके संगसे समकित प्राप्त कर चारित्र ग्रहण करेगा। उस भवमें चारित्रकी विराधना करेगा जिससे मर कर दक्षिण ओरकी असुरकुमार निकायमें देवपनसे उत्पन्न होगा। यदि चारित्रकी विराधना न कीजाय तो साधुकी उत्पत्ति वैमानिकमें ही होती है। फिर वहांसे निकल कर मनुष्यपन प्राप्त करेगा। वहांसे दक्षिण ओरके नागकुमारोंमें उत्पन्न होगा। फिर वह मनुष्य भव प्राप्त करेगा वहांसे मर कर दक्षिण ओरमें सुवर्ण कुमार देव होगा। वहांसे मनुष्यभव प्राप्त कर दक्षिण ओर स्तनित कुमार निकायमें उत्पन्न होगा। वहांसे मनुष्यभव पा चारित्र ग्रहण करेगा। उस भवमें भी संयमकी विराधना करनेसे ज्योतिषी देवता होगा। वहांसे मनुष्य हो संयम पाल प्रथम देवलोकमें देवागना होगा क्योंकि उस भवमें संयमकी आरा-

धरा करेगा । आराधना अर्थात् जबसे चारित्र ग्रहण किया हो तबसे प्रारंभ कर मरण पर्यंत अतिचार रहित उसका पालन करना । वहासे मनुष्यपन प्राप्त कर तीसरे देवलोक मे देवता होगा । वहासे अनुक्रमसे एक एक भव मनुष्यका करकर पाचवे, सातवे, नवमें और ग्यारहवे देवलोकमे देवपनसे उत्पन्न होगा । वहासे मनुष्यभव प्राप्त कर तथा चारित्रका संपूर्ण प्रतिपालन कर सर्वार्थसिद्ध विमानमें देवपनसे उत्पन्न होगा वहा सद्गुरुके समागमसे सम्यक् दर्शन प्राप्त कर सर्वोत्कृष्ट चारत्रपाल केवल ज्ञान प्राप्त करेगा । केवल ज्ञानके महोत्सवमें सर्व संघको बुलाकर वह उसका गोशालाके भवसे आरंभ कर सर्व चरित्र प्रगट करेगा और कहेगा कि, "हे आर्यो ! अरिहंत, सिद्ध आचार्य और उपाध्याय आदिकी आशातना करनेसे मैं अनंतकाल तक संसारमें भटका हू इसलिये आप ऐसा न करे । मैंने तो अज्ञानपनसे महा मूर्खता कीथी । अरे ! त्रण भुवनको तारनेमे समर्थ और त्रिलोक के समस्त पदार्थ समूहको देखने वाले और अनन्त गुण युक्त श्री महावीर तीर्थंकर गुरूके मिलने परभी मैंने मनमे कोईभी शुभ ध्यान नहीं किया । उन जगद्गुरुने अनेक भव्य जीवोंके अनो प्रकारके दारिद्राका नाश किया था परन्तु मैं निर्भाग्यशेखर कुछभी ग्रहण न कर सका तिसपरभी उन क्षमा सागरने परिणाममे भी मेरे लिये शुभ अध्यवसायका अवकाश दिया था जिसके प्रभावसे ही मैं इस भवमे भी चारित्र और केवल ज्ञान प्राप्त कर सकाहूँ" आदि देशनामे

अपना चरित्र सुनाकर अनेक भव्य जीवोंको आप्त धर्म-रसिक बनायगा उस भवमें अनशन ग्रहण कर वह गोशाला अनन्त सुखके स्थानरूप मोक्षपदको प्राप्त करेगा ।

इस प्रकार गोशालाका वृत्तान्त सुन शिष्यजनोंको द्वेष वस्तुका त्याग करना चाहिये और मन, वचन काया द्वारा गुरुजनोंकी अल्पमात्रमी आशातना नही करनी चाहिये ।

[इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशप्रासादवृत्तौ षोडशस्तम्भस्य पञ्चपञ्चाशदधिकद्विशततम मन्ध ॥ २५५॥]

श्री उपदेश प्रासाद

स्तंभ १८

व्याख्यान २५६

ज्ञानाचारके आठ प्रकारमेसे प्रथम काल नामक-

आचार ।

पठनीय श्रुत काले, व्याख्यान पाठन तया ।
आचार' श्रुतधर्मस्य, चाद्यो यल्लिख्यते बुधैः ॥१॥

भावार्थ -"योग्य कालमे श्रुत पढ़ना, पढाना तथा व्याख्यान करना यह श्रुत धर्मका प्रथम आचार पडित जनोने कहा है ।"

ग्यारह अग और उत्तराध्ययन आदि कालिक श्रुत कहलाते हैं । उन्हे दिवस तथा रात्रिको पहली और चौथी पोरसीमे पढना-पढाना चाहिये और दशवैकालिक आदि तथा दृष्टिवाद उत्कालिक श्रुत कहलाते हैं उनके पढने आदि का काल सब पोरसीका है । इनमेसे सूत्रकी पोरसीमे सूत्र पढना चाहिये और अर्थकी पोरसीमे अर्थ अथवा उत्कालिक श्रुत आदि पढना चाहिये । दिन तथा रात्रिकी पहली व

अन्तिम पोरसीमें अस्वाध्याय (असज्झाय) के अभावसे पढा जाता है इससे उनका नाम कालिक कहा जाता है । कालिकका शब्दार्थ भी यह ही है कि योग्यकालमें ही पढना और मात्र कालवला के अतिरिक्त सब पोरसीमें जो पढा जाये उसे उत्कालिक कहते हैं । कालिक तथा उत्कालिक दोनों श्रुतोंका वघु अनध्यायकाल दो घडीका होता है । ऐसी कालवेला प्रत्येक अहोरात्रिमें चार आती है उतना समय छोड देना चाहिये । वह चार वक्त इस प्रकार है -१ संध्या समय (सायंकालमें) २ मध्य रात्रिमें, ३ प्रभातमें, तथा ४ मध्याह्न समय । इन चार काल वेलामें तो किसी भी दिन स्वाध्याय नहीं करना चाहिये परन्तु पडिलेहण आदि अन्य क्रियायें करनेका निषेध नहीं है । अन्य धर्ममें भी कालके समय संध्यावन्दन आदि क्रियायें की जाती है । ब्राह्मण लोग सदैव तीनो संध्याओंमें मिलाकर सासठ चोवीस चार गायत्री मंत्रका जाप पूर्ण करते हैं । दुष्टकालके समय सब शास्त्रोंमें सूत्रादिक का पठन पाठन सर्वथा निषेध किया गया है । इसके विषयमें अन्य दर्शनोंमें कहा गया है कि,

चत्वारि खलु कर्माणि, संध्याकाले विवर्जयेत् ।
आहारो मैथुनं निद्रा, स्वाध्याय च विशेषतः ॥१॥

भावार्थ -"आहार, मैथुन, निद्रा और विशेषतया स्वाध्याय ये चार कर्मोंका संध्या समय त्याग करदेना चाहिये ।"

आहाराज्जायते व्याधि, क्रूरगर्भश्च मैथुनात् ।
निद्रातो धननाशश्च, स्वाध्याये मरण भवेत् ॥२॥

भावार्थ –"सध्या समय आहार (भोजन) करनेसे व्याधि उत्पन्न होती है, मैथुन करनेसे क्रूर गर्भ उत्पन्न होता है, निद्रा लेनेसे धनका नाश होता है और स्वाध्याय करनेसे मृत्यु प्राप्त होती है।"

इसी प्रकार कालके समयमे स्वाध्याय करनेसे "अहो! ये साधु स्वाध्यायका कालभी नहीं जानते।' ऐसा कह कर लोगभी निन्दा करते हैं तथा उस समय यदि पठनादिक मे व्यग्र रहा जाय तो मुमुक्षु साधुओंको अवश्य करने योग्य आवश्यकादिक क्रियाम और शुद्ध भावसे त्रिकाल देव वदन, पूजन आदिमे उपयोग नहीं रहता जिससे समय पर करने योग्य वही क्रियासे भ्रष्टपन प्राप्त होता है।

अपितु निरतर स्वाध्याय करनेसे कष्ट हुआ होतो उतने समयका विश्राम भी मिल जाता है इसलिये उस कालमे तो आवश्यकादि क्रियायेही करनी चाहिये। यदि किसी समय कारण विशेषसे समयका अतिक्रम होजावे तो उसमे कोई दोष नहीं है।

यदि यहा किसीको शका हो कि–जैसे शुभ ध्यान मोक्ष का हेतु होनेसे सब कालमे करना कहा गया है उसी प्रकार श्रुतज्ञान भी मोक्षका हेतु है फिर उसका सब कालमें पठना

आदि क्यों न हो ? जो मोक्षका कारण है उसमें काल तथा अकालकी व्यवस्था क्यों ? " इस शकाके समाधानमें गुरु कहते हैं कि,–हे शिष्य । तेरी शका सचित है परन्तु शुभ ध्यान तो सब धर्म क्रियाओंमे होता है और वह मानसिक है इसलिये शुभ ध्यानसे किसीभी क्रियामें बाधा उपस्थित नहीं होती । परन्तु इसके विपरीत सर्व क्रियाओंकी पुष्टि होती है। और श्रुत ज्ञान तो पठन गुणन आदिसे सिद्ध होता है इसलिये वह प्रात एव साय प्रतिक्रमणके समान नियत कालमे ही करना योग्य है । यदि सब कालमें उसका ही अभ्यास किया जाय तो अन्योन्य पुण्य क्रियाओंमें बाधा आती है इससे ऐसा करना योग्य नही है ।" अपितु जो मोक्ष का हेतु हो उसमें कालका विभाग करना योग्य नही है ऐसा जो तुम कहा है वह व्यर्थ है क्योंकि साधुको आहार विहार आदि भी मोक्षके हेतु ही हैं किन्तु उसमे कालका विभाग बतलाया गया है । आगममें कहा गया है कि "तइयाये पोरसीए भत्तपाण गवेसए" "तीसरी पोरसीमें खान–पानकी गवेषणा करना " तथा–

अकाले चरसि भिक्खु, काले न पडिलेहसि ।
अप्पाण च किलामेसि, स निवेस च गरिहसि ॥१॥

भावार्थ –"हे साधु ! तू अकालमे विचरण करता है, योग्य कालमे पडिलेहण नहीं करता, तेरी आत्माको तो धोखा देता है और गांवोंके लोगोंकी निन्दा करता है ।"

इसलिये श्रुतका पठनादिक योग्य कालमे ही करना चाहिये। यदि कोई अहंकारादिक के कारण उसका व्यत्यय करेतो वह सगर नामक आचार्यके समान महान् लज्जाको प्राप्त होता है।

सगराचार्यका दृष्टान्त

उज्जयिनी नगरीमे श्री कालिकाचार्य नामक आचार्य उग्र विहारी थे। उनके पासवाले सब शिष्य पासथ्था हो जानेसे साधुके आचार पालनेमे भी शिथिल हो गये थे। उनको आचार्य सदैव शिक्षा देते रहते थे परन्तु वेतो कुत्तेकी पूछके समान वक्रताको नहीं छोड़ते थे। जिस पर आचार्यने खेदित होकर विचार किया कि, "इन शिष्योंको सारणादि करते मेरा स्वाध्याय ठीक नही लगता है–बराबर नही हो सकता और इनको मेरे वाक्योंसे कोईभी लाभ नही होता इसलिये इसका कोई अन्य उपाय करना चाहिये।"

यहा वृद्ध वाक्यके अनुसार ऐसा सम्बन्ध है कि–एक बार सीमधर स्वामीसे इन्द्रने पूछा कि, "हे स्वामी! वर्तमान कालमे क्या भरत क्षेत्रमे ऐसा कोई विद्वान है कि जिसको पूछनेसे आप द्वारा वर्णित निगोदका स्वरूप यथार्थ रूपसे जाना जासके?" तब प्रभुने कहा कि, "हे इन्द्र! वर्तमान कालमे भरत क्षेत्रमे आर्यकालक सूरि हैं कि जो केवल श्रुतपाठसे मेरे कथनानुसार निगोदका स्वरूप बतला सकते हैं।" यह सुन इन्द्र उनकी परीक्षा करनेके लिये बुढापनसे जीर्ण हुआ शरीर विकुर्वि धीरे धीरे लकड़ी के

सहारे चलता हुआ सूरिके पास गया और लुहारकी धमनि सदृश श्वासोश्वास लेते हुए उन्होंने गुरुका वन्दना कर पूछा कि, "हे स्वामी ! मैं वृद्ध हूँ, और वृद्धावस्थासे पीड़ित हो रहा हूँ । अब मेरा कितना आयुष्य बाकी है यह आप मेरी हस्तरखा देखकर शास्त्रके आधार पर बतलाइये । मेरे पर कृपा कीजिये । मेरे पुत्र तथा स्त्रीने मुझे घरसे बाहर निकाल दिया है अत मैं अकेला महान् कष्टसे दिन निर्गमन करता हूँ । आप छ जीवनिकाय पर दया करानेमें तत्पर हैं इसलिये मुझ परभी कृपा कीजिये ।' इस प्रकार उसके दीन वचन सुन गुरु उसका हाथ देखते देखते कुछ उसकी चेष्टा तथा यथार्थ मार्गणसे और कुछ श्रुत उपयोगसे उसे सौधर्म देवलोकका इन्द्र जान गये हो गये । तब फिर से उस वृद्धने कहा कि, "हे स्वामी ! मैं जरासे पीड़ित हूँ इसलिये अधिक समय तक यहां ठहरनेका लाचार हूँ इस लिये शीघ्र बतलाइये कि अब मेरा कितना आयुष्य अवशेष है ? पाच वर्षही बाकी है कि उनसे न्यूनाधिक है ?" गुरुने कहा कि, 'उनसे बहुत अधिक है ।" वृद्धने पूछा कि, "क्या दश वरका है ?" गुरुने कहा कि, "उससभी बहुत ज्यादा है ।" वृद्धने पूछा कि ' क्या तो वीस वर्ष, या तीस वर्ष या चालीस वर्ष बाकी है ? हे गुरु सत्य कहो" गुरुने कहा कि, "बारबार क्या पूछते हो ? तुम्हारा आयुष्य अंको द्वारा नहीं गिना जा सकता क्योंकि वह तो अपरिमित (असंख्यात) है । मुनिसुव्रत स्वामीके शासनमें

तुम इन्द्र बने हो, वर्तमान चोवीशीके अन्तिम चार तीर्थंकरोंने पाच कल्याणकोंके उत्सव तुमने किये हैं और आनेवाली चोवीसीके कई तीर्थंकरोंकी वन्दना तथा पूजा तुम करोगे। तुम्हारा आयुष्य दो सागरोपम से कुछ ही कम बाकी रहा है, " इस प्रकार गुरुके वचन सुन इन्द्र अत्यन्त हर्षित हुआ। फिर वह निगोदका स्वरुप पूछ निशंक हुआ और श्री सीमंधर स्वामी द्वाराकी प्रशंसाका वर्णन कर कहने लगा कि, 'हे स्वामी! मेरे योग्य कार्य बतलाईये।" तब गुरुने कहा कि, "धर्म आसक्त सबके विघ्नका निवारण करो।" फिर इन्द्रने स्वेच्छासे अपने आनेकी निशानीके रुपमें दिव्य एवं मनोहर उपाश्रयका एक द्वार दूसरी दिशामें कर शीघ्र स्वर्गमें चला गया।

तत्पश्चात् सूरिके शिष्य जो आहारके लिए नगरमें गये थे वे लौट आये। उन्होंने गुरुसे कहा कि, "हे स्वामी! इस उपाश्रयका द्वार दूसरी दिशामें कैसे हो गया? आप ही जब विद्याका चमत्कार देखनेमें स्पृहा रखते हैं तो फिर यदि हमारे जैसे ऐसा करें तो उसमें दोष ही क्या है?" यह सुन गुरुने इन्द्रके आगमन आदिका सब वृतान्त यथार्थरूपसे कह सुनाया। तब वे शिष्य बोले कि–'हमको भी इन्द्रका दर्शन कराइये।" गुरुने कहा कि, "देवेन्द्र मेरे वचनोंके आधीन नहीं हैं। वे तो उनकी इच्छासे ही आये थे और वापस लौट गये। इस विषयमें तुमको दुराग्रह करना उचित नहीं हैं।" इसप्रकार गुरु कहने परभी उन विनय रहित शिष्योंने

दुराग्रह नहीं छोड़ा और विनय रहितपन आहार आदि कराने लगे जिससे गुरू उद्वेगित हो एक दिन रात्रिके पिछले पहरमें सब शिष्योंको सोते छोड़ शय्यातर श्रावकको परमार्थ समझाकर नगरके बाहर चले गये। अनुक्रमसे विहार करते करते वे स्वर्ण भूमिमें आपहुंचे। जहां महाबुद्धिमान सागर नामक उनके शिष्य रहता था। उनके पास जाकर इर्यापथिकी प्रतिक्रमण कर तथा पृथ्वीको प्रमार्जीत कर रहे। सागरमुनिने उनको पहले कभी नहीं देखा था इसलिये उनको पहचान न सके अत न तो खड़ ही हुए न वन्दना ही की। उनका सूरिने पूछा कि, "हे वृद्ध मुनि! आप किस स्थानसे आ रहे हैं?" तब गाम्भीयके समुद्र समान गुरु बिना कुपित हुए ही बोले कि, "अवन्ती नगरीसे" फिर उनको ज्ञानपूर्वक समग्र क्रिया करते देख सागर मुनिने विचार किया, "सचमुच ये वृद्ध मुनि बुद्धिमान हैं।" फिर उन्होंने उनके शिष्योंको वाचना देते समय बुद्धिके मदसे सूरिने कहा कि-"हे वृद्ध! मैं जो श्रुतस्कंध पढाता हूं उसे तुम सुनो।" जिसे सुन गुरू तो मौन ही रहे। फिर सागरमुनिने उनकी बुद्धिकी कुशलता बतानेके लिए अत्यन्त सूक्ष्म बुद्धिवालेसे ग्रहण हो सके ऐसी व्याख्याका विस्तार करने लगे। व्याख्याके रसमें तल्लीन होनसे अकालवेलाको-अनध्यायके समयको भिन न जान सके। "अहो! अज्ञान यह महान शत्रु है।"

इधर उज्जयिनी नगरीमें प्रातःकाल उक्त शिष्य उठा तो उसने जब गुरुको नहीं देखा तो वह अत्यन्त आकुल-

व्याकुल हो गया और सम्भ्रान्त चित्तसे वसतिके स्वामी शय्यातरे श्रावकसे जाकर पूछा कि, "हमको छोड़ कर हमारे गुरु कहा चले गये ?" तब श्रावकने कोप कर कहा कि, "श्रीमान् आचार्यने तुमको बहुत उपदेश दिया, बहुत समझाया, सारणा की, फिरभी तुम सदाचारमे प्रवृत नही हुए, तब तुम्हारे जैसे प्रमादी शिष्योंसे गुरुकी क्या अर्थसिद्धि होनेवाली थी ? इसलिये वे तुमको छोड़ कर चले गये हैं।" यह सुन वे लज्जित हो गये और कहा कि,—"आप हम पर प्रसन्न होकर हमें हमारे गुरु द्वारा पवित्र की दिशा बतलाओ कि जिससे हम उस ओर जा उनको प्राप्त कर सनाथ हो सके। हमने जैसा किया वैसा फलतो हमे मिलही चुका है।" इस प्रकार जब उन शिष्योंने उसे अत्यन्त आग्रहके साथ पूछा तो उस श्रावकने गुरुकी विहार दशा बतलादी। फिर वे सब वहासे चल दिये। अनुक्रम से गुरुको ढूंढते ढूंढते सागर मुनिके पास जा पहुंचे और उनसे पूछा कि, "पूज्य आर्यकालकाचार्य कहा है ?" सागर मुनिने उत्तर दिया कि, "वे तो मेरे पितामह गुरु होते हैं, वे तो यहा नहीं आये हैं, परन्तु जिनको मै नहीं पहचानता ऐसे कोई एक वृद्ध मुनि उज्जयिनी नगरीसे यहा आये हुए हैं। उन्हे तुम देखो वे इस स्थान पर हैं।" फिर वे शिष्य सागर मुनि द्वारा बतलाये स्थान पर गये। वहा गुरुको देखकर अत्यन्त दीन मुह वाले हो गये। और अपने अपराधकी बारबार क्षमा मागी। उसे देख सागर मुनि लज्जासे नम्र

मुखवाले होकर विचार करने लगे कि,–" अहो ! इन गुरुके पास मैंने पाण्डित्य किया है यह उचित नहीं किया। मैंने सूर्यकी कान्तिके समक्ष खद्योत सदृश और आम्रका वृक्ष पर तोरण बांधने जैसा किया है।" ऐसा विचार उन्होंने उठ विनय पूर्वक गुरुको खमा कर गुरुके चरण कमलोंमें मस्तक रख कर कहा कि "हे गुरु ! आप विश्व पूज्यकी मैंने अज्ञानता वश आशातना की है जिसका मुझे मिथ्या दुष्कृत हो।"

फिर आचार्यने उन सागर मुनिको प्रतिबोध करानेके लिए एक प्यला भर नदीकी रेती तथा एक छलनी मंगवाई उस रेती को एक गहन छलनिमें भर कर चालाता बारीक बारीक रेती उसमेंसे निकल गई और छलनिमें जो बडे बडे कंकर बच रहे उनको दूर कर फिर उस रेतीको किसीभी स्थानमें डाल दी। तत्पश्चात् फिरसे उस रेतीको उस स्थान से लेकर दूसरे स्थानमें डाली। वहांसे भी लेकर तीसरे स्थानमें डाली। इस प्रकार बारबार भिन्न भिन्न स्थानमें डाल कर वापस ली। इससे अन्तमें रेती बहुतही कम बच रही। इस प्रकार रेतीका दृष्टान्त बतलाकर गुरुने सागर मुनिसे कहा कि, "हे वत्स ! जैसे नदीमें स्वाभाविकही बहुत रेती है उसी प्रकार तीर्थंकरोंमें सम्पूर्ण ज्ञान भरा है। जैसे प्यालेसे नदिसे थोडीसी रेती ली उसीप्रकार गणधरोंने जिनेन्द्रोंसे थोड़ासा श्रुत ग्रहण किया है और जैसे उस रेतीको भिन्न भिन्न स्थानमें डालनेसे व वापस लेनेसे नई नई भूमियें योगसे क्षीण

होती होती बहुत कम बच रही है इसीप्रकार श्रुत भी गणधरसे आरंभ हुई परंपरासे अनुक्रमसे कालादिकके दोषसे अल्प अल्पतर शिष्योंने विस्मृति आदिके कारणसे क्षीण होते होते अब बहुत ही कम रह गया है । इसमें छालीका उपनय इस प्रकार करना है कि-सूक्ष्मज्ञान सब नाश हो गया है और अब स्थूलज्ञान रह गया है इसलिये हे वत्स ! तूने श्रुत भलिभांति पढा है परन्तु श्रुतज्ञानका प्रथम आचार तूने बराबर नहीं समझा है क्योंकि तू अकालमें भी स्वाध्याय करता है इसके विषयमें श्री निशीथ चूर्णिमें कहा है कि—

सझा चौति–अणुदिए सूरिए, मज्झएहि, अथ्थमणे,
अद्धरत्ते, एआसु चाउसु सज्झाय न करिंति ॥

"चार सध्या इस प्रकार है कि –१ सूर्यादय पूर्व, २ मध्याह्न समय, ३ सूर्यास्त समय और ४ अर्धरात्रि इन चार समयमें स्वाध्याय नहीं करना चाहिये ।" ऐसा उपदेश गुरुके मुहसे सुन सागराचार्यने उसके विषयके मिथ्या दुष्कृतको छोड़ गुरुको नमस्कार किया और फिर विशेषतया उनकी वयावृत्य करने लगे ।

"यदि कोइ सागरआचार्यके सदृश अहंकारसे योग्य कालका अतिक्रम कर ज्ञानादिकको पढते हैं वे विद्वान् साधु सभामें अनेक प्रकारसे लज्जा तथा निन्दाके पात्र बनते हैं ।"

[इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशप्रासादवृत्तौ सप्तदशस्तंभस्य षट्पंचाशदधिकद्विशततमः प्रबंधः ॥२५६॥]

व्याख्यान २५७

अस्वाध्यायकालमें स्वाध्याय नहीं करना

अस्वाध्यायक्षणेष्वज्ञ, स्वाध्याय कुरुते सदा ।
यत क्रिया. फलन्त्येव, यथोक्तसमये कृता ॥१॥

भावार्थ –"मूर्ख पुरुष सदैव अनध्याय समय स्वाध्याय करते हैं परन्तु योग्य समयमें की क्रियायें ही फलीभूत होती है।"

अनध्यायका समय कई प्रकारका है । उसका यथार्थ स्वरूप आवश्यक निर्युक्तिकी वृत्तिमें प्रतिक्रमण अध्ययनकी तथा प्रवचनसारोद्धारके अट्ठसठवें द्वारसे जान ले । यहां भी उसका कुछ स्वरूप बतलाया जाता है ।

जब आकाशसे सूक्ष्म रज पडे उस समय जितने समय तक पडे उतना ही अस्वाध्यायकाल जान । इसीप्रकार धुअर (धुवाड) जब तक पडे उतना अस्वाध्याय काल समझे । उसमें विशेष इतना कि–धुअर पडता हो तब तक मुनिको अंगोपांगकी चेष्टा किये बिना मकानमें ही बैठ रहना चाहिये तथा गधर्वनगर, उल्कापात, दिशाओंका दाह और विद्युत्पात हो तब उस समय उपरान्त एक पहर तक अस्वाध्याय काल समझे । अकाले (वर्षाऋतु बिना) विद्युतकी चमक हो अथवा अकाले मेघ गर्जना हो तो दो पहर तक अस्वाध्याय काल

जाने । अषाढ चोमासेका तथा कार्तिक चोमासेका प्रतिक्रमण करने पश्चात् प्रतिपदा (एकम–पड़वा) तक अस्वाध्याय काल जाने । आसोज तथा चैत्रकी शुक्ला पंचमीके मध्यान्ह कालसे प्रारम्भकर कृष्णपक्षकी प्रतिपदा तक अस्वाध्याय काल जाने। बीजके दिन स्वाध्याय करना योग्य है। राजा और सेनापति आदिका परस्पर युद्ध हो रहा हो तो उस समय अस्वाध्याय काल जाने । । होलीके पर्वपर जब तक रज शान्त न हो तब तक अस्वाध्याय काल जाने । यदि किसी गांवका राजा मर जाये तो तब तक दूसरे राजाका अभिषेक न हो तब तक अस्वाध्याय काल जाने । उपाश्रयसे सात घर तक यदि कोई प्रसिद्ध पुरुष मर गया हो तो एक अहो [1]रात्रिका अनध्याय काल जाने । यदि उपाश्रयसे सो हाथ तक कोई मर जाये तो तब तक उसका शव वहांसे न हटाया जाये तब तक अस्वाध्याय जाने । छींक स्वनका शब्द जब तक सुनाई दे तब तक स्वाध्याय नहीं करना चाहिये । जलचर, तिर्यंच, पचेन्द्रिय, मत्स्य आदि (विकलेन्द्रिय नहीं)का रुधिर, मांस या हड्डी यदि उपाश्रयसे सात हाथ तक पडे हों, तथा किसी पक्षीका इडा पडा हो किन्तु टूटा न हो तो उनके हटा देने बाद ही स्वाध्याय हो सकता है और यदि इडा फूट गया हो तो तीन पोरसी तक स्वाध्याय अकल्पित है । उनमें भी यदि इडा फूटा हों और उसमेंसे रसरा अथवा खूनका बिन्दु भूमिपर गिरा हो तो स्वाध्याय अकल्पित है । गाय आदिका [2]जरायु जब तक लगा हो ।

---

[1] एक रात्रि और एक दिन को अहोरात्रि कहते है । [2] जरायु

तब तक अस्वाध्याय जाने और जरायुगिरने के पश्चात् तीन पोरसी तक अस्वाध्याय जाने । बिल्ली आदिने यदि चूहा आदि मारा होतो एक अहोरात्रि तक अस्वाध्याय जाने । इतने समय तक नन्दिसूत्र आदि न पढे । इसी प्रकार मनुष्य के सम्बन्धमे भी समझे । विशेष यह है कि-उपाश्रय से सो हाथ तक मनुष्यके अवयव अथवा चर्म, मास, रुधिर, हड्डि आदि पडे हों तो अस्वाध्याय जाने परन्तु यदि उपाश्रय और उन अवयवोंके पडे स्थानके बीचमे कोई मार्ग हो तो स्वाध्याय हो सकता है ।

स्त्रियोंके ऋतु कालमे तीन दिन तक स्वाध्याय नही करना चाहिये । परन्तु यदि जठररोग होतो अधिक काल तक भी स्वाध्याय नही करना चाहिये । यदि किसी गर्भवती के पुत्र प्रसव हुआ होतो सात दिन और पुत्रि हुईहो अथवा रक्त अधिक जाता होतो आठदिन तक स्वाध्याय नही करना चाहिये । नवमे दिन कर सकते हैं । सो हाथ तक यदि किसी बालकका दांत गिरा होतो उसकी खोजकी जाये और यदि वह दांत दिखाई न पडेतो "दंत ओहड्डावणिय करेमि काउस्सग्ग ।" ऐसा कह एक नवकारका कायोत्सर्ग करना चाहिये । इसके बादही स्वाध्याय करना कल्पीत है । दांत के अतिरिक्त अन्य कोई अंग अथवा उपांगकी टकी सो हाथ

अर्थात् ब्याहने पश्चात् जो ओर (जर) गिरे

तक पड़ी हो तो [1]बारह वर्ष तक वाचनादिक स्वाध्याय अकल्पित है । परन्तु मनमें अर्थ विचारणाका किसी स्थानपर निषेध नहीं किया गया है । आर्द्रा नक्षत्रसे लेकर स्वाति नक्षत्र तक विद्युत तथा मेघगर्जना हो तो स्वाध्यायका निषेध नहीं है । भूमिकंप हुआ हो तो आठ पहर तक स्वाध्याय नहीं करना चाहिये । अग्निका उपद्रव हुआ हो तो वह उपद्रव रहे तब तक स्वाध्याय नहीं करना चाहिये । चन्द्रग्रहणमें उत्कृष्ट बारह पहर तक और सूर्यग्रहण में उत्कृष्ट सोलह पहर तक अस्वाध्याय जाने । चारोंकी रात्रिको भी स्वाध्याय नहीं करना चाहिये ।

आदि स्वाध्यायका स्वरूप सम्प्रदाय अनुसार जानकर स्वाध्याय करना चाहिये । क्योंकी अयोग्य कालमें पठन-पाठन करनेसे नुकसानकी प्राप्ति होती है । इसपर एक दृष्टान्त है कि-कोई साधु संध्या समयके पश्चात् कालिकसूत्रके पठनका समय निकल जानेपर भी समयके कालसे अनभिज्ञ होनेसे उसका परावर्तन किया करते थे । उसे देख किसी सम्यक् दृष्टि देवताने सोचा कि, मैं इनको समझादूं कि जिससे कोई मिथ्यादृष्टि देवता इनको छल न सके ।" ऐसा सोच उसने महीयारीका रूप बना सिर पर छाछका मटका रख वह साधुके पास होकर आने जाने लगी और "छाश लो छाश" "ऐसा बारबार उच्च स्वरसे बोलने लगी । जिस पर अत्यन्त

---

१ यहां बारह वर्षका जो अस्वाध्याय बतलाया गया है उसका परमार्थ बहु श्रुत गम्य है ।

उद्वेगित हो उक्त साधुने कहा कि–"अरे ! क्या तेरे छाछ बेचनेका यह समय है ?" तब महीयारीने कहा कि, "अहो ! क्या तुम्हारेभी यह स्वाध्यायका समय है ।' यह सुन साधु को विस्मय हुआ और उपयोग द्वारा अकाल जाननेसे मिथ्या दुष्कृत लिया फिर "अयोग्य कालमें स्वाध्याय करनेसे मिथ्या दृष्टि देव छल देते हैं इसलिये ऐसा भविष्यमें कभी मत करना ।" इस प्रकार उस देवताने साधुको शिक्षा दी अत: योग्य समय पर ही स्वाध्याय करना उचित है ।

यथोक्त समय पर की हुइ क्रियायें अवश्य फल देने वाली होती है । क्रियायें दो प्रकारकी हैं । एक प्रशस्त और दूसरी अप्रशस्त । इनमेसे सिद्धान्त मार्गमें कही सब क्रियायें प्रशस्त है और खेती, व्योपार आदि अप्रशस्त हैं । चर्या-जाना आना और भाषण आदि सब क्रियाये समय पर करने परही सफल होती हैं । इसीलिये नीतिशास्त्रमें अकाल चर्याको श्रेष्ठ नही बतलाया गया हैं । कहा है कि–

अकालचर्या विषमा च गोष्टि., कुमित्रसेवा न कदापि कार्या ।
पश्याडज पद्मवने प्रसुप्त, धनुर्विमुक्तेन शरेण ताडितम् ॥१॥

भावार्थ –"अकाल चर्या, विषम गोष्टि और कुमित्रकी सेवाये कभी नही करना चाहिये । देखिये नीच–संगतिसे –जीवनमें सोता हुआ हंस धनुषसे छोडे बाण द्वारा मारा गया" यह दृष्टान्त निम्न प्रकार है कि –

किसी वनमे पद्मसरोवरमें मदरक्त नामक हस रहता था, वहा एक बार कोई घुग्घड आया जिसको हसने पूछा कि—'तू कौन है ? और इस वनमे कहा से आया है ?' घुग्घडने उत्तर दिया कि, 'आपके गुण सुनकर मै आपके साथ मित्रता करने के लिए आया हूँ। ऐसा सुन हसने वहाँ रहने दिया। अनुक्रम से साथ साथ क्रिडा करते हुए उनमे परस्पर मित्रता घनिष्ट हो तो गई। परन्तु हसने यह विचार नहीं किया कि, 'कल्याण चाहनेवाले पुरुष को नीच से कभी परिचय नहीं करना चाहिये।' कहा भी है कि —

हु तुही वास साधुजन, दुज्जन सग निवार।
हरे घडी जल झल्लरी, मत्थे पडे पहार ॥१॥

'हे साधुजन ! मैं तुझे मना करता हूँ कि तू दुर्जन की सगति त्याग क्योंकि जल को घडी हरण करती है परन्तु प्रहार झालरका सिर पर होता हैं। अपितु

नीच सारिस कीजे सग, चढे कलक होय जसभग।
हाथ अगार ग्रहे जो कोय, के दाझे के कालो होय ॥२॥

फिर एक दिन घुग्घड हसकी आज्ञा ले उसके स्थान को लौटा। उस समय उसने हससे कहा कि, 'तुम भी मेरे स्थान पर आना !' इस पर हस भी एक वार उसके

स्थान पर गया परन्तु वहां उसे नहीं पाया। अत्यन्त खोज करने पर वह एक वृक्ष की कोटर में बैठा दिखाई पड़ा। उसको हंसने कहा कि, 'हे भाई! बाहर आ, मैं हंस तुझ से मिलने के लिए आया हूँ।' घुवडने जवाब दिया कि, 'मैं दिनमें बाहर निकलनेमें असमर्थ हूँ इसलिये तू यहीं रहे फिर हम रात्रिमें गोष्टि करेंगे।' फिर रात्रि में दोनों परस्पर मिले और कुशल वार्ता की। उस रात्रि को हंस उसी के साथ सोया। उसी वनमें उसी रात्रि को एक सार्थने वहां रात्रिवास किया था, जब पिछली रात्रि को वहां से चलने को तैयार हुआ कि घुवड उच्च स्वर से शब्द कर स्वयं कोटर में छिप रहा और हंसको जैसे का तैसा वहां सोता छोड़ दिया। घुवड का शब्द सुन सार्थपति क्रोधित हो आया और उसने अपशकुनकी निवृत्ति के लिए उस पर शब्दभेदी बाण चलाया जिसके लगने से हंस मारा गया। अतः विषय गोष्टि कदापि नहीं करना चाहिये। अपितु अकाल में विचरण भी नहीं करना चाहिये अर्थात् अकालचर्या का सर्वथा त्याग कर देना चाहिये। इस विषय पर मार्गानुसारी के गुणों में कहा गया है कि –

धर्मार्थस्यात्मना श्रेयोऽभिवाञ्छन् स्थैर्यभृत्सदा।
अदेशाकालयोश्चर्यां, विषीरत्न विवर्जयेत् ॥१॥

भावार्थ –सदैव स्थिरता के धारक एवं धर्म अर्थ तथा अपनी आत्मा का कल्याण चाहनेवाले विचारयुक्त पुरुष

किसी वनमे पद्मसरोवरमें
था, वहा एक बार कोई घुग्ड
कि—'तू कौन है ? और इस
घुवडने उत्तर दिया कि, 'आप
साथ मित्रता करने के लिए आ
वहाँ रहने दिया । अनुक्रम से
उनमें परस्पर मित्रता घनिष्ट
यह विचार नहीं किया कि, 'फल
नीच से कभी परिचय नहीं क
है कि —

तु तुही वास साधुजन, दु
हरे घडी जल झल्लरी, म

'हे साधुजन ! मैं तुझे
की सगति त्याग क्योंकि जल
परन्तु प्रहार झालरका सिर पर

नीच सारिम कीजे सग,
हाथ अगार ग्रहे जो

फिर एक दिन घुग्ड
को लौटा । उस समय
मेरे स्थान पर आना !'

उत्तर दिया परन्तु बादशाहने उसे स्वीकार नहीं किया। फिर बादशाहने लहुए को बुलाकर उससे उन काजी आदि के समक्ष ही उपरोक्त चार प्रश्नों का उत्तर पूछा जिस का लहुआने शीघ्र उत्तर दिया कि-"हे स्वामी! सब का बीज जल है, सब रसों में श्रेष्ठ रस नमक है, कृतज्ञ कुत्ता है, और कृतघ्न जवाई है। कहा भी है कि -

द्रुतमानय पानीयं, पानीयं पंकजानने।
पानीयेन विना सर्वं, सद्य शुष्यति दग्धवत् ॥१॥

भावार्थ -"हे कमलाक्षी! पीने योग्य पानी शीघ्र ला क्योंकि बिना पानीके सब वस्तुएं दग्ध हुए सदृश तत्काल सुक जाती हैं।"

प्राथम्यमुदधिप्रासीत, सत्यं ते लवणोदधे।
यद्रसेन बिना सर्वरसो न स्वादमर्हति ॥२॥

भावार्थ -"हे लवण समुद्र! सर्व समुद्रोंमे जो तू प्रथम माना जाता है यह नितान्त योग्य है क्योंकि जिसके (तेरे) रस बिना कोई भी रस स्वाद नहीं देता।"

अशनमात्रकृतज्ञ तया गुरो न पिशुनोऽपि शुनो लभते तुलाम्।
अपि बहूपकृते सखिता खले, न खलु खेलति खेलतिका यथा।३

भावार्थ -"स्वामीका अन्न मात्र खानेके कृतज्ञपनसे चुगलखोर कुत्तेकी भी तुलना नहीं कर सकता जैसे आकाशमें

को देश तथा काल के अयोग्यचर्या का त्याग कर देना चाहिये।'

अपितु भाषण भी समयानुकूल करना चाहिये। समयोचित भाषण अनेक मनुष्यों के मन को सुख देनेवाला होता है। इस विषयमे भी दृष्टांत है कि –

श्री चम्पानेर गढमे महमद बेगड़ा नामक वृद्ध बादशाह राज्य करता था। उसका अत्यन्त मानीता लहुआ[१] नामक एक ब्राह्मण था। उसने सरस्वती से वरदान प्राप्त किया हुआ था। एक दिन काजी, मुल्ला, आखुन, बारहजारी तथा सुबा आदिने बादशाह से विज्ञप्ति की कि–"हे दीन दुखिया के बादशाह! हमारे कुरान मे ऐसा कहा गया है कि, "प्रात काल यदि किसी हिन्दु के दर्शन हो जाये तो दोजख में जाना पड़ता है और चालीस रोजेका फल नष्ट हो जाता है इस लिये इस लहुआ का प्रात काल दर्शन करना अयोग्य है।" यह सुन बादशाहने उनकी प्रसन्नताके लिये लहुएका बिलकुल आनाजाना बन्द कर दिया। फिर एक दिन बादशाहने काजि, मुल्ला, शेख, सुबा आदि को चार प्रश्न पूछे कि, "सबका बीज क्या है? सब रसो में श्रेष्ठ रस कौनसा है? कृतज्ञ (किये काम को जाननेवाला) कौन है? और कृतघ्न (किये काम को भूल जानेवाला) कौन है? इस चार प्रश्नों का उत्तर दीजिये। "उन्होंने खूब सोच कर सबका

१ जो लहुआ-लवा नाम से प्रख्यात है परन्तु वह तो बनिया था ऐसी लोकोक्ति है।

उत्तर दिया परन्तु बादशाहने उसे स्वीकार नहीं किया। फिर बादशाहने लहुण को बुलाकर उससे उन काजी आदि के समस्त ही उपरोक्त चार प्रश्नों का उत्तर पूछा जिस का लहुआने शीघ्र उत्तर दिया कि–"हे स्वामी! सब का बीज जल है, सब रसों में श्रेष्ठ रस नमक है, कृतज्ञ कुत्ता है, और कृतघ्न जवाई है। कहा भी है कि –

> द्रुतमानय पानीय, पानीय पक्जानने।
> पानीयेन विना सर्व, सद्यःशुष्यति दग्धवत् ॥१॥

भावार्थ –"हे कमलाक्षी! पीने योग्य पानी शीघ्र ला क्योंकि बिना पानीके सब वस्तुएं दग्ध हुए सदृश तत्काल सूक जाता है।"

> प्राथम्यमुदधिप्वासीत, सत्य ते लवणोदधे।
> यद्रसेन विना सर्वस्मो न स्वादमर्हति ॥२॥

भावार्थ –"हे लवण समुद्र! सर्व समुद्रोंमें जो तू प्रथम माना जाता है यह नितान्त योग्य है क्योंकि जिसके (तेरे) रस बिना कोई भी रस स्वाद नहीं देता।"

अशनमात्रकृतज्ञ तया गुरो र्नपिशुनोऽपि शुनो लभते तुलाम्।
अपि बहूपकृते सखिता खले, न खलु खेलति खेलविका यथा।३

भावार्थ –"स्वामीका अन्न मात्र खानेके कृतज्ञपनसे चुगलखोर कुत्तेकी भी तुलना नहीं कर सकता जैसे आकाशमें

लत्ता क्रिडा नहीं कर सक्ती अर्थात् विना आधारके खड़ी नहीं रह सक्ती इसीप्रकार बहुत उपकार किये खल पुरुषके साथ भी मित्रता नही हो सक्ती ।"

क्षणे रुष्टः क्षणे तुष्टो, नानापूजां च वाञ्छति ।
कन्याराशिस्थितो नित्य, जामाता दशमो ग्रह ॥४॥

भावार्थ –जवाई क्षणमे कुपित हो जाता है, क्षणभरमे सतुष्ट हो जाता है और अनेकों प्रकारका सत्कार चाहता है अत वह सदैव कन्याराशीमे रहे दशवे ग्रहके समान है ।"

इसप्रकार अपने किये प्रश्नोंका ठीक ठीक उत्तर पाकर काजी आदिके समक्ष बादसाहने उसकी अत्यन्त प्रशसा की । तत्पश्चात् किसी दिन काजी आदिने फिरसे बादशाहके पास लहुएकी चुगली खाई कि–' हे स्वामि ! हिन्दु काफर लहुएके साथ निरन्तर मत्रणा (विचार) करना आपको योग्य नहीं है आपके राज्यमे उसके समान वाणीमे प्रवीण कई पुरुष हैं ।' यह सुन बादशाहने उनसे फिरसे चार प्रश्न पूछे— "ससारमें बड़ा पुत्र किसका है ? ससारमें बड़ा दात किसका होता है ? ससारमे बड़ा पेट किसका है ? और ससारमे समझदार कौन है ?" यह सुन उन्होंने विचार कर कहा कि–" हे स्वामी ! जगतमे बादशाहका पुत्र ही बड़ा पुत्र है, जगतमें बड़ा दात और बड़ा पेट हाथीका है, और विश्वमें आपके समान अन्य कोई समझदार नही है ।" इसप्रकार बादशाहने उनका तिरस्कार कर लहुएको बुला वे चार प्रश्न

पूछे जिसपर उसने तुरन्त उत्तर दिया कि–" हे स्वामी! विश्वमें गायके पुत्र समान अन्य कोई बड़ा नहीं है क्योंकि यह ऐसी फर समस्त प्राणीको जीवित रखता है। यह बात इसपर होवे है क्योंकि उनके द्वारा बीज बोये जाते हैं और उगते हैं, यहां नम्बर पृथ्वीका होता है क्योंकि यह सर्व वस्तुका रक्षण करता है तथा सबका स्पर्श भी सहन करती है। और बडे समझदार व हैं जो समयके अनुकूल उत्तम भाषण करते हैं।" यह सुन बादशाह बहुत प्रसन्न हुआ और लड़केको उसका प्रीतिपात्र बनाया। यह दृष्टान्त कुछ उपयोगी होनेसे यहां लिखा गया है।

इसप्रकार होनेसे ज्ञानाचारके पालन करनेवाले साधुओंको जिनेश्वरकी आज्ञाका पालनकर सर्व क्रियायें योग्यकालमें ही करनी चाहिये।

"श्री जिनेश्वरकी आज्ञाके अनुसार अस्वाध्यायका वर्णन सुनकर स्वाध्यायके समय परही श्रुतका अनुयोगका आचरण करे।"

[इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशप्रासादवृत्तौ सप्तदशस्तम्भस्य सप्तपञ्चाशदधिकद्विशततम प्रबंध ॥२५७॥]

व्याख्यान २५८

दूसरा विनयाचार

श्रुतस्याशतना त्याज्या तद्विनय: श्रुतात्मक ।
शुश्रूषादिक्रियाकाले, तत्कुर्याज्ज्ञानिनामपि ॥१॥

भावार्थ –" श्रुत की कभी आशातना नहीं करना चाहिये क्योंकि उसका विनय करना श्रुत स्वरूप है अत शुश्रूषादिक क्रियायें करते समय श्रुतज्ञानवाले को भी विनय करना चाहिये ।"

श्रुत के द्रव्य और भाव दो भेद हैं। इनमे से पुस्तक अक्षर आदि द्रव्य श्रुत कहलाते हैं। पैर लगाना, तथा थूक से लिखित अक्षरो को मिटाना आदि द्रव्य श्रुत की आशातना समझना चाहिये। और परमात्मा द्वारा कहे पदार्थोंमे अपनी बुद्धि लगा उसका अन्यथा अर्थ करना भावश्रुत की आशातना कहलाती है। प्रतिक्रमण आवश्यक मे तेतीस आशातनाओं का वर्णन करते हुए कहा गया है कि– "सुअस्स आसायणाए सुअदेवयाण आसायणाए" श्रुत की आशातना, श्रुत के अधिष्ठायक देवता की आशातना आदि यहा पर यदि किसी को शका हो कि–" श्रुत देवता की आशातना होती ही नहीं है अथवा वे श्रुत देवता किसी

कार्य के नहीं है ।" तो इसके उत्तर मे कहा गया है कि-जिनेन्द्र का कहा हुआ आगम देवताके अधिष्ठाता बिना है ही नही अत श्रुत देवता है और इसलिये उनकी आशातना भी है । "वे श्रुत देवता किसी कार्य के नहीं हैं ।" ऐसी शका भी नही होना चाहिये । क्योंकि श्रुतदेवता का अवलबन लेकर ही प्रशस्त मनवाले जीवों का कर्म क्षय देखा जाता है ।

श्रुतके वचनों का उल्लघन करना भी मात्रश्रुत की आशातना कहलाता है । श्री जिनेन्द्रने श्रुत में ऐसा कहा है कि-मन्त्रादि विद्या को शासन के किसी बडे कार्य के होने पर ही उपयोग में लेना चाहिये परन्तु अन्य किसी कारणवश उसका उपयोग नहीं करना चाहिये । जो किसी प्रमाद आदि के कारण से अथवा आश्चर्य बतानेकी इच्छा से स्थूलभद्र मुनि के समान लब्धिविद्या का उपयोग करते हैं वे श्रुत की आशातना करते है और ऐसा करने से बडी हानि होती है । इस विषय मे स्थूलभद्र का प्रबन्ध है कि –

पाटलीपुर नगर मे श्री श्रमणसघ एकत्रित होकर विचार करने लगा कि-"आजकल महा भयकर दुष्काल प्रवृत्त हो रहा है जिससे बुद्धिमान साधु भी अभ्यास न रखने से और पढ हुए का पुन स्मरण न करने बहुत से श्रुत को भूल गये हैं अतः अवश्रुतका उद्धार करना चाहिये । ऐसा विचार कर श्री सघने ग्यारह अग सम्बन्धी अध्ययन, उद्देशाआदि सब एकत्रित किये फिर दृष्टिवाद को एकत्रित

करने के विचार करने लगे कि नेपाल देश मे रहनेवाले श्रुत केवली भद्रबाहु स्वामी का पता चलने से उनके बुलाने के लिए सघने दो मुनियों को भेजा। उन मुनियोंने वहां जा उन की वन्दना कर कहा कि, "हे स्वामी! आप को श्री सघ वहा चलने के लिये आज्ञा देता है।" यह सुन कर सूरिने कहा कि "मैंने महाप्राणायाम ध्यान आरंभ कर दिया है जो बारह वर्षमें पूर्ण होता है इसलिये मैं इस समय वहा आनेमें असमर्थ हू। महाप्राणायामके सिद्ध होनेपर यदि कोई कार्य आ उपस्थित हों तो चौदहपूर्व सूत्र तथा अर्थ एक मुहूर्त मात्रमें पढे जा सकते हैं।" यह सुन उन दोनों साधुओने वापस लौट सूरिके वचन श्री सघसे कह सुनाये। फिर श्री सघने अन्य दो साधुओंको बुलाकर आज्ञा दी कि, "तुम सूरिको जाकर कहना कि यदि कोई श्री सघकी आज्ञा न माने तो उसे क्या दड देना चाहिये इसपर यदि सूरि यह कहे कि उसे सघके बाहर निकाल देना चाहिये तो तुम उच्च स्वरसे सूरिको ही कहना कि हे आचार्य महाराज आप स्वय ही इस दण्डके भागी हैं।" इसपर उन दोनों मुनियोंने वहां जा इसीप्रकार सूरिसे कहा जिसपर सूरिने कहा कि, "पूज्य सघको ऐसा नही करना चाहिये परन्तु मेरे पर कृपाकर बुद्धिमान् साधुओको यहां भेज देना चाहिये कि जिनको मैं सात वाचना (प्रवचन) सुनाऊंगा। उनमेंसे एक वाचना आहार लेकर आनेपर, तीन वाचनाये तीन वख्त के कालक समय और तीन वाचना सायकालको प्रतिक्रमण

करने पश्चात् सुनाउंगा जिससे संघका कार्य भी पूर्ण हो जायगा और मेरा कार्य भी पूर्ण हो जायगा।" यह सुन कर दोनों मुनियोंने वापस आ यह हाल श्री संघसे कह सुनाया जिसे सुन श्रीसंघ अत्यन्त प्रसन्न हुआ और उसने स्थूलभद्र आदि पांचसो साधुओंको सूरिके पास भेजे, जिनको सूरि पढाने लगे जिनमेंसे स्थूलभद्रके अतिरिक्त अन्य सब साधु थोडीसी वाचनाके पढनेमें असंतुष्ट हो अपने अपने स्थानको लौट गये। स्थूलभद्रमुनि महा विद्वान थे इसलिये वे अकेले ही रह गये। उन्होंने आठ वर्षमें आठ पूर्वका अभ्यास किया। परयार उनको अल्प वाचनासे उद्वेगित होते देख सूरिने कहा कि-"हे वत्स! मेरा ध्यान पूर्ण होनेवाला है उसके पश्चात् तुझे तेरी इच्छानुसार वाचना सुनाउंगा।" स्थूलभद्रने पूछा कि, "हे स्वामी! अब मुझे कितना और पढना अवशेष है?" गुरुने उत्तर दिया कि-'बिन्दु जितना तो तू पढ चुका है और समुद्र जितना अवशेष है।" फिर महाप्राणध्यानके पूर्ण होनेपर दो वस्तु न्यून ऐसा दश पूर्वतक पढे कि उस समय उनकी बहिन तथा अन्य साध्वियें उनको वन्दना करनेके लिये वहां गई। उन्होंने प्रथम सूरिको वन्दना कर उनसे पूछा कि-"हे प्रभु! स्थूलभद्र कहां हैं?" सूरिने कहा कि, "छोटे देवकुलमें हैं" ऐसा सुन वे साध्वियें उस ओर चली। उनको आते देख स्थूलभद्रने आश्चर्य दिखानेके लिये उनके शरीरको बदलकर सिंहका रुप धारणकर लिया। वे साध्वियें सिंहका रुप देख भयभीत हो गये और उन्होंने

सूरिसे आकर सब बाते कह सुनाई । सूरिने उपयोगसे उस हालको जानकर कहा कि–"तुम जाकर उनको वन्दना करो, वहां तुम्हारा बडा भाई ही है, सिंह नही है ।" ईसपर वे साध्विये फिरसे वहां गई । उस समय वह स्थूलभद्र उसके स्वरूपमें ही था जिसको उन्होंने वन्दना की । फिर उसके भाई श्रीयकके स्वर्गगमनका वृतान्त सुना तथा अपना संशय मिटा वे साध्विये वापस उनके स्थानको लौट गई । फिर जब स्थूलभद्र वाचना लेनेके लिए गुरुके पास गये तब सूरिने वाचना न देकर कहा कि—"तू वाचनाके अयोग्य है ।" गुरुके अचानक ऐसे शब्द सुन स्थूलभद्र दीक्षाके दिनसे आरंभ कर उनके अपराधोंका स्मरण करने लगे । फिर उन्होंने कहा कि, 'हे पूज्य गुरु! मुझे याद नही पडता कि मैंने कोई अपराध किया हो फिर भी आपका कथन सत्य होगा ।" गुरुने कहा कि, "क्या अपराध करके स्वीकार नही करता? क्या इससे पाप शान्त हो गया है?' फिर स्थूलभद्र सिंहके रूप बनानेसे की श्रुत आशातनाका स्मरण कर गुरुके चरण कमलोंमें गिर गये और कहने लगे कि, "मैं पुनः ऐसा कार्य कभी नही करुंगा, मुझे क्षमा कीजिये ।" सूरिने कहा कि, "तू योग्य नही है" फिर स्थूलभद्र सर्व संघके पास गये और उनसे प्रार्थना कर उनको गुरुके पास भेज गुरुको मनाने लगे क्योंकि "बडोंका कोप बडे ही शान्त कर सकते हैं ।"

सूरिने सबसे कहा कि, "जैसे इस स्थूलभद्रने अभी अपना रूप बदला है उसीप्रकार अन्य भी बदलेंगे और आजसे आगे

मनुष्य मंद सत्ववाले हो जायेंगे।" फिर भी संघने अत्यन्त आग्रहपूर्वक स्थूलभद्रको पढानेके लिये कहा। तिसपर गुरुने उपयोग पूर्वक देखा तो पता चला कि, "शेष पूर्वोंका मुझसे अभाव नहीं है अतः इस स्थूलभद्रको शेष पूर्व पढा दूं।" ऐसा विचार कर गुरुने स्थूलभद्रसे यह अभिग्रह कराया कि, "वे अन्य किसीको शेष पूर्व नहीं पढायेंगे।" उन्हे उनको पढाया जिससे वे चौदहपूर्व धारक हुए।

वीर भगवान के मोक्ष पधारने के एकसो सीत्तर वर्ष पश्चात् भद्रबाहु स्वामी भी समाधि धारण कर स्वर्ग सिधारे। इस दृष्टान्त के उपनय को हृदय में धारण कर श्रुत की आशातना का त्याग कर देना चाहिये। इस श्रुतका विनय करना चाहिये। अपितु शुश्रूषा करते समय ज्ञानीका भी विनय करना चाहिये। इस विषय में सूत्र में कहा है कि—

न पक्खओ न पुरओ, नव किच्चाण पिट्ठओ।
न जुंजे उरुणा उरं, सयणे नो पडिस्सुणे ॥१॥

अक्षरार्थ —"नमस्कारादि करने योग्य गुरु के बहुत समीप पास में नहीं बैठना चाहिये, सन्मुख नहीं बैठना चाहिये, पीछे नहीं बैठना चाहिये, पुठ से पुठ मिलाकर नहीं बैठना चाहिये, तथा शय्या मे बैठे बैठे गुरुके वाक्य नहीं सुनना चाहिये। वाक्य सुनते ही खडे होकर उत्तर देना चाहिये।"

विशेषार्थ –' दाहिनी ' तथा बाईं और नहीं बैठना चाहिये । उस प्रकार बैठने से गुरु के समान आसन पर बैठने से अविनय होता है । सामने नहीं बैठना चाहिये क्योंकि वहा बैठने से वन्दना करनेवाले लोगों को गुरु का मुह दिखाई नहीं पडता है । जिससे उनको अप्रीति हो जाती है । इसी प्रकार गुरू के पीछे भी नहीं बैठना चाहिये क्योंकि ऐसा करने से एक दूसरे के मुह को ओर नहीं देख पाते जिस से वार्त्ता का रस नहीं आता अपने पुट्ठे के साथ गुरु का पुट्ठा नही जोड़ना चाहिये तथा शय्या मे सोते या बैठे हुए गुरु वाक्य नहीं सुनना चाहिये परन्तु गुरू के बोलते ही शीघ्र उनके समीप आकर उनके चरण-कमलों मे नमस्कार कर "मेरे गुरुकी अनुपम कृपा है। ' ऐसा मन मे विचार कर 'भगवन् ! इच्छामो अनुसट्ठि' 'हे गुरू ! क्या आज्ञा है ?' इस प्रकार पूछे तथा शिष्यको विनय द्वारा गुरुको प्रसन्न करना चाहिये । कहा भी है कि –

अणासना थूलवया कुसीला, मिउ पि चंड पकरंति सीसा ।
चित्ताणुआ लहु दक्खोववेआ, पसायए ते हु दुरासय पि ॥१॥

भावार्थ –"गुरु के वचन को न माननेवाले, विना विचारे बोलनेवाले, और कुशील शिष्य कोमल गुरू को भी प्रचड बना देते हैं और गुरु के चित्तका अनुसरण करनेवाले तथा चातुर्य गुणों से युक्त शिष्य दुरासद (अतिक्रोधि) गुरु

को भी प्रसन्न कर देते हैं। इस पर निम्नस्थ चंडरुद्र आचार्य का दृष्टांत प्रसिद्ध है कि —

चंडरुद्रका दृष्टान्त

अवन्ति नगरीके उद्यानमे चंडरुद्र आचार्य परिवार सहित आकर समवसर्ये। वे उनके साधुओंके न्यूनाधिक क्रिया मात्रके गोपांश देख देख कर बारबार कोप करते थे। उनकी प्रकृति ही क्रोधी थी। एकवार उन आचार्यने सोचा कि—"इन सबका निवारण मुझ अकेलेसे नहीं हो सकता है तथा अधिक रोष करनेसे मुझ स्वयका भी हित नही हो सकता है।" ऐसा विचार कर वे ध्यान करनेके लिए एकान्त स्थानमें जाकर बैठे। उस अवसर पर उज्जयिनी नगरीका निवासी कोई शेठका पुत्र ताजा ही विवाहित होनेसे हाथ पर बंधे कंगन सहित उसके मित्र सहित वहा आया। उसके मित्राने साधुओंसे कहा कि—'हे साधुओ! यह हमारा मित्र संसारसे विरक्त होकर तुम्हारे पास दीक्षा ग्रहण करना चाहता है अतः आप इसे दीक्षा दीजिये।" यह सुन उन साधुओंने उसे गंध, मात्य तथा उत्तम वस्त्रोंसे शृंगारित देख उसे विवाहकार्यमे प्रवृत्त जान उसके मित्रोंको हँसी करते समझ उनको उनके गुरुके पास भेजा। वहा पर भी उन्होने उसीप्रकार कहा। तब गुरुने कुपित होकर उनसे कहा कि— "हे भाविक श्रावको! यदि ऐसा है तो राख लाओ।" इस पर वे हास्य करनेवाले राख भी ले आये तब गुरुने स्वयं ही

उसके सिरका केशलोचन किया उस समय उस शेठके पुत्रने लघुकर्मी होनेसे मनमें विचार किया कि—"अहो! मैने स्वय दीक्षा ग्रहण की है इसमें गुरुका क्या दोष है ? इन्द्रादिकको दुर्लभ यह चारित्र मुजे अनायास ही प्राप्त हो चुका है और स्वय आचार्यने दिया है अत अब इसका त्याग करना उचित नहीं है ।" कहा है कि —

प्रमादसगतेनापि, या वाक् मोक्ता मनस्विना ।
सा कथ दृषदुत्कीर्णाक्षरालीवान्यथा भवेत् ॥१॥

भावार्थ —"मनस्वी पुरुषने प्रमादवश भी जो शब्द पत्थरमें खोदे अक्षर पक्तिके सदृश अन्यथा (मिथ्या) कैसे हो सकते है ?"

ऐसा विचार कर उसने मित्रोसे कहा कि, "तुम अब घर जाओ । मुजे अब घरसे कोई प्रयोजन नहीं है ।" यह सुन उसके मित्रोंने उसे ससारिक भोगोंके लिए बहुत कुछ समझाया परन्तु उसने अपने ग्रहण किये व्रतका त्याग नही किया जिससे विलखित होकर वे अपने घरको लौट आये ।"

अब वह श्रेष्ठी पुत्र नव-दीक्षित था फिर भी मनके परिणामसे तो वह ऐसा जान पडता था कि मानो वह बहुत कालका दीक्षित हो । उसने गुरुसे कहा कि-"हे भगवान् ! जब मेरे स्वजनोंको इसकी सूचना मिलेगी तो वे यहा आयेगे । और मेरे चारित्र को छुडाने का भरसक प्रयत्न करेंगे अत

हमको किसी अन्यस्थान को चले जाना चाहिये।" गुरूने कहा कि, 'हे महानुभाव! मुझे रात्रिमें दिखाई नहीं पड़ता इसलिये तू प्रथम मार्ग देख आ।" यह सुन वह मार्ग देख शीघ्र वापस लौट आया और गुरु से कहा कि, "गुरुजी! पधारिये।" इस पर गुरु भी तत्काल रात्रि मे ही उसके साथ साथ चल दिये। अधकार से व्याप्त मार्ग मे ऊंचे निचे प्रदेश मे चलते हुए पग पग पर कष्ट पाने से पृथ्वी पर गिरते हुए गुरु शिष्य पर कोपायमान हो क्रोधमे कहने लगे कि,- "हे पापीष्ट! तूने कैसा रास्ता खोजा है?" ऐसा कह उन्होंने दंडे से उस पर प्रहार किया जिस पर भी वह सुशिष्य मनमे विचार करने लगा कि—"अहो! अत्यन्त खेद की बात है। ये गुरु महाराज इनके परिवारमे सुख से रहते थे उनको मुझ निर्भागीने दुःखका पात्र बनाया है। कई शिष्य तो गुरू को जन्म पर्यंत सुख पहुचानेवाले होते हैं और मैं तो प्रथम दिन ही गुरु की आशातना करनेवाला बन गया। परन्तु अब गुरु को ठुठा (पेडका अवशेष भाग) आदि से कोई पीड़ा न हो।' ऐसा विचार वह शनै शनै मार्ग दिखलाता हुआ अत्यन्त प्रयत्न से चलने लगा अपितु विचारने लगा कि-"अहो! इन गुरू का मेरे पर बड़ा भारी उपकार है कि जिन्होने अनादिकालसे नही पाया हुआ एस रत्नत्रयरूप मार्ग मुजे बतला दिया। मुझ अनादिकालसे परिभ्रमण करनेवालेको परमात्मा द्वारा कथित धर्म मार्गके रहस्यमे स्थापन कर दिया। अहो! अनादिकालसे इसप्रकार

मुझे किसीने भी ताड़ना नही कि जिस ताड़नासे अनेक भवोमे उपार्जित कर्मोका नाश हो जाता है । अहो ज्ञानी गुरुके बिना अन्य कौन ऐसा उपकार कर सकता है ?" आदि शुभ ध्यानमे आरुढ हो उपशम श्रेणीद्वारा उसने कर्मके दलियेको उपशमावी फिरसे क्षपक श्रेणीद्वारा उसने कर्मके अशका क्षय कर, मोहराजाकी सेनाको पराजित कर मात्र एक गुरुके विनयसे ही केवलज्ञान प्राप्त किया । जिसके लिये उद्यम किया उस वस्तुको उसने तत्काल प्राप्त कर लिया । फिर केवलज्ञान द्वारा मार्गको भलीभांति देख सकनेसे वह विषम मार्गका त्याग कर गुरुको अच्छे मार्गसे ले गया और गुरुको धर्मकी प्रीतिसे प्रसन्न किया ।

प्रातःकाल सूरिने शिष्यके मस्तक पर रुधिर बहते देख कर विचार किया कि, "अहो ! इस शिष्य नव दीक्षित होनेपर भी मन, वचन और कायाके योगसे इसकी क्षमा कोई नवीन एव अलौकिक है । मैं चिरकालका दीक्षित हू फिर भी मेरा प्रचड कोप शान्त नही होता अत इस कोपको धिक्कार है ।" ऐसा विचार कर सूरिने शिष्यसे कहा कि— "हे शिष्य ! मैंने एक बड़ा आश्चर्य देखा है कि प्रथम तो मैंने तुझे मार्गमे पद पर लड़खडाते व कष्ट उठाते देखा था परन्तु बाद मी पहले जैसा ही अधकार होनेपर भी सरलगति से मुझे ऐशमात्र भी पीड़ा उपजाये बिना मानों सूचन मार्ग प्रदर्शित किया हो उस प्रकार तू ठीक प्रकारसे चल रहा था जिससे मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा है ।" शिष्यने उत्तर

न्याकि–"देव गुरुके विनयसे श्रुतज्ञान प्राप्त होता है और श्रुत ज्ञानसे अन्य ज्ञान प्राप्त होते हैं । फिर ज्ञानसे क्या नहीं होता ? सब कुछ हो सकता है ।" आदि अपेक्षायुक्त वचन बोलनेसे सूरिने यह माना कि, "इसको अनंत अव्याबाध ज्ञान प्राप्त हो जाना मान पड़ता है ।" जिससे अपनी आत्माकी निन्दा करते हुए उसके चरणकमलमें गीर पडे । इसप्रकार चित्तमें शुभ भावना भाते हुए उन आचार्यने भी केवल ज्ञान प्राप्त किया । इसप्रकार उत्तम विनयवाले शिष्य उत्कट कोपवाले गुरुको भी मोक्ष दिलाने वाले होते हैं ।

[इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशप्रासादवृत्तौ षोडशस्तमस्य अष्टपञ्चाशदधिकद्विशततम प्रबंध ॥ २५८ ॥]

व्याख्यान २५९

तीसरा बहुमान नामक ज्ञानाचार

विद्या फलप्रदानस्य, जायते बहुमानतः ।
तदाचारस्तृतीयोऽतो, विनयतोऽधिको मत ॥१॥

भावार्थ —" गुरू आदिका बहुमान करनेसे विद्या अवश्य फलदायक होती है इसलिये यह तीसरा आचार विनयसे भी अधिक माना गया है ।"

विनय वन्दना, नमस्कार आदि बाह्याचारसे भी हो सकती है परन्तु बहुमान तो आन्तरिक प्रीतिसे ही होता है। बहुमान होनेपर ही गुरू आदिकी इच्छाका अनुसरण, गुण ग्रहण, दोषका आच्छादन तथा अभयदानका चिन्तन करना आदि हो सकता है । श्रुतके अर्थीको तो गुरू आदिका बहुमान अवश्य करना चाहिये उसके विना महान् विनयसे ग्रहण की हुई विद्या भी फलदायक नहीं होती है । इसके विषयमें गौतमपृच्छामें कहा गया है कि —

विज्जा विन्नाण वा, मिच्छा विणएण गिण्हिउ जोउ ।
अवमन्नइ आयरिअ, सा विज्जा निप्फला तस्स ॥१॥

भावार्थ –"विद्या अथवा विज्ञानको यदि [1]मिथ्या विनयसे ग्रहण किया जाता है और आचार्यकी अवगणना की जाती है तो वह विद्या उसके लिये निष्फल हो जाती है।"

यहा विनय तथा बहुमान के चार भाग हो सकते हैं। [1]विनय हो परन्तु बहुमान न हो। ईस पर प्रात काल जल्दी उठकर नमिनाथ के पास जानवाले पालक नामक वासुदेव का पुत्रका दृष्टान्त समझो २ बहुमान हो परन्तु विनय न हो ईस पर भावका अथवा अधी कहे जानवाले ही नैमित्तिकका दृष्टान्त जाने। ३ किसीको विनय तथा बहुमान दोनो हो इसपर कहे जाने वाला कुमारपाल राजा का दृष्टान्त जाने। ४ किसिको दोनो म से एकमी न हो ईसपर कपिलादासी अथवा काल-सौकरिकादिक का दृष्टान्त जाने, प्रथम दो नैमित्तिक का दृष्टान्त कहा जाता है

किसी गावमे किसी सिद्धपुत्रके दो शिष्य नीतिशास्त्र पढ़ते थे। उनम से एक शिष्य बहुमान पूर्वक गुरुको विनय करता था। गुरुजी कुछ कहता था उस सबको यथार्थ रूपसे अंगीकार करता था किन्तु दूसरे शिष्यमे यह गुण नहीं था। एकदिन उस दोनो तृण तथा काष्ट लेनेको वनमें गये। रास्ते मे उन्होने कुछ बडे पद-चिह्न देखे। उन्हे देख कर एकने कहाकि, 'आगे हाथी जा रहा है" इसपर दूसरे ने कहाकि, "हाथी नही जा रहा है परन्तु हथणी जा रहा

[1] बहारसे यथार्थ मात्र वंदन-नमस्कार कर वह मिथ्याविनय है अन्दरसे प्रीति नही होती

है, वह भी दाहिनी आखसे काणी है और उस पर कोई रानी बैठी हुई है, वह सधवा है और गर्भवति भी है। उसके आजकल में ही प्रसूति समय है जिसमें भी वह पुत्र प्रसव करेगी" यह सुनकर दूसरे ने कहाकि—"ऐसा बिना देखा असबन्ध क्यो बोलता है।" तब उसने कहाकि, "ज्ञान से सब कुछ जाना जा सकता है, इस बातकी तुम्हे आगे जाने पर प्रतिती हो जायगी।" फिर वे दोनो कुछ दूर आगे बढे तो उन्होने उसी प्रकार सब कुछ देखा। उसी समय किसी दासीने राजा के पास आकर कहा—"हे राजन्! राणीने पुत्र प्रसव किया है जिसकी मैं आपको बधाई देती हूँ। यह सुनकर उच्च शिष्यने दूसरे से कहा कि—"इस दासीके वचन सुना" दूसरे ने कहाकि तेरा ज्ञान सत्य है। फिर वे नदी किनारे गये जहा कोई वृद्ध स्त्री जलभरनेको आई हुईथी जिसने चेष्टा से उनको नैमित्ति जानकर पूछा कि–'मेरा पुत्र देशान्तर गया हुआ है वह वहा से वापस कब लौटेगा?" ऐसा कहते ही उसके सिर से मटका गिरकर फूट गया। यह सुनकर उक्त बिना विचार शिष्य एकदम बोल उठा कि–"तेरा पुत्र मर गया है।" फिर दूसरे विचार वालेने कहाकि "हे भाई! ऐसा न कह इसका पुत्र तो घर आ गया है। हे वृद्ध माता। तुम घर जाकर तुम्हारे पुत्र को देखो" यह सुन वह वृद्ध स्त्री शीघ्र उसके घर गई जहा उसका पुत्र आया हुआ था। उसे देख वह अत्यन्त प्रसन्न हुई। फिर पुत्रकी अनुमति ले

उसने दो वस्त्र तथा कुछ रूपये उस सत्यवादी को दिये। जिसे देख दूसरे ने खेदित होकर विचार किया कि-"सच-मुच गुरु ने मुझे अच्छी तरह नही पढ़ाया है यदि ऐसा न हो तो जिस बातको मैं नही जानता ईसे यह कैसे जान सकता है? अत इसम मात्र गुरु का ही दोष है।" फिर वे गुरुके पास गये। उनमसे प्रथम सुख शिष्यने गुरुके दर्शन होते ही मस्तक झुकाकर तथा हाथ जोड़कर बहुमानपूर्वक आनन्दके आशुओंसे नेत्र भर गुरुके चरणकमलोंमें मस्तक रख कर नमस्कार किया और दूसरा शिष्य तो पत्थरके स्तम्भ सदृश लेशमात्र भी शरीरको हिलाये बिना खड़ा ही रहा। तब गुरुने उससे कहा कि-" अरे! पैरोंमें क्यों नहीं गिरता?" उसने उत्तर दिया कि, "आपके जैसे भी यदि अपने शिष्योंमें अन्तर इसप्रकार भिन्नता रक्खें तब फिर किसको दोष दिया जावे? जब चन्द्रमा से ही अंगारोंकी वृष्टि होने लगे तब किससे कहा जाय?" यह सुनकर गुरुने कहा कि, "ऐसे कैसे बोलते हो? मैंने कभी भी विद्या सिखानेमें या उसकी आम्नाय कहने आदिमें तेरे साथ कोई कसुर नही रक्खी, शिष्यने कहा कि, 'यदि ऐसा हो तो मार्गमें हस्तीनी आदिका स्वरुप इसने उत्तम रीतिसे क्योंकर जान लिया और मैंने कुछ भी किसी प्रकार क्यों नही जाना?" यह सुनकर गुरुने उस दूसरे शिष्यसे पूछा कि-"हे वत्स! तूने कैसे जाना सो बतला?" तब उसने कहा कि "आपकी कृपासे मैंने विचार करना आरंभ किया कि ये किसी हाथीके जैसे

पैर तो निसानीसे जाने जा सक्ते हैं परन्तु क्या ये हाथीके पैर-चिन्ह हैं कि किसी हथनिके ?' इसप्रकार विशेष विचार करनेपर मैंने उसकी लघुनीतिसे यह निश्चय किया कि यह हथनि है। मार्गमें दाहू ओरकी वेलें हथनिसे तोड़ी हुई थी और बाइ ओर की तोडी हुई नहीं थी इससे मैंने निश्चय किया कि वह हथनि "बाई आखसे कानी होनी चाहिये।" फिर "हथनी पर आरुढ होकर ऐसे परिवार सहित राजा या उसका कोई अगत व्यक्ति ही होने चाहिये।" ऐसा निश्चय किया। फिर उसने किसी स्थान पर हथणिसे उतर कर शरीर चिंता की थी। उसे देखकर मैंने निश्चय कर किया कि "यह पति वाली है" और वह जहा पेशाब करने बैठी थी वहासे पृथ्वीपर हाथ रखकर उठी थी जिसे देखकर मैंने निश्चय किया कि "यह गर्भवती है।" वहासे चलते समय रानीने प्रथम दाहिना पैर रक्खा था इससे मैंने जाना कि "उसके गर्भमें पुत्र है।" और उसकी चाल अत्यन्त मन्द थी इससे यह निश्चय किया कि "प्रसवकाल समीप ही है।" अपितु हे स्वामी! उक्त वृद्ध स्त्रीने जब उसके पुत्रके विषयमे प्रश्न किया था तब तुरन्त ही उसके मस्तकसे घड़ा गिर पडा जिससे मैंने ऐसा विचार किया कि-"जैसे यह घडा जहासे उत्पन्न हुआ था उसीमें मिल गया इससे इसका पुत्र भी जो घरपर ही उत्पन्न हुआ था उस घर पर ही लौट आया होगा" इसप्रकार उसकी अनुपम बुद्धिसे हर्षित होकर गुरुने दूसरे शिष्यसे कहा कि, "हे शिष्य! तूने मेरे प्रति

विविध प्रकारकी विनयकी परन्तु उस हृदय तक बहुमान नहीं किया और इसने भलीभांति बहुमान किया और वैनयिकी बुद्धि बहुमान सहित विनय होनेपर ही स्फुरायमान होती है अत इसमें मेरा कोई दोष नहीं है।" इसप्रकार विनय होने पर भी बहुमान और अबहुमानका तारतम्य जानना चाहिये।

अब विनय और बहुमान इन दोनोंसे युक्त श्रीकुमारपाल राजाका दृष्टान्त निम्न प्रकार है –

श्री पाटण नगरमे कुमारपाल राजा राज्य करते थे। वे जिनेन्द्र कथित आगमको आराधना करनेमे तत्पर थे इसलिये उन्होंने ज्ञानके इक्कीस भंडार खोले थे। अपितु त्रेसठ शलाका पुरुष के चरित्र सुननेकी इच्छा होनेसे उन्होने श्री हेमचन्द्राचार्य गुरुसे प्रार्थना कर ३६००० श्लोक के श्री त्रिषष्ठि शलाका पुरुष चरित्रकी रचना कराइ। उस चरित्र को सुवर्ण तथा रुपाके अक्षरोंसे लिखवाकर, रंगमहलमे ले जाकर, वहा रात्रि जागरण कर, प्रात काल वह हस्ती पर उस चरित्र के पुस्तक को पधरा उस पर अनेक छत्र धारण करा, सुवर्ण के दंड वाले बहुतर चामर डुलाते हुए बडे उत्सव पूर्वक उपाश्रय ले गये। वहा उसकी सुवर्ण, रत्न, पट्टकुल आदि से पूजा कर बहुतर सामंत राजाओं सहित विधि पूर्वक गुरु के पास उसका व्याख्यान सुना। इसी प्रकार ग्यारह अंग और बारह उपांग आदि सिद्धान्तों की एक एक प्रत सुवर्ण आदि के अक्षरोंसे लिखा कर गुरु

के मुहसे उनका व्याख्यान सुना । तथा योगशास्त्र और वीतराग स्तवन के मिलाकर बतीस प्रकाश सुवर्ण के अक्षरों से हाथपोथी के लिए लिखाकर सदैव मौन धारण कर एक समय उसका पाठ करने लगा । उस पुस्तकको प्रतिदिन देव पूजाके समय पूजा करने लगा । उसी प्रकार "गुरू कृत सर्व ग्रथ मै अवश्य लिखवाउगा" ऐसा अभिग्रह ले उसने सातसो लेखकों के लिखने बैठाया । एक बार प्रात

काल गुरूको तथा प्रत्येक साधुको विधि पूर्वक वन्दना कर राजा लेखशाला देखने गया । वहा लेखकों के कागज के पानेमे लिखते देख कर राजाने गुरु से उसका कारण पूछा । तब गुरुने कहा कि-"हे चौलुक्य देव ! आजकल ज्ञान भडारमे ताड़ पत्रकी बहुत कमी है इसलिये कागजके पन्नों पर ग्रथ लिखे जाते हैं ।" यह सुन राजा लज्जित हुआ और मनमें विचारने लगा कि, "अहो ! नये ग्रन्थ के रचनेमें गुरुकी अखड शक्ति है और मुझमे उन ग्रथो के लिखवाने की भी शक्ति नहीं है तो फिर मेरा श्रावकपन क्या है ?" यह सोचकर उसने खड़ा होकर कहा कि, "हे गुरू ! उपवासका प्रत्याख्यान कराइये ।" यह सुन कर गुरुने पूछा कि "आज उपवास किस बातका है ?" तब राजाने कहा कि, "अबसे नव ताड़ पत्र पूरे होगे तबहि मैं भोजन करुगा ।" यह सुन कर गुरुने कहा कि-"श्री ताडके वृक्ष यहासे बहुत दूर है इसलिये वे जल्दी कसे मिल सकेंगे ?" इस प्रकार गुरू तथा सामतों आदिने बहुत मान सहित उनको

बहुत कुछ रोका परन्तु उन्होंने तो फिर भी उपवास करही लिया । श्री संघने उनकी स्तुतिकी कि –

अहो जिनागमे भक्तिरहो गुरुषु गौरवम् ।
श्रीकुमारमहीभर्तुरहो निःसीमसाहसम् ॥१॥

भावार्थ –"अहो ! श्रीकुमारपाल राजाकी जिनागम के विषयमें कैसी भक्ति है ? उसीप्रकार अहो ! गुरुके विषयमें उसका बहुमानपन भी कितना उच्च कोटिका है ? और अहो ! उसका साहस भी निःसीम है ।"

फिर श्री कुमारपाल राजाने अपने महलके उपवनमें जाकर वहां लगे हुए [1]खरताड वृक्षोंकी चन्दन, कर्पूर आदिसे पूजाकर मानो स्वयं मंत्र सिद्ध हो वैसे कहने लगे कि –

स्वात्मनीव मते जैने, यदि मे सादरं मनः ।
यूयं भजत सर्वेऽपि, श्रीताडद्रुमतां तदा ॥१॥
कथयित्वेति गांगेयमयं ग्रैवेयकं नृपः ।
कस्याप्येकस्य तालस्य, स्कन्धदेशेऽन्यवीविशत् ॥२॥
तस्थौ च सौधमागत्य धर्मध्यानपरो नृपः ।
श्रीताडद्रुमतां ताश्च निन्ये शासनदेवता ॥३॥

भावार्थ –'हे खरताड के वृक्षो । यदि मेरा मन अपनी आत्मा के समान जैनमत का आदर करने वाला हो

[1] ताड़के वृक्ष दो प्रकारके होते हैं । श्रीताड और खरताड जिनमेंसे श्रीताडके पत्र पुस्तक लिखनेके काममें आते है ।

सो तुम सब श्रीताड़ के वृक्ष हो जाओ। २ ऐसा कहकर राजा ने किसी एक खरताड़ के वृक्ष के स्कंध प्रदेश पर अपना सुवर्णहार रखा २ फिर ऐसा कर राजा महल मे आ धर्मध्यान मे तत्पर हो गया कि जिससे शासन देवताने उन खरताड के वृक्षो को श्रीताड़ के वृक्ष बनादिये ॥३॥

प्रातःकाल उपवन के रक्षकोने आकर यह वृत्तान्त राजा से निवेदन किया। जिसपर राजाने उनको इनाम दे प्रसन्न किया फिर उनके पत्र ले गुरू के, समक्ष रख उन्होने उनसे वन्दनाकी गुरुने जब पूछा कि "ये कहा से आये।" तब राजाने विनय पूर्वक सब सभासदो को आश्चर्य मे डालने वाला यह सब वृतान्त कह सुनाया। फिर हेमचन्द्राचार्य कर्णको अमृत समान लगनेवाला यह वृतान्त सुनकर राजा सभासद सहित उस उपवन मे गये। वहां राजाके कथनानुसार पूर्व मे जैसा नही सुना था वैसा आज अपनी नज़र से देखा। उस समय ब्राह्मण तथा देवबोधा (बौधाचार्य) आदि नगरके लोगो भी खरताड के वृक्षोके भी ताडके वृक्ष हुए देख विस्मय एव आश्चर्यको प्राप्त हो गये। उस समय श्रीहेमचन्द्राचार्यने जैनमतकी प्रशसा करने के लिये इस प्रकार कहा कि —

> अस्त्येवातिशयो महान् भुवननिर्द्धर्मस्य धर्मान्तरा-
> द्यच्छरत्यात्र युगेऽपि ताडतरव' श्रीताडमागताः ।
> श्रीखडस्य न सौरभ यदि भवेदन्यद्रुत पुष्कल
> तद्योगेन तदा कथ सुरभिता दुर्गन्धय' प्राप्नुयुः ॥१॥

भावार्थ —"सर्वज्ञ कथित जैन धर्मका अन्य धर्मोंके मुकाबलेमें महान अतिशय (विश्व प्रसिद्धि) है कि जिसकी शक्तिसे ऐसे कलियुगमें भी खरताडके वृक्ष श्रीताडके वृक्ष हो गये। परन्तु ऐसा होना युक्त है क्योंकि यदि अन्य वृक्षोंसे श्रीखंड वृक्षकी सुगंध अधिक न हो तो वे श्रीखंडके सम्बन्ध से अन्य दुर्गंधवाले वृक्ष भी सुगंधपनको कैसे प्राप्त कर सकें?"

इसप्रकार मुनिने जैन धर्मकी प्रशंसाकर राजासे कहा कि—"हे राजा! यदि इस युगमें तुम्हारे सदृश राजा न हो तो जिनेन्द्र आगमका विस्तार किस प्रकार हो सकता है? त्रिकरण शुद्ध ऐसी श्रुतकी भक्ति तथा उसका बहुमान यहीं ही आज तुमको फल प्राप्ति रूप हो गया है।" इसप्रकार गुरुद्वारा की हुई अपनी प्रशंसाको नम्र मुखसे सुनकर अन्तःकरणकी भक्तिसे अनेक प्रकारसे ज्ञान तथा ज्ञानीका बहुमान कर एक ही उपवास से शासन देवताने जिसकी महिमा की है उससे विशेष अभ्युदय पूर्वक जिसका प्रताप, प्रभाव और वैभव विस्तृत हुआ है उसको उत्तम श्रावकने अपने महोत्सव बनाकर बड़े उत्सवपूर्वक पारणा किया। फिर उस उपवनमें उत्पन्न हुए विशाल और कोमल अनेक ताड़पत्रों पर लेखकों ने गुरु कृत अनेक ग्रंथ लिखे।

"इस प्रकार ज्ञान तथा ज्ञानीका अत्यन्त हर्ष के साथ बहुमान करनेवाले कुमारपाल राजाने लोकोत्तर रूप शुद्ध श्रावकपन प्राप्त किया।"

[इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशप्रासादवृत्तौ सप्तदशस्तंभस्य नवपंचाशदधिकद्विशततमः प्रबंधः ॥२५९॥]

तो तुम सब श्रीताड़ के वृक्ष हो जाओ। २ ऐसा कहकर राजा ने किसी एक खरताड़ के वृक्ष के स्कंध प्रदेश पर अपना सुवर्णहार रखा २ फिर ऐसा कर राजा महल मे आ धर्मध्यान मे तत्पर हो गया कि जिससे शासन देवताने उन खरताड़ के वृक्षो को श्रीताड़ के वृक्ष बनादिये ॥३॥

प्रात काल उपवन के रक्षकोने आकर यह वृत्तान्त राजा से निवेदन किया। जिसपर राजाने उनको इनाम दे प्रसन्न किया फिर उनके पत्र ले गुरू के, समक्ष रख वन्दोने उनसे वन्दनाकी गुरुने जब पूछा कि "ये कहा से आये।" तब राजाने विनय पूर्वक सब सभासदो को आश्चर्य मे डालने वाला वह सब वृतान्त कह सुनाया। फिर हेमचन्द्राचार्य कर्णको अमृत समान लगनेवाला वह वृतान्त सुनकर राजा सभासद सहित उस उपवन मे गये। वहाँ राजाके कथनानुसार पूर्व मे जैसा नही सुना था वैसा आज अपनी नजर से देखा। उस समय ब्राह्मण तथा देवबोधा (बोधाचार्य) आदि नगरके लोगो भी खरताड़ के वृक्षोको भी ताडके वृक्ष हुए देख विस्मय एव आश्चर्यको प्राप्त हो गये। उस समय श्रीहेमचन्द्रायने जनमतकी प्रशसा करने के लिये इस प्रकार कहा कि —

अस्त्येवातिशयो महान् भुवनविद्धर्मस्य धर्मान्तरा–
द्यच्छत्त्यात्र युगेऽपि ताडतरवः श्रीताडमागता' ।
श्रीखडस्य न सौरभ यदि भवेदन्यद्रुत पु'कुल
तद्योगेन तदा कथ सुरभिता दुर्गन्धयः प्राप्नुयु' ॥१॥

भावार्थ –"सर्वज्ञ कथित जैन धर्मका अन्य धर्मोंके मुकाबलेमे महान अतिशय (विश्व प्रसिद्धि) है कि जिसकी शक्तिसे ऐसे कलियुगमें भी खरताडके वृक्ष श्रीताडके वृक्ष हो गये । परन्तु वैसा होना युक्त है क्योंकि यदि अन्य वृक्षोंसे श्रीखंड वृक्षकी सुगंध अधिक न हो तो वे श्रीखंडके सम्बन्ध से अन्य दुर्गंधवाले वृक्ष भी सुगंधपनको कैसे प्राप्त कर सके ?"

इसप्रकार सूरिने जैन धर्मकी प्रशसाकर राजासे कहा कि—"हे राजा ! यदि इस युगमें तुम्हारे सदृश राजा न हो तो जिनेन्द्र आगमका विस्तार किस प्रकार हो सकता है ? त्रिकरण शुद्ध ऐसी श्रुतकी भक्ति तथा उसका बहुमान यहाँ ही आज तुमको फल प्राप्ति रूप हो गया है ।" इसप्रकार गुरुद्वारा की हुई अपनी प्रशसाको नम्र मुखसे सुनकर अन्त करणकी भक्तिसे अनेक प्रकारसे ज्ञान तथा ज्ञानीका बहुमान कर एक ही उपवास से शासन देवताने जिसकी महिमा की है उससे विशेष अभ्युदय पूर्वक जिसका प्रताप, प्रभाव और वैभव विस्तृत हुआ है उसको उत्तम श्रावकने अपने महोर भेजाकर बडे उत्सवपूर्वक पारणा किया । फिर उस उपवनमें उत्पन्न हुए विशाल और कोमल अनेक ताड़पत्रो पर लेखकोने गुरु कृत अनेक ग्रथ लिखे ।

"इस प्रकार ज्ञान तथा ज्ञानीका अत्यन्त हर्ष के साथ बहुमान करनेवाले कुमारपाल राजाने लोकोत्तर रूप शुद्ध श्रावकपन प्राप्त किया ।"

[इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशप्रासादवृत्तौ सप्तदशस्तम्भस्य नवपचाशदधिकद्विशततम प्रबध ॥२५९॥]

व्याख्यान २६०

उपधान वहन नामक चोथा आचार

उपधानतपस्तप्त्वा, आवश्य पठेद् गृही ।
योगैश्चाप्तागमान् साधुरित्याचारचतुर्थक ॥१॥

भावार्थ –" गृहस्थी (श्रावक) उपधान तपकर आवश्यक सूत्र पढे और साधुयोग वहन कर सिद्धान्त पढे । यह चोथा ज्ञानाचार है । "

श्रुत पढनेकी अभिलाषा वाले गृहस्थको उपधान तपकर फिर पढना चाहिये । यहा " उपधान " शब्दका अर्थ किया जाता है कि " उप " अर्थात् समीप " धीयते " अर्थात् धारण किया जाये उसे " उपधान " कहते हैं

साधुओंको आवश्यकादि श्रुत पढनेके लिए आगाढ और अनागाढ ऐसे दो प्रकारके योग सिद्धान्तसे अविरोधरूपसे अपने अपने समाचारीके अनुसार जानना । श्रावकोंको पंच-परमेष्टि नमस्कार आदि सूत्रकी आराधनाके लिए श्री महानिसीथादि सूत्रमें वर्णित छ उपधान प्रसिद्ध है । जैसे साधुको योगवहन किये बिना सिद्धान्तका निषेध है वैसा श्रावकोंको भी नमस्कारादिक सूत्र पढना गिनना अनुचित है । इस बारेमें श्रीमहानिशिथ सूत्रमें कहा गया है कि, "अकाल, अविनय, अबहुमान,

और अनुपधान आदि ज्ञान सबन्धी आठ प्रकारके अनाचारोंमें उपधानका वहन नही करने रूप अनाचार बडे दोषवाला है। जो उपधान वहन तथा योगविधिको नही मानते उनको पूर्वाचार्य सूत्रके वाक्य बतलाते हैं ।

श्री उत्तराध्यन के चोवीस वे अध्ययनमे तथा श्री समवायाग सूत्रमें ३२ वे समवायमें, योगसग्रहमे तीसरे योगमे इस विषयमे स्पष्ट लिखा गया है । इच्छुको वहासे पढ लेना चाहिये ।

यहा पर यदि किसी को यह शका हो कि योग अर्थात् मन, वचन और काया के जो योग हैं उन्हे यहा जानना चाहिये ।" इसके उत्तरमे कहा गया है कि–यदि "योग" शब्दका इस प्रकार मूल अर्थ किया जाये तो फिर "वहन" शब्दका क्या अर्थ करे ? अत योग और वहन इन दोनों शब्दोंका समानाधिकरण अर्थ करना ही योग्य है । श्री स्थानाग सूत्र के तीसरे ठाणेमे कहा है कि–"साधु तीन स्थानक से सम्पन्न होनेसे अनादि अनन्त चार गतिरूप ससारकातारका उल्लघन करते हैं । वह इस प्रकार है कि–१ नियाणा न करनेसे, २ [1]दृष्टिसपन्न पनसे और ३ योग वहन करनेसे । अपितु उसके दशवे ठाणेमें कहा है कि–"जीवको दश स्थानकसे भविष्यमे शुभ तथा भद्रिक परिणामको प्राप्त होते हैं । वह इस प्रकार–१ नियाणा न

१ सम्यक्दृष्टिसे

करनेसे, २ दृष्टि सपन्नसे ३ योगवहन करनेसे, ४ क्षमागुण धारण करनेसे, आदि ।

अपितु सब योगोद्वहन विधिमें रहस्य भूत तीसरे अनु योग द्वारमे कहा गया है कि–मति, श्रुत, अवधि, मन पर्यव और केवल ये पाच प्रकार के ज्ञान हैं । इनमेसे चार ज्ञान स्थापनासे स्थापने योग्य हैं । उन चार ज्ञानोंके उद्देश, समुदेश, और अनुज्ञा नही हैं और श्रुतज्ञान के उद्देश, समुदेश, अनुज्ञा तथा अनुयोग आदि हैं । तथा योगविधि भगवती सूत्र के अन्तिम भागमें कही गई है । उसी प्रकार नदीसूत्रमे श्रुत के उद्देश, और समुदेश के काल बतलाये गये हैं । श्री आचाराग मे कहा है कि–"ग्यारह अगोंमेसे पहले अगमें दो श्रुत स्कध हैं, पच्चीस अध्ययन हैं और पचास उद्देश काल है आदि ।" यहा काल शब्दसे काल-ग्रहण की विधि जाने क्योंकि उत्तराध्ययन के छव्वीसवे अध्ययनमे कहा गया है कि–"चार काल ग्रहण हैं जो योगविधि मे ही योग्य हैं ।"

यहा पर यदि कोई श्रावकोंको उपधान विधिका तथा साधुओंको योग विधिका निषेध कर "सबको श्रुतका अभ्यास सर्वदा करना चाहिये" ऐसा उपदेश करते हैं तो वह योग्य नहीं है क्यों कि इससे तीर्थंकर की आशातना होती है अपितु श्रावक को आचारांग आदि सूत्रों को पढ़ना भी श्रुतमें निषेध किया गया है । इस विषयमे सातवे अगमे कहा गया है कि,–"कामदेव नामक श्रावक श्री महावीर भगवानके

समवसरणमें गया था । उस समय श्रीवीर भगवतने सभा समक्ष उसे रात्रिमें हुए तीन उपसर्ग यह बतलाये । फिर श्रमण भगवान् महावीरने अनेकों साधु और साध्वियोंको सम्बोध कर कहा कि–"हे आर्या ! जब श्रमणोपासक (श्रावक) गृहस्थी घरमें रहते हुए भी देव, मनुष्य और तिर्यंच द्वारा किये उपसर्गोंको सम्यक् प्रकारसे सहन करते है तो फिर द्वादशांगी के अभ्यासी ऐसे निग्रंथको तो देव, मनुष्य और तिर्यच द्वारा किये उपसर्गोंको सम्यक् प्रकारसे सहन करना ही चाहिये ।" यहा सूत्रके आलावेमे साधुओंको ही द्वादशांगीके धारण करने वाले कहा गया है परन्तु श्रावकोंको नही कहा गया है तथा पांचवे अंगमें कहा है कि–"वहां तुंगीया नामक नगरीमें अनेकों श्रावक रहते हैं । वे ऋद्धिवाले हैं, यावत् कोई भी पराभव नहीं पावे वैसे जीव अजीवादि नव तत्वका जानने वाले, निग्रंथ प्रवचन जो जैन सिद्धान्त हैं उनमें निःशंक, (श्रुतके) अर्थको प्राप्त किये हुए और अर्थको ग्रहण करनेवाले, (भोजन समय) घरके द्वार खुले रखनेवाले तथा पर घरमें प्रवेश नहीं करनेवाले हैं ।" आदि । इसप्रकार श्रावकका वर्णन श्री उपासगदशांग, उववाइ तथा स्थानांग आदिसे भी जान लेवे । परन्तु यह सर्व स्थानपर श्रावकोंको "लद्धट्ठा" (श्रुतके अर्थको प्राप्त किये हुए) ऐसा विशेषण कहा गया है, परन्तु किसी सूत्रमें "लद्धसुता"–(सूत्रको प्राप्त) ऐसा नही कहा गया है । अपितु सर्वत्र सिद्धान्तोंका (निर्ग्रंथ वचन) अर्थात् मुनि सम्बन्धि शास्त्र' ऐसा कहा है । परन्तु श्रावक

सम्बन्धि नही कहा है। अपितु श्रावकेके करनेके तीन प्रकार के मनोरथ कहे हैं उनमे श्रावकेके सूत्र पढनेके मनोरथको भी नहीं कहा गया है। इस विषयमे श्री स्थानाग सूत्रके तीसरे ठाणेमें कहा है कि-साधु तीन प्रकारसे महा निर्जरा कर भवका अंत करे। उनमें ऐसा विचार करे कि-"मैं कब न्यून अथवा अधिक श्रुत पढूगा? २ मैं कब एकलविहार प्रतिमाको धारण कर विहार करूगा? और ३ मैं कब अन्त समयके योग्य सलेखन आदरूगा?' श्रावक तीन प्रकारसे महा निर्जरा कर भवका अन्त करे। उसमे ऐसा विचार करे कि-"मैं कब न्यून अथवा अधिक परिग्रह छोड दूगा? २ मैं कब लोचकर आगार (घर) छोड अणगार (साधु) हूगा? और ३ कब मैं फिरसे मरना न पडे ऐसी सलेखना आदर कर शुभ ध्यान ध्याता हुआ, भोजन-पानी का प्रत्याख्यान कर, मृत्युको नही चाहता हुआ पादपोपगम अनशन धारण कर विचरूगा?" इसप्रकार मन, वचन और कायासे जागृत रहे तो श्रावक महा निर्जरा कर सकता है और भवका अन्त ला सकता है।" श्री सुयगडांग सूत्रके नववे अध्ययनमें कहा है कि —

गेहे दीवमपासता, पूरीसादाणिआ नरा।
ते धीरा बधणुमुक्का, नावकखति जिविअ ॥१॥

भावार्थ -गृहस्थावास में दीपक अर्थात् भावश्रुतज्ञान को नही जाननेवाले पुरुप के विषयमे आदेय नाम कर्मवाले

धीर पुरुष संसार व धनसे नहीं छुटे हुए संयम रहित जीवन को नहीं चाहते हैं अर्थात् श्रुतज्ञानसे अभिलाषा संयमको ही ग्रहण करते हैं ।

अपितु योगोंके वहन करने वाले साधुके अतिरिक्त यदि अन्य कोई साधु (योग वहन विना) श्रुतका अभ्यास करे तो उनको तीर्थंकर अदत्तका दोष लगता है । इसके विषयमें भी प्रश्न व्याकरण सूत्रमें कहा है कि—" उन सब तीर्थंकरका सुभाषित दश प्रकारका है वह १ चौदह पूर्वीओंने प्रगटपनसे जाना ✓ महामुनियोंने दिया और ३ देवेन्द्रको तथा नरेन्द्रको उसका अर्थ बतलाया आदि।" इस पाठमें प्रभुने साधुओंको श्रुत दिया । और सब देवताओं तथा मनुष्योंको उसका अर्थ कहा ऐसा प्रगट रूपसे कहा है इससे यह सिद्ध होता है कि श्रावकोंको सूत्र पढ़नेका अधिकार नहीं है । तथा जो श्रुत पढ़नकी इच्छा करते हैं उन्हें प्रश्न व्याकरणमें कहे भेदको जानना चाहिये । इस विषयमें प्रश्न व्याकरणमें "सत्य किस प्रकार बोलना चाहिये ?" ऐसा प्रश्न कर उसके उत्तरमें, "द्रव्यसे सत्य बोलना, पर्यायसे सत्य बोलना " इत्यादि कहे पाठमें आगे ऐसा कहा गया है कि—"नाम, आख्यात, उपसर्ग, निपात, तद्धित, समास, सन्धिपद, हेतु, यौगिक उणादि, क्रियाविधान, धातु, स्वर, विभक्ति और वर्ण—इन सब भेदोंको जो जानता हो उसे ही सत्य वक्ता जानना चाहिये, अन्यको कदापि नहीं ।" अपितु जो विगई खानेमें आसक्त हो वह श्रुत पढ़नेके अयोग्य है (अधिकारि नहीं है)

ईस विषयमे श्री स्थानांग सूत्रमे कहा है कि–"तीन व्यक्ति वाचनाके अयोग्य है १ विनय रहित, २ विगइ काममे लेनेमें आशक्त और ३ क्रोधयुक्त चित्तवाले, तथा तीन व्यक्ति वाचना के योग्य हैं १ विनयी २ विगइमे अनाशक्त और ३ जिन्होंने क्रोधका त्याग कर दिया हो वे। तथा अठाइस अस्वाध्याय काल कहे गये हैं। जिनमे साधुसाध्विके श्रुत पढनेका निषेध किया गया है उस स्थानपर श्रावक का ग्रहण नहो किया गया है। इस विषयमे श्री स्थानांगसूत्रमे कहा गया है कि– "साधुसाध्विको चार महापड्वाके [१]दिन स्वाध्याय करना अकल्पित है। इनमे आषाट मासकी पड्वा, २ कार्तिक मासकी पड्वा, ३ फाग्गुन मासकी पड्वा, ४ आसोज मासकी पड्वा तथा चार सध्या समये स्वाध्याय करना अकल्पनीय है। इनमे १ प्रात काल, २ सायकाल, ३ मद्यान्ह काल और ४ मद्यरात्रि तथा दस प्रकारकी अतरिक्त सज्झाय कही गई है और दस प्रकारकी औदारिक असज्झाय कही गई है इसप्रकार सब मिलाकर २८ प्रकारकी असज्झाय कही गई है आदि सब जानकर साधुओंको हो अस्वाध्यायमे श्रुत नहीं पढना चाहिये ऐसा कहा गया है परन्तु वहा श्रावकका ग्रहण नहीं किया गया है। अपितु श्री निशीथ सूत्रमे श्रावकोको वाचना देनेवाले साधुके लिए प्रायश्चित कहा गया है। वह इसप्रकार कि—"जो साधु अन्य तीर्थीको अथवा गृहस्थ श्रावकको वाचना दे उसे प्रायश्चित लगता है।"

---

१ पड्वा ते वदि १ को समजना।

यहा पर यदि किसी को शका हो कि–" यदि कोई योग वहन कर सूत्र पढे तो इसमें बहुतसा समय व्यतीत हो जाता है और धना नामक अणगारने अल्प समयमे ही ग्यारह अगोंका अभ्यास किया था ऐसा कहा गया है इसलिये योग वहन करके ही श्रुताभ्यास करना चाहिये ।' यह पाठ कल्पित हो जाता है" इसका उत्तर गुरु बतलाते हैं कि–"हे सिद्धान्त के परमार्थ को न जानने वाले ! श्री जिनेश्वरोंने सिद्धान्तमें पाच प्रकार के व्यवहार कहे गये हैं । उनमेंसे जिस कालमें जो व्यवहार प्रवृत होता हो उस समय उसी व्यवहारानुसार वर्ताव करना चाहिये । अन्यथा जिनेश्वरकी आज्ञाका भग होता है इसलिये वे धना मुनि आदि आगम व्यवहारी थे उनकी तुलना वर्तमान समयमें करना अयोग्य है । क्योंकि वर्तमान समयमें श्रुत केवली आदिका अभाव होनेसे जित व्यवहार ही मुख्य है । देखो श्री नेमिनाथ भगवानने गजसुकुमाल को दीक्षा दी उसी दिन एकलविहारी प्रतिमा धारण करने की आज्ञा भी लाभ देख कर दी गई थी परन्तु यह मिसाल सब स्थान पर लागु नही होती । अत "अनुक्रमसे क्रिया करने पर ही गुणों की वृद्धि होती है ।" ऐसा विचार कर अन्यथा युक्तियें करना योग्य नही है ।

अपितु यदि अन्य प्रकारसे कोई शका करे कि–' सूत्र मे श्रावकोंको "सुअपरिग्गहिआ" अर्थात् 'श्रुत को ग्रहण करने वाले' ऐसा कहा गया हैं इसलिये श्रावक को

सुतरां अभ्यास करना योग्य है ।" इसके उत्तरमें गुरु कहते हैं कि-"इस पाठमें श्रुत अर्थात् छ आवश्यक रूप सूत्र जाने । उनको भी उपधान वहन करने पश्चात् पढ़ना योग्य है क्यों कि यह पाठ नन्दिसूत्र का है । उसमें "सुअपरिग्गहिआ इम पाठके पढ़ने के पश्चात् ही तुरन्त" तवोवहाणाइ "(तप उपधान करके) यह पाठ कहा गया है ।" अपितु इस पर फिर शंका की जाती है कि-"तो आवश्यक सूत्र पढनेका निषेध क्यों नहीं किया गया ?" इस पर गुरू कहते हैं कि-इस विषय पर अनुयोग द्वारमें कहा गया है कि-

समणेण सावएण वाऽवस्सकायव्वं हवइ जम्हा ।
अंतो अहनिसिस्सय, तम्हा आवस्सयं नाम ॥२॥

भावार्थ -साधु तथा श्रावकको रात्रि सम्बंधी और दिन सम्बन्धी अवश्य करने लायक हैं इसीसे उनका नाम "आवश्यक" है ।

इस वचनसे आवश्यक सूत्र अवश्य विधियुक्त पढने व बाचने योग्य हैं परन्तु कारण वश छजीवनिका अध्ययन पढनेमेंभी कोई दोष नहीं है ऐसो चूर्णिमें कहा गया है ।

अथवा "जो कोई इस नियत्रणाका पालन न करे और विनय तथा उपधान वहन किये बिना नवकार आदि श्रुत ज्ञान पढे अथवा पढावे, अनुमोदन करे उसे प्रियधर्मी न समझे और ऐसा समझे कि उसने अतीत अनागतमें और वर्तमान कालके सर्व तीर्थंकरोंकी गुरुकी, और

श्रुतकी आशातना की है। तथा वह अनन्त काल पर्यन्त संसारमे परिभ्रमण करेगा और अनेक प्रकारकी यंत्रणायें चिरकाल तक सहन करेगा ऐसा समझना चाहिये। आदि श्री महानिशीथ सूत्रके आलावासे सर्वत्र उपधान की विधि जानले।

वर्तमान समयमे तो द्रव्य, क्षेत्र और कालादिककी अपेक्षा लाभालाभका विचार कर उपधान तप किये बिना ही आवश्यक सूत्र पढ़नेकी आचरणा चलाई जाती पड़ती है। परन्तु यह आचरणा जिनेश्वरकी आज्ञाके बराबर ही है क्यों कि ईसके विषयमें श्री चैत्यवन्दन भाष्यमे कहा गया है कि—

> असढाइण्णणवज्जं, गीअत्थ अवारिअं ति मज्झत्था।
> आयरणावि हु आणत्ति, वयणओ सुबहुमन्नं ति ॥१॥

भावार्थ —अशठ अर्थात् पंडित पुरुषो द्वारा आचरित, अनवद्य-पापरहित और गीतार्थों से नहीं त्यागी हुई ऐसी मध्यस्थ आचरणा भी आणा आज्ञाही है। क्योंकि ये वचन को अत्यन्त बहुमान करने वाले हैं।

परन्तु जिसने उपधान वहन किये बिना प्रथम नवकार आदिका अभ्यास किया हो, उसे अवश्य उसको शक्ति अनु सार तप करके भी उपधान वहन करना चाहिये। यदि गुरुका योग न मिले तो दक्ष श्रावकको स्थापनाचार्य के समीपही उपधानकी सर्व विधि करनी चाहिये। परन्तु उसमे

आलस्य आदि नही करना चाहिये।" ऐसा हीर प्रश्नमें कहा गया है। घरके काम काजमें अत्यन्त व्यग्र रहनेसे अथवा प्रमाद आदिसे जो उपधान वहन नहीं करते, उनका नवकार गिनना, देवदर्शन करना, इर्यावही पड़िक्कमवा, तथा प्रतिक्रमण करना आदि सम्पूर्ण जन्ममें भी कदापि भी शुद्ध (निर्दोष) नहीं होते। और भवान्तरमें भी उनको उस क्रियाका लाभ मिलना असंभवित जान पड़ता है। ईसलिये क्रियाकी शुद्धि को चाहनेवाले श्रावकोंको छ उपधान अवश्य वहन करने चाहिये जिससे सर्व सुखकी प्राप्ति हो सके।

[इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशप्रासादवृत्तौ नवदशस्तंभस्य षष्टयधिकद्विशततम. प्रबंध. ॥२६०॥]

व्याख्यान २६१

योग का बहुमान

योगक्रिया विना साधु' सूत्र पठेन्न पाठयेत् ।
दुष्कर्माणि निलीयन्ते, श्रुतदेवी वरदा सदा ॥१॥

भावार्थ -योग वहन किये विना साधुको न तो सूत्र पढना न पढाना चाहिये क्योकि योग वहन करनेसे दुष्कर्म का नाश हो जाता है और शासन देवता सदैव वरदान देनेवाला होता है ।"

पाटलीपुरमे दो व्योपारी भाई रहते थे । वे एक दिन गुरुके पास धर्मोपदेश सुनने को गये । वहा "धम्मो मगलमुक्किट्ट" आदि देशना सुनकर वैराग्य हो जानेसे उन्होने चरित्र ग्रहण कर लिया । उनमेसे एक भाई क्षयोपशमके वशसे बहुश्रुत हुआ जिसको गुरूने योग्य जानकर सुरि पद दिया । इससे वे पाचसो साधुओं के स्वामी हुए । सब साधुओंको वे वाचना देते थे । वे साधु जब जब उन्हे सन्देह होता बार बार जाकर प्रश्न करते रहते थे जिससे रात्रिमें भी सूरिको निद्रा लेनेका अवकाश न मिलता था । ऐसा होनेसे ज्ञानावरणीय कर्मके उदयके योगसे उनको विचार हुआ कि-"मुझ शास्त्रके पारगतको धिक्कार है कि मैं

एक क्षणभर भी सुख प्राप्त नहीं कर सकता। और मेरे भाई को धन्य है कि जिससे वह निश्चिन्त होकर सो रहता है।' ऐसा विचार कर "मूर्खत्वं हि सुखे ममापि रुचितं" इस श्लोक का स्मरण कर "अब मैं इस वेश का त्याग करूं इस प्रकार मनमे विचार करता रहता है। तदन्तर जब साधु आहार ग्रहण करने आदि कार्य के लिए बाहर गये हुए थे तब सूरिने विचार किया के-" अहो! कई दिन पश्चात् आजकल अवकाश मिला है अत यहांसे निकल कर मेरी मन-वांछित सिद्धि करूं।" ऐसा विचार कर सुरि नगरसे निकल बाहर चल दिये। नगर के बाहर जाते हुए उन्होने कौमुदि के महोत्सवम एक स्तंभ देखा। उस स्तंभ को विविध आभूषणोसे सजा हुआ था और उसके आसपास बैठकर कोई मनुष्य संगीत कर रहे थे। फिर महोत्सव समाप्त होने पर उसी स्तंभको शोभा रहित तथा कौओ आदि पक्षियों एसा हुआ देखा। उसे देख सुरिने विचार किया कि "ईस स्तंभ को जब मनुष्योंने शणगारा था और सब इसको घेरे हुए थे तब इसकी अत्यन्त शोभा थी परन्तु अब इसको कोइ शोभा नही है ईसलिये सचमुच परिवार युक्त की ही सोभा होती है अकेले की शोभा नही होती। तो फिर परिवार से और जैन धर्म से भ्रष्ट हो स्वेच्छा से विचरण करने के अभिलाषी एसे मुज को धिक्कार है।" आदि विचार करके सूरि वापस अपने उपाश्रय को लौट आये और अपने मन से ही उसकी आलोचना (प्रायश्चित) ले।

फिर भी दुष्ट ध्यान करने से उन्होंने ज्ञानावरणीय कर्म बांधा वह निर्मूल नहीं हुआ था। फिर उन्होंने निर्मल चारित्र पाल और आयुष्य के अन्त में मर कर स्वर्ग सिधारे।

स्वर्गसे च्यव कर वे आभीर (रबारी) के पुत्र हुए। अनुक्रमसे जब वह आभीर पुत्र युवा हुआ तो उसके बापने उसका एक कन्याके साथ विवाह कर दिया जिसको एक पुत्री हुई। वह स्वरूपमे अत्यन्त सौन्दर्यवान थी। एक बार कई आभीर गोरस के गाडे भर कर दूसरे गाव बेचनेको निकले। उस समय यह रबारी भी घीका गाडा भर उसकी पुत्रीको गाडी हाकनेके लिये उस पर बैठा कर उनके साथ चल दिया। मार्गमे जाते हुए अन्य गाडेवाले इस कन्याको देखकर उस पर मोहित हो गये। उनके मन व्यग्र होनेसे वे विपरीत मार्गसे इधर उधर रास्ता छोड कर गाडिये चलाने लगे। जिससे उनके गाडे टूट गये। यह वृत्तान्त जानकर उक्त कन्या के बापने विचार किया कि—

"इस संसारकी प्रवृत्तिको धिक्कार है। सब जीव ऐसे असार और मल, मूत्र तथा पुरुषके पात्ररूप स्त्रीके शरीरके विषयमे कामान्ध होकर अपने हित साधनमे भी निरपेक्ष हो मोह को प्राप्त हो जाते हैं।" इस प्रकार अशुच्यादि भावना भाते हुए उसे वैराग्य उत्पन्न हो गया। फिर ग्रामान्तरमे घी बेचकर वह अपने घर लौट आया। वहा उसकी पुत्रीको योग्य स्थानमे परणाकर उसने

ग्रहण की । अनुक्रम से आवश्यक आदि का योगवहन कर उत्तराध्ययनका योग वहन करते हुए उसने तीन अध्ययन पूर्ण किये । फिर पूर्व संचित ज्ञानावरणीकर्मका उदय होनेसे उसमें बहुत प्रयास करने परभी श्री उत्तराध्ययनके चौथे असंख्येय अध्ययनका एक अक्षर भी न पढ़ सका जिससे उसने गुरुसे कहा कि–" यह नहीं आता है " तब गुरुने कहा कि–" हे मुनि ! तुम आंबिल तप करो और "मा रुस मा तुस रोष न करो, तोष न करो ।" इसप्रकार रागद्वेषके निग्रह करनेका रहस्यवाला पद याद करते रहो ।" इस बातको स्वीकार कर 'मुझे दूसरा पाठ पढनेसे छुट्टी मिली' ऐसा मानकर उस मुनिने दूसरा पाठ नही पढा ।" और उस वह ही पद उच्च स्वरसे बोलने लगा फिरभी वह पद कंठस्थ नहीं हुआ और अस्पष्ट (मासतुस, मासतुस) ऐसा उच्चारण होनेसे लोग हसने लगे । उसे देख मुनि क्षमा धारणकर उल्टा उसके कर्मोकी ही निन्दा करने लगा । इसीप्रकार "हे जीव ! तू रोष मत कर और तोष मत कर" इसप्रकार सर्व सिद्धान्तके सारभूत उसी पदको बोलने लगा । लोगोंने उसका नाम मासतुस रक्खा । इसप्रकार आत्मा निन्दा व आचाम्ल तप करते हुए उस मुनिने बारह वर्ष व्यतीत किये । बारह वर्षके अन्तमे उसी पदको उच्चारण करते हुए उस मुनिने शुभ ध्यानद्वारा क्षपकश्रेणि पर आरूढ होकर सकललोकको प्रकाश करने वाले केवल ज्ञानको प्राप्त किया । देवोंने केवलज्ञानकी महिमा की ।

उसके पश्चात पृथ्वी पर विहार करते हुए मासतुस केवलीने अनेकों जीवो को प्रतिबोधित कर अनन्त चतुष्कमय शाश्वत स्थानको (मोक्षको) प्राप्त किया ।

इस प्रकार मासतुस साधुने शुभ भावना द्वारा सब पापोका क्षय कर केवल ज्ञान प्राप्त कर शाश्वत पदको प्राप्त किया ।

[इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशप्रासादवृतौ नवदशस्तम्भस्य एकषष्ठ्यधिकद्विशततम प्रबंध] ॥२६१॥

व्याख्यान २६२

योग वहनकी स्थिरता पर दृष्टान्त

नलिनीगुल्मत एत्याचार्यजीवः सुरोत्तमः ।
योगवाहिस्वशिष्याणा, क्रियास्वविघ्नमातनोत् ॥१॥

भावार्थ –"नलिनीगुल्म नामक विमानमें आचार्यका जीव श्रेष्ठ देवता हुआ था। उसने वहांसे अपने स्थानपेर आ कर योग वहन करते हुए अपने शिष्योंकी क्रियामें निर्विघ्न पन किया (विघ्नका नाश किया)" दृष्टान्त आगे बताया जायगा ।

स्थानागसूत्रमें कहा गया है कि–"श्रमण भगवान महावीरके तीर्थमें सात प्रवचन निन्हव होंगे । उनमें १ (बहुरता) बहुत समयतक कार्यवादी, २ चरम प्रदेशे जीववादी, ३ अव्यक्त वादी, ४ समय सामुच्छेदीक, (समय समय उच्छेद मानने वाले), ५ एक समयमें दो क्रिया माननेवाले, ६ त्रीराशिमें और ७ अवस्थितीक (स्पृष्ट कर्म मानने वाले) ये सात प्रवचन निन्हवके सात धर्मगुरु हैं इनके नाम १ जमाली, २ तीस्यगुप्त ३ आषाढ सूरिके शिष्य, ४ अश्वमित्र मुनि, ५ गंगदत्त मुनि ६ छलुक (रोहगुप्त) और गोष्ठामाहिल । ये सात निन्हव सूत्रमें सूचन मात्रसे कहे हैं । इनमें तीसरा निन्हव योगक्रिया

वहन करने पश्चात् मिथ्यात्वके उदयसे उत्पन्न हुआ है । इस प्रकार अनेक स्थानपर साधुओंके उपधान तपका वर्णन किया हुआ देखा जाता है अहो ! उस योगादिकका जो अपलाप करते हैं उनकी धृष्टता अकलित है क्योंकि वे प्रत्यक्षरूपसे सूत्रके विरुद्ध बोलते हैं और ऐसा होनेसे सूत्रमे कहा अव्यक्तवादीका चरित्र व्यर्थ हो जाता है । वह सम्प्रदायसे आया हुआ चरित्र नीचे अनुसार है —

श्वेताम्बिका नगरीके पास पोलास नामक वनमे आर्य आषाढसूरि गच्छ सहित पधारे । उस गच्छमें आगम पढने वाले कई शिष्य थे । इन्होने आगाढ योग वहन करना निश्चय कर उस सम्बन्धि क्रिया करना आरंभ किया । उसी दिन कुछ उसी प्रकारसे कर्मोके उदयसे आचार्यके हृदयमे शुलकी व्याधि उत्पन्न हो गई और वे कालकर सौधर्म देवलोकमे नलिनीगुल्म विमानमे देवरूपसे उत्पन्न हुए । यह वृत्तान्त सम्पूर्ण गच्छमे किसीको मालुम नहीं हुआ । इधर अवधिज्ञानके उपयोगसे उन साधुओंको आगाढ योगमे तत्पर जानकर उनपर दया आनेसे उस देवने वहा आकर उसी शरीरमे प्रवेश किया । फिर उसने उस साधुओंको उठाकर कहा कि-" हे साधुओं ! वैरात्रिककाल ग्रहण करो ।" उत्तराध्ययनके छतीसवे अध्ययनमे कालग्रहण और योगविधि योग्य अनुष्ठान बतलाया हुआ है कि —

पोरसीए चउब्भाए, वंदित्ता तओ गुरु ।
पडिक्कमित्ता कालस्स, सेज्ज तु पडिलेहए ॥१॥

भावार्थ –"रात्रिके प्रथम पहरके चोथे भागमे गुरूको वादणा देकर काल प्रतिक्रमणवालेको शय्या जो कालग्रहणकी भूमि है उसका पडिलेहण कर लेना चाहिये।" इस गाथामें वाधात्कि कालग्रहण जाने। और

तम्मेव य नरकत्ते, गयणचौभागसावसेम मि।
वेरत्तिजपि काल, पडिलेहि मुणि वुज्झा ॥१॥

भावार्थ –"वाधाविक कालग्रहणके समय जो नक्षत्र गगनके आठवे भागमें देखा हो उसी नक्षत्रको गगनगति करते गगनका चोथा भाग जब शेष रहे तब वैरात्रिक कालग्रहण भूमिका पडिलेहनार सुनिको कर लेना चाहिये।" इस गाथामे वैरात्रिक कालग्रहण कहा गया है।

इसप्रकार सूत्रके अनुसार देवके वचनसे साधुओंने क्रिया की। इसीप्रकार श्रुतके उद्देश, समुद्देश, और अनुज्ञा भी उनके पास की। इसप्रकार दिव्यप्रभावसे उस देवताने उन साधुओंके कालभग आदिका निवारण कर शीघ्रतया उनके योगको पूर्ण किया। फिर उस शरीरको छोड़कर स्वर्गमें जाते समय उस देवताने कहा कि,–"हे पूज्य साधुओ। क्षमा करना। मुझ असयमीने तुमको वदनादिक कराया है। तुम सयमी हो और मैं तो अमुक दिन कालकर स्वर्गमे चला गया था पर तु तुम्हारे पर दया आनेसे यहा आकर तुम्हारे योग पूर्ण कराये हैं।" ऐसा कह उनको क्षमाकर वह देवता स्वर्गमें चला गया। फिर उन साधुओंने उसके शरीरको

परठवा कर विचार किया कि,—अहो! इस अविरति देवको हमने बहुत समय तक वन्दना की है इसलिये इसप्रकार अन्य स्थान पर भी शका रखनी चाहिये। क्योंकि कौन सयमी है और कौन असयमी देवता है इसे कौन जानता है? इसलिये किसीको भी वन्दना नहीं करना यह ही श्रेय रास्ता जान पड़ता है। अन्यथा असयमीको वन्दना और *मृषावादका दोष लगता है।"* इसप्रकारके भारी कर्मके उदयसे उन मिथ्या परिणामकी बुद्धिवाले साधुओंने अव्यक्तवादको अगीकार कर परस्पर वन्दन क्रियाको छोड दिया। अन्य स्थविर साधुओंने उन्हें शिक्षा दी कि–'यदि तुमको अन्य सब पर सन्देह है तो जिसने तुमको कहा कि "मै देव हू" उस पर तुमको यह सन्देह क्यो नहीं हुआ कि वह देव है या कि अदेव?"

वादी—उसने स्वय ही कहा था कि "मै देव हू" तथा उसका रुप भी हमने प्रत्यक्ष देखा था इससे सन्देह नहीं रहा।

प्रतिवादी—यदि ऐसा है तो जो ऐसा कहते हैं कि "हम साधु है" तथा साधुका रुप भी तुम प्रत्यक्ष देखते हो तो फिर उनके सम्बन्धमें साधुपनका क्या सन्देह है कि जिससे तुम परस्पर वन्दना नही करते? अपितु "साधुके बनिस्बत देवका वाक्य अधिक सत्य होता है।" ऐसा भी तुमको नहीं समझना चाहिये। क्योंकि देवतो क्रीड़ा आदिके कारणसे भी असत्य बोले जाते हैं परन्तु साधु तो वसे

असत्यसे भी निरमेले होनेसे असत्य नही बोलते हैं। अपितु जो प्रत्यक्ष यतिके विषयमें भी आपको शका है तो फिर परोक्ष ऐसे जीवाजीवादि पदार्थोके विषयमे तो बहुत ही शका होनी चाहिये। अपितु यतिवेश वाले मनुष्यमें साधुपन है या नहीं ऐसा जो तुमको सन्देह होता है तो प्रतिमाके विषयमे निश्चयसे ही जिनपन नही है फिर उसकी वन्दना क्यों की जाये और साधुकी वन्दनाका निषेध कैसे किया जाये?

वादी—असयमी देवताद्वारा प्रवेश किये यतिवेषको वान्नेसे उसमे स्थित असयमरुप पापकी अनुमति हो जाती है तो वह दोष प्रतिमामें ता नही आ सकता।

प्रतिवादि—देवताओं द्वारा अधिष्ठितकी प्रतिमाके विषयमें भी अनुमतिरुप दोष रहता ही है।

वादी—शुद्ध अध्यवसाय वाला पुरुष जिनेश्वरकी बुद्धिसे प्रतिमाको वन्दन करता है इसलिये यह दोष प्रतिमाके विषयमें नही लगता।

प्रतिवादि—यदि ऐसा हो तो शुद्ध अध्यवसाय वालेको यतिबुद्धिसे यतिरूपको वन्दना करनेमें क्या दोष है कि जिससे तुम परस्पर वन्दना नही करते?

वादी—तब तो विशुद्ध परिणामवाला लिंगमात्रको धारण करनेवाले पार्श्वस्थादिकको भी यतिबुद्धिसे नमस्कार करे तो उसको दोष नही लगता ऐसा समझना चाहिये।

प्रतिवादी—तेरा कहना अयुक्त है क्योंकि पार्श्वस्थादिकमें सम्यक् निश्चयपनका अभाव है। आहारविहार आदि द्वारा उनको निश्चयलिंगकी प्राप्ति नहीं देखी जाती इसलिये यदि प्रत्यक्ष दोषवाले पार्श्वस्थादिककी वन्दना की जाये तो साव द्यानुज्ञाका दोष लगता है। कहा भी है कि —

जह वेलवगलिंग, जाणंतस्स नमउ हवइ दोसो।

निद्धंधस वि नाऊण, वंदमाणे धुवो दोसो ॥१॥

भावार्थ —" जैसे भांड-समाय विदूषकद्वारा किये वेशको जानता हुआ भी उसे वन्दना करे तो उसे दोष लगता है उसीप्रकार जिसमें निर्ध्वंसपन वर्तता है ऐसे वेषधारी मुनिको जानते हुए यदि वन्दना की जाती है तो अवश्य दोष लगता है।

अपितु यदि तुम प्रतिमाको वन्दना न करो तो तुम्हारे सर्वत्र शंका ही रहती है। इससे आहार, उपधि, शय्या भी देवताके विकुर्वित होंगे या नहीं इसका निश्चय न होनेसे उन आहारादिकको भी तुम्हें ग्रहण न करना चाहिये। इस प्रकार अतिशंका रखनेसे समस्त व्यवहारका उच्छेद हो जायगा। क्योंकि निश्चयकारी ज्ञानके बिना यह कौन जान सकता है? कि यह भक्त है या कीडा है? वस्त्रादिकमें माणिक्य है कि सर्प है? आदि सब स्थानोंमें भ्रान्ति ही रहेगी और खान पान आदि कुछ भी काममें नहीं लाया जा सकेगा अथवा जैसे आर्य आषाढ देवद्वारा धारण किया यतिरूप तुमने देखा है वैसे अन्य कितने देवोंको यतिरूपमें तुमने पूर्वमें देखा था कि जिससे इस एक ही दृष्टान्तसे तुम सर्वत्र शंकाशील

हो गये हो ? किसी समय किसी आश्चर्यादिकके कारणसे किसी स्थानपर किसी देवादिकमें इसप्रकार देखकर सर्व स्थानपर ऐसी शका करना योग्य नही है इसलिये व्यवहार-नयका आश्रय लेकर तुम्हे एक दूसरेको वन्दना करना युक्त है। क्योंकि छद्मस्थको सर्व प्रवृत्ति व्यवहारसे ही करनी पडती है। व्यवहारका उच्छेद करनेसे तीर्थका उच्छेदका प्रसग आ उपस्थित होता है। सर्वज्ञ भी व्यवहार मार्गका लोप नहीं करते। इस विषय पर महाभाष्यमें श्री जिन भद्रगणिने कहा है कि —

सववहारो वि बली, जमसुद्ध पि गहिय सुयविहिए।
कोवेइ न सव्वण्णु, वदइय कयाई छउमत्थ[1] ॥१॥

भावार्थ –" श्रुत व्यवहार भी बलवान् है इससे श्रुत विधि प्रमाणसे छद्मस्थ द्वारा ग्रहण किये शुद्ध भी केवलीकी बुद्धिसे अशुद्ध आहारको भी सर्वज्ञ दूषित नहीं करते (उपयोगमे लेते है) और उसके विषयमें कुछ नही कहते अर्थात् उसको प्रमाण करते हैं।"

आदि युक्तियों द्वारा उस स्थविर साधुने उनको सम झाया फिर भी उन्होने उनका आग्रह नहीं छोडा तब उन स्थविर साधुओंने उ हें [2]कायोत्सर्गपूर्वक गच्छके बाहरकर दिये।

वे फिरते फिरते बादमे राजगृह नगरीमे पहुंचे जहा मौर्यवशी बलभद्र नामक राजा राज्य करता था। वह शुद्ध श्रावक था। उसने सुना कि–" अव्यक्तवादी निन्हवो यहा

1 यह पद अशुद्ध जान पडता है। २ कासिरावद्वा पूर्वक

आये हुए हैं और गुणशील नामक वनमें ठहरे हुए हैं"
फिर यह श्रावक राजा उन्हें बोध करनेके लिए अपने सुभटों
से उनको पकड़वा कर अपने पास बुलवाया और कृत्रिम
कोप दिखा कर उसके सुभटोंको हुक्म दिया कि-"इन सब
को तेलकी उबलती कढ़ाईमें डालो और हाथी के पैरोंमें
बांध कर इनका मर्दन करो।" यह हुक्म सुन कर वे
सुभट हाथी तथा कड़ाइये लाये। यह देख भयभीत
साधुओंने राजासे कहा कि-"हे राजन्! तुम श्रावक
होते हुए यह साधुओंको क्यों कष्ट दिया जा रहा है?"
राजाने कहा कि, "तुम चोर, लुटेरे हो या साधु हो यह
कौन जानता है?" उन्होंने कहा कि, "हे राजन्! हम
साधु ही हैं अन्य कोई नहीं है।" तब राजाने कहा कि-
"तुम्हारे मतानुसार तो सब वस्तु अव्यक्त (संदेह युक्त) है
इससे तुम सत्य साधु हो यह कौन जानता है? तथा
तुम भी कैसे कह सकते हो? आपके तुम्हारे मतानुसार
मैं श्रावक हूं या अन्य कोई हूं यह भी शंकित है तो
फिर तुम मुझे श्रावक कैसे कहते हो? ऐसा कहनेसे परस्पर
वन्दना नहीं करने वाले ऐसे तुम्हारे अव्यक्तवादकी हानिका
प्रसंग आता है तथापि अब भी यदि तुम व्यवहारनयको
अंगीकार करलो तो मैं तुमको उत्तम श्रमण निर्ग्रथ के रूप
में मान सकता हूं (अंगीकार कर सकता हूँ।" यह सुन
कर वे साधु बड़े लज्जित हुए और राजाके वचनसे दृढ़
बोधित हुए। फिर उन्होंने राजासे कहा कि-"श्रीमान् जिने-
श्वर कथित क्रिया युक्त और ज्येष्ठ लघुके व्यवहारसे परस्पर

वन्दना करनेवाले हम श्रमण निग्रंथ हैं।" इस प्रकार बारबार कहने लगे। अपितु उन्होंने कहा कि-"हे साधुराज! हम चिरकालसे भ्रमितको आज आपने सन्मार्ग दिखलाया।" यह सुन कर राजाने नम्रतासे कहा कि—तुमको प्रतिबोध करनेके लिये जो मैंने अयोग्य कार्य किया है उसके लिए आप सब क्षमा करना।" ऐसा कह कर उस श्रेष्ठ राजाने सर्व साधुओंसे वन्दना की। वे साधुभी फिरसे बोधित होकर पूर्ववत् पृथ्वी पर विहार करने लगे।

महावीर स्वामी के निर्वाण पश्चात् दोसो चोदह वर्ष मे उत्पन्न हुए तीसरे निन्हवकी यह कथा कही है।

सूत्रके योगवहन की क्रियामे अपने शिष्योंको विघ्न न हो ऐसा विचार कर श्रुतकी भक्तिमें आशक्त आषाढ देवताने स्वर्गसे आकर उनकी क्रिया पूर्ण कराई।

"हे तपस्वियो! इस प्रकार उपधान नामक शुभाचारका वर्णन सुन कर आगम के अनुसार उस उपधान विधिमें आदर कीजिये।"

[इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशप्रासादवृत्तौ नवदशस्तंभस्य द्विषष्ट्यधिकद्विशततमः प्रबंध। ॥२६२॥]

व्याख्यान २६३

अनिन्हव नामक पाचवा आचार

श्रुताक्षरप्रदातृणा, गुरुणा च श्रुतादीनाम्।
अनिन्हवोऽयमाचार, पचम श्रीजिनैः स्तुत॥१॥

भावार्थ —"श्रुतके अक्षरका ज्ञान कराने वाले गुरुओंकी और श्रुतादिककी कभी निंदा नही करनी चाहिये। पाचवा आचार श्री जिनेश्वरोंने फरमाया है।"

जिसके पास कुछ भी अध्ययन किया हो वह गुरु चाहे अप्रसिद्ध हो या जाति तथा श्रुतादिकसे हीन हो फिर भी उसे गुरुके समान ही मानना चाहिये व अपना गौरव कदापि नही करना चाहिये । पवकनामक शिष्यके सदृश गुरुका बहुमान करना चाहिये । उनके दोष ग्रहण नहीं करने चाहिये । निरन्तर गुरुसे शकाता रहना चाहिये (भय रखते रहना चाहिये), निःशकपन धारण नही करना चाहिये ।

श्री आम राजाने मातगी स्त्रीका स्पर्श किया और वह हाल जब गुरुको मालूम हुआ तो राजाने मनमें विचार किया कि-'अहा ! मेरा अयोग्य कृत्य गुरुने जान लिया है अब मै गुरुको मुह कैसे दिखाऊगा ?' फिर उस पापकी शुद्धि करनेक लिए राजा तप्त लोहकी मूर्तिको स्पर्श करनेके लिए भी तैयार हो गया इस बातका पता चलने पर गुरुने उसे श्लोक भेजकर बोधित किया । यह दृष्टान्त विस्तारपूर्वक पहले लिखा जा चुका है ।

अपितु कुमारपाल राजाने मुझे घेवर खाते हुए मास भक्षणका स्वाद याद किया था । फिर तुरन्त ही ज्ञान आनेसे उन्होने विचार किया कि-" अहो ! मैंने यह अयोग्य विचारा है यदि इस बातका पता गुरुको लग जायगा तो मेरा जीवन धिक्कारका पात्र हो जायगा ।" ऐसा विचारकर राजा उसके दांत उखाड फैंकने को तत्पर हो गया तब उसके श्रावक प्रधानोंने उसे उपदेश देकर ऐसा करनेसे रोका । फिर उसने गुरुसे कराये प्रायश्चितमे घेवरके रग और आकारका

एक हजार और चउदह स्तभवाला नवीन प्रासाद कराया। अन्य धर्ममें भी कहा है कि —

> एकाक्षरप्रदातार, यो गुरु नाभिमन्यते ।
> श्वानयोनिशत गत्वा, चडालेष्वभिजायते ॥१॥

भावार्थ —"जो पुरुष एक अक्षर भी सिखाने वाले (पढानेवाले) गुरूको गुरूके रूपमे नही मानता वह सो बार कुत्तेकी योनिमें जन्मकर चडालके योनिमे उत्पन्न होता है।"

इसीप्रकार श्रुतादिककी भी निन्दा नही करना चाहिये जिसके पास जितना श्रुत पढा हो उतना ही कहना परतु उससे न्यूनाधिक नही कहना चाहिये। क्योंकि ऐसा करनेसे मृषावाद, मनका कालुष्य और ज्ञानातिचार आदि दोष प्राप्त हो जाते हैं। गुरू और श्रुतकी निन्दा करनेसे रोहगुप्त साधुके समान सब गुणोंकी हानि हो जाति है।

रोहगुप्त की कथा

अन्तरिकापुरीके उपवनमें श्रीगुप्त आचार्य गच्छसहित रहे थे। उस पुरीमे बलश्री नामक राजा राज्य करता था। आचार्यका रोहगुप्त नामक एक शिष्य दूसरे गावमे रहा था। वह गुरूको वादनेके लिये उस पुरिमे आया। वहा कोई तपस्वी लोहके पाटसे अपना पेट बाध कर जाबुनके वृक्षकी शाखा हाथमे लेकर नगरीमे घुमता था। उसे देखकर लोगोंने पूछा कि, "यह क्या है" तब उस तपस्वीने कहा कि, "मेरा उदर बहुत ज्ञानसे भर गया है ईसलिये उसके फट जानेके भयसे उसे लोहेके पटेसे बाध दिया है और सम्पूर्ण

द्वीपमे मेरा प्रतिवादी कोई नही है ऐसा जाननेके लिए
जम्बूवृक्षकी डाली हाथमें रखी है।" फिर उस
रीने, "सम्पूर्ण नगरी शून्य है। सब परप्रवादी हैं
न्तु मेरा प्रतिवादी कोई नही है" ऐसी घोषणा कर
पूर्ण नगरीमें जयघोष किया। उस घोषको नगरीमे प्रवेश
ते हुए रोहगुप्तने देखा और घोषणा सुनि। इस पर
मैं इसके साथ वाद करुगा" ऐसा कह कर रोहगुप्त
उस पडहका निवारण किया फिर उसने गुरूके पास जा
न्ना पूर्वक वाद करनेकी शतका वर्णन किया। जिसे
र कर गुरुने कहा कि, "तूने यह काम ठिक नहीं किया
योंकि वह अनेको विद्यासे भरपूर है इसलिये यदि वादमें
इ पराभव पा जायेगा तो मन्त्रविद्यासे प्रतिवादी को उपद्रव
रेगा। वह विद्या इस प्रकार है कि –

वृश्चिकान् पन्नगानाखून्, मृगशूकरवायसान।
शकुनिकाश्च कुरुते, स हि विद्याभिरुद्धतान् ॥१॥

भावार्थ –" वह तपस्वी विद्याद्वारा अति उद्भटवींछि,
र्प, उन्दर, मृग, सुअर, कौआ और शकुनि आदिको विकुर्वित
रता है।"

उसे सुन रोहगुप्तने कहा कि–" ऐसा होनेपर भी अब
ागकर कहा जाये ? उस पटहको तो मैंने निवारणकर दिया
अब तो जो कुछ होना होगा सो होगा" गुरुने कहा
कि–" यदि ऐसा ही निश्चय हो तो मात्र पाठ करनेसे ही
सिद्ध हो ऐसी और उसकी विद्याको नाश करनेवाली इन
ात विद्यायें ओंकोग्रहण कर।

एक हजार और चउद्दह स्तभवाला नवीन प्रासाद कराया। अन्य ग्रन्थमें भी कहा है कि —

एकाक्षरप्रदातार, यो गुरु नाभिमन्यते ।
श्वानयोनिशत गत्वा, चडालेष्वभिजायते ॥१॥

भावार्थ —"जो पुरुष एक अक्षर भी सिखाने वाले (पढानेवाले) गुरुको गुरुके रूपमे नही मानता वह सो वार कुत्तेकी योनिमे जन्मकर चडालके योनिमें उत्पन्न होता है।"

इसीप्रकार श्रुतादिककी भी निन्दा नही करना चाहिये जिसके पास जितना श्रुत पढा हो उतना ही कहना परन्तु उससे न्यूनाधिक नही कहना चाहिये। क्योंकि ऐसा करनेसे मृषावाद, मनका कालुष्य और ज्ञानातिचार आदि दोष प्राप्त हो जाते हैं। गुरु और श्रुतकी निन्दा करनेसे रोहगुप्त साधुके समान सब गुणोंकी हानि हो जाति है।

रोहगुप्त की कथा

अन्तरिकापुरीके उपवनमें श्रीगुप्त आचार्य गच्छसहित रहे थे। उस पुरीमे बलश्री नामक राजा राज्य करता था। आचार्यका रोहगुप्त नामक एक शिष्य दूसरे गावमे रहा था। वह गुरुको वान्दनेके लिये उस पुरिमे आया। वहा कोई तपस्वी लोहके पाटसे अपना पेट बाध कर जाबुनके वृक्षकी शाखा हाथमे लेकर नगरीमे घुमता था। उसे देखकर लोगोंने पूछा कि, "यह क्या है" तब उस तपस्वीने कहा कि, "मेरा उदर बहुत ज्ञानसे भर गया है ईसलिये उसके फट जानेके भयसे उसे लोहेके पटेसे बाध दिया है और सम्पूर्ण

भी छोड़ कर उसको असत्य साबित करनेके लिए कहा कि, "तूने जो हेतु बतलाया है व दूसरी प्रकारसे देखा जाता है इसलिये वह असिद्ध है दुनियामे जीव, अजीव और नोजीव ऐसी तीन राशी दखनेमे आती है जिसमे नारकी तिर्यंच आदि जीव, परमाणु घट आदि अजीव और गरोळी की काटी हुई पूछ आदि नोजीव है । ईसलिये जीव, प्रकार दिखाई दती है इसलिये अधम, मद्यम और उत्तम राशि के सदृश आदि अनेक युक्तियों द्वारा उसके प्रश्नोंका उत्तर देकर जीव अजीव और नोजीव ये तीन राशिने सिद्ध होती है और इस प्रकार उस तपस्विको उसने पराजित किया । इसलिये उस साधुने क्रोधित होकर वृश्चिक विद्याद्वारा रोहगुप्तका विनाश करनेके लिए वींछी छोड उन वींछियोंका नाश करनेके लिये रोह गुप्तने मयूर विद्या द्वारा मोर छोड़ा जिसने वींछियोंको मार डाला । अब तपस्वीने सर्प छोडा उस पर रोहगुप्तने नोलिए छोडे । इसप्रकार चूहे पर विलाड़ा, मृग पर वाघ, सुअर पर सिंह, और कौए पर घुवड छोडा । जिससे अत्यन्त क्रोधित होकर तपस्वीने अत्यन्त दुष्ट समलिये छोडी, जिसपर साधुने बाज छोडकर उन्हें हटा दिया । उसे देख तपस्वीने अति क्रोधसे रासभी[१] छोडी । उसे आती देखकर साधु अपने शरीरके चारों ओर ओघा घुमाना आरंभ किया और उससे उस रासभीको मारा जिससे प्रभावरहित होकर वह रासभी वापस पर मूत्र, पुरीष कर भाग गई । यह सब देखकर सभापति राजाने तथा सभाके

---

१ गधेडी

केकिनो नकुला ओतु-व्याघ्रसिंहाश्च कौशिकाः ।
श्येनाश्च याभिर्जायन्ते, तद्विद्याबाधकाः क्रमात् ॥१॥

भावार्थ –" इन सात विद्याओंसे अनुक्रमसे उसकी विद्याको नष्ट करनेवाले मोर, नेवला, बिल्ली, वाघ, सिंह, घुवड और बाज पक्षी उत्पन्न होते हैं ।"

फिर उन सात विद्याओंको देकर तदुपरान्त गुरुने ओघामन्त्र कर उसे दिया और कहा कि-" यदि कदाच क्षुद्र विद्यासे वह तपस्वी अन्य कोई भी उपद्रव करे तो उसके निवारणके लिए तू यह ओघा तेरे सिरपर घुमा लेना ऐसा करने पर स्वयं इन्द्र भी तुझे न जीत सकेगा ।" फिर वह रोहगुप्त राजसभामें गया । वहां जाकर उसने कहा कि "इस भिक्षुक तपस्वीमें क्या ज्ञान है इसलिये प्रथम उसके ही उसकी इच्छानुसार पूर्व पक्ष करना चाहिये जिसका मैं उत्तर दूंगा ।" यह सुनकर तपस्वीने विचारा कि-"ये साधु बहुत निपुण होते हैं इसलिये इन्हींके संमत पक्षका आश्रय लेकर मुझे बोलना चाहिये कि जिससे वे उसका निराकरण कर ही नहीं सकते ।" ऐसा विचारकर उसने कहा कि-"इस दुनियामें जीव और अजीव ऐसी दो ही राशी हैं ऐसा ही देखा जाता है इसलिये धर्म और अधर्म, द्रव्य और भाव आदिकी दो दो राशिके समान[१] ।" यह सुनकर रोहगुप्तने वादिका पराभव करनेके लिए अपने संमत पक्षके

१ यहां वादी तीन वाक्य बोलते हैं । उनमें प्रथम वाक्य प... दूसरा हेतु और तीसरा दृष्टान्त कहलाता है । ये तीनों मिलकर अ... मान प्रमाण हुआ है । इसी प्रकार सर्वत्र जानना चाहिये ।

पी छोड़ कर उसको असत्य साबित करनेके लिए कहा कि, "तूने जो हेतु बतलाया है व दूसरी प्रकारसे देखा जाता है इसलिये वह असिद्ध है दुनियामें जीव, अजीव और नोजीव ऐसी तीन राशी देखनेमें आती है जिसमें नारकी तिर्यंच आदि जीव, परमाणु घट आदि अजीव और गरोली की कटी हुई पूछ आदि नोजीव है । इसलिये जीव, प्रकार दिखाई देता है इसलिये अधम, मध्यम और उत्तम राशि के सदश आदि अनेक युक्तियों द्वारा उसके प्रश्नोंका उत्तर देकर जीव अजीव और नोजीव ये तीन राशिये सिद्ध होती है और इस प्रकार उस तपस्वीको उसने पराजित किया । इसलिये उस साधुने क्रोधित होकर वृश्चिक विद्याद्वारा रोहगुप्तका विनाश करनेके लिए वीछी छोड़ उन वीछियोंका नाश करनेके लिये रोह गुप्तने मयूर विद्या द्वारा मोर छोड़ा जिसने वीछियोंको मार डाला । तब तपस्वीने सर्प छोड़ा उस पर रोहगुप्तने नोलिए छोडे । इसप्रकार चूहे पर बिलाड़ा, मृग पर वाघ, सुअर पर सिंह, और कौए पर घुग्घू छोड़ा । जिससे अत्यन्त क्रोधित होकर तपस्वीने अत्यन्त दुष्ट समलिये छोड़ी, जिसपर साधुने वाज छोड़कर उन्हें हटा दिया । उसे देख तपस्वीने अति क्रोधसे [1]रासभी छोड़ी । उसे आती देखकर साधु अपने शरीरके चारों ओर ओघा घुमाना आरंभ किया और उससे उस रासभीको मारा जिससे प्रभावरहित होकर वह रासभी तापस पर मूत्र, पुरीष कर भग गई। यह सब देखकर सभापति राजाने सभाके

१ गधेरी

समग्र लोगोंने तपस्वीकी निन्दा कर उसे नगरसे बाहर निकाल दिया । रोहगुप्त मुनि विजय प्राप्त कर गुरूके पास आये और सब हाल कह सुनाया । जिसे सुन गुरूने कहा कि— "तूने उस तपस्वीको जीत लिया सो बहुत अच्छा किया परन्तु सभासे उठकर आते समय तूने ऐसा क्यों नहीं कहा कि–" मात्र वादीको जीतनेके लिये ही मैंने तीन राशिकी स्थापना की है परन्तु वास्तविक रीतिसे तो जीव और अजीव ऐसो दोही राशि हैं । ईसलिये अब भी सभामें जाकर सच बात कह आ ।" इस प्रकार गुरूने अनेको बार अनेक प्रकारसे कहा तब उस रोहगुप्तने जवाब दिया कि, "हे सूरि ! मेरा सिद्धान्त भी सत्य है यदि कदाच नोजीव नामक तीसरी राशि मानो पर यदि कोई दोष आता हो तब वह सिद्धान्त असत्य है परन्तु इसमें कोई दोष नहीं है क्यों कि गरोलीकी पूछ आदि जीव के दशभाग को नोजीव कहा जाय तो उसमें क्या दोष है ? मैं तो इसमें किसी भी प्रकार का दोष नहीं देखता हूँ । सूत्रमे धर्मास्तिकाय आदि के दस भाग बतलाये हैं उनमे दस धर्मास्तिकायके प्रदेशको पृथक् वस्तुपन कहा ही है अन्यथा दस प्रकार घटित नहीं हो सकते हैं इसीप्रकार गरोलीकी पूछडी और छेदित मनुष्यके हाथ आदि अवयव के छेदित होनेसे जीवसे भिन्न हैं और वे अवयव स्फुरायमान होते हैं इसलिये अजीव से भी भिन्न है इसलिये यह सिद्ध होता है कि वे अवयव भिन्न ही वस्तु हैं ।" यह सब सुनकर गुरु उसे साथ लेकर

राजसभामें गये । वहां सत्य मार्गकी प्ररूपणा कर शिष्य द्वारा किये प्रश्नोंका आगम के अनुसार इस प्रकार निवारण किया कि-"सूत्रमें जीव और अजीव ऐसी दोही राशिका कथन है अपितु धर्मास्तिकाय के प्रदेश वे धर्मास्तिकायादिक से कोई भिन्न नहीं हैं परन्तु विवक्षा मात्रसेही उनके भिन्न वस्तुपनकी कल्पना की गई है । इसी प्रकार पूछादिक भी गरोली आदि जीवोंसे अभिन्न हैं । वे जीव सम्बन्धी होनेसे जीव ही हैं, नो जीव नहीं हैं । इसके विषयमें श्री भगवती सूत्रमें कहा गया है कि-" हे भगवन् ! कछुआ या कछुएकी श्रेणी, गरोली या गरोलीकी श्रेणी, वृषभ या वृषभकी श्रेणी, मनुष्य या मनुष्यकी श्रेणी, पाडा या पाडेकी श्रेणी, इनके दो खंड, तीन खंड यावत् संख्याता खंड छेदकर किये जाये तो उनके अंतरामें जीव प्रदेश प्रगट (स्फुट) पनसे है ? प्रभु कहते हैं कि-हे गौतम ! प्रगटपनसे हैं । फिर गौतम स्वामी पूछते हैं कि-हे भगवंत ! कोई पुरुष उस अंतरामें रहे जीव प्रदेशको हाथ द्वारा, पग द्वारा, काष्ट द्वारा, तीक्ष्ण शस्त्र द्वारा छेदता हुआ अथवा अग्निकाय द्वारा जलाता हुआ उनको कोइ अल्पसबाधा या विशेष बाधा उपजा सकता है ? प्रभु कहते हैं कि-हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है, निश्चय उसको आक्रमण नहीं कर सकता है"

यहां शिष्य प्रश्न करते हैं कि-"गरोलीका देह और पूछ के बीचमें भी जीव प्रदेश है ऐसा सूत्र में कहा गया है तो वे बीचमें रहे जीव प्रदेश क्यों नहीं जान पड़ते

गुरूने उत्तर दिया कि–"जीव प्रदेश अरुपी होनेसे दिखाई नही देते जैसे सूर्यके किरण पृथ्वी, भींत या किसी पात्र आदि मूर्तिमान् वस्तु पर पडे तो वे दिखाई देते हैं परन्तु वे यदि केवल आकाशमे फैला हुआ हो तो वे ग्रहण नही किये जा सकते इसी प्रकार बीचमे स्थित जीव प्रदेश भी दिखाई नहीं देते। बोलना, श्वासोश्वास लेना, दौडना, विफरना, स्फुरित होना आदि क्रियाये देहमे ही होती हैं परन्तु बीचमे नही होती अत सूक्ष्म कार्मण देहसे युक्त होने पर भी वे जीव प्रदेश औदारिक देह रहित होनेसे दिखाई नही देते। अथवा हे शिष्य! तू जीसको जीव कहता है उसके प्रदेश जीवसे भिन्न है या अभिन्न हैं? यदि "भिन्न है" ऐसा कहा जाय तो उस जीवके साथ फिरसे उसका सगम कैसे होता है? क्योंकि भिन्न प्रदश दूसरे स्थान पर भी परमाणु के समान मिलजाते है और उन प्रदेशोका दूसरे जीवके साथ सगम होनेसे उन दोनों जीवोंके कर्मका शकर हुआ इसलिये दोनों जीवोंके सुख दुखादिक भी मिल जाना चाहिये। परतु ऐसा तो है भी नहीं। इसलिये "भिन्न है" ऐसा नही कह सकते। 'अब वे प्रदेश जीवसे अभिन्न है' ऐसा यदि तू कहेतो वे प्रदश जीवके ही अन्तर्गत हैं ऐसा कहना चाहिये इसलिये दो राशि ही सिद्ध हुई परतु तीन नही हुए।" अपितु शिष्यने प्रश्न किया कि–"वे प्रदेश अभिन्न हैं तो भी स्थानका भेद हुआ इसलिये उसे नो जीव कहना चाहिये। जैसे आकाश एक होने परभी स्थान के भेदसे घडेमे रहा आकाश "घटाकाश" और घरमे रहा

आकाश 'गृहाकाश' कहलाता है इसी प्रकार स्थान भेदसे नोजीव कहनेमें क्या बाधा है ? " गुरुने उत्तर दिया कि, " यदि ऐसा कहा जाय तो 'नो अजीव' नामक चोथी राशि भी तुजे माननी होगी क्योंकि आकाशादिक अजीव हैं, उसके भी प्रदेश सभव है, इसलिये उन प्रदेशोंकी स्थानभेद की विवक्षासे नो अजीव कहना पडेगा । और ऐसा करनेसे चार राशि हो जायगी । परन्तु जैसे लक्षण के समानपनसे नोजीव जीवसे भिन्न नहीं है उसी प्रकार समान लक्षण होनसे नोअजीव भी अजीवसे भिन्न नही है"

इस प्रकार उन गुरू शिष्य का वाद करते छ महिने व्यतीत हो गये । तब राजाने गुरुसे कहा कि-' हे स्वामी ! अब वाद समाप्त कीजिये क्योंकि इसकी व्यग्रतासे मेरे राज कार्यमें बाधा आती है ।" तब गुरुने कहा कि-" अब तक मैने इस शिष्यको मात्र क्रिडा कराई है परन्तु अब प्रात काल मे अवश्य इसका निग्रह करुगा ।" फिर दूसरे दिन गुरूने राजासे कहा कि-" इस दुनियामे जितनी वस्तुऐ है वे सब कुत्रिककी दुकान पर मिलती है ये तुम सब लोग जानते हो इसलिये हम वहा चले और नो जीवकी याचना करे ।"

यहा "कुत्रिक" शब्दका यह अर्थ होता है कि- "कु" अर्थात् पृथ्वी और 'त्रिक' अर्थात् तीन, अर्थात् स्वर्ग, मृत्यु और पाताल इन तीन पृथ्वीका नाम 'कुत्रिक' हुआ इस नामकी दुकान होनेसे 'कुत्रिकापन' होता,

इस दुकान पर बैठे वणिक गृहस्थ ने मन्त्रादिकके आराधन से किसी व्यन्तर देवको सिद्ध किया है । वह देवता ग्राहक को इच्छित प्रत्येक वस्तु किसी भी स्थान से लाकर देता है और उसकी कीमत वह वणिक लेता है । यहा किसीका मत ऐसा भी है कि-यह वणिककी दुकानही देवाधिष्ठित है इसलिये वस्तुकी किमत वह देवताही ले जाता है । फिर गुरू सर्व परिवार सहित उस कुत्रिका पण जाकर रोह गुप्तको पूछ कर कुत्रिकापन के व्यन्तर देवसे कहा कि- "जीव दो" तब उसने तोता, मैना आदि जीव दिये । फिर गुरुने अजीव मांगा तब उसने पत्थरके टुकड आदि दिये । फिर नोजीव मांगा तबभी पत्थर आदि ही दिये क्यों कि 'नो' शब्दका अर्थ निषेध वाचक है अर्थात् अजीव और नोजीवमे कोइ भेद नही है । अन्तमें गुरुने नो अजीव मांगा तब उसका अर्थ जीव करके उस देवताने तोते आदि दिये क्योंकि 'नो' और "अ" ये दो निषेध वाचक होनेसे अजीव नही वह जीव कहलाता है । ऐसा "नो अजीव" शब्दका अर्थ होता है । नोजीव मांगते समय उस देवताने जीवका कोई भी हिस्सा नही दिया इससे जीव और अजीव ये दोही राशिये सिद्ध होती है । परंतु गधे के श्रृंग की तरह तीसरी राशि असत् होनेसे सिद्ध न हो सकी । फिर गुरुने शिष्य से कहा कि– "हे भाई ! अब तू तेरा दुराग्रह छोड दे । भाई जगत में कोइ नोजीव वस्तु मौजूद होती तो यह देवता क्यो नही देता ? इस प्रकार एक सो चमालीस प्रश्न करके राजाके समक्ष गुरूने उस शिष्य का उनिग्रह किया ।

यहा द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य विशेष और समवाय इन छ मूल पदार्थो के भेद कल्पना की है। इनमे पाच [1]महाभूत काल, दिशा, आत्मा और मन ये नो प्रकार द्रव्य के किये हैं। रूप, रस, संख्या, बुद्धि, द्वेष आदि सत्तर भेद गुणके उत्क्षेपण,[2] अपक्षेपण[3], आकुंचन,[4] प्रसारण[5] और गमन[6] ये पाच भेद कर्म के किये। तीन प्रकारका सामान्य किये और एक एक प्रकार विशेष तथा समवायका ग्रहण किया। ये मिलकर छत्तीस भेद हुए। इन सबका प्रकृति,[7] अकार[8] नोकार,[9] और दोनोंका निषेध[10] इस प्रकार चार चार प्रकार किये। इसलिये सब भेद एकसे चुमालीस हुए। फिर जब कुत्रिकापण देवको पास जाकर पृथ्वी मागी तब उसने पाषाण दिया क्योंकि यह प्रकृतिजात उपपद रहित शुद्ध पृथ्वी हैं। अपृथ्वी मागी तब जल आदि दीया नो पृथ्वी मागी तब "नो" शब्द के 'कम निषेध' और 'सर्वथा निषेध' ऐसे दो अर्थ कर कम निषेध के लिये पृथ्वी का टुकड़ा दिया और सर्वथा निषेध के लिये जल आदि दिया। और नो पृथ्वी पृथ्वी मागी तब उसने पृथ्वी (पाषाण आदि) दिये क्योंकि नो अजीव के समान नो अपृथ्वी का अर्थ भी ही होता है। इस प्रकार जल आदि में भी चार चार भेद समझों निश्चयनय के मतानुसार तो जीव और अजीव ये दोही

---

१ पृथ्वी जल अग्नि वायु और आकाश ये पांच महाभूत कह लाते है। २ ऊँचाफेकना ३ नीचफेकना ४ संकुचित होजाना ५ विस्तृत करना ६ जाना ७ मूलशब्द, ८ अल्पनिषेधवाचक ९ सर्वथानिषेधवाचक और १० निषेधका निषेध (मूल शब्द)

पदार्थ है । इस प्रकार गुरुने उसे अनेक प्रकारसे समझाया परंतु जब उसने अपना दुराग्रह नहीं छोडा तब गुरुने कचरा डालने की कुंडी मे से भस्म ले कर उसके सिर पर डाली और उसे गच्छसे बाहर निकाल दिया । राजा उस शिष्य का शाठय देखकर क्रोधित हुआ और उसने नगरमे ऐसी उद्घोषणा कराई कि –" गुरु के प्रतिपक्षी रोहगुप्त को जो मान्य करेगा वह राजद्रोही माना जायेगा । " फिर उस रोह गुप्तने उसकी बुद्धिसे वैशेषिक शास्त्र बनाया ।

श्री महावीर स्वामी के निर्वाण पश्चात् पांचसो चुमालीस वर्ष मे यह छट्ठा निन्हव हुआ उसका वृतान्त कहा गया है ।

" समस्त जगत षट् द्रव्यसे पूर्ण है ऐसा जिनेश्वरने देखा है उसका उत्थापन करने वाला और द्रव्य गुण आदि छ प्रकार को सत्य साबित कर उसका विस्तार करने वाला तथा अपने तीन राशी के पक्षका स्थापन करनेवाला वैशेषिक छट्ठा निन्हव हुआ है । "

देव, गुरू और श्रुतादिक का उत्थापन करता हुआ यह वैशेषिक महान हानि को प्राप्त हुआ अत इस पांचवे श्रुताचारसे सूत्र के अर्थोसे शिष्यो को भ्रष्ट नही होना चाहिये ।

[इत्यब्ददिनपरिमितोपदेशप्रासादवृतौ नवदशस्तम्भस्य एकपञ्चयधिकद्विशततमः प्रबन्धः] ॥२६३॥